का० मार्क्स
फ़्रे० एंगेल्स

संकलित रचनाएं

तीन खण्डों में

खण्ड १

भाग २

प्रगति प्रकाशन - मास्को

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

अनुवादक और संपादक : सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक की ओर से

का० मार्क्स और फ़े० एंगेल्स की संकलित रचनाओं का प्रस्तुत हिन्दी संस्करण सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान द्वारा तैयार किये गये और राजनीतिक साहित्य प्रकाशन गृह, मास्को, द्वारा १९६६ में छापे गये रूसी संस्करण (तीन खंडों में) का अनुवाद है।

पाठकों की सुविधा के लिए हर खंड को दो भागों में बांटा गया है।

К. МАРКС и Ф. ЭНГЕЛЬС

Избранные произведения

ТОМ 1, часть 2

на языке хинди

M $\frac{10101-593}{014(01)-78}$ 634–77

विषय-सूची

फ़्रेडरिक एंगेल्स

जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति[1]

१

जर्मनी क्रान्ति के समारम्भ के समय

यूरोपीय महाद्वीप में क्रान्तिकारी नाटक के प्रथम अंक का पटाक्षेप हो चुका है। १८४८ के तूफ़ान से पहले जिन "भूतपूर्व शक्तियों" का ज़माना था, वे पुन: "अस्तित्वमान शक्तियां" बन चुकी हैं, और कुछ समय के न्यूनाधिक लोकप्रिय शासकों, अस्थायी गवर्नरों, त्रिशासकों, तानाशाहों को उनके पुच्छल्ले रूपी प्रतिनिधियों, असैनिक कमिश्नरों, सैनिक कमिश्नरों, प्रीफ़ेक्टों, जजों, जनरलों, अफ़सरों और सैनिकों के साथ विदेशी सागरतटों पर पटक दिया गया है और "सागरपार" याने इंगलैंड या अमरीका भेज दिया गया है ताकि वे वहां «in partibus infidelium»[2] नयी सरकारें, यूरोपीय समितियां, केन्द्रीय समितियां, राष्ट्रीय समितियां बनायें और अपने आगमन की किसी कम काल्पनिक अधिपतियों की तरह गम्भीर उद्घोषणाएं करें।

महाद्वीपीय क्रान्तिकारी पार्टी को – पार्टियों को कहना अधिक उपयुक्त होगा – लड़ाई के तमाम मोर्चों पर जितनी बुरी तरह पराजय का मुंह देखना पड़ा, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। परन्तु इससे क्या? ब्रिटिश मध्यम वर्गों ने अपनी सामाजिक तथा राजनीतिक श्रेष्ठता के लिये जो संघर्ष किया, क्या वह अड़तालीस वर्षों तक नहीं चलता रहा, और फ़्रांसीसी मध्यम वर्गों के बेमिसाल संघर्ष क्या चालीस वर्षों तक नहीं चलते रहे? क्या उनकी विजय ठीक उस मौक़े की तुलना में कभी समीपतर थी जब पुनस्स्थापित राजतंत्र अपने पांव को पहले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक मज़बूत जमाये हुए था? उस अंधविश्वास का ज़माना कभी का लद चुका है जो चन्द आन्दोलनकारियों की दुर्भावना को क्रान्तियों का कारण बताया करता था। अब हरेक को पता है कि जहां कहीं क्रान्तिकारी उथल-पुथल होती है, वहां पार्श्वभूमि में कोई न कोई सामाजिक आवश्यकता होती है जिसकी जीर्ण पड़ चुके संस्थान पूर्ति नहीं होने देते। हो सकता है कि यह

आवश्यकता अभी इतने ज़ोरदार ढंग से, इतने व्यापक रूप से अनुभव न की जाती हो जो तात्कालिक सफलता सुनिश्चित कर सके, परन्तु बलपूर्वक दमन की हर कोशिश उसे तब तक अधिकाधिक सशक्त ढंग से ऊपर लाती रहेगी जब तक वह आवश्यकता अपने बन्धनों को तोड़ नहीं देती। इसलिये यदि हम पिट जाते हैं तो हमारे पास इसके अलावा करने को और कुछ नहीं रह जाता कि हम फिर नये सिरे से काम शुरू करें। और सौभाग्यवश हमें आन्दोलन के पहले अंक के पटाक्षेप और दूसरे अंक के आरम्भ के बीच आराम करने का जो सम्भवतः अत्यल्प समय मिलता है, वह हमें एक बहुत ज़रूरी काम करने का वक़्त दे देता है: उन कारणों का अध्ययन करना जिनके फलस्वरूप क्रान्ति का विस्फोट हुआ और वह पराजित हुई; उन कारणों का अध्ययन करना जिन्हें कुछ नेताओं के आकस्मिक प्रयत्नों, प्रतिभा, त्रुटियों, ग़लतियों या ग़द्दारी में नहीं, वरन् उथल-पुथलग्रस्त राष्ट्रों में से हरेक की आम सामाजिक स्थिति में तथा उसके अस्तित्व की अवस्थाओं में ढूंढ़ा जाना चाहिए। फ़रवरी तथा मार्च १८४८ में भड़की आग इक्के-दुक्के व्यक्तियों की हरकत नहीं, वरन् राष्ट्रीय आवश्यकताओं की ऐसी स्वतःस्फूर्त तथा अरोध्य अभिव्यक्तियां थीं जिनकी न्यूनाधिक स्पष्टतापूर्वक समझ तो लिया गया था परन्तु जिन्हें हर देश के नाना वर्गों ने बहुत साफ़-साफ़ अनुभव किया—यह ऐसा तथ्य है जिसे सर्वत्र स्वीकार किया जाता है; परन्तु आप जब प्रतिक्रान्ति की सफलताओं की जांच-पड़ताल करते हैं तो आपको तुरन्त यह जवाब मिलता है कि अमुक-अमुक महाशय या सज्जन ने जनता से "ग़द्दारी" की। इनमें से कौनसा उत्तर सही हो सकता है, यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है, परन्तु वह किसी भी सूरत में कुछ भी स्पष्ट नहीं करता, यह भी नहीं बताता कि यह कैसे हुआ कि "जनता" ने अपने साथ इस तरह ग़द्दारी होने दी। और उस राजनीतिक पार्टी का भविष्य कितना अफ़सोसनाक है जिसकी पूरी की पूरी पूंजी बस इतने एक तथ्य की जानकारी है कि अमुक-अमुक सज्जन पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए।

इसके अलावा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह भी परम महत्वपूर्ण वस्तु है कि क्रान्तिकारी उथल-पुथल और उसके दमन के, दोनों चीज़ों के कारणों की जांच की जाये तथा उन पर प्रकाश डाला जाये। ये सारे घटिया क़िस्म के निजी झगड़े और पारस्परिक आरोप—ये सारे परस्परविरोधी दावे कि मारास्त ने या लेद्रू-रोलें ने या लूई ब्लां ने अथवा अस्थायी सरकार के किसी दूसरे सदस्य ने या इन सबने मिलकर क्रान्ति को उन चट्टानों के पास पहुंचाया जिनसे टकराकर

वह दुर्घटनाग्रस्त हो गयी – ये सब बातें उस अमरीकी या अंग्रेज़ के लिये क्या दिलचस्पी पैदा कर सकती हैं, उसे क्या जानकारी मुहैया कर सकती हैं, जो इन सारे विभिन्न आन्दोलनों को इतनी दूर से देख रहा था कि उसके लिये कार्रवाइयों की कोई भी तफ़सील देख पाना सम्भव नहीं था। कोई भी समझदार व्यक्ति कभी यह विश्वास नहीं कर पायेगा कि ग्यारह व्यक्ति* – अधिकतर बहुत ही औसत दर्जे के लोग – भले या बुरे के लिये भी – तीन महीनों में ३ करोड़ ६० लाख लोगों के राष्ट्र को तबाह करने में सफल हो सकते थे बशर्ते ख़ुद इन ३ करोड़ ६० लाख लोगों ने अपने सामने रास्ता उतना ही कम देखा हो जितना इन ग्यारह ने देखा था। पर यह कैसे हुआ कि इन ३ करोड़ ६० लाख लोगों को स्वयं तुरन्त यह तय करने के लिये कहा गया कि उन्हें किधर जाना है हालांकि वे अंशतः धुंधलके में भटक रहे थे, और फिर वे कैसे भटक गये तथा उन्हें पुराने नेताओं को कुछ देर के लिए फिर से नेतृत्व पद पर लौटने का मौक़ा मिला।

इसलिये हम यदि «*The Tribune*»[3] के पाठकों के सामने वे कारण पेश करने का यत्न करें जिन्होंने १८४८ की जर्मन क्रान्ति को आवश्यक तो बनाया लेकिन जिनके फलस्वरूप उसका १८४९ और १८५० में अस्थायी तौर पर अनिवार्यतः दमन हुआ तो हम से यह अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि उस देश में घटना-चक्र जिस रूप में घूमा, उसका हम पूरा इतिहास प्रस्तुत करें। कालान्तर की घटनाएं तथा आनेवाली पीढ़ियों का फ़ैसला यह तय करेगा कि आकस्मिक, असम्बद्ध तथा असंगत प्रतीत होनेवाले तथ्यों के ढेर के कितने हिस्से को विश्व इतिहास का भाग बनना चाहिए। इस तरह के कार्य का समय अभी नहीं आया है; हमें सम्भाव्य की सीमाओं तक अपने को सीमित रखना चाहिए और यदि हम अकाट्य तथ्यों पर आधारित युक्तिसंगत कारण ढूंढ़ सकें जो इस आन्दोलन की मुख्य घटनाओं, मुख्य उतार-चढ़ावों पर रोशनी डालने और यह सुराग ढूंढ़ने में सहायक होंगे कि अगला, शायद अनतिदूर भविष्य में होनेवाला विस्फोट जर्मन जनता को किस दिशा में ले जायेगा, तो हमें सन्तोष कर लेना चाहिए।

सबसे पहले सवाल उठता है कि क्रान्ति के विस्फोट के समय जर्मनी की क्या हालत थी?

* फ्रांसीसी अस्थायी सरकार के सदस्य। – सं०

जनता के विभिन्न वर्गों की, जो प्रत्येक राजनीतिक संगठन के आधार होते हैं, संरचना जर्मनी में दूसरे सारे देशों से अधिक उलझी हुई थी। इंगलैंड और फ़्रांस में तो बड़े शहरों और ख़ास तौर पर राजधानी में संकेन्द्रित सशक्त और समृद्ध मध्यम वर्ग ने सामन्तवाद को पूरी तरह नष्ट कर दिया था या कम से कम उसे अनुल्लेखनीय रूपों की स्थिति में पहुंचा दिया था, जैसा कि इंगलैंड में हुआ, लेकिन जर्मनी में सामन्ती प्रभुओं ने पुराने ज़माने से चले आ रहे अपने विशेषाधिकारों के एक बड़े भाग को सुरक्षित रखा। भू-स्वामित्व की सामन्ती प्रणाली क़रीब-क़रीब सब जगह प्रचलित थी। भू-स्वामियों ने काश्तकारों पर अपना अधिकार-क्षेत्र तक अक्षुण्ण रखा। अपने राजनीतिक विशेषाधिकारों, राजाओं पर नियंत्रण के अधिकार से वंचित इन लोगों ने अपनी जागीरों में कृषक समुदाय पर अपनी समूची मध्ययुगीन श्रेष्ठता प्रायः बरक़रार रखी, उन्हें करों से जो छूट मिली हुई थी, उसे भी उन्होंने सुरक्षित रखा। सामन्तवाद कुछ इलाक़ों में दूसरी जगहों से अधिक फूल-फल रहा था परन्तु राइन नदी के बायें तट को छोड़कर उसे कहीं पूरी तरह नष्ट नहीं किया गया था। इन सामन्ती अभिजातों को, जिनकी संख्या उस समय बहुत ही ज़्यादा थी और जो अंशतः बहुत ही दौलतमन्द थे, देश में प्रथम "श्रेणी" माना जाता था। वही उच्च सरकारी अधिकारी मुहैया करती थी, सेना के अफ़सर तो लगभग पूरी तरह उसके बीच से ही आनेवाले लोग होते थे।

जर्मनी का पूंजीपति वर्ग न तो फ़्रांस या इंगलैंड के पूंजीपति वर्ग जितना अमीर था और न उतना संकेन्द्रित ही था। जर्मनी के पुराने ज़माने के उद्योगों को भाप के प्रचलन और अंग्रेज़ उद्योग की तेज़ी से बढ़नेवाली श्रेष्ठता ने नष्ट कर दिया था; देश के अन्य भागों में नेपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली[4] के अन्तर्गत स्थापित अधिक आधुनिक उद्योग पुराने उद्योगों की कमी पूरी नहीं कर पाये, न वे एक ऐसा कोई औद्योगिक हित उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त थे जिसमें ग़ैर सामन्ती सम्पदा तथा सत्ता के हर विस्तार के लिए इच्छुक सरकारों के सामने अपनी आवश्यकताएं ज़ोरदार ढंग से रखने की शक्ति होती। यदि फ़्रांस क्रान्तियों तथा युद्धों के पचास वर्षों के दौरान अपने रेशम उद्योग को विजयपूर्वक आगे ले जा रहा था तो उधर जर्मनी इस दौरान अपने प्राचीन लिनन उद्योग से क़रीब-क़रीब हाथ धो बैठा था। इसके अलावा औद्योगिक जिले चन्द और एक दूसरे से दूर थे; वे देश के अन्दरूनी हिस्सों में अवस्थित थे तथा अपने आयात-निर्यात के लिए अधिकतर विदेशी – डच या बेल्जियन – बन्दरगाहों का इस्तेमाल करते थे,

इसलिए इन ज़िलों एवं उत्तरी सागर और बाल्टिक के बड़े-बड़े बन्दरगाहों के बीच कोई हित समान नहीं था और यदि था भी तो बहुत कम; वे सर्वोपरि पेरिस और लियों, लन्दन और मानचेस्टर जैसे औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र उत्पन्न करने में असमर्थ थे। जर्मन उद्योग के इस पिछड़ेपन के कई कारण थे; पर यहां दो गिनाना काफ़ी होगा – देश की प्रतिकूल भौगोलिक स्थिति, उसका अटलांटिक से दूर होना जो विश्व-व्यापार का "राजपथ" बन गया था तथा निरन्तर युद्ध जो जर्मनी को अपनी लपेट में लेते रहे और जो १६वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान शताब्दी तक उसकी भूमि पर होते रहे। तादाद की कमी, ख़ास तौर पर संकेन्द्रित तादाद की कमी ही जर्मन मध्यम वर्गों को वह राजनीतिक श्रेष्ठता हासिल करने से रोकती रही जिसका अंग्रेज पूंजीपति वर्ग १६८८ से उपभोग कर रहा था तथा जिसे फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग ने १७८९ में हासिल किया था। फिर भी जर्मनी में १८१५ से सम्पदा में तथ सम्पदा के साथ मध्यम वर्ग के राजनीतिक महत्व में निरन्तर वृद्धि होती रही। सरकारें उसके कम से कम तात्कालिक भौतिक हितों के सामने झुकने के लिये विवश हुई हालांकि ऐसा उन्होंने अनिच्छापूर्वक किया। यह बात भी दावे के साथ कही जा सकती है कि १८१५ से १८३० तक और १८३२ से १८४० तक राजनीतिक प्रभाव का एक-एक कण, जो छोटे राज्यों के संविधानों में मध्यम वर्ग को दिया गया था, उसे फिर राजनीतिक प्रतिक्रिया की उपरोक्त दो अवधियों में उस से फिर छीन लिया गया, उसके एक-एक कण की क्षतिपूर्ति उसे कुछ अधिक व्यावहारिक लाभ प्रदान कर दी गयी थी। मध्यम वर्ग ने हर राजनीतिक पराजय के बाद वाणिज्यिक क़ानून के क्षेत्र में विजय प्राप्त की। और यक़ीनन १८१८ का प्रशियाई संरक्षण-शुल्क[5] तथा Zollverein[6] का गठन जर्मनी के व्यापारियों और उद्योगपतियों के लिये किसी छोटी-सी ड्यूकशाही के सदनों में मंत्रियों पर अविश्वास प्रकट करने के संदिग्ध अधिकार से कहीं अधिक मूल्यवान थे; अलबत्ता, वे मंत्री उनके वोटों पर हंसा ही करते थे। इस तरह बढ़ती हुई दौलत और फैलते व्यापार के साथ पूंजीपति वर्ग जल्द ऐसी मंज़िल पर पहुंच गया जहां उसने देखा कि उसके सबसे महत्वपूर्ण हितों के विकास को रोके खड़े हैं देश का राजनीतिक ढांचा – परस्पर टकरानेवाली प्रवृत्तियों तथा सनकों वाले छत्तीस राजाओं के बीच देश का ऊटपटांग विभाजन; कृषि और उससे जुड़े व्यापार के पांवों को जकड़नेवाली सामंती बेड़ियां; तंग कर देनेवाली वह निगरानी जो अनभिज्ञ तथा आत्माभिमानी नौकरशाही उसके सारे कारोबार पर रखती थी। साथ ही

Zollverein के विस्तार तथा सुदृढ़ीकरण, भापचालित परिवहन के ग्राम प्रचलन, घरेलू व्यापार में बढ़ती प्रतियोगिता ने विभिन्न राज्यों तथा प्रान्तों के वाणिज्यिक वर्गों के हितों में सामीप्य स्थापित कर दिया, उनके हितों को एकसमान बना दिया, उनकी शक्ति का केन्द्रीयकरण कर दिया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुग्रा कि उनका पूरे का पूरा समूह उदारपंथी विपक्ष के खेमे में जा पहुंचा तथा राजनीतिक सत्ता के लिये जर्मन मध्यम वर्ग ने पहले गम्भीर संघर्ष में विजय प्राप्त की। यह माना जा सकता है कि यह परिवर्तन १८४० से, उस क्षण से हुग्रा जब प्रशा के पूंजीपति वर्ग ने जर्मनी में मध्यम वर्गीय ग्रान्दोलन के नेतृत्व की बागडोर ग्रपने हाथ में ले ली। हम फिर १८४०–१८४७ के इस उदारपंथी विपक्ष ग्रान्दोलन की ग्रोर लौट ग्रायेंगे।

राष्ट्र के व्यापक जनसमुदाय में, जो न ग्रभिजात वर्ग का था ग्रौर न पूंजीपति वर्ग का, शहरों में छोटे-छोटे व्यवसायियों ग्रौर दुकानदारों का वर्ग तथा मेहनतकश लोग ग्रौर गांवों में कृषक समुदाय था।

छोटे-छोटे व्यावसायियों ग्रौर दुकानदारों का वर्ग जर्मनी में तादाद की दृष्टि से बहुत ही बड़ा है, यह उस देश में बड़े-बड़े पूंजीपतियों तथा उद्योगपतियों के एक वर्ग के रूप में कमजोर विकास का फल है। बड़े-बड़े शहरों के निवासियों में तो उसकी क़रीब-क़रीब बहुसंख्या है; छोटे-छोटे शहरों में उसका पूरी तरह बोलबाला है क्योंकि वहां प्रभाव पाने के लिये ग्रधिक समृद्ध प्रतियोगियों का ग्रभाव है। यह वर्ग, जो प्रत्येक ग्राधुनिक राज्य ग्रौर तमाम ग्राधुनिक क्रान्तियों में महत्वपूर्ण होता है, जर्मनी में तो ग्रौर भी ग्रधिक महत्वपूर्ण है जहां हाल के संघर्षों के दौरान उसने ग्राम तौर पर निर्णायक भूमिका ग्रदा की। बड़े-बड़े पूंजीपतियों, व्यापारियों ग्रौर उद्योगपतियों, ग्रधिक सटीक शब्दों में, बुर्जुग्रा तथा सर्वहारा या ग्रौद्योगिक वर्ग के बीच उसकी मध्यवर्ती स्थिति उसका स्वरूप निर्धारित करती है। पहले के बीच स्थान पाने की कामना करनेवाले इस वर्ग के लोगों के भाग्य में एक हल्का-सा उलटा झोंका उन्हें दूसरे की पांतों में पटक देता है। राजतंत्रवादी तथा सामन्ती देशों में दरबारी ग्रौर ग्रभिजातीय रिवाज उसके ग्रस्तित्व के वास्ते ग्रावश्यक होते हैं; इस रिवाज के ख़त्म होने से उसका ग्रधिकतर भाग बर्बाद हो सकता है। छोटे-छोटे शहरों में फ़ौजी गैरीज़न, स्थानीय शासन, ग्रदालत ग्रौर उससे सम्बद्ध लोग बहुधा उसकी समृद्धि का ग्राधार होते हैं; इन्हें ज़रा-सा हटा दो, बस छोटे दुकानदार, दर्ज़ी, मोची ग्रौर बढ़ई चौपट हो जाते हैं। इस प्रकार ग्रधिक समृद्ध वर्ग की क़तारों में प्रवेश पाने की ग्राशा तथा सर्वहाराग्रों की,

यही नहीं, मुफ़लिस की स्थिति में पहुंच जाने की आशंका के बीच, सार्वजनिक मामलों के संचालन में भाग लेकर अपने स्वार्थों के संवर्द्धन की आशा तथा ग़लत मौक़े पर विरोध कर सरकार का, जो उनके अस्तित्व को ही ख़त्म कर देती है क्योंकि उसके पास उसके सर्वोत्तम ग्राहकों को छीनने की ताक़त है, कोपभाजन बनने की आशंका के बीच निरन्तर झूलनेवाले इस वर्ग के पास अल्प साधन होते हैं जिनके स्वामित्व की असुरक्षा का अनुपात उसकी मात्रा से उलटा होता है। यह वर्ग अपने विचारों में घोर ढुलमुल होता है। सशक्त सामन्ती या राजतंत्रवादी सरकार के मातहत वह बहुत नम्र होता है और झुक-झुक कर हुक्मबरदारी करता है, परन्तु जब मध्यम वर्ग ऊपर उठता है वह उदारतावाद की ओर पहुंच जाता है; ज्योंही मध्यम वर्ग अपनी श्रेष्ठता क़ायम कर देता है, उसे प्रचंड जनवादी दौरे पड़ने लगते हैं, लेकिन जब उसके नीचे का वर्ग, सर्वहारा वर्ग अपना स्वतंत्र आन्दोलन शुरू करने का यत्न करता है तो वह आशंकित होकर बुरी तरह भयभीत हो जाता है। हम आगे चलकर देखेंगे कि जर्मनी में यह वर्ग कैसे बारी-बारी से पहले इस स्थिति में और फिर उस स्थिति में पहुंचता रहता था।

जर्मनी में मज़दूर वर्ग अपने सामाजिक तथा राजनीतिक विकास में इंगलैंड तथा फ्रांस के मज़दूर वर्ग से उतना ही पीछे है जितना जर्मन पूंजीपति वर्ग इन देशों के पूंजीपति वर्ग से पीछे है। जैसा स्वामी वैसा दास। बहुसंख्यक, मज़बूत, एकजुट तथा सचेतन सर्वहारा वर्ग के अस्तित्व की अवस्थाओं का विकासक्रम बहुसंख्यक, दौलतमन्द, एकजुट तथा सशक्त मध्यम वर्ग के विकास के साथ-साथ चलता है। स्वयं मज़दूर वर्ग का आन्दोलन तब तक स्वतंत्र नहीं होता, उसका तब तक विशिष्ट सर्वहारा स्वरूप नहीं होता जब तक मध्यम वर्ग के भिन्न-भिन्न गुट, ख़ासकर उसका सबसे प्रगतिशील भाग – बड़े उद्योगपति – राजनीतिक सत्ता हासिल नहीं कर लेते तथा राज्य का रूप अपनी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं बदल लेते। तब उद्योगपति और उजरती मज़दूर के बीच टक्कर अवश्यम्भावी होती है और उसे फिर टाला नहीं जा सकता; तब मज़दूर वर्ग को धोखा देनेवाली आशाओं तथा वचनों से, जिन्हें कभी पूरा नहीं किया जा सकता, चुप नहीं कराया जा सकता; तब १९ वीं शताब्दी की महान समस्या – सर्वहारा को मिटाने की समस्या – अन्ततोगत्वा ठीक ढंग से और सही रोशनी में सामने आती है। जर्मनी में मज़दूर वर्ग के व्यापक समूह को उन बड़े आधुनिक औद्योगिक प्रभुओं ने नहीं, जिनके इतने शानदार नमूने ग्रेट ब्रिटेन मुहैया करता है, बल्कि छोटे-छोटे व्यवसायियों ने अपने पास नौकर रखा था जिनकी पूरी उत्पादन

प्रणाली मध्य युग का ध्वंसावशेष मात्र थी। और जिस तरह कपास-अधिपति और छोटे मोची या कारीगर दर्ज़ी के बीच ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है, इसी तरह आधुनिक औद्योगिक बाबिलों के सचेतन चतुर फ़ैक्टरी मज़दूर तथा एक छोटे-से प्रान्तीय क़स्बे के उस विनम्र शागिर्द दर्ज़ी या लकड़ी का सूक्ष्म काम करनेवाले उस शागिर्द बढ़ई के बीच ऐसा ही फ़ासला है जो ऐसी परिस्थितियों के अन्तर्गत रहता तथा इस ढंग से काम करता है जो लगभग पांच सौ वर्ष पहले इसी तरह के लोगों की परिस्थितियों तथा काम के ढंग से बहुत कम भिन्न हैं। जीवन की आधुनिक परिस्थितियों, औद्योगिक उत्पादन की आधुनिक विधियों के इस आम अभाव के साथ-साथ स्वभावतया आधुनिक विचारों का भी प्रायः उतना ही अभाव था इसलिये क्रान्ति छिड़ने पर मेहनतकश वर्गों के एक बड़े हिस्से यदि शिल्प-संघों और मध्ययुगीन विशेषाधिकारप्राप्त व्यावसायिक निगमों की तत्काल पुनस्स्थापना के लिये आवाज़ उठायी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। इसके बावजूद उत्पादन की आधुनिक प्रणाली वाले औद्योगिक ज़िलों के प्रभाव के कारण और मेहनतकश लोगों की एक बहुत बड़ी तादाद के स्थानान्तरणकारी जीवन द्वारा मुहैया की गयीं अन्तःसंचार की सुविधाओं एवं मानसिक विकास के फलस्वरूप एक शक्तिशाली नाभिक तैयार हुआ जिसके अपने वर्ग की मुक्ति के बारे में विचार कहीं स्पष्ट तथा विद्यमान तथ्यों तथा ऐतिहासिक आवश्यकताओं के कहीं अनुरूप थे; परन्तु वे मात्र अल्पसंख्या थे। यदि यह माना जाये कि मध्यम वर्गों का सक्रिय आन्दोलन १८४० से शुरू हुआ तो मज़दूर वर्ग का आन्दोलन १८४४ के सिलेशियाई और बोहेमियई* फ़ैक्टरी मज़दूरों के विद्रोहों[7] के सूत्रपात के साथ शुरू होता है। हमें जल्द उन भिन्न-भिन्न मंज़िलों को देखने का मौक़ा मिलेगा जिनके बीच से यह आन्दोलन गुज़रा।

अन्ततः छोटे-छोटे फ़ार्मरों का वह विशाल वर्ग, कृषक समुदाय आता है जो अपने साथ संलग्न खेत मज़दूरों समेत पूरे राष्ट्र की विशाल बहुसंख्या है। परन्तु यह वर्ग भी भिन्न-भिन्न समूहों में बंटा हुआ है। ये हैं सबसे पहले अधिक दौलतमन्द किसान जिन्हें जर्मनी में Gross- और Mittel-Bauern** कहा जाता है, कमोबेश लम्बे-चौड़े फ़ार्मों के मालिक, जिन में से हरेक के पास बहुत-सारे खेत मज़दूर काम करते थे। इस वर्ग ने, जो कर मुक्त बड़े सामन्ती जागीरदारों

* चेक। – सं०

** बड़े और मझोले किसान। – सं०

और छोटे किसानों तथा खेत मज़दूरों के बीच स्थित था, शहरों के सामन्तवाद-विरोधी मध्यम वर्ग के साथ संघबद्धता में प्रत्यक्ष कारणवश अपना सबसे अधिक स्वाभाविक रास्ता पाया। इनके अलावा दूसरे लोग थे छोटे-छोटे माफ़ीदार किसान, उनका राइन प्रान्त में बोलबाला था जहां सामन्तवाद महान फ़्रांसीसी क्रान्ति की जबर्दस्त चोटों के नीचे धराशायी हो गया था। इसी तरह के छोटे-छोटे, स्वतंत्र माफ़ीदार किसान भी अन्य प्रान्तों में यत्र-तत्र मौजूद थे जहां वे अपनी ज़मीन को पहले के सामन्ती बन्धनों से छुड़ाने में सफल हो गये थे। परन्तु यह वर्ग केवल नाम के लिये ही माफ़ीदारों का वर्ग था, उनकी ज़मीन आम तौर पर इस हद तक तथा ऐसी बोझिल शर्तों के अन्तर्गत रेहन रहती थी कि किसान नहीं, वरन् धन देनेवाला सूदख़ोर ही उसका मालिक होता था। तीसरे थे सामन्तों के असामी जिन्हें ज़मीन से आसानी से बेदख़ल नहीं किया जा सकता था लेकिन स्थायी रूप से लगान देना पड़ता था या जागीर के स्वामी के लिये निरन्तर कुछ निश्चित मात्रा में काम करना पड़ता था। अन्ततः खेत मज़दूर आते हैं, अनेक बड़े कृषि कारोबार केन्द्रों में उनकी हालत बिल्कुल वैसी ही थी जो इंगलैंड में इस वर्ग की थी; वे सब ग़रीबी की हालत में रहते और मर जाते थे, उन्हें भरपेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता था और वे अपने मालिकों के ग़ुलाम बने रहते थे। कृषक आबादी के इन तीन वर्गों, याने छोटे माफ़ीदार किसानों, सामन्तों के असामी और खेत मज़दूरों ने क्रान्ति से पहले राजनीति के बारे में कभी ज्यादा मग़ज़पच्ची नहीं की, परन्तु यह स्पष्ट है कि इस घटना ने उनके लिये भव्य सम्भावनाओं से भरपूर एक नये कार्यक्षेत्र के द्वार खोल दिये होंगे। क्रान्ति ने उनमें से हरेक के लिये लाभ उपस्थित किये तथा एक बार आन्दोलन काफ़ी ज़ोर से होने लगे तो यह आशा की जाती थी कि वे बारी-बारी से उसमें शामिल हो जायेंगे। परन्तु साथ ही यह सर्वथा सुस्पष्ट है और तमाम आधुनिक देशों का इतिहास इस बात का उतना ही साक्षी है कि कृषक आबादी के बहुत बड़े क्षेत्र में बिखरे होने के फलस्वरूप तथा उसके किसी एक बड़े हिस्से में मतैक्य लाने में कठिनाई होने के फलस्वरूप वह कभी सफल स्वतंत्र आन्दोलन नहीं चला सकती; उसे शहरों के अधिक संकेन्द्रित, अधिक जागृत, अधिक आसानी से गतिमान लोगों की पहलक़दमी के प्रभाव की आवश्यकता होती है।

हाल के आन्दोलनों के छिड़ने के समय जिन वर्गों को लेकर जर्मन राष्ट्र बना था, उनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण वर्गों का अभी प्रस्तुत किया जा चुका संक्षिप्त रेखाचित्र उस आन्दोलन में प्रचलित बहुत-सी असंगतियों, असम्बद्धताओं तथा

प्रतीयमान अन्तर्विरोधों पर प्रकाश डालने के लिये काफ़ी होगा। जब इतने विविध प्रकार के, इतने परस्परविरोध वाले तथा एक दूसरे के बीच से इतने अजीब ढंग से गुज़रनेवाले स्वार्थों में उग्र टकराव होता हो; जब हर ज़िले, हर प्रान्त में आपस में टकरानेवाले स्वार्थ अलग-अलग मिक़दार में मिलाये जाते हों; जब सर्वोपरि देश में कोई ऐसा बड़ा केन्द्र, कोई लन्दन, कोई पेरिस न हो जिसके निर्णय अपनी प्रतिष्ठा के बल पर उन्हें हर एक बस्ती में एक जैसे सवाल पर बार-बार लड़ने की आवश्यकता से छुटकारा दिला सकें,—तब इसके अलावा और किस चीज़ की आशा की जा सकती है कि टक्कर ऐसे नाना असम्बद्ध संघर्षों में विलीन हो जायेगी जिनमें ख़ून, ताक़त और पूंजी अथाह मात्रा में ख़र्च तो होंगी परन्तु जिनका इन तमाम चीज़ों के बावजूद कोई निर्णायिक परिणाम नहीं निकलेगा?

जर्मनी का न्यूनाधिक महत्व वाले तीन दर्जन राज्यों में राजनीतिक दृष्टि से अंग-भंग होने के कारण पर भी इन अस्त-व्यस्त, बहुविध तत्वों की भरमार से समान रूप से प्रकाश पड़ता है जिन्हें लेकर जर्मन राष्ट्र बना है, और जो देश के प्रत्येक भाग में मौजूद हैं। जहां समान हित न हों, वहां कार्यकलाप की एकता की तो बात ही क्या, उद्देश्य की एकता भी नहीं हो सकती। यह सच है कि जर्मन महासंघ[8] सदा-सर्वदा के लिये अटूट घोषित किया गया था; फिर भी महासंघ तथा उसका निकाय Diet[9] कभी जर्मन एकता का प्रतिनिधि नहीं रहे। जर्मनी में केन्द्रीयकरण की सबसे चरम सीमा थी Zollverein की स्थापना; इसके कारण उत्तरी सागर के साथ लगे राज्यों को भी अपना एक सीमा-शुल्क संघ[10] बनाने के लिये मजबूर किया गया था और आस्ट्रिया अपने एक पृथक निषेधकारी सीमा-शुल्क की दीवार के अन्दर बन्द रहा। जर्मनी को यह सन्तोष प्राप्त हुआ कि उसका व्यवहारतः केवल तीन स्वतंत्र राज्यों के बीच ही विभाजन हुआ, छत्तीस के बीच नहीं। निस्सन्देह इससे १८१४ में स्थापित रूसी ज़ार* के आधिपत्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

अपने पूर्वानुमानों से ये आरम्भिक निष्कर्ष निकाल चुकने के बाद हम अपने अगले लेख में देखेंगे कि जर्मन जनता के उपरोक्त विभिन्न वर्गों में से कैसे एक के बाद दूसरा वर्ग आन्दोलन में शामिल हुआ और १८४८ की फ़्रांसीसी क्रान्ति के प्रारम्भ होने पर इस आन्दोलन ने क्या स्वरूप ग्रहण किया।

लन्दन, सितम्बर १८५१

---

* अलेक्सांद्र प्रथम।—सं०

२

प्रशियाई राज्य

जर्मनी में मध्यम वर्ग अथवा बुर्जुआ के राजनीतिक आन्दोलन के विषय में कहा जा सकता है कि वह १८४० से शुरू हुआ। उसके पहले ऐसे लक्षण प्रकट हुए थे जिन्होंने यह दिखाया कि उस देश का धनवान् और औद्योगिक वर्ग परिपक्व होकर ऐसा रूप ग्रहण कर रहा है जो उसे अर्द्ध-सामन्ती, अर्द्ध-नौकरशाह राजतंत्र के दबाव के अन्तर्गत उदासीन और निष्क्रिय नहीं रहने देगा। जर्मनी के छोटे राजाओं ने, एक के बाद दूसरे ने न्यूनाधिक रूप में उदारतावादी संविधान मंजूर किया, ऐसा उन्होंने अंशतः अपने लिये आस्ट्रिया और प्रशा के नायकत्व से अथवा अपने राज्यों में सामन्त वर्ग के प्रभाव से अपने लिये अधिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिये किया और अंशतः उन विश्रृंखलित प्रान्तों को, जिन्हें वियेना की कांग्रेस[11] ने उनके शासन के अन्तर्गत ऐक्यबद्ध किया था, एक पूर्ण इकाई के रूप में सुदृढ़ कर सकने के लिये किया। ऐसा वे अपने लिये किसी ख़तरे के बिना कर सकते थे, क्योंकि यदि महासंघ की संसद, आस्ट्रिया तथा प्रशा की यह कोरी कठपुतली उनके संप्रभुताप्राप्त राज्यों की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करती तो उन्हें पता था कि उसके हुक्मों के खिलाफ़ उनके प्रतिरोध को जनमत तथा सदनों का समर्थन प्राप्त होगा; इसके विपरीत, ये सदन यदि बहुत ही अधिक बलशाली हो जाते तो वे सारे विरोधी पक्षों को कुचलने के लिये संसद की ताक़त को आसानी से उपयोग में ला सकते। ऐसी परिस्थितियों में बवारिया, वुर्टेम्बर्ग बादेन या हन्नोवर के संवैधानिक संस्थान राजनीतिक सत्ता के लिये कोई संजीदा संघर्ष उत्पन्न नहीं कर सकते थे, इसलिये जर्मन मध्यम वर्ग का बहुत बड़ा हिस्सा छोटे राज्यों की विधान सभाओं में उठनेवाले छोटे झगड़ों से बहुधा अलग खड़ा रहा क्योंकि वह अच्छी तरह जानता था कि जर्मनी की दो बड़ी ताक़तों की नीति और राजकीय ढांचे में कोई मौलिक परिवर्तन लाये बिना कोई गौण प्रयत्न और विजयें किसी काम की नहीं होंगी। परन्तु साथ ही इन छोटी सभाओं में उदारतावादी वकीलों, पेशेवर विपक्षियों की एक नस्ल पैदा हो गयी, — रोटेक, वेल्कर, रोमेर, जोर्डन, स्टूवे, आइसेनमान जैसे लोग, ऐसे बड़े "लोकप्रिय व्यक्ति" (Volksmänner), जो बीस वर्ष तक कम या ज्यादा कोलाहलभरे परन्तु सदैव असफल विरोध के बाद १८४८ की क्रान्तिकारी लहर द्वारा सत्ता

के शिखर पर पहुंचा दिये गये परन्तु जो वहां पूर्ण अक्षमता और तुच्छता प्रदर्शित कर चुकने के बाद क्षणभर में नीचे फेंक दिये गये। जर्मन धरती पर इन पेशेवर राजनीतिज्ञों और विपक्षियों ने, उनके भाषणों और लेखों ने जर्मनों के कानों को संवैधानिकतावाद की भाषा का आदी बना दिया और उन्होंने अपने अस्तित्व के बल पर ही ऐसे समय के समीप आगमन की उद्घोषणा कर दी जब मध्यम वर्ग उन राजनीतिक शब्दों को अपना लेगा और उन्हें उनका वास्तविक अर्थ दिला देगा जिन्हें इस्तेमाल करने की इन बातूनी वकीलों और प्रोफ़ेसरों की आदत थी परन्तु जो उनमें मूलत: निहित अर्थ को नहीं जानते थे।

जर्मन साहित्य भी उस राजनीतिक उत्तेजना से प्रभावित हुआ जिसकी लपेट में पूरा यूरोप १८३० की घटनाओं की बदौलत आ गया था।[12] उस समय के प्राय: तमाम लेखकों ने अधपके संवैधानिकतावाद का अथवा और भी अधिक अधकचरे जनतंत्रवाद का प्रचार किया। खास तौर पर कम योग्यतावाले विद्वानों में अपनी कृतियों में चतुराई की कमी को ऐसे राजनीतिक संकेतों से ढकने की आदत बढ़ती गयी जो यक़ीनन ध्यान आकृष्ट करते थे। काव्य, उपन्यास, समीक्षाएं, नाटक—प्रत्येक साहित्यिक रचना उस चीज़ से लबालब भरी रहती थी जिसे "प्रवृत्ति" नाम दिया गया, अर्थात् वे सरकार विरोधी भावना के कमोबेश कायरतापूर्ण प्रदर्शनों से ओतप्रोत थीं। जर्मनी में १८३० के बाद हावी विचारों की गड़बड़ी को पूरा कर सकने के लिये राजनीतिक विपक्ष के इन तत्वों के साथ जर्मन दर्शन के ठीक ढंग से आत्मसात न किये जानेवाले विश्वविद्यालयीय संस्मरणों और फ़्रांसीसी समाजवाद के, विशेष रूप से सेंट साइमनवाद के ग़लत ढंग से समझे गये अंशों को मिला दिया गया। और जिन लेखकों के गुट ने विचारों के इस बेमेल मिश्रण का प्रसार किया, उन्होंने गुस्ताख़ी के साथ अपने को "तरुण जर्मनी" अथवा "आधुनिक पंथ" का नाम दिया। आगे चलकर उन्होंने अपने जवानी के दिनों के पाप का पश्चाताप कर लिया परन्तु उन्होंने लिखने की शैली नहीं सुधारी है।

अन्तत: जर्मन दर्शनशास्त्र, सबसे जटिल परन्तु साथ ही जर्मन चिन्तन के विकास का सबसे विश्वस्त थर्मामीटर मध्यम वर्ग के पक्ष में उस समय प्रकट हुआ जब हेगेल ने अपनी कृति 'विधि का दर्शन' में संवैधानिक राजतंत्र को सरकार का अन्तिम तथा सबसे सर्वांगपूर्ण रूप बताया। दूसरे शब्दों में उन्होंने घोषणा की कि देश के मध्यम वर्गों के हाथों में राजनीतिक सत्ता पहुंचने का दिन समीप आता जा रहा है। उनकी मृत्यु के बाद भी उनका पंथ वहां नहीं रुका रहा। जहां

एक ओर उनके अनुयायियों के अधिक अग्रगामी भाग ने प्रत्येक धार्मिक विश्वास को कठोर आलोचना की कसौटी पर कड़ाई के साथ परखा और ईसाई धर्म की पुरानी इमारत को बुनियाद से हिला दिया, वहां वे उन राजनीतिक सिद्धांतों से, जिनका प्रतिपादन सुनते रहना जर्मन कानों के लिये नियतिनिर्दिष्ट था, अधिक साहसपूर्ण राजनीतिक सिद्धांत सामने लाये और उन्होंने प्रथम फ़्रांसीसी क्रान्ति के नायकों की स्मृति को पुनरुज्जीवित करने का यत्न किया। इन विचारों को जिस दुरूह दार्शनिक भाषा के परिधान में लपेटा गया, उसने यदि लेखक तथा पाठक दोनों के मस्तिष्क को धुंधला बनाया तो उसने सेंसर की नज़र को भी उतना ही अंधा बना दिया, और इसी का फल था कि "तरुण हेगेलवादी" लेखकों ने जितनी प्रेस आज़ादी का उपभोग किया वह साहित्य की किसी भी अन्य शाखा के लिए एक अज्ञात वस्तु थी।

इस तरह यह स्पष्ट था कि जर्मनी में जनमत बहुत बड़े परिवर्तन के बीच से गुज़र रहा था। जिन वर्गों की शिक्षा या जीवन स्थिति उन्हें निरंकुश शासतंत्र के अन्तर्गत भी किसी न किसी प्रकार की राजनीतिक शिक्षा प्राप्त करने में और किसी तरह का स्वतंत्र राजनीतिक मत बनाने में सक्षम बनाया, उनका विशाल बहुमत धीरे-धीरे ऐक्यबद्ध होकर विद्यमान व्यवस्था के विरुद्ध विपक्ष का एक शक्तिशाली मोर्चा बन गया। जर्मनी में राजनीतिक विकास की धीमी गति पर कोई फ़सला देने से पहले किसी को भी वह कठिनाई नज़र से ओझल नहीं करनी चाहिए जो ऐसे देश में किसी भी विषय पर सही सूचना प्राप्त करने में सामने आती थी जहां सूचना के सारे स्रोत सरकार के नियंत्रण में थे; जहां बच्चों के लिए बने स्कूल और रविवारीय स्कूल से लेकर अख़बार और विश्वविद्यालय तक में उस चीज़ के अलावा न तो पढ़ाया जाता था, न छपता था और न प्रकाशित होता था जिसके लिए पहले से अनुमति प्राप्त कर ली जाती थी। उदाहरण के लिए वियेना को देखिये। वियेना के लोग उद्योग तथा मैनुफ़ेक्चरों के मामले में जर्मनी में किसी से कम नहीं थे और जीवन्तता, साहस और क्रान्तिकारी उत्साह के मामले में उन्होंने अपने को सब से कहीं अधिक श्रेष्ठ सिद्ध किया; फिर भी अपने वास्तविक हितों के मामले में वे कहीं अधिक अज्ञानी थे और क्रान्ति के दौरान उन्होंने दूसरों की तुलना में ज़्यादा ग़लतियां कीं। काफ़ी हद तक इसका कारण यह था कि वे सबसे मामूली राजनीतिक विषयों तक के मामले में प्राय: पूर्णत: अनभिज्ञ थे—मेट्टरनिख़ की सरकार उन्हें अनभिज्ञता की इस स्थिति में रखने में सफल हो गयी थी।

इस बात पर और प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत राजनीतिक ज्ञान क्यों समाज के ऐसे वर्गों की, जो उसे चुपके से देश में लाने के लिए धन देने की शक्ति रखते थे, और ख़ासकर उन वर्गों की प्राय: विशिष्ट इजारेदारी बना रहा जिनके हितों पर मौजूद हालात ने सबसे अधिक संजीदगी से प्रहार किया, ये वर्ग थे औद्योगिक तथा वाणिज्यिक वर्ग। इसलिए वे ही सबसे पहले न्यूनाधिक प्रच्छन्न निरंकुशतावाद के जारी रहने के विरुद्ध ऐक्यबद्ध होकर सामने आये। और उन द्वारा विपक्ष की क़तारों में पहुंचने के समय को जर्मनी में वास्तविक क्रान्तिकारी आन्दोलन की शुरूआत माना जाना चाहिए।

जर्मन पूंजीपति वर्ग के विपक्षी होने की उद्घोषणा की तारीख़ १८४० से, प्रशा के राजा* की मृत्यु का समय मानी जा सकती है, १८१५ के पुनीत संघ[13] के संस्थापकों में अकेला वही ज़िंदा रह गया था। नये राजा के बारे में यह पता था कि वह अपने पिता के प्रभुत्वशाली नौकरशाह और फ़ौजी राजतंत्र का समर्थक नहीं है। लूई सोलहवें के सत्तारूढ़ होने पर फ़्रांसीसी मध्यम वर्गों ने जो अपेक्षा की थी, वही जर्मन पूंजीपति वर्ग ने कुछ हद तक प्रशा के फ़्रेडरिक-विल्हेल्म चतुर्थ से की। इस बात पर सब सहमत थे कि पुरानी व्यवस्था सड़ गयी है, जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है और उसे छोड़ना होगा; पुराने राजा के मातहत जो बात चुपचाप सहन की जाती थी, उसे अब उच्च स्वर में असहनीय घोषित किया गया।

परन्तु लूई सोलहवां, "लूई अभीष्ट" यदि सरलचित्त, दिखावा न करनेवाला भोला-भाला, अपनी तुच्छता से अंशत: सचेत व्यक्ति था, यदि वह बिना कोई निश्चित राय वाला व्यक्ति था, यदि उसने अपने प्रशिक्षण के दौरान ग्रहण की गयी आदतों के बल पर मुख्यतया शासन किया, तो "फ़्रेडरिक-विल्हेल्म अभीष्ट" कुछ बिल्कुल भिन्न प्रकार का व्यक्ति था। चरित्र की कमज़ोरी के मामले में वह अपने फ़्रांसीसी आदर्श-व्यक्ति से यक़ीनन बहुत आगे निकल गया था, परन्तु वह ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसके अपने दावे या अपनी रायें न रही हों। उसने शौक़िया ढंग से सारे ज्ञान-विज्ञान का प्रारम्भिक परिचय प्राप्त कर लिया था और इसलिए वह मान बैठा कि उसमें अधिकांश विषयों पर अन्तिम निर्णय देने लायक़ विद्वत्ता है। उसे पूरा विश्वास था कि वह प्रथम कोटि का वक्ता है, और यक़ीनन बर्लिन

---

* फ़्रेडरिक-विल्हेल्म तृतीय। – सं०

में एक भी ऐसा व्यापारिक एजेंट नहीं था जो कथित वाक्चातुर्य की इतनी प्रचुरता में या धाराप्रवाह वक्तृत्व में उसे मात दे पाता। सर्वोपरि उसकी अपनी रायें थीं। वह प्रशियाई राजतंत्र में नौकरशाह तत्व से नफ़रत करता था, घृणा करता था परन्तु इसका कारण केवल यही था कि उसकी सारी सहानुभूति सामन्ती तत्व के साथ थी। उसने, जो स्वयं *«Berliner politisches Wochenblatt»*[14] के, तथाकथित ऐतिहासिक विधि पंथ[15] के (बोनाल्द, दे मेस्त्र और फ़्रांसीसी लेजिटिमिस्टों[16] की पहली पीढ़ी के अन्य लेखकों के विचारों के सहारे अपना अस्तित्व बनाये रखनेवाला पंथ) संस्थापकों में से तथा उसमें लिखनेवाले प्रमुख लोगों में से एक था, अभिजात वर्ग की प्रभुत्वपूर्ण सामाजिक स्थिति को यथासम्भव अधिकतम पूर्णता के साथ पुनस्स्थापित करना अपना लक्ष्य बनाया। सम्राट अपने राज्य का प्रथम अभिजात श्रीमन्त है जो सबसे पहले सशक्त सामन्तों, राजाओं, ड्यूकों और काउंटों के शानदार दरबार से, और फिर नीचे के भारी तादाद वाले तथा दौलतमन्द अमीर-उमराओं से घिरा हुआ हो; जो अपनी इच्छा के अनुसार अपने वफ़ादार शहरियों और किसानों पर राज करता हो और इस तरह स्वयं उन सारे सामाजिक ओहदों या जातों के एक पूरे सोपानतंत्र का प्रधान हो जिनमें से हरेक अपने विशेषाधिकार का उपभोग करे तथा दूसरों से जन्म के अथवा निश्चित, अपरिवर्तनीय सामाजिक स्थिति के प्रायः अलंघ्य अवरोध से पृथक रहे; ये सारी की सारी जातें अथवा "राज्य की जन्मजात श्रेणियां" शक्ति और प्रभाव में एक दूसरे को इस तरह सन्तुलित रखें कि कार्यकलाप की पूर्ण स्वतंत्रता राजा के हाथों में रहे—ऐसा था beau idéal * जिसे मूर्त्त रूप देने का बीड़ा फ़्रेडरिक-विल्हेल्म चतुर्थ ने उठाया और जिसे वह इस समय फिर मूर्त्त रूप देने का यत्न कर रहा है।

प्रशियाई पूंजीपति वर्ग को, जो सैद्धान्तिक प्रश्नों में बहुत पटु नहीं था, यह पता लगने में कुछ समय लगा कि उनके सम्राट के रुझान का असल मन्तव्य क्या है। परन्तु उन्हें इस चीज़ का बहुत जल्द पता चल गया कि सम्राट उससे बिल्कुल उलट काम करने के लिए उतारू है जो वे चाहते हैं। पिता की मृत्यु होते ही "जबान बेलगाम" हो जाने पर नया सम्राट अनगिनत भाषणों में अपने इरादों का ऐलान करने लगा; उसकी हर तक़रीर, हर कार्रवाई उसे मध्यम वर्ग की सहानुभूति से दूर करती चली गयी। उसने इसकी बहुत परवाह न की

* सुन्दर आदर्श।—सं०

होती अगर उसके काव्यमय स्वप्नों में कुछ कठोर तथा चिन्ताजनक तथ्यों ने व्याघात न पहुंचाया होता। अफ़सोस, रोमानियत अंकगणित में कमज़ोर होती है तथा सामन्तवाद डान क्विग्ज़ोट के ज़माने से ही हमेशा ग़लत हिसाब लगाता आया है! फ़्रेडरिक-विल्हेल्म चतुर्थ ने नक़द मुद्रा के प्रति उस घृणा को ज़रूरत से ज़्यादा अपनाया जो धर्मयोद्धाओं के वंशजों की पुनीततम धरोहर होती थी। सिंहासनारूढ़ होने पर उसने सरकार की महंगी परन्तु मितव्ययिता के साथ व्यवस्थित प्रणाली और साधारण रूप से भरा हुआ राजस्व कोष पाया। दरबारी उत्सवों, शाही सफ़रों, ख़ैरातों, ज़रूरतमन्द, फटेहाल और लोभी सामन्तों को आर्थिक सहायता देने आदि पर दो वर्षों के अन्दर सारे बेशी धन की कौड़ी-कौड़ी ख़र्च हो गयी, और नियमित रूप से मिलनेवाले टैक्स अब दरबार या सरकार में से किसी की भी ज़रूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त नहीं रह गये थे। इस प्रकार महामहिम ने बहुत जल्द अपने को एक ओर भारी घाटे तथा दूसरी ओर १८२० के उस क़ानून के बीच पाया जिसके ज़रिए "जनता के भावी प्रतिनिधित्व" की सहमति के बिना किसी भी नये क़र्ज़ की प्राप्ति या उस समय मौजूद करों में वृद्धि को ग़ैरक़ानूनी बना दिया गया था। इस प्रतिनिधित्व का अस्तित्व नहीं था; उसकी स्थापना की ओर रुझान नये सम्राट में अपने पिता की अपेक्षा और भी कम था; अगर उसमें यह रुझान रहा भी हो तब भी वह जानता था कि जनमत में उसके सिंहासनारूढ़ होने के बाद से आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है।

निस्सन्देह, मध्यम वर्गों को जिन्होंने अंशतः यह अपेक्षा की थी कि नया सम्राट तुरन्त संविधान मंज़ूर कर देगा, प्रेस की आज़ादी, जूरी के मातहत मुक़दमे आदि, आदि की घोषणा कर देगा, संक्षेप में वह स्वयं उस शान्तिपूर्ण क्रान्ति का नेतृत्व करेगा जिसे वे राजनीतिक प्रभुत्व हासिल करने के लिए चाहते थे, जल्द अपनी भूल का पता चल गया और वे आग-बबूला होकर उस पर झपट पड़े। राइन प्रान्त में और साधारणतया न्यूनाधिक रूप में पूरे प्रशा में वे इतने गुस्से में थे कि वे स्वयं अपने पास ऐसे लोगों की, जो प्रेस में उनका प्रतिनिधित्व कर पाते, कमी होने के कारण उस चरम दार्शनिक पार्टी तक के साथ ऐक्यबद्धता स्थापित करने के लिए आगे बढ़े जिसकी हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं। इस ऐक्यबद्धता का फल था कोलोन का «*Rhenish Gazette*»[17], वह अख़बार, जिसका पन्द्रह माह के अस्तित्व के उपरान्त दमन कर दिया गया परन्तु जिसे जर्मनी में समाचारपत्र-जगत के अस्तित्व की शुरूआत माना जा सकता है। यह १८४२ में हुआ।

बेचारे सम्राट को, जिसकी आर्थिक कठिनाइयां उसके मध्ययुगीन रुझानों पर तीक्ष्णतम व्यंग्य थीं, बहुत जल्द पता चल गया कि वह "जनता के प्रतिनिधित्व" की आम मांग को कुछ रियायत दिये बिना शासन नहीं कर सकता, इस "जनता के प्रतिनिधित्व" को लम्बे अर्से से विस्मृत १८१३ तथा १८१५ के वचनों के अन्तिम अवशेष के रूप में १८२० के क़ानून में मूर्त्त रूप दिया गया था। उसने प्रान्तीय विधान सभाओं की स्थायी समितियों को बुलाकर इस असुविधाजनक क़ानून की आवश्यकता को पूरा करने का कम से कम आपत्तिजनक तरीक़ा ढूंढ़ लिया। प्रान्तीय विधान सभाएं १८२३ में गठित हुई थीं। वे राज्य के आठ प्रान्तों में से हरेक से इन लोगों को लेकर बनायी गयी थीं – १. उच्च कुलीन वर्ग के लोग, जर्मन साम्राज्य के भूतपूर्व सर्वसत्ताधारी परिवार, जिनके मुखिया अपने जन्मजात अधिकार के बल पर विधान सभा के सदस्य थे; २. सामन्तों, अथवा निचले कुलीन वर्ग के प्रतिनिधि; ३. शहरों के प्रतिनिधि और ४. कृषक समुदाय या छोटे कृषक वर्ग के प्रतिनिधि। सब कुछ इस तरह संगठित था कि हर प्रान्त में अभिजात वर्ग के दोनों हिस्सों का सदैव बहुमत हुआ करता था। इन आठ प्रान्तीय विधान सभाओं में से हर एक समिति चुनती थी और इन आठ समितियों को अब बर्लिन बुलाया गया ताकि उस ऋण पर, जिसकी बहुत ज़रूरत थी, वोट देने के लिए एक प्रतिनिधि सभा बनायी जा सके। यह कहा गया कि ख़ज़ाना तो भरा पड़ा है और क़र्ज़ा चालू ज़रूरतों के लिए नहीं, बल्कि एक राजकीय रेलवे लाइन के निर्माण के लिए चाहिए। परन्तु संयुक्त समितियों ने[18] यह घोषित करके कि वे जनता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने की क्षमता नहीं रखते, सम्राट को ऋण देने से साफ़ इन्कार कर दिया। उन्होंने महामहिम से आग्रह किया कि वह प्रतिनिधिमूलक शासन व्यवस्था का वचन पूरा करे जो उसके पिता ने नेपोलियन के विरुद्ध जनता की सहायता की आवश्यकता पड़ने पर उसे दिया था।

संयुक्त समितियों की बैठक ने सिद्ध किया कि विरोध की भावना पूंजीपति वर्ग तक सीमित नहीं रह गयी है। कृषक समुदाय का एक हिस्सा उनसे आ मिला था तथा अपनी जागीरों में स्वयं बड़े कृषक होने के नाते और अनाज, ऊन, स्पिरिट, फ़्लैक्स का कारोबार करनेवाले कई श्रीमंतों ने, जिन्हें निरंकुशतावाद, नौकरशाही तथा सामन्ती पुनस्स्थापन के विरुद्ध उसी तरह ही गारंटियों की ज़रूरत थी, सरकार के विरुद्ध तथा प्रतिनिधिमूलक शासन व्यवस्था के लिए समान रूप से आवाज़ बुलन्द की। सम्राट की योजना बुरी तरह टांय-टांय फिस हो गयी; उसे कोई

धन नहीं मिला और विपक्ष की ताक़त बढ़ गयी। स्वयं प्रान्तीय विधान सभाओं की आगे की बैठकें तो सम्राट के लिए और भी दुर्भाग्यजनक सिद्ध हुईं। उन सबने सुधारों, १८१३ और १८१५ के वचनों की पूर्त्ति, संविधान तथा स्वतंत्र प्रेस की मांग की; उनमें से इस आशय के कुछ प्रस्ताव तो कहना चाहिए अनादरसूचक शब्दों में तैयार किये गये थे तथा क्रुद्ध सम्राट के झल्लाहटभरे उत्तरों ने तो मामला और भी बिगाड़ दिया।

इस बीच सरकार की आर्थिक कठिनाइयां बढ़ती चली गयीं। भिन्न-भिन्न सार्वजनिक विभागों के लिए नियत धनराशियों में कटौतियों, «Seehandlung»[19] के साथ – उस वाणिज्यिक प्रतिष्ठान के साथ, जो सरकार के हिसाब और जोखिम पर सट्टेबाज़ी और व्यापार कर रहा था तथा एक लम्बे अर्से से उसके वित्तीय एजेंट का काम कर रहा था – धोखाधड़ीभरे कारोबार उसकी ऋणशोधक्षमता के बाहरी रूप को क़ायम रखने के लिए पर्याप्त रहे। राजकीय बैंक-नोट और ज़्यादा जारी करने से कुछ संसाधन हासिल हुए और कुल मिलाकर आर्थिक स्थिति का रहस्य अच्छी तरह ढक कर रखा गया। परन्तु इन सारे हथकंडों का भंडार जल्द ख़त्म हो गया। एक और योजना आज़मायी गयी; यह थी एक बैंक की स्थापना, जिसकी पूंजी अंशतः सरकार की तथा अंशतः निजी शेयरहोल्डरों की होनी थी; उसमें मुख्य नियंत्रण सरकार के हाथों में इस तरह रहना था कि वह इस बैंक का धन बड़ी मात्रा में प्राप्त कर सके और इस तरह वैसे ही धोखाधड़ीभरे कारोबारों की पुनरावृत्ति की जा सके जो अब «Seehandlung» के ज़रिए नहीं किये जा सकते थे। परन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि अब ऐसे सरमायादार नहीं मिल पा रहे थे जो ऐसी शर्तों पर अपना पैसा देने को तैयार होते; शेयरों के ख़रीदे जाने से पहले यह ज़रूरी था कि बैंक नियमावली बदली जाये तथा इस बात की गारंटी की जाये कि राजकोष शेयरहोल्डरों की सम्पत्ति का अतिक्रमण नहीं करेगा। इस तरह यह योजना भी विफल होने के बाद ऋण हासिल करने की कोशिश करने के अलावा और कोई तरीक़ा बाक़ी नहीं रह गया था – बशर्ते ऐसे पूंजीपति मिल पाते जो उस रहस्यमय "जनता के भावी प्रतिनिधित्व" की स्वीकृति और गारंटी मांगे बिना अपना धन देने को तैयार हो जाते। राथशिल्ड का दरवाज़ा खटखटाया गया; उसने ऐलान किया कि यदि "जनता का प्रतिनिधित्व" इस ऋण की गारंटी करे तो वह पलभर में इसका प्रबन्ध कर देगा, और अगर इसकी गारंटी नहीं की जाती तो उसका इस कारोबार से कोई सरोकार नहीं होगा।

इस तरह धन प्राप्त करने की सारी आशाएं मिट गयीं और घातक "जनता के प्रतिनिधित्व" से बचने का कोई रास्ता नहीं रह गया था। राथशिल्ड की अस्वीकृति का पता १८४६ के शरदकाल में चल गया था, और अगले साल फ़रवरी में सम्राट ने पूरे के पूरे आठ प्रान्तीय विधान सभाओं की बर्लिन में बैठक बुलायी तथा उन्हें मिलाकर एक "संयुक्त संसद" बनायी। इस संसद को आवश्यकता पड़ने पर १८२० के क़ानून द्वारा अपेक्षित कार्य करना था: उसे ऋणों और टैक्सों में वृद्धि के पक्ष में वोट देना था, लेकिन इससे ज्यादा उसके कोई हक़ नहीं थे। आम क़ानून बनाने के विषय में उसका वोट महज़ सलाहकार का होना था; उसकी बैठकें कोई नियत अवधियों में नहीं होनी थीं, बल्कि जब कभी सम्राट चाहे तब होनी थीं; उसे उसके अलावा और किसी चीज़ पर विचार नहीं करना था जो सरकार अपनी इच्छा के अनुसार उसके सामने रखती। निस्सन्देह सदस्यों से जो भूमिका अदा किये जाने की अपेक्षा की गयी, उससे वे बहुत कम सन्तुष्ट थे। उन्होंने उन इच्छाओं को दुहराया जिनकी घोषणा वे प्रान्तीय विधान सभाओं में किया करते थे; उनके तथा सरकार के सम्बन्ध शीघ्र अत्यन्त उग्र हो गये, और जब सरकार ने यह कहकर ऋण की मांग की कि उसकी रेलवे लाइनों के निर्माण के लिए ज़रूरत है तो उन्होंने उसे फिर अस्वीकार कर दिया।

इस वोट ने उनके अधिवेशन को बहुत जल्दी ख़त्म कर दिया। सम्राट अधिकाधिक विक्षुब्ध होता गया और उसने डांट-फटकार के साथ सभा भंग कर दी परन्तु फिर भी उसे धन के बिना रहना पड़ा। उसने जब यह देखा कि उदारतावादी लीग, मध्यम वर्गों के नेतृत्व के अन्तर्गत निचले अभिजात वर्गीय लोगों तथा निचली श्रेणियों के भिन्न-भिन्न भागों में हर तरह के असन्तुष्ट तत्त्वों को लेकर बनी यह उदारतावादी लीग अपनी इच्छा पूरी करने के लिए कटिबद्ध है तो उसके लिए चिन्तित होने का पूरा-पूरा कारण था। सम्राट ने व्यर्थ ही अपने उद्घाटन भाषण में ऐलान किया कि वह आधुनिक अर्थ वाला संविधान कभी स्वीकार नहीं करेगा; उदारतावादी लीग ने इस तरह के आधुनिक, सामन्तवादविरोधी, प्रतिनिधिमूलक शासन व्यवस्था और उसके समस्त परिणामों—स्वतंत्र प्रेस, जूरी के मातहत मुक़दमा आदि—पर ज़ोर दिया; उन्होंने कहा कि इसके मिलने से पहले वे एक कौड़ी की भी मंजूरी नहीं देंगे। एक चीज़ साफ़ थी और वह यह कि हालात इस तरह देर तक चलनेवाले नहीं थे—या तो कोई एक पक्ष झुके या फिर परिणामस्वरूप सम्बन्ध विच्छेद हो, रक्तपातपूर्ण संघर्ष हो।

मध्यम वर्गों को पता था कि वे क्रान्ति की देहरी पर खड़े हैं, और उन्होंने इसके लिए अपने को तैयार कर लिया था। उन्होंने हर सम्भव उपाय से शहरों के मज़दूर वर्ग तथा कृषक॰क्षेत्रों के कृषक समुदाय का समर्थन प्राप्त करने का यत्न किया। सर्वविदित है कि १८४७ के अन्त में पूंजीपति वर्ग में मुश्किल से ही ऐसा कोई प्रमुख राजनीतिज्ञ रहा होगा जिसने सर्वहारा वर्ग की हमदर्दी हासिल करने के लिए अपने को "समाजवादी" घोषित न किया हो। हम शीघ्र ही इन "समाजवादियों" को काम करते देखेंगे।

समाजवाद के कम से कम बाहरी रूप को धारण करने की अग्रणी पूंजीपतियों की इस उत्सुकता को जर्मनी के मेहनतकश वर्गों में आयी बहुत बड़ी तब्दीली ने जन्म दिया था। १८४० से ही जर्मन मेहनतकशों का एक हिस्सा ऐसा रहा जिसने फ़्रांस तथा स्विट्ज़रलैंड में सफ़र करते समय फ़्रांसीसी मेहनतकशों के बीच उस समय प्रचलित भोंडी समाजवादी तथा कम्युनिस्ट धारणाओं को कमोबेश आत्मसात कर लिया था। १८४० से ही फ़्रांस में प्रचलित इसी प्रकार के विचारों की ओर जो अधिकाधिक ध्यान दिया जाता रहा, उसने समाजवाद तथा कम्युनिज़्म को जर्मनी में भी फ़ैशनेबुल वस्तु बना दिया था और १८४३ से ही सारे अख़बारों के पन्ने सामाजिक प्रश्नों पर बहस से रंगे रहते थे। जर्मनी में समाजवादियों का शीघ्र एक पंथ स्थापित हो गया, जिसकी विशिष्टता उसके विचारों की अनुपमता इतनी नहीं थी जितनी कि उन विचारों की अस्पष्टता थी; उसके मुख्य प्रयास थे फ़्रांसीसी फ़ूरियेवादी, सेंट-साइमनवादी तथा अन्य सिद्धान्तों को जर्मन दर्शन[20] की दुर्बोध भाषा में परिणत करना। जर्मन कम्युनिस्ट शाखा, जो इस पंथ से सर्वथा भिन्न थी, लगभग उसी समय स्थापित हुई थी।

१८४४ में सिलेशिया के बुनकरों के दंगे हुए, उसके बाद प्राग में छीपियों ने विद्रोह किया। इन दंगों ने, सरकार के ख़िलाफ़ नहीं वरन् मालिकों के ख़िलाफ़ मेहनतकश लोगों के इन दंगों ने, जिन्हें निर्ममतापूर्वक कुचल दिया गया था, ज़बर्दस्त सनसनी पैदा कर दी और उन्होंने मेहनतकश लोगों के बीच समाजवादी तथा कम्युनिस्ट प्रचार को नयी प्रेरणा प्रदान की। १८४७ में अकाल के वर्ष रोटी के लिए हुए दंगों ने भी ऐसी ही प्रेरणा प्रदान की थी। संक्षेप में जिस तरह संवैधानिक विपक्ष ने सम्पत्तिधारी वर्गों के अधिकांश भागों को (बड़े सामन्ती भू-स्वामियों को छोड़कर) अपने झंडे के नीचे एकजुट किया था, उसी तरह बड़े शहरों के मेहनतकश वर्ग भी अपनी मुक्ति के लिए समाजवादी तथा कम्युनिस्ट

सिद्धान्तों की ओर देखने लगे हालांकि उस समय मौजूद प्रेस क़ानूनों के अन्तर्गत उन्हें उन सिद्धान्तों के बारे में बहुत कम जानकारी मिल सकती थी। उन्हें क्या चाहिए था, इस बारे में उनके पास कोई निश्चित विचार होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी—उन्हें तो बस इतना पता था कि संवैधानिक पूंजीपति वर्ग के कार्यक्रम में वह सब नहीं है जो वे चाहते हैं, और उनकी आवश्यकताएं भी संवैधानिकता के विचारों की सीमाओं के अन्दर कदापि विद्यमान नहीं थीं।

उस समय जर्मनी में कोई जनतंत्रीय पार्टी नहीं थी। लोग या तो संवैधानिक राजतंत्रवादी थे अथवा ऐसे लोग थे जिनके बारे में न्यूनाधिक रूप से यह स्पष्ट था कि वे समाजवादी या कम्युनिस्ट हैं।

ऐसे तत्त्वों के होने पर मामूली से मामूली टक्कर भी एक गम्भीर क्रान्ति ले आती। जहां बड़े अमीर-उमरा तथा बड़े असैनिक तथा सैनिक अफ़सर मौजूदा शासन व्यवस्था के एकमात्र विश्वसनीय सहारा थे; जहां निचले अमीर-उमरा, बीच के व्यापारी वर्ग, विश्वविद्यालय, हर पांत के स्कूली अध्यापक, यही नहीं, नौकरशाहों और सैनिक अफ़सरों की निचली पांतें तक सरकार के विरुद्ध एकजुट थीं; जहां इन सब के पीछे कृषक समुदाय तथा बड़े शहरों के सर्वहारा वर्ग के असन्तुष्ट जनसाधारण खड़े थे जो फ़िलहाल उदारतावादी विपक्ष का समर्थन कर रहे थे परंतु जिन्होंने वस्तुस्थिति अपने हाथ में लेने के बारे में विचित्र शब्द बुदबुदाने आरम्भ कर दिये थे; जहां पूंजीपति वर्ग सरकार को उलटने के लिए तैयार था और सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग को गिराने की तैयारी कर रहा था,—वहां यह सरकार हठपूर्वक उस रास्ते पर चलती रही जिसे इस टक्कर को अवश्यम्भावी रूप से जन्म देना था। १८४८ के आरम्भ में जर्मनी क्रान्ति की देहरी पर था और फ़रवरी की फ़ांसीसी क्रान्ति यदि इस क्रान्ति को जल्दी न भी लाती, तब भी यह क्रान्ति निश्चित रूप से होनी ही थी।

पेरिस की इस क्रान्ति का जर्मनी पर क्या प्रभाव पड़ा, यह हम अपने अगले लेख में देखेंगे।

लन्दन, सितम्बर १८५१

३

अन्य जर्मन राज्य

हमने पिछले लेख में अपने को प्रायः विशुद्ध रूप से उसी राज्य तक अर्थात् प्रशा तक सीमित रखा जो १८४० से लेकर १८४८ तक के वर्षों के बीच जर्मन आन्दोलन में सबसे महत्त्वपूर्ण था। परन्तु अब उसी ज़माने के जर्मनी के अन्य राज्यों पर एक सरसरी नज़र डालने का समय आ गया है।

जहाँ तक छोटे-छोटे राज्यों का सम्बन्ध है, वे १८३० के क्रान्तिकारी आन्दोलनों के उपरान्त पूरी तरह संघीय संसद के, याने आस्ट्रिया और प्रशा के अधिनायकत्व के मातहत हो गये थे। कई संविधान – जिन्हें उतना ही बड़े राज्यों के नादिरी हुक्मों से बचाव के साधन के रूप में बनाया गया था जितना उन्हें अपने शाही प्रणेताओं की लोकप्रियता तथा वियेना की कांग्रेस द्वारा बिना किसी प्रमुख सिद्धान्त के गठित पंचमेली प्रान्तीय विधान सभाओं की एकता सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया था – ये संविधान काल्पनिक होने के बावजूद १८३० और १८३१ के तूफ़ानी ज़माने में स्वयं छोटे रजवाड़ों की सत्ता के लिए ही ख़तरनाक सिद्ध हो गये। उन्हें प्रायः ख़त्म कर दिया गया; उनका जो कुछ बाक़ी रहने दिया गया, वह उनकी छाया तक नहीं था; केवल वेल्कर, रोटेक और डाहलमान जैसे लोगों की वाचाल आत्म-तुष्टि के बल पर ही यह कल्पना की जा सकती थी कि निकृष्ट चाटुकारिता मिश्रित उस विनम्र विरोध से सम्भवतः कोई नतीजे हाथ लग सकते थे जिसे उन्हें इन छोटे राज्यों के अशक्त सदनों में प्रदर्शित करने दिया जाता था।

इन छोटे राज्यों के मध्यम वर्ग के अधिक जोशीले भागों ने १८४० के बाद बहुत जल्द उन आशाओं का त्याग कर दिया जिनका आधार उन्होंने पहले आस्ट्रिया तथा प्रशा के इन अधीन राज्यों में संसदीय सरकार के विकास को बनाया था। प्रशियाई पूंजीपति वर्ग तथा उससे ऐक्यबद्ध वर्गों ने प्रशा में संसदीय सरकार के लिए ज्योंही संघर्ष करने का गम्भीर संकल्प प्रकट किया, उन्हें तुरन्त पूरे ग़ैर-आस्ट्रियाई जर्मनी में संवैधानिक आन्दोलन का नेतृत्व करने की इजाज़त दे दी गयी। अब इस तथ्य को चुनौती नहीं दी जा सकती कि मध्यवर्ती जर्मनी के उन संवैधानिकतावादियों के, जिन्होंने आगे चलकर फ़्रैंकफ़ुर्ट राष्ट्रीय सभा से नाता तोड़ लिया था और जिन्हें उनकी पृथक सभाओं के स्थान के नाम पर गोथा पार्टी[21] कहा

जाने लगा, मूल केन्द्रबिन्दु ने १८४८ से बहुत पहले ही एक योजना सोची थी जिसे थोड़े संशोधन के बाद १८४९ में उन्होंने पूरे जर्मनी के प्रतिनिधियों के समक्ष प्रस्तुत किया था। वे आस्ट्रिया को जर्मन महासंघ से पूरी तरह बाहर रखना चाहते थे, एक नये आधारभूत क़ानून के साथ तथा प्रशा के संरक्षण में एक संघात्मक संसद की स्थापना चाहते थे तथा छोटे राज्यों को अधिक बड़े राज्यों में मिलाना चाहते थे। यह सब ठीक उस समय होना था जब प्रशा संवैधानिक राजतंत्र की पांतों में शामिल हो जाता, प्रेस की आज़ादी क़ायम कर देता, रूस तथा आस्ट्रिया से स्वतंत्र नीति अपना लेता और इस तरह छोटे राज्यों के संवैधानिकतावादियों को अपनी सरकारों पर वास्तविक नियंत्रण हासिल करने में सक्षम बना देता। इस योजना के आविष्कारक थे हायडलबर्ग (बाडेन) के प्रोफ़ेसर हेर्विनस। इस तरह प्रशियाई पूंजीपति वर्ग की मुक्ति को आम तौर पर जर्मनी के मध्यम वर्गों की मुक्ति का, रूस और आस्ट्रिया दोनों के विरुद्ध आक्रमणात्मक तथा रक्षात्मक ऐक्यबद्धता का संकेत बनना था क्योंकि आस्ट्रिया को – जैसा कि हम अब देखेंगे – बिल्कुल बर्बर देश माना जाता था जिसके बारे में बहुत कम जानकारी थी तथा जो कुछ थी, वह उसकी आबादी के लिए कोई प्रशंसापूर्ण नहीं थी। इसलिए आस्ट्रिया को जर्मनी का संघटक अंग नहीं माना जाता था।

जहां तक समाज के अन्य वर्गों का सम्बन्ध था, वे छोटे राज्यों में प्रशा में प्रायः बराबरी के वर्गों का कमोबेश तेज़ रफ़्तार से अनुसरण करते रहे। दुकानदारी करनेवाले वर्ग अपनी-अपनी सरकारों से, टैक्सों में बढ़ोतरी से अधिकाधिक असंतुष्ट होते चले गये, उन मिथ्या राजनीतिक विशेषाधिकारों में कमी किये जाने के साथ असंतुष्ट होते चले गये, जिनकी वे उस समय डींगें हांका करते थे जब वे आस्ट्रिया तथा प्रशा में "निरंकुशता के दासों" से अपनी तुलना किया करते थे। परन्तु अभी तक उनके विरोध में कोई ऐसी निश्चित वस्तु नहीं थी जो उन्हें ऐसी स्वतंत्र पार्टी के रूप में, जो बड़े पूंजीपति वर्ग के संवैधानिकतावाद से पृथक हो, विशिष्टतासूचक बना सकती। कृषक समुदाय के बीच असन्तोष भी उसी तरह बढ़ता जा रहा था। परन्तु यह सुविदित है कि जनता का यह भाग निश्चल और शान्तिपूर्ण काल में उन देशों को छोड़कर, जहां सार्वजनिक मताधिकार प्रतिष्ठापित है, और कहीं भी न तो अपने हितों को आगे बढ़ायेगा और न कभी स्वतंत्र वर्ग के रूप में अपनी स्थिति अपनायेगा। शहरों में व्यवसायों तथा कारख़ानों में मेहनतकश वर्गों में भी समाजवाद तथा कम्युनिज़्म का "ज़हर" फैलने

लगा। परन्तु प्रशा के बाहर ऐसे शहर बहुत कम थे जिनका कोई महत्व था और औद्योगिक ज़िले तो और भी कम थे, अतः छोटे राज्यों में इस वर्ग का आन्दोलन कार्यकलाप तथा प्रचार के केन्द्रों के अभाव के कारण बहुत धीमा था।

प्रशा तथा छोटे राज्यों में भी राजनीतिक विरोध प्रकट करने की कठिनाई ने जर्मन कैथोलिसिज़्म और फ़्री कोंग्रिगेशनलिज़्म[22] के आन्दोलनों में एक तरह के धार्मिक विपक्ष को जन्म दे दिया। इतिहास हमारे सामने अनेकानेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है जो बताते हैं कि उन देशों में जो राजकीय चर्च के आशीर्वाद का उपभोग करते हैं तथा जहां राजनीतिक वाद-विवाद बंधन से कसा हुआ होता है, वहां सांसारिक सत्ता के विरुद्ध ख़तरनाक सांसारिक विरोध आध्यात्मिक निरंकुशता के खिलाफ़ अधिक धर्मनिष्ठ और अधिक निस्स्वार्थ प्रतीत होनेवाले संघर्ष के पीछे छिपा रहता है। बहुत-सी सरकारें जो अपनी किसी भी कार्रवाई पर विचार करने की इजाज़त नहीं देतीं, शहीद पैदा करने और जनसाधारण का धार्मिक उन्माद भड़काने से पहले दो बार सोचेंगी। इस तरह १८४५ में जर्मनी में, हर राज्य में या तो रोमन-कैथोलिक अथवा प्रोटेस्टेंट धर्म को, या दोनों को ही देश के क़ानून का अभिन्न अंग माना जाता था। उधर हर राज्य में इन दो सम्प्रदायों में से एक या दोनों के पादरी समुदाय सरकार की नौकरशाही प्रणाली का संघटक अंग थे। उस समय प्रोटेस्टेंट या कैथोलिक कट्टरपंथ पर, पादरी समुदाय पर प्रहार करने का मतलब था स्वयं सरकार पर छिपकर प्रहार करना। जहां तक जर्मन कैथोलिकों का सम्बन्ध था, उनका अस्तित्व ही जर्मनी की, ख़ासकर आस्ट्रिया तथा बवेरिया की कैथोलिक सरकारों पर प्रहार था। उन सरकारों ने इसे इसी रूप में देखा। फ़्री कोंग्रिगेशनलिस्टों, भिन्न मतधारी प्रोटेस्टेंटों ने, जो कुछ-कुछ अंग्रेज़ और अमरीकी यूनिटेरियनों[23] से मिलते-जुलते थे, प्रशा के सम्राट तथा शिक्षा एवं धर्म सम्बन्धी उसके लाड़ले मंत्री श्री आयख़ोर्न के पादरीवाद के प्रति झुकाव और कड़ी कट्टरपंथी प्रवृत्ति का खुला विरोध किया। दो नये सम्प्रदायों में – जिनमें से पहला कैथोलिक देशों में तथा दूसरा प्रोटेस्टेंट देशों में कुछ समय तक बहुत तेज़ी से फैला – अपने-अपने मूल के सिवाय और कोई अन्तर नहीं था। जहां तक उनके मत-सिद्धान्तों का प्रश्न था, वे सब इस सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर पूरी तरह सहमत थे कि तमाम स्थापित जड़सूत्र सारहीन हैं। किसी स्पष्टता का यह अभाव ही उनका सार था; वे उस महान मन्दिर के निर्माण का दम भरते थे जिसकी छत के नीचे सारे जर्मन ऐक्यबद्ध हो सकेंगे; इस तरह उन्होंने उस समय का एक और राजनीतिक

विचार धार्मिक रूप में प्रस्तुत किया—यह था जर्मन एकता का विचार; फिर भी वे स्वयं परस्पर सहमत नहीं हो सके।

जर्मन एकता का विचार—जिसे उपरोक्त सम्प्रदायों ने विशिष्ट रूप से तमाम जर्मनों के उपयोग, आदतों तथा रुचियों के अनुकूल गढ़े गये एक समान धर्म का आविष्कार कर कम से कम धार्मिक आधार पर मूर्त्त रूप देने का प्रयास किया—निस्सन्देह व्यापक रूप में प्रसारित था, विशेष रूप से छोटे राज्यों में। जब से नेपोलियन ने जर्मन साम्राज्य का विघटन किया था[21], तब से जर्मनी के सारे disjecta membra* की संघबद्धता के लिए उठनेवाली आवाज़ प्रतिष्ठापित व्यवस्था के प्रति असन्तोष की सबसे आम अभिव्यक्ति बनी हुई थी, छोटे राज्यों पर यह बात ख़ास तौर पर लागू होती थी जहां दरबार, प्रशासन, फ़ौज का भारी ख़र्चा, संक्षेप में, कर-प्रणाली का सारा बोझ राज्य के छोटे आकार तथा अशक्तता के सीधे अनुपात से बढ़ता जाता था। परन्तु पार्टियां इस बात पर असहमत थीं कि इस जर्मन एकता का उस समय क्या रूप होगा जब उसे मूर्त्त रूप दिया जायेगा। पूंजीपति वर्ग, जो कोई गम्भीर क्रान्तिकारी उथल-पुथल नहीं चाहता था, उस चीज़ से—जैसा कि हम देख चुके हैं—सन्तुष्ट था जिसे वह "व्यवहार्य" मानता था, अर्थात् प्रशा की संवैधानिक सरकार के आधिपत्य में आस्ट्रिया के अलावा पूरे जर्मनी का संघ हो; और यक़ीनन, उस समय ख़तरनाक तूफ़ान पैदा किये बिना और कुछ नहीं किया जा सकता था। निम्नपूंजीपति वर्ग तथा कृषक समुदाय—जिस हद तक वह अपने को ऐसे प्रश्नों में व्यस्त रखता था—उस जर्मन एकता की, जिसकी बाद में वे इतने ज़ोर-शोर से मांग करने लगे, कभी कोई परिभाषा प्रस्तुत नहीं कर सके; चन्द स्वप्नद्रष्टा, मुख्यतया सामन्ती प्रतिक्रियावादी जर्मन साम्राज्य की पुनस्स्थापना की आशा करते थे; कुछ अज्ञानी soi-distant** आमूलवादी परिवर्तनवादियों ने स्विट्ज़रलैंड के संस्थानों की प्रशंसा करते हुए अपने को संघात्मक जनतंत्र के पक्ष में घोषित किया; उन्हें तभी उन संस्थानों का वह व्यावहारिक अभ्यास नहीं था जिसने उन्हें बाद में अत्यन्त उपहासास्पद ढंग से निराश किया था; उस समय एक ही चरमपंथी पार्टी थी जिसने एकीभूत तथा अविभाज्य जर्मन जनतंत्र की उद्घोषणा करने की हिम्मत की। इस तरह जर्मन एकता स्वयं एक बड़ा प्रश्न बनी हुई थी, ऐसा प्रश्न जिसमें फूट, कलह तथा कतिपय परिस्थितियों में गृहयुद्ध तक निहित था।

---

* बिखरे हुए सदस्य।—सं०

** तथाकथित।—सं०

कुल मिलाकर यह थी १८४७ के अन्त में प्रशा तथा जर्मनी के छोटे राज्यों की हालत। मध्यम वर्ग, जो अपनी शक्ति अनुभव कर रहा था और जो अब उन बेड़ियों को सहन न करने के लिए कृतसंकल्प था जिनसे सामन्ती तथा नौकरशाह निरंकुशता ने उसके वाणिज्यिक कारोबार, उसके औद्योगिक कार्यकलाप, वर्ग के रूप में उसकी संयुक्त गतिविधियों को जकड़ रखा था; भू-सम्पत्तिधारी अमीर-उमराओं का एक हिस्सा जो अब मात्र विक्रेय माल का इस तरह उत्पादक बन गया था कि उसने अपने हित तथा ध्येय मध्यम वर्ग के हित तथा ध्येय से मिला दिये; छोटा व्यवसायी वर्ग जो टैक्सों से, अपने कारोबार की राह में खड़ी की गयी रुकावटों से असन्तुष्ट था तथा बड़बड़ा रहा था परन्तु जिसके पास ऐसे सुधार का कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं था जिसकी मदद से वह सामाजिक तथा राजनीतिक निकाय में प्रतिष्ठा प्राप्त कर पाता; कृषक समुदाय जो यहां सामन्ती उगाहियों से तथा वहां महाजनों, सूदखोरों और वकीलों से उत्पीड़ित था; शहरों की मेहनतकश जनता जिसमें आम असन्तोष फैल गया था, जो सरकार और बड़े औद्योगिक पूंजीपतियों से समान रूप में घृणा करती थी और जो समाजवादी और कम्युनिस्ट विचारों के संसर्ग में आ गयी थी; संक्षेप में यह विरोध एक पंचरंगी मेल था, उसे विभिन्न हित जन्म दे रहे थे परन्तु उसका नेतृत्व कमोबेश पूंजीपति वर्ग कर रहा था जिसकी प्रथम क़तारों में शामिल होकर प्रशा का और विशेष रूप से राइन प्रान्त का पूंजीपति वर्ग अग्रसर हो रहा था। दूसरी ओर सरकारें थीं जिनमें कई मुद्दों पर मतभेद था, जो एक दूसरे पर, ख़ास तौर पर प्रशा की सरकार पर शक करती थीं जिस पर उन्हें अभी भी अपनी रक्षा के लिए आश्रित रहना पड़ता था; प्रशा में ऐसी सरकार थी जो जनमत द्वारा परित्यक्त थी, यहां तक कि सामन्ती वर्ग के एक हिस्से द्वारा भी परित्यक्त थी, वह ऐसी सेना और नौकरशाही पर अवलम्बित थी जो विपक्षी पूंजीपति वर्ग के विचारों के संसर्ग और प्रभाव में आती जा रही थीं, इन सब बातों के अलावा यह ऐसी सरकार थी जिसके पास अक्षरशः एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी और जो विपक्षी पूंजीपति वर्ग के आगे झुके बिना अपने बढ़ते घाटे को पूरा करने के लिए एक कौड़ी भी जमा नहीं कर सकती थी। क्या प्रतिष्ठापित सरकार के विरुद्ध सत्ता के लिए संघर्ष करते समय किसी भी देश के मध्यम वर्ग की कभी इससे ज्यादा शानदार स्थिति थी?

लन्दन, सितम्बर १८५१

४

आस्ट्रिया

अब हमें आस्ट्रिया पर, उस देश पर ग़ौर करना होगा जिसे मार्च १८४८ तक दूसरे देशों की नज़रों से उसी तरह दूर रखा गया था जिस तरह चीन को इंगलैंड के साथ पिछले युद्ध[25] तक दूसरे देशों की नज़रों से दूर रखा गया था।

स्पष्टतया हम यहां केवल जर्मन आस्ट्रिया पर ही ग़ौर कर सकते हैं। पोलिश, हंगेरियाई या इटालियन आस्ट्रियाई आबादी हमारे विषय की परिधि में नहीं आती और उन्होंने १८४८ के उपरान्त जर्मन आस्ट्रियाइयों की नियति पर जहां तक प्रभाव डाला, वहीं तक उन पर आगे विचार करना होगा।

राजा मेट्टरनिख़ की सरकार ने दो सिद्धान्तों का अनुसरण किया – आस्ट्रियाई शासन के मातहत भिन्न-भिन्न जातियों में से हर एक पर इसी तरह की स्थिति वाली अन्य जातियों द्वारा अंकुश रखा जाना ; दूसरे, – और यह निरंकुश राजतंत्रों का हमेशा बुनियादी सिद्धान्त रहा है – सहारे के लिए दो वर्गों पर, सामन्ती जागीरदारों तथा बड़े-बड़े वित्तपतियों पर निर्भर रहना और साथ ही इन दोनों में से हर एक के प्रभाव तथा शक्ति को दूसरे के प्रभाव तथा शक्ति से सन्तुलित करना ताकि सरकार को कार्यकलाप की पूरी स्वतंत्रता रहे। सामन्ती अभिजात वर्ग, जिसकी सारी आय सभी तरह के सामन्ती राजस्वों से प्राप्त होती थी, सरकार का समर्थन किये बिना नहीं रह सकता था जो भू-दासों के पददलित वर्ग से उसकी रक्षा का एकमात्र साधन सिद्ध हुई, जिसकी लूट-खसोट के सहारे वह जीवित था ; और जब कभी उसका कम अमीर हिस्सा सरकार के ख़िलाफ़ उठा – जैसा कि १८४६ में गैलीशिया में हुआ – मेट्टरनिख़ तुरन्त उस पर टूट पड़ने के लिए ठीक इन भू-दासों को छोड़ देता था जिन्हें अपने इन सीधे उत्पीड़कों से निष्ठुरतापूर्वक बदला लेने का मौक़ा मिलता था।[26] दूसरी ओर स्टाक एक्सचेंज के बड़े सरमायादार मेट्टरनिख़ की सरकार से देश के राजकीय कोषों में अपने बड़े शेयरों की जंजीर से बंधे हुए थे। आस्ट्रिया ने, जिसकी पूरी शक्ति १८१५ में पुनः प्रतिष्ठापित हो गयी थी, जिसने इटली में निरंकुश राजतंत्र पुनःस्थापित किया तथा जिसे वह १८२० से वहां क़ायम रखे हुए था, जो १८१० के दिवालियेपन के बाद अपनी देनदारी के एक हिस्से से मुक्त हो गया था, शान्ति संधि होने के बाद बहुत जल्द विशाल यूरोपीय मुद्रा-बाज़ारों में अपनी

साख़ फिर से क़ायम कर दी और जिस अनुपात से उसकी साख़ बढ़ती गयी, उसी अनुपात से वह अधिक धन लेता गया। इस तरह यूरोप के सारे बड़े वित्तीय अधिपतियों की पूंजी का काफ़ी बड़ा हिस्सा आस्ट्रियाई कोषों में लगा हुआ था; उनमें से हरेक की दिलचस्पी इस बात में थी कि उस देश की साख़ की रक्षा हो; और चूंकि आस्ट्रियाई सरकारी साख़ को अपने बचाव के लिए निरन्तर नये-नये ऋणों की ज़रूरत रहती थी, इसलिए उन्हें समय-समय नयी पूंजी लगाने के लिए बाध्य होना पड़ता था ताकि उन सिक्यूरिटियों की साख़ को बचाया जा सके जिन पर वे पहले ही धन लगा चुके थे। १८१५ के बाद की लम्बी शान्ति तथा आस्ट्रिया जैसे हज़ार वर्ष पुराने राजतंत्र के विश्रृंखलन की प्रतीयमान असम्भवता ने मेट्टरनिख़ सरकार की साख़ को अद्‌भुत अनुपात से बढ़ा दिया और उन्होंने उसे वियेना के बैंकपतियों तथा स्टाक एक्सचेंजों के दलालों की सदिच्छा पर निर्भरता तक से मुक्त कर दिया; क्योंकि जब तक मेट्टरनिख़ फ़्रैंकफ़ुर्ट तथा ऐम्स्टर्डम में प्रचुर धन प्राप्त कर सकता था, उसे निस्सन्देह यह देखकर सन्तोष होता था कि आस्ट्रियाई पूंजीपति उसके पांवों के सामने झुके हुए हैं। इसके अलावा वे हर माम्मले में उसकी दया पर आश्रित थे; बैंकपति, स्टाक एक्सचेंज के दलाल और सरकारी ठेकेदार निरंकुश राजतंत्र से जो बड़े-बड़े मुनाफ़े बटोरने की युक्ति करते रहते हैं, उनकी क्षतिपूर्ति स्वयं उन लोगों तथा उनकी सम्पत्ति पर सरकार की प्रायः असीम शासन से हो जाती थी; इसलिए इस हिस्से से लेशमात्र विरोध की भी अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार मेट्टरनिख़ को साम्राज्य के दो सबसे शक्तिशाली तथा प्रभावशाली वर्गों की ओर से समर्थन का पूरा-पूरा भरोसा था। इसके अलावा उसके पास ऐसी फ़ौज तथा नौकरशाही थी जो निरंकुशता के सारे उद्देश्यों की दृष्टि से इससे बेहतर ढंग से गठित नहीं हो सकती थी। आस्ट्रियाई सरकारी असैनिक तथा सैनिक अफ़सरों की अपनी एक अलग ही नस्ल है; उनके बाप-दादा सम्राट की नौकरी करते थे, उनके बेटे भी उसकी नौकरी करेंगे; वे उन नाना जातियों में से किसी के भी अंग नहीं थे जो दो सिर वाले उक़ाब के पंख के नीचे जमा थे। वे तो साम्राज्य के एक छोर से दूसरे छोर को, पोलैंड से इटली को, जर्मनी से ट्रांसिल्वानिया को हटाये गये और हमेशा से हटाये जाते रहे; वे हर ऐसे व्यक्ति से—वह हंगेरियाई, पोल, जर्मन, रूमानियाई, इतालवी, क्रोएशियाई में से चाहे जो भी हो—समान रूप से नफ़रत करते थे जिस पर "साम्राज्य की और शाही" छाप न पड़ी हो और जो पृथक जातीय चरित्र लिये हुए हो; उनकी कोई जातीयता नहीं है, या यह कहना

ज्यादा उचित होगा कि केवल उनसे ही आस्ट्रियाई जाति बनी है। स्पष्ट है कि एक चतुर और उत्साही शासक के हाथों में इस तरह का असैनिक तथा सैनिक सोपानतंत्र कितना आज्ञाकारी और साथ ही कितना सशक्त साधन होगा।

जहां तक आबादी के अन्य वर्गों का सम्बन्ध है, ancien régime* के राजनेता की भावना के अनुसार मेट्टरनिख़ को उनके समर्थन की कोई चिन्ता नहीं थी। उनके मामले में उसकी एक ही नीति थी – उनसे टैक्सों के माध्यम से अधिक से अधिक खसोटना और साथ ही उन्हें ख़ामोश रखना। व्यापारिक और औद्योगिक मध्यम वर्ग का विकास आस्ट्रिया में बहुत धीमा था। डेन्यूब पर व्यापार अपेक्षाकृत महत्वहीन था; देश के पास केवल एक ही बन्दरगाह था, वह था ट्रीस्ट; और इस बन्दरगाह में व्यापार बहुत सीमित था। जहां तक उद्योगपतियों का सवाल था, उन्हें बहुत संरक्षण प्राप्त था; अधिकांश मामलों में तो वे विदेशी प्रतियोगिता से पूरी तरह बचे हुए थे। परन्तु यह लाभ उन्हें मुख्यतया यह बात ध्यान में रखकर दिया गया था कि उनकी टैक्स चुकाने की ताक़त बढ़े। और इस लाभ को काफ़ी मात्रा में प्रतिसन्तुलित करने के लिए उद्योगों, शिल्प-संघों तथा अन्य सामन्ती निगमों के विशेषाधिकारों पर आन्तरिक अंकुश लगा दिये गये थे और उन्हें तब तक सावधानी से संरक्षण दिया जाता रहा जब तक वे सरकार के उद्देश्यों तथा विचारों की राह में रुकावट नहीं बनते थे। छोटे व्यवसायियों को इन मध्ययुगीन शिल्प-संघों की उन तंग सीमाओं के अन्दर बन्द रखा गया जिन्होंने भिन्न-भिन्न व्यवसायों को विशेषाधिकारों के लिए एक दूसरे के ख़िलाफ़ अविराम युद्ध की स्थिति में रखा और साथ-साथ मजदूर वर्ग के लोगों को अपना सामाजिक दर्जा भारी बनाने की सम्भावना से वंचित रखकर इन अस्वैच्छिक संस्थाओं के सदस्यों को एक तरह की आनुवंशिक स्थिरता प्रदान की। आख़िरी चीज़, किसान तथा मजदूर के साथ टैक्स चुकाने योग्य वस्तु की तरह व्यवहार किया गया; उनका केवल इतना ख़याल रखा गया कि जहां तक सम्भव हो, उन्हें जीवन की उन्हीं परिस्थितियों में रखा जाये जो उस समय मौजूद थीं और जिनमें उनसे पहले उनके बाप-दादा रहा करते थे। इस उद्देश्य से राज्य की सत्ता की ही तरह हर पुरानी आनुवंशिक सत्ता की रक्षा की जाती थी। जमींदार की छोटे काश्तकार पर, उद्योगपति की मज़दूर पर, छोटे मालिक की मजदूर कारीगर और शागिर्द पर, पिता की बेटे पर सत्ता को सरकार ने सर्वत्र कठोरतापूर्वक

*प्राचीन व्यवस्था। – सं०

क़ायम रखा और जहां कहीं इसकी अवज्ञा हुई, उसके लिए वैसी ही सज़ा दी गयी जो क़ानून तोड़ने के लिए दी जाती है; और सज़ा दी जाती थी आस्ट्रियाई न्याय के उस सार्वत्रिक साधन से याने डंडे से।

अन्ततः कृत्रिम स्थिरता पैदा करने हेतु की जानेवाली इन तमाम कोशिशों को एक व्यापक प्रणाली में सूत्रबद्ध करने के लिए जनता को जो आध्यात्मिक भोजन ग्रहण करने की अनुमति दी गयी, उसे पूरी-पूरी सावधानी के साथ चुना गया और उसे यथासम्भव कम से कम मात्रा में बांटा गया। शिक्षा सर्वत्र कैथोलिक पादरियों के हाथों में थी, जिनके प्रधानों की बड़े सामन्ती भू-स्वामियों की ही तरह मौजूदा शासन व्यवस्था को बरक़रार रखने में गहरी दिलचस्पी थी। विश्व-विद्यालय इस तरह संगठित किये गये थे कि वे और कुछ नहीं केवल विशेषज्ञताप्राप्त लोग तैयार करें, वे उन्हें ज्ञान की विविध विशेष शाखाओं में बहुत दक्षता प्राप्त करने देते या न करने देते परन्तु उन्होंने हर सूरत में उस सार्वजनिक उदार शिक्षा को दूर रखा जिसे प्रदान करने की अन्य विश्वविद्यालयों से अपेक्षा की जाती है। हंगरी को छोड़कर और कहीं पत्र-पत्रिका नाम की कोई चीज़ बिल्कुल नहीं थी और राजतंत्र के तमाम अन्य भागों में हंगरी के समाचारपत्रों के प्रवेश पर पाबन्दी लगी हुई थी। जहां तक आम साहित्य का सम्बन्ध था, एक शताब्दी तक उसकी परिधि का विस्तार नहीं हुआ था; जोज़ेफ़ द्वितीय की मृत्यु के बाद उसे फिर संकुचित कर दिया गया था। पूरी सीमाओं पर—जहां कहीं आस्ट्रियाई राज्य की सीमाएं किसी सभ्य देश से मिलती थीं,—सीमा-शुल्क अधिकारियों की चौकियों के साथ साहित्यिक सेंसर की चौकियां बिछा दी गयी थीं ताकि किसी विदेशी पुस्तक या अख़बार के आस्ट्रिया में प्रवेश से पहले उसकी सामग्री की दो या तीन बार पूरी तरह छानबीन की जा सके और उसे यह निश्चित कर लेने के बाद ही अन्दर आने दिया जाये कि उसमें समय की विषैली भावना के लेशमात्र रोगाणु नहीं हैं।

१८१५ के बाद लगभग तीस वर्षों तक यह प्रणाली अद्‌भुत सफलता के साथ काम करती रही। आस्ट्रिया यूरोप के लिए प्रायः अज्ञात बना रहा और यूरोप की भी आस्ट्रिया को उतनी ही कम जानकारी थी। ऐसे प्रतीत होता था कि आबादी के हर वर्ग की तथा पूरी आबादी की सामाजिक दशा में अल्पतम परिवर्तन भी नहीं हुआ है। पृथक-पृथक वर्गों के बीच शत्रुता की कुछ भी भावना क्यों न रही हो—और शत्रुता की यह मौजूदगी मेट्टरनिख़ के वास्ते शासन चलाने की प्रमुख शर्त थी, यही नहीं, उसने उच्च वर्गों को सारी सरकारी वसूलियों का

साधन बनाकर और इस तरह सारी कटुता उनके मत्थे मढ़कर यह शत्रुता बढ़ायी —नीचे के अधिकारियों के प्रति लोगों के मन में कुछ भी घृणा क्यों न रही हो, कुल मिलाकर केन्द्रीय सरकार के प्रति बहुत कम असन्तोष था या बिल्कुल नहीं था। सम्राट की पूजा होती थी; और तथ्य उस समय बूढ़े फ़ांज़ प्रथम को सही प्रमाणित करते प्रतीत होते थे जब उसने इस प्रणाली की स्थिरता पर सन्देह करते समय इत्मीनान के साथ इतना और कहा, "जब तक मैं और मेट्टरनिख़ जीवित हैं, यह टिकी रहेगी।"

परन्तु देश में धीरे-धीरे एक अदृश्य आन्दोलन चल रहा था जो मेट्टरनिख़ के सारे प्रयत्नों पर पानी फेर रहा था। उद्योग तथा व्यापार से सम्बन्धित मध्यम वर्ग की दौलत तथा प्रभाव में वृद्धि होती जा रही थी। औद्योगिक उत्पादन में मशीनों तथा भाप-शक्ति के उपयोग ने दूसरे तमाम अन्य स्थानों की तरह आस्ट्रिया में भी समाज के पूरे के पूरे वर्गों के पुराने सम्बन्धों और जीवन की अवस्थाओं को बदल डाला; उसने भू-दासों को आज़ाद इन्सान बना दिया; छोटे किसानों को औद्योगिक मज़दूर बना डाला; उसने पुराने सामन्ती व्यवसायिक निगमों की जड़ खोद दी तथा उनमें से बहुतों की आजीविका के साधन नष्ट कर डाले। नयी वाणिज्यिक तथा औद्योगिक आबादी की हर जगह पुरानी सामन्ती संस्थाओं से टक्कर हुई। मध्यम वर्गों ने, जिन्हें उनके कारोबार ने विदेश-यात्रा की अधिकाधिक प्रेरणा दी, साम्राज्य की सीमा-शुल्क चौकियों की क़तार से बाहर स्थित सभ्य देशों के बारे में कुछ अनोखे क़िस्से बयान किये; अन्ततः रेलों के निर्माण ने औद्योगिक तथा साथ ही बौद्धिक विकास की रफ़्तार तेज़ की। आस्ट्रियाई राजकीय ढांचे में भी एक ख़तरनाक हिस्सा था, अर्थात् हंगरी का सामन्ती संविधान, उसकी संसदीय कार्रवाइयां तथा निर्धन और विपक्षी सामन्ती अभिजात द्वारा सरकार तथा उसके मित्रों, धनपतियों के विरुद्ध संघर्ष। प्रेसबर्ग*, जहां संसद थी, वियेना के ठीक दरवाज़े पर था। इन तमाम तत्वों ने मिलकर शहरों के मध्यम वर्गों के अन्दर ठीक-ठीक विरोध की तो नहीं—क्योंकि विरोध अभी सम्भव नहीं था—वरन् असन्तोष की भावना, संवैधानिक स्वरूप से अधिक प्रशासकीय स्वरूप के सुधारों की इच्छा पैदा करने में योग दिया। प्रशा की ही तरह नौकरशाही का एक हिस्सा पूंजीपति वर्ग के साथ हो गया। अधिकारियों की इस नौकरी जात में जोज़ेफ़ द्वितीय की परम्पराओं को नहीं भुलाया गया था।

*स्लाव नाम—ब्रातिस्लावा।—सं०

सरकार के अधिक शिक्षित अधिकारी, जो स्वयं कभी-कभी सम्भव सुधारों के सपने देखने लगते थे, मेट्टरनिख़ की "पितृतुल्य" निरंकुशता की तुलना में इस सम्राट की प्रगतिशील तथा प्रबुद्ध निरंकुशता को कहीं ज़्यादा तरजीह देते थे। अपेक्षाकृत कम धनी सामन्तों ने भी समान रूप से मध्यम वर्ग का साथ दिया। जहां तक आबादी के उन निचले वर्गों का सम्बन्ध था जिन्हें यदि सरकार के बारे में नहीं तो अपने से ऊपर वालों के ख़िलाफ़ अवश्य ही बड़बड़ाने के लिए हमेशा काफ़ी आधार मिल जाता था, उनके लिए अधिकतर मामलों में पूंजीपति वर्ग की सुधार सम्बन्धी इच्छाओं का साथ दिये बिना और कोई चारा नहीं था।

इसी समय की – कह सकते हैं १८४३ या १८४४ की – बात है जब जर्मनी में साहित्य की एक विशेष शाखा स्थापित हुई जिसमें यह परिवर्तन प्रतिध्वनित हुआ। चन्द आस्ट्रियाई लेखकों, उपन्यासकारों, साहित्य-समालोचकों, घटिया कवियों ने – वे सब साधारण प्रतिभा के लोग थे परन्तु उस विचित्र उद्यम के धनी थे जो विशेष रूप से यहूदी नसल में होती है – लाइप्ज़िग और आस्ट्रिया के दूसरे जर्मन शहरों में अपना अड्डा जमाया, मेट्टरनिख़ के फंदे से बाहर होकर उन्होंने आस्ट्रियाई मामलों के बारे में अनेकानेक पुस्तकें तथा पुस्तिकाएं लिखीं। उन्होंने तथा उनके प्रकाशकों ने "इसे ज़ोर-शोर से चलनेवाला व्यापार" बना दिया। पूरा जर्मनी यूरोपीय चीन की नीति के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक था; स्वयं आस्ट्रियाई और भी ज़्यादा उत्सुक थे जो बोहेमियाई* सीमा पर थोक तस्करी के ज़रिए ये प्रकाशन हासिल किया करते थे। निस्सन्देह इन प्रकाशनों में जो रहस्य प्रकट किये जाते थे, वे ख़ास महत्व के नहीं होते थे और सुधार योजनाओं पर, जिन्हें उनके सदाशयी प्रणेता तैयार करते थे, राजनीतिक कौमार्य के सदृश मासूमियत की छाप रहती थी। संविधान तथा स्वतंत्र प्रेस ऐसी चीज़ें थीं जिनकी प्राप्ति आस्ट्रिया के लिए असम्भव मानी जाती थी; प्रशासनिक सुधार, प्रान्तीय विधान सभाओं के अधिकारों का विस्तार, विदेशी पुस्तकों तथा अख़बारों के प्रवेश की इजाज़त, सेंसर-कार्य में कम कठोरता – इन नेक आस्ट्रियाइयों की वफ़ादारी भरी और विनयपूर्ण इच्छाएं इससे आगे नहीं बढ़ीं।

कुछ भी हो, शेष जर्मनी के साथ और जर्मनी के ज़रिए संसार भर के साथ आस्ट्रिया का साहित्यिक संसर्ग रोकना अधिकाधिक असम्भव होता जा रहा था, उसने सरकार विरोधी जनमत तैयार करने में बहुत योग दिया और आस्ट्रिया

* चेक। – सं०

की आबादी के एक हिस्से के लिए कम से कम कुछ राजनीतिक सूचना-जानकारी की प्राप्ति सुलभ बना दी। इस तरह १८४७ के अन्त तक आस्ट्रिया उस राजनीतिक तथा राजनीतिक-धार्मिक आन्दोलन की पकड़ में—हालांकि कम मात्रा में—आ गया जो उस समय पूरे जर्मनी में व्याप्त था; आस्ट्रिया में उसकी प्रगति से अधिक ख़ामोश होते हुए भी ऐसे क्रांतिकारी तत्व पर्याप्त संख्या में ढूंढ़ लिये थे जो उससे प्रभावित हुए। ये थे—किसान, भू-दास या सामन्ती असामी, जिन्हें जागीरदारों या सरकार की उगाहियों ने कुचल रखा था; फिर था फ़ैक्टरी मजदूर जिसे पुलिस के सिपाही डंडे के ज़ोर से उद्योगपति की मनचाही शर्त पर काम करने के लिए विवश किया जाता था; फिर था मज़दूर कारीगर जिसे शिल्प-संघ क़ानून अपने व्यवसाय में कोई भी आज़ादी हासिल नहीं करने देते थे; उसके बाद था व्यापारी जिसे अपने कारोबार में बेतुके विनियमों से पग-पग पर टकराना पड़ता था; फिर था उद्योगपति जिसका अपनी सुविधाओं की रक्षा के लिए आतुर व्यावसायिक शिल्प-संघों से या लालची और दख़लन्दाज अफ़सरों से निर्बाध रूप से टकराव होता रहता था; फिर था स्कूल मास्टर, पंडित, दूसरों से ज़्यादा पढ़ा-लिखा अधिकारी जो अज्ञानी और बहुत अभिमानी पादरी समुदाय अथवा मूर्ख हुक्म चलानेवाले वरिष्ठ अधिकारी के विरुद्ध निरर्थक संघर्ष किया करता था। संक्षेप में एक भी वर्ग सन्तुष्ट नहीं था क्योंकि सरकार जो छोटी-मोटी रियायतें देने पर विवश होती थी, उन्हें वह अपने हितों को नुक़सान पहुंचा कर नहीं देती थी क्योंकि ख़ज़ाने में उसकी गुंजाइश ही नहीं थी, वे तो उच्च अभिजात वर्ग और पादरी समुदाय के हितों को नुक़सान पहुंचाकर दी जाती थीं; जहां तक बड़े-बड़े बैंकपतियों तथा राजकीय ऋण-पत्र धारकों का सवाल था, इटली की नवीनतम घटनाएं, हंगेरियाई संसद का बढ़ता विरोध, सुधार के लिए पूरे साम्राज्य में प्रकट होनेवाले असन्तोष और कोलाहल की असाधारण भावना इस प्रकार की चीजें नहीं थीं कि आस्ट्रियाई साम्राज्य की दृढ़ता तथा ऋणशोध क्षमता में उनका विश्वास मजबूत होता।

इस तरह आस्ट्रिया भी धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से एक सशक्त परिवर्तन की ओर बढ़ ही रहा था कि फ़्रांस में सहसा एक ऐसी घटना हो गयी जो उस आसन्न तूफ़ान को तुरन्त सामने ले आयी और जिसने बूढ़े फ़्रांज़ के उस कथन को झूठा साबित कर दिया कि इमारत उसके और मेट्टरनिख़ दोनों के जीवनकाल तक बनी रहेगी।

[illegible], सितम्बर १८५१

५

वियेना में विद्रोह

२४ फ़रवरी १८४८ के दिन लूई फ़िलिप को पेरिस से खदेड़ दिया गया और फ्रांसीसी जनतंत्र उद्‌घोषित किया गया। १३ मार्च को वियेना की जनता ने राजा मेट्टरनिख़ की सत्ता भंग कर दी और उसे निर्लज्जतापूर्वक देश से भागने के लिए मजबूर किया। १८ मार्च को बर्लिन की जनता ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया और १८ घंटे के हठभरे संघर्ष के बाद उसे यह देखकर सन्तोष प्राप्त हुआ कि सम्राट ने उसके सामने आत्मसमर्पण कर दिया है। जर्मनी के छोटे राज्यों की राजधानियों में भी एकसाथ विस्फोट हुए जो कम या ज्यादा उग्र स्वरूप के थे परन्तु जिन्हें ऐसी ही सफलता मिली। जर्मन जनता ने भले ही अपनी प्रथम क्रान्ति सम्पन्न न की हो, वह कम से कम खुले रूप में क्रान्तिकारी पथ में प्रवेश कर चुकी थी।

जहां तक इन विभिन्न विद्रोहों की घटनाओं का सम्बन्ध है, हम यहां उनकी तफ़सील में नहीं जा सकते; हमें जिस चीज पर प्रकाश डालना है, वह उनका स्वरूप तथा वह स्थिति है जिसे आबादी के विभिन्न वर्गों ने उन विद्रोहों के प्रति अपनाया।

वियेना की क्रान्ति के बारे में कहा जा सकता है कि उसे आबादी ने प्रायः एकमत से सम्पन्न किया। बैंकपतियों तथा स्टाक दलालों को छोड़कर बाक़ी पूंजीपति वर्ग, छोटे व्यवसायी और मेहनतकश लोग—सब के सब—तुरन्त ऐसी सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हुए जिससे सब नफ़रत करते थे, ऐसी सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हुए जिससे सर्वत्र इतनी घृणा की जाती थी कि सामन्तों तथा धनाधिपतियों की अल्पसंख्या, जो उसका समर्थन किया करती थी, पहले ही प्रहार में नजर से ओझल हो गयी। मध्यम वर्ग को मेट्टरनिख़ ने राजनीतिक अज्ञानता की ऐसी स्थिति में रखा था कि पेरिस से अराजकता, समाजवाद तथा आतंक के बारे में और पूंजीपति वर्ग तथा मजदूर वर्ग के बीच आसन्न संघर्षों के समाचार उनके लिए सर्वथा अबोधगम्य थे। अपने राजनीतिक भोलेपन के कारण वे या तो इन समाचारों को कोई महत्व नहीं दे सके अथवा उन्होंने यह समझा कि ये समाचार उन्हें भयभीत करके आज्ञाकारी बनाने के लिए मेट्टरनिख़ की गढ़ी हुई शैतानी भरी युक्तियां हैं। इसके अलावा उन्होंने मजदूरों को कभी एक वर्ग के रूप में काम

करते हुए या अपने विशिष्ट वर्ग हितों की रक्षा के लिए खड़े होते नहीं देखा था। अपने पिछले अनुभव के कारण उन्हें उन वर्गों के बीच, जो सब द्वारा घृणित सरकार को उलटने के लिए अब इतने हार्दिक रूप से ऐक्यबद्ध थे, किसी तरह के विरोधों के उत्पन्न होने की सम्भावना का कोई ज्ञान नहीं था। उन्होंने सारे मुद्दों पर—संविधान, जूरी के मातहत मुक़दमा, प्रेस की आज़ादी आदि—मेहनतकश जनता को अपने से सहमत होते पाया। इसलिए वे कम से कम मार्च १८४८ में तनमन से आन्दोलन के साथ थे और दूसरी ओर आन्दोलन ने उन्हें तुरन्त (कम से कम सिद्धान्ततः) राज्य का प्रभुत्वशाली वर्ग बना दिया।

परन्तु तमाम क्रान्तियों की यह नियति होती है कि विभिन्न वर्गों की यह एकता, जो हर क्रान्ति के लिए हमेशा कुछ मात्रा में आवश्यक शर्त हुआ करती है, ज्यादा देर तक नहीं टिक सकती। समान शत्रु पर विजय प्राप्त हुई नहीं कि विजेता विभिन्न खेमों में बंट जाते हैं और अपने हथियारों को एक दूसरे के विरुद्ध उठाते हैं। वर्ग वैरभाव का यही वह द्रुत तथा संवेगपूर्ण विकास है जो पुराने तथा संजटिल सामाजिक ढांचे के अन्दर क्रान्ति को सामाजिक तथा राजनीतिक प्रगति का इतना सशक्त माध्यम बनाता है; एक के बाद फ़ौरन दूसरी नयी पार्टी के सत्तारूढ़ होने का यही वह अविराम क्रम है जो उन उग्र उथल-पुथलों के ज़माने में राष्ट्र से पांच वर्षों के दौरान उससे ज्यादा फ़ासला तय करा देता है जितना तय करने में उसे साधारण परिस्थितियों में एक शताब्दी का समय लगता।

वियेना में क्रान्ति ने मध्यम वर्ग को सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रभुत्वशाली वर्ग बना दिया। कहने का मतलब यह है कि सरकार से हासिल की गयी रियायतें ऐसी थीं कि जिन्हें यदि व्यवहार में लाया जाता और कुछ समय तक उन पर डटा रहा जाता तो उसके फलस्वरूप मध्यम वर्ग को प्रभुत्व अनिवार्यतः प्राप्त हो जाता। परन्तु व्यवहार में उस वर्ग का प्रभुत्व क़तई स्थापित नहीं हो रहा था। यह सच है कि राष्ट्रीय गार्ड की स्थापना से, जिसने पूंजीपति वर्ग तथा छोटे व्यवसायियों को हथियार दिये, उस वर्ग को शक्ति तथा प्रभुत्व दोनों चीज़ें प्राप्त हुईं; यह सच है कि "सुरक्षा समिति" की, एक तरह की क्रान्तिकारी, अनुत्तरदायी सरकार की स्थापना से, जिसमें पूंजीपति वर्ग का बोलबाला था, वह सत्ता के शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठापित हो गया। परन्तु साथ ही मेहनतकश जनसाधारण भी अंशतः हथियारबन्द थे; जितना भी संघर्ष हुआ, उसके मुख्य भार को उन्होंने और

छात्रों ने वहन किया; छात्र, जो लगभग चार हज़ार थे, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित तथा राष्ट्रीय गार्ड से कहीं बेहतर ढंग से अनुशासित थे, क्रान्तिकारी शक्ति का केन्द्रक, उसकी वास्तविक शक्ति बन गये। और वे सुरक्षा समिति के हाथों के साधन मात्र के रूप में कार्य करने के वास्ते इच्छुक नहीं थे। वे सुरक्षा समिति को स्वीकार करते थे और यही नहीं, उसके सबसे उत्साही समर्थक भी थे, फिर भी वे एक तरह का स्वतंत्र, कहना चाहिए, तूफ़ानी संगठन बन गये थे, वे "सभा-सदन" में सभाएं करते, पूंजीपति वर्ग तथा मज़दूर वर्ग के बीच मध्यवर्ती स्थिति अपनाते, निरन्तर आन्दोलन कर हालात को पुराने, रोज़मर्रा का व्यवस्थित रूप ग्रहण करने से रोकते और बहुधा अपने प्रस्तावों को सुरक्षा समिति पर थोपते। दूसरी ओर मेहनतकश लोगों को, जो प्राय: पूरी तरह रोज़गार से वंचित कर दिये गये थे, राज्य के ख़र्च पर सार्वजनिक कार्यों में लगाना ज़रूरी था, और इस काम के लिए धन निस्सन्देह या तो करदाताओं की जेब से या फिर वियेना नगर की तिजोरी से निकालना ज़रूरी था। यह सारी चीज़ वियेना के व्यवसायियों के लिए अप्रीतिकर हुए बिना नहीं रह सकती थी। वियेना के उद्योग जिनका काम एक बड़े देश के अमीरों और अभिजातों के घरों की ज़रूरत की चीज़ें तैयार करना होता था, क्रान्ति के कारण, अभिजात वर्ग तथा दरबार के पलायन के कारण पूरी तरह बन्द हो गये थे; व्यापार ठप्प पड़ा था; छात्रों तथा मेहनतकश जनता जिस आन्दोलन तथा उत्तेजना को निरन्तर क़ायम रख रहे थे, वह, जैसा कि कहा जाता था, "फिर से विश्वास जमाने का" यक़ीनन साधन नहीं था। इस प्रकार एक ओर मध्यम वर्ग तथा दूसरी ओर व्यग्र छात्रों तथा मेहनतकश जनता के बीच सम्बन्धों में जल्द कुछ निश्चित उदासीनता पैदा हो गयी; और यह उदासीनता यदि काफ़ी लम्बे अर्से तक परिपक्व होकर खुली शत्रुता नहीं बनी तो इसका कारण यह था कि मंत्रिमण्डल तथा विशेष रूप से दरबार पुरानी स्थिति को फिर से क़ायम करने की अपनी अधीरता के कारण अधिक क्रान्तिकारी पार्टियों के सन्देहों तथा तूफ़ानी गतिविधियों को निरन्तर न्यायोचित साबित करते रहे और वे मध्यम वर्गों तक की नज़रों के सामने मेट्टरनिख़ की पुरानी स्वेच्छाचारिता के हौवे को बराबर खड़ा करते रहे। इस तरह नवप्राप्त स्वातंत्र्यों पर सरकार द्वारा चोट किये जाने या उन पर कुठाराघात किये जाने की कोशिशों के कारण १५ मई को और फिर २६ मई को वियेना में तमाम वर्गों ने फिर विद्रोह किये। और हर बार राष्ट्रीय गार्ड या सशस्त्र मध्यम वर्ग, छात्रों तथा मेहनतकश लोगों की संघबद्धता कुछ देर के लिए दृढ़ बन जाती।

जहां तक आबादी के अन्य वर्गों का सम्बन्ध था, अभिजात तथा थैलीशाह लुप्त हो गये थे तथा कृषक समुदाय सर्वत्र सामन्तवाद के एक-एक अवशेष को हटाने में व्यस्त था। इटली में युद्ध[27] और वियेना तथा हंगरी द्वारा राज दरबार के लिए पैदा की गयी परेशानी की बदौलत वे पूरी तरह मुक्त रहे और जर्मनी के किसी अन्य भाग की तुलना में उन्हें आस्ट्रिया में मुक्ति के अपने कार्य में ज्यादा सफलता मिली। आस्ट्रियाई संसद को बहुत जल्द केवल उन पगों की पुष्टि मात्र करनी पड़ी जो कृषक समुदाय द्वारा व्यवहारतः पहले ही उठाये जा चुके थे। और राजा श्वार्जेनबेर्ग की सरकार भले ही कुछ और पुनस्स्थापित करने में सक्षम हो जाये, उसे कृषक समुदाय के सामन्ती दासत्व को फिर से स्थापित करने की शक्ति कभी नहीं मिलेगी और यदि आस्ट्रिया इस समय फिर अपेक्षाकृत शान्त है, यही नहीं मजबूत भी है तो इसका कारण मुख्यतया यह है कि जनता की भारी संख्या को – किसानों को – क्रान्ति का मुख्य लाभ पहुंचा है, तथा पुनस्स्थापित सरकार ने चाहे किसी भी और चीज पर हमला किया हो, ये प्रत्यक्ष, ठोस लाभ, जिन्हें कृषक समुदाय ने हासिल किया है, अभी तक अछूते बने हुए हैं।

लन्दन, अक्तूबर १८५१

६

बर्लिन में विद्रोह

क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा केन्द्र बर्लिन था। उपरोक्त लेखों में जो कुछ कहा गया है, उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बर्लिन में यह कार्रवाई प्रायः तमाम वर्गों के उस समर्थन की प्राप्ति से कोसों दूर थी जो उसे वियेना में प्राप्त थी। प्रशा में पूंजीपति वर्ग सरकार के विरुद्ध वास्तविक संघर्षों में फंसा हुआ था। "संयुक्त संसद" के अधिवेशन का फल था सम्बन्धों का टूटना। पूंजीवादी क्रान्ति आसन्न थी; और यदि फ़रवरी की पेरिस क्रान्ति न हुई होती तो वह क्रान्ति भी प्रथम विस्फोट में बिल्कुल उतनी ही सर्वसम्मत होती जितनी वियेना की थी। वह घटना हर चीज में असाधारण तेजी ले आयी; साथ ही वह क्रान्ति एक ऐसे झंडे के नीचे सम्पन्न की गयी जो उससे सर्वथा भिन्न थी जिसके नीचे प्रशियाई पूंजीपति वर्ग अपनी सरकार के ख़िलाफ़ मैदान में उतरने की तैयारी कर रहा था। फ़रवरी क्रान्ति ने फ़्रांस में ठीक उसी तरह की सरकार

को उखाड़ा जिसे प्रशा का पूंजीपति वर्ग अपने देश में स्थापित करने जा रहा था। फ़रवरी क्रान्ति ने अपने को मध्यम वर्गों के विरुद्ध मेहनतकश वर्गों की क्रान्ति उद्घोषित किया; उसने मध्यम वर्ग की सरकार के पतन तथा मेहनतकश की मुक्ति की उद्घोषणा की। प्रशियाई पूंजीपति वर्ग इधर अपने देश में मज़दूर वर्ग के आन्दोलन से काफ़ी तंग आ चुका था। सिलेशिया में दंगों का पहला आतंक ख़त्म हो चुकने के बाद उसने इस आन्दोलन को अपने पक्ष में मोड़ने की कोशिश तक की; परन्तु उसके मन में क्रान्तिकारी समाजवाद तथा कम्युनिज़्म का निस्तारकारी भय हमेशा बना रहा। इसलिए जब उन्होंने पेरिस में सरकार के शीर्ष स्थान पर ऐसे लोगों को मौजूद देखा जिन्हें वे स्वामित्व, व्यवस्था, धर्म, परिवार तथा आधुनिक पूंजीपति वर्ग की अन्य पवित्र वस्तुओं का सबसे ख़तरनाक दुश्मन मानते थे, तो उनका क्रान्तिकारी जोश तुरन्त काफ़ी ठंडा हो गया। वे जानते थे कि मौक़े से लाभ उठाना आवश्यक है और वे मेहनतकश जनसाधारण की मदद के बिना परास्त हो जायेंगे; फिर भी उनकी हिम्मत ने उनका साथ नहीं दिया। इस तरह उन्होंने प्रान्तों में प्रथम पृथक-पृथक टक्करों के समय बर्लिन में लोगों को चुप रखने की कोशिश में, जिनकी भीड़ ख़बरों पर विचार करने तथा सरकार में तब्दीलियों की मांग करने के लिए पांच दिन तक शाही महल के सामने जमा रही, सरकार का पक्ष लिया। मेट्टरनिख़ के पतन की ख़बर मिलने के बाद सम्राट ने* जब अन्ततः कुछ मामूली रियायतें दे दीं तो पूंजीपतियों ने यह मान लिया कि क्रान्ति सम्पन्न हो चुकी है और अपनी प्रजा की सारी इच्छा पूरी करने के वास्ते सम्राट को धन्यवाद देने के लिए उसकी ओर लपके। पर तभी फ़ौज ने भीड़ पर हमला बोल दिया, बैरीकेड बने, संघर्ष हुआ तथा राजतंत्र पराजित हो गया। फिर सारी स्थिति बदल गयी; जिस मज़दूर वर्ग को पार्श्वभूमि में रखना पूंजीपति वर्ग की मनोवृत्ति थी, ठीक वही आगे धकेला गया, उसने संघर्ष किया, विजयी हो गया, तथा उसे एकाएक अपनी शक्ति का आभास हो गया। मताधिकार, प्रेस की आज़ादी, जूरी के स्थान पर बैठने के अधिकार, सभा करने के अधिकार पर अंकुश अब सम्भव नहीं रह गये थे जिन्हें बनाये रखना पूंजीपति वर्ग बहुत पसन्द करता क्योंकि ये अंकुश केवल उन वर्गों को प्रभावित करते थे जो उससे नीचे थे। पेरिस की "अराजकता" के दृश्यों की पुनरावृत्ति आसन्न थी। इस ख़तरे के सामने सारे पुराने मतभेद लुप्त

* फ़्रेडरिक-विल्हेल्म। – सं०

हो गये थे। विजयी मेहनतकश ने यद्यपि अभी अपने लिए कोई विशिष्ट मांगें पेश नहीं की थीं, तथापि अनेक वर्षों के मित्र तथा शत्रु उसके विरुद्ध ऐक्यबद्ध हो गये और पूंजीपति वर्ग तथा उलटी जा चुकी प्रणाली के समर्थकों की संघबद्धता ठीक बर्लिन के बैरीकेडों में सम्पन्न हुई। आवश्यक रियायतें दी जानेवाली थीं परन्तु उनसे अधिक नहीं जितनी अपरिहार्य थीं; संयुक्त संसद के विपक्षी नेताओं का एक नया मंत्रिमण्डल गठित किया जानेवाला था और राजमुकुट बचाने की सेवाओं के बदले उसे पुरानी सरकार के सारे अवलम्बों का, सामन्ती अभिजात वर्ग, नौकरशाही, फ़ौज का सहारा प्राप्त होनेवाला था। ये थीं वे शर्तें जिनके पूरा होने पर श्री काम्पहाउज़ेन तथा हान्सेमान ने मंत्रिमण्डल बनाने का बीड़ा उठाया।

जाग उठे जनसाधारण से नये मंत्रियों ने ऐसे भय का परिचय दिया कि उनकी नज़रों में हर वह उपाय ठीक था जो सत्ता की डगमगा चुकी नींवों को मज़बूत बनाने में ज़रा भी मदद देता। ये घृणा के पात्र अपनी ग़लतफ़हमी में फंसकर समझते थे कि पुरानी प्रणाली के पुनस्स्थापन का हर ख़तरा ख़त्म हो चुका है; इस तरह उन्होंने "व्यवस्था" फिर से क़ायम करने के लिए पूरी पुरानी राजकीय मशीनरी का उपयोग किया। एक भी पदाधिकारी या फ़ौजी अफ़सर को बर्ख़ास्त नहीं किया गया; शासन की पुरानी व्यवस्था में एक भी परिवर्तन नहीं किया गया। इन उत्कृष्ट संवधानिक तथा उत्तरदायी मंत्रियों ने उन पदाधिकारियों तक को उनके पद लौटा दिये जिन्हें जनता ने क्रान्तिकारी उत्साह की पहली लहर में नौकरशाही मनमानेपन की पुरानी हरकतों के कारण भगा दिया था। प्रशा में मंत्रियों के चेहरों के अलावा और कुछ नहीं बदला। विभिन्न विभागों में सरकारी कर्मचारियों को स्पर्श तक नहीं किया गया और सारे संवैधानिक पदलोलुपों से, जो नये-नये शासक बननेवालों के चारों ओर खड़े थे और जो यह अपेक्षा कर रहे थे कि उन्हें सत्ता और पदों में हिस्सा मिलेगा, कह दिया गया कि वे तब तक इन्तज़ार करें जब तक पुनस्स्थापित स्थिरता पदाधिकारियों के अमले में परिवर्तन करने की इजाज़त नहीं देती क्योंकि ऐसा करना अभी ख़तरे से खाली नहीं है।

सम्राट ने, जो १८ मार्च के विद्रोह के बाद बुरी तरह हताश था, जल्द ही यह पता लगा लिया कि वह इन "उदार" मंत्रियों के लिए उतना ही ज़रूरी है जितने ज़रूरी ये मंत्री उसके लिए हैं। विद्रोह ने सिंहासन को बख़्श दिया था; सिंहासन "अराजकता" की राह में आख़िरी विद्यमान अड़चन था; इसलिए उदारतावादी मध्यम वर्ग और उसके नेताओं की, जो अब मंत्रिमण्डल में थे,

दिलचस्पी इस बात में थी कि वे सम्राट के साथ बहुत अच्छे सम्बन्ध रखें। सम्राट और उसे घेरे रहनेवाले प्रतिक्रियावादियों की मंडली को यह पता लगाने में देरी नहीं लगी, उन्होंने परिस्थिति से लाभ उठाया ताकि उन नगण्य सुधारों के मामले में भी मंत्रिमण्डल को आगे बढ़ने से रोका जा सके जिन्हें समय-समय पर लागू करने का उसका इरादा था।

मंत्रिमण्डल की पहली चिन्ता यह थी कि हाल में हुए तीक्ष्ण परिवर्तनों को किसी तरह की क़ानूनी शक्ल दी जाये। आम विरोध के बावजूद संयुक्त संसद बुलायी गयी ताकि वह जनता के क़ानूनी और संवैधानिक निकाय के रूप में एक ऐसी विधान सभा के वास्ते नया चुनाव क़ानून पास कर सके जो नये संविधान पर सम्राट के साथ सहमत हो। चुनाव परोक्ष रूप से होने थे, मतदाताओं के समूहों को कई निर्वाचक चुनने थे और फिर इन निर्वाचकों को प्रतिनिधि निर्वाचित करना था। सारे विरोध के बावजूद दुहरे चुनावों की यह प्रणाली मंजूर कर दी गयी। संयुक्त संसद से तब ढाई करोड़ डालर के क़र्ज़ की मांग की गयी, जन पार्टी ने उसका विरोध किया, फिर भी उसे मंजूरी दे दी गयी।

मंत्रिमण्डल की इन कार्रवाइयों ने जन पार्टी अथवा जनवादी पार्टी को – वह अब अपने को इसी नाम से पुकारती थी – असाधारण तीव्र गति से विकसित किया। इस पार्टी ने, जिसका नेता छोटे व्यवसायियों और दुकानदारों का वर्ग था और जिसने क्रान्ति के आरम्भ में मज़दूरों की बहुसंख्या को अपने झंडे के नीचे ऐक्यबद्ध कर दिया था, प्रत्यक्ष तथा सार्वजनिक मताधिकार प्रणाली की, बिल्कुल वैसी ही मताधिकार प्रणाली की, जैसी फ़्रांस में प्रचलित की गयी थी, एक विधान सभा की और १८ मार्च की क्रान्ति को नयी शासन व्यवस्था के आधार के रूप में पूर्ण तथा खुली मान्यता देने की मांग की। अधिक उदारवादी पक्ष इस तरह "जनवादीकृत" राजतंत्र पर सन्तोष कर लेता; अधिक प्रगतिशील लोगों ने जनतंत्र की अन्तिम रूप से स्थापना की मांग की। दोनों पक्ष फ़्रैंकफ़ुर्ट की जर्मन राष्ट्रीय सभा को देश में सर्वोच्च सत्ता के रूप में मान्यता देने पर सहमत हो गये; उधर संवैधानिकतावादी और प्रतिक्रियावादी इस निकाय की संप्रभुता से बहुत भयभीत थे, जिसके बारे में उनके बयान यह बताते थे कि वे उसे सरासर क्रान्तिकारी मानते थे।

मेहनतकश वर्गों के स्वतंत्र आन्दोलन को क्रान्ति ने कुछ देर के लिए बीच में रोक दिया। आन्दोलन की तात्कालिक आवश्यकताएं तथा परिस्थितियां ऐसी थीं कि सर्वहारा पार्टी की किसी भी विशिष्ट मांग को सामने नहीं लाया जा

सकता था। दरअसल मेहनतकश लोगों की स्वतंत्र कार्रवाई के लिए जब तक मैदान साफ़ नहीं हो जाता, जब तक प्रत्यक्ष तथा सार्वजनिक मतदान प्रणाली स्थापित नहीं हो जाती, जब तक ३६ छोटे-बड़े राज्य जर्मनी को अनगिनत टुकड़ों में बांटकर रखे हुए थे, तब तक सर्वहारा पार्टी पेरिस के आन्दोलन को, जो उसके लिए सबसे महत्वपूर्ण था, देखते रहने के अलावा, उन अधिकारों की प्राप्ति के लिए, जो उन्हें आगे चलकर अपनी लड़ाई चलाने की इजाजत देते, छोटे दुकानदारों के साथ मिलकर संघर्ष करने के अलावा और कर ही क्या सकती थी?

उस समय तीन चीज़ें ही थीं जिनसे सर्वहारा पार्टी अपने राजनीतिक कार्यकलाप में छोटे व्यवसायियों की पार्टी से—ज्यादा सही कहा जाये तो तथाकथित जनवादी पार्टी से—मूलतः अपने स्वरूप को पृथक बनाये रखती थी; ये थीं—पहली, फ़्रांसीसी आन्दोलन को भिन्न रूप से जांचना—जनवादी पेरिस की चरमपंथी पार्टी पर प्रहार करते थे और सर्वहारा क्रान्तिकारी उसकी रक्षा करते थे; दूसरी, एक तथा अविभाज्य जर्मन जनतंत्र की स्थापना की उद्घोषणा, जबकि जनवादियों के बीच घोरतम चरमपंथी संघात्मक जनतंत्र के लिए ही आहें भरने की हिम्मत कर सकते थे; तीसरी, हर मौक़े पर वह क्रान्तिकारी हिम्मत और कार्यकलाप की तत्परता दिखाना जिसकी हर उस पार्टी में हमेशा कमी रहेगी जिसका नेतृत्व छोटे व्यवसायी करते हैं और जो मुख्यतया उन्हीं लोगों को लेकर बनती है।

सर्वहारा, अर्थात् सचमुच क्रान्तिकारी पार्टी मेहनतकश लोगों के आम समूह को जनवादियों के, जिनके वे क्रान्ति के आरम्भ में पुच्छल्ले बने हुए थे, प्रभाव से बहुत धीरे-धीरे अलग करने में ही सफल हो सकी। परन्तु बाक़ी काम आगे चलकर जनवादी नेताओं की हिचकिचाहट, कमज़ोरी तथा कायरता ने पूरा कर दिया। और अब पिछले वर्षों की उथल-पुथल भरी घटनाओं का एक प्रमुख परिणाम यह माना जा सकता है कि मजदूर वर्ग जहां कहीं काफ़ी बड़ी कही जा सकनेवाली तादाद में संकेन्द्रित रहता है, वहां वह उस जनवादी प्रभाव से मुक्त होता है जिसके परिणामस्वरूप वह १८४८ और १८४९ के दौरान अनगिनत ग़लतियां करता रहा और बदक़िस्मती का शिकार बनता रहा। परन्तु अच्छा तो यही होगा कि हम पहले से कल्पना न करें; इन दो वर्षों की घटनाएं जनवादी सज्जनों को काम करते हुए देखने के कई मौक़े हमारे सामने पेश करेंगी।

प्रशा के कृषक समुदाय ने, आस्ट्रिया के कृषक समुदाय की तरह, परन्तु कम स्फूर्ति से—क्योंकि वहां सामन्तवादी दबाव कुल मिलाकर उतना कठोर नहीं था—अपने को सारी सामन्तवादी बेड़ियों से मुक्त करने के लिए क्रान्ति का लाभ उठाया।

परन्तु उपरोक्त कारणों से मध्यम वर्ग तुरन्त उसके अपने सबसे पुराने, सबसे अधिक अपरिहार्य साथी के ख़िलाफ़ हो गये। जनवादियों ने भी उसका साथ नहीं दिया,—वे पूंजीपतियों के ही समान उस चीज़ से भयभीत थे जिसे निजी स्वामित्व पर हमला कहा गया; इस तरह तीन माह की मुक्ति के बाद, रक्तपातपूर्ण संघर्ष और सैनिक प्राणदंड के बाद—विशेष रूप से सिलेशिया में—उन्हीं पूंजीपतियों के हाथों से सामन्तवाद पुनर्स्थापित हो गया जो केवल कल तक ही सामन्तवाद विरोधी थे। उनके विरुद्ध इससे बड़ा निन्दाजनक तथ्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इतिहास में किसी भी अन्य पार्टी ने अपने सर्वोत्तम साथियों के साथ, स्वयं अपने साथ व्यवहार में कभी ऐसी ग़द्दारी नहीं की। इस मध्यम वर्गीय पार्टी के भाग्य में जितना भी अपमान सहन करना और सज़ा भुगतना लिखा हो, मात्र अकेली इस कार्रवाई के लिए ही वह उसके एक-एक अंश का पूरा पात्र है।

लन्दन, अक्तूबर १८५१

७

फ़्रैंकफ़ुर्ट राष्ट्रीय सभा

हमारे पाठकों को सम्भवतः स्मरण होगा कि छः पूर्ववर्ती लेखों में हम जर्मनी में क्रान्तिकारी आन्दोलन का अवलोकन करते हुए दो बड़ी जन विजयों तक—१३ मार्च को वियेना में तथा १८ मार्च को बर्लिन में—पहुंचे थे। हमने आस्ट्रिया तथा प्रशा दोनों जगह संवैधानिक सरकारों को स्थापित होते तथा उदारपंथी अथवा मध्यम वर्गीय सिद्धान्तों को पूरी भावी नीति के प्रमुख नियमों के रूप में उद्घोषित होते देखा; आन्दोलन के दो प्रमुख केन्द्रों के मध्य परिलक्षित होनेवाला एकमात्र अन्तर यह था कि प्रशा में उदारपंथी पूंजीपति वर्ग ने दो अमीर व्यापारियों—श्री काम्पहाउज़ेन और हान्सेमान के रूप में सत्ता की बागडोर प्रत्यक्ष रूप में हथिया ली थी, जबकि आस्ट्रिया में, जहां पूंजीपति वर्ग राजनीतिक दृष्टि से कहीं कम विकसित था, उदारपंथी नौकरशाही सरकारी गद्दी पर बैठ गयी और उसने दावा किया कि वह पूंजीपति वर्ग की ओर से शासन कर रही है। हम यह भी देख चुके हैं कि वे सारी पार्टियां तथा सामाजिक वर्ग, जो अब तक पुरानी सरकार के विरोध में ऐक्यबद्ध थे, कैसे विजय के उपरान्त, यही नहीं, संघर्ष

के ही दौरान अलग-अलग हो गये; कैसे ठीक वही उदारपंथी पूंजीपति वर्ग जो अकेले विजय से लाभान्वित हुआ था, तुरन्त अपने कल तक के साथियों के खिलाफ़ खड़ा हो गया, कैसे उसने अधिक उन्नत स्वरूप वाले प्रत्येक वर्ग या पार्टी के विरुद्ध वैरभाव भरा रुख़ अपना लिया और कैसे उसने विजित सामन्ती और नौकरशाही तत्वों के साथ संघबद्धता स्थापित की। वस्तुतः क्रान्तिकारी नाटक के प्रारम्भ से ही यह प्रकट हो गया था कि उदारपंथी पूंजीपति वर्ग अधिक अग्रगामी अग्रगामी पार्टियों से प्राप्त सहायता पर आश्रित हुए बिना उन सामन्ती और नौकरशाही पार्टियों के सामने नहीं टिक पायेगा जो परास्त अवश्य हो गयी थीं परन्तु नष्ट नहीं हुई थीं; और यह भी प्रकट हो गया था कि उसे इन अधिक अग्रगामी जनसाधारण के धावों से बचाव के लिए सामन्ती अभिजातों तथा नौकरशाही से सहायता की उतनी ही आवश्यकता थी। इस तरह यह काफ़ी स्पष्ट हो चुका था कि आस्ट्रिया तथा प्रशा में पूंजीपति वर्ग के पास अपनी सत्ता बनाये रखने तथा राजकीय संस्थाओं को अपनी जरूरतों तथा विचारों के सांचे में ढालने के वास्ते पर्याप्त शक्ति नहीं थी। उदारपंथी पूंजीपति मंत्रिमंडल तो केवल एक पड़ाव था जहां से देश को परिस्थितियों की करवट के अनुसार या तो एकीभूत जनतंत्रवाद की अधिक उन्नत मंज़िल में अथवा फिर से पुराने धार्मिक-सामन्ती और नौकरशाही शासन की गोद में पहुंचना था। कुछ भी हो, वास्तविक, निर्णायक संघर्ष तो अभी होनेवाला था; मार्च की घटनाओं ने अभी संघर्ष का केवल सूत्रपात ही किया था।

आस्ट्रिया और प्रशा जर्मनी के दो नेतृत्वकारी राज्य थे, इसलिए वियेना या बर्लिन में प्रत्येक निर्णायक क्रान्तिकारी विजय पूरे जर्मनी के लिए निर्णायक होती। और सचमुच इन दो शहरों में मार्च १८४८ की घटनाओं ने यह तय कर दिया कि जर्मनी में स्थिति किस दिशा में मुड़ेगी। इसलिए छोटे-छोटे राज्यों में हुए आन्दोलनों का विश्लेषण करना व्यर्थ होता; और यदि इन छोटे-छोटे राज्यों के अस्तित्व ने एक ऐसी संस्था को जन्म न दिया होता, जो अपने अस्तित्व के ही बल पर जर्मनी की असामान्य स्थिति का तथा हाल की क्रान्ति की अपूर्णता का सर्वाधिक ज्वलन्त प्रमाण थी, तो हम अपने को विशुद्ध रूप से आस्ट्रियाई तथा प्रशियाई मामलों पर विचार करने तक सीमित रखते; यह संस्था इतनी असामान्य, अपनी स्थिति की ही दृष्टि से इतनी उपहासास्पद परन्तु साथ ही स्वयं अपने महत्व से इतनी परिपूर्ण थी कि इतिहास, बहुत सम्भव है, कभी ऐसी चीज की सृष्टि नहीं कर पायेगा। यह निकाय था फ्रैंकफ़ुर्ट-आन-मेन स्थित तथाकथित **जर्मन राष्ट्रीय सभा**।

वियेना तथा बर्लिन में जन विजयों के बाद यह स्वाभाविक ही था कि पूरे जर्मनी के लिए एक प्रतिनिधि सभा होती। यह निकाय तदनुसार निर्वाचित कर लिया गया और उसकी फ़्रैंकफ़ुर्ट में, पुरानी संघात्मक संसद की बग़ल में अधिवेशन हुआ। जनता ने जर्मन राष्ट्रीय सभा से अपेक्षा की कि वह प्रत्येक विवादास्पद मामला निपटाये और पूरे जर्मन महासंघ के लिए सर्वोच्च विधायी सत्ता के रूप में काम करे। परन्तु साथ ही संसद ने, जिसने उसका समाह्वान किया था, उसके अधिकार किसी भी रूप में निर्धारित नहीं किये थे। किसी को यह पता नहीं था कि उसकी आज्ञप्तियों को क़ानून का बल प्राप्त होगा या कि इन आज्ञप्तियों के लिए संसद अथवा पृथक-पृथक सरकारों की मंजूरी ज़रूरी होगी। इस उलझन के बीच राष्ट्रीय सभा के पास यदि कम से कम ताक़त भी होती तो वह संसद को—जर्मनी में इससे ज़्यादा अलोकप्रिय निगमित निकाय और कोई नहीं था—तत्काल भंग कर देती और उसकी जगह अपने सदस्यों के बीच से चुनी हुई संघात्मक सरकार प्रतिष्ठापित कर देती। वह अपने बारे में घोषणा करती कि वही जर्मन जनता की सार्वभौम इच्छा को क़ानूनी रूप में अभिव्यक्त करनेवाला एकमात्र निकाय है। इस तरह वह अपनी एक-एक आज्ञप्ति को क़ानूनी वैधता प्रदान कर सकती थी। वह सर्वोपरि अपने लिए देश में एक संगठित तथा सशस्त्र शक्ति प्राप्त कर लेती जो सरकारों के किसी भी विरोध को कुचलने के लिए पर्याप्त होती। यह सब आसान था, क्रान्ति की आरम्भिक अवधि में तो यह बहुत ही आसान था। परन्तु फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा से, जिसमें उदारपंथी वकीलों और मताग्रही प्रोफ़ेसरों का बहुमत था, उस सभा से इसकी अपेक्षा करना उसकी क्षमता को बढ़ा-चढ़ाकर आंकना होता जो जर्मन मेधा तथा विज्ञान के मूल तत्व का मूर्त्त रूप होने का दम ज़रूर भरती थी परन्तु जो यथार्थ में उस रंगमंच के अलावा और कुछ नहीं थी, जिस पर बूढ़े और जर्जरित राजनीतिक पात्रों ने पूरे जर्मनी की नज़रों के सामने न चाहते हुए भी अपनी हास्यास्पदता तथा अपने चिन्तन तथा कार्यकलाप की अक्षमता प्रदर्शित की। वृद्धाओं की यह सभा अस्तित्व में आने के पहले ही दिन से तमाम जर्मन सरकारों के तमाम प्रतिक्रियावादी षड्यंत्रों की तुलना में सबसे निर्बल जन आन्दोलन से अधिक भयभीत रहती थी। उसने संसद की नज़रों के सामने अपनी कार्रवाई संचालित की, यही नहीं, वह अपनी आज्ञप्तियों के लिए संसद की स्वीकृति पाने के लिए प्रायः लालायित रहती थी क्योंकि उसके प्रथम प्रस्तावों को उस घिनौने निकाय द्वारा जारी किया जाना था। अपने सार्वभौम अधिकारों का डटकर इस्तेमाल करने के बजाय वह इस तरह के किसी भी ख़तरनाक प्रश्न पर बहस से

कतराने के लिए अध्यवसायपूर्वक प्रयास करती रही। अपने को जन शक्ति से घेरने के बजाय उसने सरकारों के नित्य प्रति के सारे उग्र अतिक्रमणों की ओर से आंखें मूंद लीं। ठीक उसके देखते-देखते माएन्ज़ को घेरेबन्दी की स्थिति में रख दिया गया, वहां जनता को निरस्त्र कर दिया गया परन्तु राष्ट्रीय सभा ज़रा भी नहीं हिली-डुली। आगे चलकर उसने आस्ट्रिया के आर्कड्यूक जोहान को जर्मनी का रीजेंट चुना और ऐलान किया कि उसके तमाम प्रस्तावों को क़ानून का बल प्राप्त होगा। परन्तु सच तो यह था कि तमाम सरकारों की सहमति प्राप्त हो जाने के बाद ही आर्कड्यूक जोहान नये पद पर प्रतिष्ठित हुआ था; और उसे राष्ट्रीय सभा ने नहीं, वरन् संसद ने प्रतिष्ठित किया था; जहां तक राष्ट्रीय सभा की आज्ञप्तियों के पीछे क़ानूनी बल होने का मामला था, इस मुद्दे को बड़ी सरकारों ने न तो कभी मान्यता दी और न कभी स्वयं राष्ट्रीय सभा ने उसे लागू ही किया। इसलिए यह सवाल अधर में लटका रहा। इस तरह हमारे सामने एक अनोखा नज़ारा आया – राष्ट्रीय सभा यह दम भर रही थी कि वह एक महान तथा सार्वभौम राष्ट्र का एकमात्र क़ानूनी प्रतिनिधि है परन्तु इसके बावजूद अपने दावों के लिए मान्यता हासिल कराने के वास्ते उसके पास न तो कभी कोई इच्छा शक्ति रही और न कोई बल। इस निकाय की बहसों का, जिनका कोई व्यावहारिक फल नहीं निकला, कोई सैद्धान्तिक मूल्य तक नहीं था। उन्होंने जो कुछ प्रस्तुत किया, वह जीर्ण दार्शनिक तथा क़ानूनी पंथों की निरर्थक बातों के अलावा और कुछ नहीं था। उस राष्ट्रीय सभा में कहा गया या यों कहें कि अटक-अटककर बोला गया एक-एक वाक्य बहुत पहले ही हज़ारों बार, हज़ारों गुना बेहतर ढंग से छप चुका था।

इस प्रकार जर्मनी की नयी केन्द्रीय सत्ता होने का दम भरनेवाली इस संस्था ने हर चीज़ को उसी तरह छोड़ दिया जिस तरह वह उसे मिली थी। जर्मनी की एकता की बहुत पुरानी मांग पूरा करना तो रहा दूर, वह जर्मनी में शासन करनेवाले सबसे नगण्य राजाओं तक की सत्ता का अपहरण नहीं कर सकी; वह जर्मनी के पृथक-पृथक प्रान्तों के बीच एकता के निकट सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकी; वह हैनोवर को प्रशा से तथा प्रशा को आस्ट्रिया से पृथक करनेवाली चुंगी-चौकियों को ख़त्म करने की दिशा में एक भी क़दम नहीं उठा सकी; उसने प्रशा में नदियों पर जहाज़ों के आने-जाने की राह में अड़चन डालनेवाले घिनौने चुंगी-महसूलों को ख़त्म करने के लिए मामूली कोशिश तक नहीं की। पर एक बात ज़रूर थी, यह राष्ट्रीय सभा जितना कम काम करती थी, उतना ही ज़्यादा

हुंगामा मचाती थी। उसने जर्मन जहाज़ी बेड़ा बनाया—पर महज़ काग़ज़ पर; उसने पोलैण्ड और श्लेज़विग को अपने इलाक़े में मिला दिया; उसने जर्मन आस्ट्रिया को इटली के ख़िलाफ़ लड़ाई चलाने की इजाज़त दे दी लेकिन उधर इतालवियों को आस्ट्रियाइयों का उनके सुरक्षित स्थान में—जर्मनी के अन्दर—पीछा करने की मनाही कर दी; उसने फ़ांसीसी जनतंत्र का दिल खोलकर अभिनन्दन किया और उसने अपने यहां हंगेरियाई दूतावासों का स्वागत किया जिनके लोग जर्मनी के बारे में निश्चय ही उनसे कहीं अधिक धुंधले विचार लेकर स्वदेश लौटे जिन्हें लेकर वे आये थे।

क्रान्ति के आरम्भ में यह सभा तमाम जर्मन सरकारों के लिए एक हौआ थी। इन सरकारों को यक़ीन था कि यह सभा ठीक उस अनिश्चितता के कारण, जिसके फलस्वरूप उसकी क्षमता के प्रश्न को छोड़ देना आवश्यक समझा गया था, बहुत ही अधिनायकत्वपूर्ण तथा क्रान्तिकारी कार्रवाई करेगी। इसलिए इन सरकारों ने साज़िशों की एक व्यापक प्रणाली तैयार की ताकि इस डरावने निकाय का प्रभाव कम किया जा सके। परन्तु वे इतनी बुद्धिमान नहीं थीं जितनी वे ख़ुशक़िस्मत सिद्ध हुईं, क्योंकि इस सभा ने इन सरकारों के लिए उससे बेहतर काम किया जितना कि वे स्वयं कर पातीं। इन साज़िशों में तुरुप का पत्ता था स्थानीय विधान सभाओं का समाह्वान किया जाना; उसके फलस्वरूप छोटे राज्यों ने ही नहीं, वरन् प्रशा तथा आस्ट्रिया ने भी संविधान सभाएं बुला दीं। फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद की ही तरह इनमें भी उदारपंथी मध्यम वर्ग अथवा उसके साथियों, उदारपंथी वकीलों और पदाधिकारियों का बहुमत था, और उनमें से हरेक में घटनाओं ने लगभग एक ही दिशा पकड़ी। एकमात्र अन्तर यह था कि जर्मन राष्ट्रीय सभा एक काल्पनिक देश की संसद थी क्योंकि उसने उसी चीज़ का निर्माण करने से, अर्थात् संयुक्त जर्मनी का निर्माण करने से इन्कार कर दिया था जो उसके अस्तित्व की पहली शर्त थी; कि वह अपने द्वारा बनाई हुई काल्पनिक सरकार के काल्पनिक, कभी अमल में न लाये जानेवाले पगों पर बहस करती रही; कि उसने काल्पनिक प्रस्ताव पास किये जिनकी कोई भी परवाह नहीं करता था; इसके विपरीत आस्ट्रिया तथा प्रशा में, जहां संवैधानिक सभाएं कम से कम वास्तविक संसद तो थीं, वे वास्तविक मंत्रिमण्डलों को भंग करतीं तथा बनाती थीं, कम से कम कुछ समय के लिए ही सही उन्होंने राजाओं पर अपने प्रस्ताव तो थोपे ही जिनसे उन्हें टक्कर लेनी पड़ती थी। वे भी कायर थीं, उनमें भी क्रान्तिकारी संकल्प के व्यापक दृष्टिकोण का अभाव था; उन्होंने भी जनता से ग़द्दारी की और सत्ता फिर से सामन्ती,

नौकरशाही तथा फ़ौजी निरंकुशता के हाथों में सौंप दी। फिर भी वे तात्कालिक दिलचस्पी के प्रश्नों पर बहस करने और दूसरे लोगों के साथ धरती पर ही पांव रखने के लिए कम से कम विवश तो थीं, परन्तु फ़्रैंकफ़ुर्ट के बातूनियों को उससे अधिक आनन्द कभी नहीं आता था जब वे "सपनों के हवाई क़िलों में", «im Luftreich des Traums»* विचरण करते। इस तरह बर्लिन तथा वियेना की संवैधानिक निकायों की कार्रवाइयां जर्मन क्रान्तिकारी इतिहास के महत्वपूर्ण भाग हैं जबकि फ़्रैंकफ़ुर्ट के भांड़ों के समूह का निरर्थक पांडित्यपूर्ण वाद-विवाद केवल उन लोगों के लिए ही दिलचस्पी का विषय है जो साहित्यिक अथवा प्राचीन अद्भुत वस्तुओं को जमा किया करते हैं।

जर्मनी की जनता राष्ट्र की सामूहिक शक्ति को बिखेरने और नष्ट करनेवाले घिनौने क्षेत्रीय विभाजन का अन्त करने की आवश्यकता को बुरी तरह अनुभव कर रही थी, उसे कुछ देर तक यह आशा थी कि उसे फ़्रैंकफ़ुर्ट राष्ट्रीय सभा के रूप में कम से कम नये युग का समारम्भ तो मिल ही जायेगा। परन्तु लाल बुझक्कड़ों की उस मण्डली के बचकाना व्यवहार ने राष्ट्रीय उत्साह की आंच जल्द बुझा दी। परन्तु माल्मो की विरामसंधि (सितम्बर १८४८)[28] के सिलसिले में हुई शर्मनाक कार्रवाइयों ने इस संस्था के ख़िलाफ़, उस संस्था के ख़िलाफ़ जन-रोष का बांध तोड़ दिया जिससे यह आशा की जाती थी कि वह राष्ट्र को कार्यकलाप का एक एकीकृत क्षेत्र प्रदान करेगी परन्तु जिसने बेमिसाल कायरता के वशीभूत होकर उन आधारशिलाओं की पहले की मज़बूती ही क़ायम की जिन पर वर्तमान प्रतिक्रान्ति की प्रणाली टिकी हुई है।

लन्दन, जनवरी १८५२

८

पोल, चेक और जर्मन

पूर्ववर्ती लेखों में जो कुछ कहा गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि मार्च १८४८ की क्रांति के फ़ौरन बाद कोई नयी क्रांति नहीं होती तो जर्मनी में हालात को अवश्यम्भावी रूप से वहीं लौट आना था जहां वे इस घटना से पहले थे। परन्तु जिस ऐतिहासिक विषय पर हम कुछ प्रकाश डालने का यत्न

*हाइने, 'जर्मनी। शिशिर क़िस्सा', अध्याय ७। – सं०

कर रहे हैं उसका स्वरूप ऐसा उलझा हुआ है कि उस चीज़ को ध्यान में रखे बिना, जिसे जर्मन क्रांति के वैदेशिक संबंधों का नाम दिया जा सकता है, बाद की घटनाओं को साफ़-साफ़ नहीं समझा जा सकता। और इन वैदेशिक संबंधों का भी घरेलू मामलों जैसा ही जटिल स्वरूप था।

यह सुविदित है कि जर्मनी का पूरा पूर्वी आधा भाग – एल्ब, ज़ाले और ब्रोहीमियन वन* तक – पिछले हज़ार वर्षों के दौरान स्लाव मूल के हमलावरों से छीनकर प्राप्त किया गया था। इन इलाक़ों के अधिक भाग का जर्मनीकरण किया जा चुका था जिसके फलस्वरूप विगत कई शताब्दियों के दौरान स्लाव जाति तथा भाषा पूरी तरह मिट गयी थीं। और यदि हम पूरी तरह अलग-थलग चन्द अवशेषों को – इनकी (पोमेरेनिया में कास्सूबियाइयों, लुसाटिया में वेंडों अथवा सोर्बियाइयों की) कुल संख्या एक लाख से कम होगी – अलग कर दें तो पता चलेगा कि उनके निवासी यथार्थतः जर्मन हैं। परन्तु प्राचीन पोलैंड की पूरी सीमा के साथ-साथ तथा चेक भाषी देशों में, बोहीमिया और मोराविया में स्थिति भिन्न है। यहां प्रत्येक ज़िले में दो जातियां घुली-मिली हुई हैं: शहर आम तौर पर न्यूनाधिक रूप से जर्मन हैं जबकि स्लाव तत्वों की गांवों में प्रधानता है, परन्तु वहां भी वह धीरे-धीरे विघटित होता जा रहा है और जर्मन प्रभाव की निरन्तर अग्रगति उसे पीछे धकेलती जा रही है।

इस स्थिति का कारण यह है। शार्ल महान के ज़माने से ही जर्मन पूर्वी यूरोप को फ़तह करने, उसका उपनिवेशीकरण करने या कम से कम उसे सभ्य बनाने के लिये सतत रूप से तथा अध्यवसायपूर्वक प्रयत्न करते आये हैं। एल्ब और ओडेर के बीच सामन्ती अभिजातों की विजयों तथा प्रशा और लिवोनिया में विभिन्न श्रेणियों के फ़ौजी सरदारों के सामन्ती उपनिवेशों ने व्यापारी तथा औद्योगिक मध्यम वर्गों द्वारा जिनका शेष यूरोप की तरह जर्मनी में भी पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद से सामाजिक और राजनीतिक महत्व बढ़ता रहा था, जर्मनीकरण किये जाने की कहीं अधिक व्यापक तथा कारगर प्रणाली की नींव रख दी। स्लाव लोग और विशेष रूप से पश्चिमी स्लाव (पोल और चेक) प्रधानतया कृषक हैं; व्यापार तथा उद्योग से उनका कभी अनुराग नहीं रहा। परिणाम यह हुआ कि इन प्रदेशों में आबादी में वृद्धि और नगरों का जन्म होने के साथ-साथ तमाम औद्योगिक उत्पादन जर्मन आप्रवासियों के हाथों में पहुंच गया और इन मालों का

* चेक वन। – सं०

कृषि वस्तुओं के साथ विनिमय यहूदियों का – इन्हें यदि किसी जाति का माना जाये तो वे इन देशों में स्लाव नहीं, जर्मन हैं – विशिष्ट एकाधिकार बन गया। यही स्थिति – हालांकि कम मात्रा में – पूरे पूर्वी यूरोप में रही है। दस्तकार, छोटा दुकानदार, छोटा उद्योगपति पीटर्सबर्ग, पेश्त, जासी, यही नहीं, कुस्तुन्तुनिया तक में आज तक जर्मन ही है, जबकि महाजन, भठियारा और फेरीवाला – इन कम आबादी वाले देशों में बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति – बहुधा यहूदी ही होता है, जिसकी मातृभाषा बुरी तरह भ्रष्ट जर्मन ही है। स्लाव सीमान्त बस्तियों में जर्मन तत्त्व का महत्व, जो शहरों, व्यापार और उद्योग की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता गया, उस समय और ज़्यादा बढ़ गया जब जर्मनी से बौद्धिक संस्कृति के प्रायः प्रत्येक तत्त्व का आयात करना आवश्यक पाया गया। जर्मन व्यापारी और दस्तकार के बाद जर्मन पादरी, जर्मन स्कूल मास्टर, जर्मन विद्वान स्लाव धरती पर अपने पांव जमाने के लिए पहुंच गये। और अन्ततः फ़तह हासिल करती जाती फ़ौजों के फ़ौलादी क़दमों अथवा कूटनीति के सतर्क, अच्छी तरह पूर्वकल्पित क़दमों ने सामाजिक विकासक्रम से उत्पन्न विराष्ट्रीकरण की धीमी परन्तु स्थिर अग्रगति का अनुसरण ही नहीं किया, वरन् कई मौक़ों पर वह उससे आगे भी रही। इस प्रकार पोलैंड के पहले विभाजन के उपरान्त जर्मन उपनिवेशकारों को सार्वजनिक भू-खण्डों की बिक्री और अनुदान के ज़रिए, उन पास-पड़ोस के इलाक़ों में औद्योगिक प्रतिष्ठानों आदि की स्थापना के लिए जर्मन पूंजीपतियों को दिये गये प्रोत्साहनों के ज़रिए और प्रायः देश के पोलिश बाशिंदों के विरुद्ध अत्यधिक स्वेच्छाचारी कारंवाइयों के ज़रिए भी पश्चिमी प्रशा और पोसेन के काफ़ी बड़े हिस्सों का जर्मनीकरण कर दिया गया है।

इस तरह पिछले सत्तर वर्षों ने जर्मन तथा पोलिश जातियों के बीच विभाजन रेखा पूरी तरह बदल दी है। १८४८ की क्रांति ने तमाम उत्पीड़ित जातियों के लिए तुरन्त स्वतंत्र अस्तित्व के और अपने मामले स्वयं निपटाने के अधिकार की मांग की थी, इसलिये यह सर्वथा स्वाभाविक ही था कि पोल भी १७७२ के पहले के पुराने पोलिश जनतंत्र की सीमाओं के अन्दर अपने देश के पुनस्स्थापन की तुरन्त मांग करते।[29] यह सच है कि यदि जर्मन तथा पोलिश जातियों की हदबन्दी की दृष्टि से देखा जाये तो यह सीमा उस समय भी पुरानी पड़ गयी थी। जर्मनीकरण की प्रगति के बाद से तो वह वर्ष प्रतिवर्ष और भी पुरानी पड़ती चली गयी। परन्तु चूंकी जर्मनों ने पोलैंड के पुनस्स्थापन के लिए इतना अधिक जोश दिखाया था, इसलिए उनसे यह मांग किये जाने की अपेक्षा करनी चाहिए थी कि वे अपनी

सहानुभूति की वास्तविकता के पहले सबूत के रूप में लूट-खसोट के अपने हिस्से को तिलांजलि दें। दूसरी ओर सवाल यह था कि क्या पूरे के पूरे इलाक़े, जिन पर मुख्यतया जर्मन आबाद थे, बड़े बड़े शहर, जहां पूरी तरह जर्मन आबाद थे, ऐसे लोगों के हवाले कर दिये जायें जिन्होंने अब तक कृषि भू-दासत्व पर आधारित सामन्तवाद की स्थिति से आगे बढ़ सकने की अपनी क्षमता का पहले कभी कोई प्रमाण नहीं दिया था? सवाल काफ़ी पेचीदा था। एकमात्र सम्भव समाधान रूस के विरुद्ध युद्ध में निहित था; तब तो विभिन्न क्रांतिकृत जातियों के बीच हदबन्दी का सवाल समान शत्रु के विरुद्ध सुरक्षित सीमा की स्थापना के सवाल की तुलना में गौण बना दिया जाता; पोल पूर्व में विस्तृत इलाक़े मिल जाने पर पश्चिम में अपने दावों के बारे में अधिक नरम और तर्कसंगत हो जाते; अन्ततः उनके लिए रीगा और मिटाउ* डैंज़िग तथा एल्बिंग** की तरह महत्वपूर्ण साबित हो जाते। इस तरह जर्मनी की अग्रणी पार्टी ने महाद्वीपीय आंदोलन बनाये रखने के लिए रूस के साथ युद्ध को आवश्यक मानते हुए तथा यह मानते हुए पोलों का समर्थन किया कि पोलैंड के एक हिस्से की भी राष्ट्रीय पुनस्स्थापना के फलस्वरूप ऐसा युद्ध अनिवार्यतः होगा। उधर शासनारूढ़ उदारपंथी मध्यम वर्गीय पार्टी ने स्पष्ट रूप से पहले ही देख लिया था कि रूस के विरुद्ध किसी भी राष्ट्रीय युद्ध के फलस्वरूप उसका पतन हो जायेगा क्योंकि वह युद्ध अधिक सक्रिय और उत्साही लोगों को कर्णधार बनाता; इसलिए पार्टी ने जर्मन जातीयता के विस्तार के प्रति उत्साह का स्वांग भरते हुए प्रशियाई पोलैंड को, पोलिश क्रान्तिकारी आन्दोलन के मुख्य केन्द्र को भावी जर्मन साम्राज्य का अभिन्न अंग घोषित कर दिया। उत्तेजना के पहले दौर में पोलों को दिये गये वचन निर्लज्जतापूर्वक भंग कर दिये गये; सरकार की अनुमति से संगठित पोलिश हथियारबन्द टुकड़ियों को प्रशियाई तोपखाने द्वारा तितर बितर कर दिया गया और भून दिया गया। और १८४८ में अप्रैल माह आते ही, बर्लिन क्रान्ति के छः सप्ताहों के अन्दर-अन्दर पोलिश आन्दोलन कुचल दिया गया और पोलों तथा जर्मनों के बीच पुरानी जातीय शत्रुता फिर जीवित हो गयी। रूसी तानाशाह की यह अपार तथा अपरिमित सेवा करनेवाले लोग थे उदारपंथी व्यापारी-मंत्री, काम्पहाउज़ेन तथा हान्सेमान। यहां इतना और कहना उचित होगा कि यह पोलिश अभियान ठीक उसी प्रशियाई सेना को पुनर्गठित करने और उसे आश्वासन देने

---

*लाटवियाई नाम: सेलगावा। — **सं०**

पोलिश नाम: ग्दान्स्क और एल्बलोंग। — **सं०

का पहला साधन था जिसने आगे चलकर उदारपंथी पार्टी को निकाल बाहर किया तथा उस आन्दोलन को कुचल दिया जिसे सम्पन्न करने के लिए श्री काम्पहाउज़ेन तथा हान्सेमान ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया था। "जिस तरह का पाप करोगे, उसी तरह की सज़ा भुगतोगे।" १८४८ और १८४९ में छिछोरे लोगों की, लेद्रू-रोलें से लेकर शांगार्निये तक और काम्पहाउज़ेन से लेकर गाइनाऊ तक की यही गति हुई।

जातीय प्रश्न ने बोहीमिया में एक और संघर्ष को जन्म दिया। बीस लाख जर्मनों तथा चेक भाषा बोलनेवाले तीस लाख स्लावों की आबादी वाले इस देश की महान ऐतिहासिक स्मृतियां थीं जो प्राय: सभी चेकों के एक ज़माने के प्रभुत्व से जुड़ी हुई थीं। परन्तु स्लाव लोगों की इस शाखा की शक्ति पन्द्रहवीं शताब्दी में हुस्साइटों की लड़ाइयों[30] में नष्ट हो चुकी थी। चेक भाषा भाषियों के प्रान्त बंट चुके थे, एक हिस्से को लेकर बोहीमिया राज्य, दूसरे को लेकर मोराविया प्रान्त बना तथा तीसरा, स्लोवाकों का कार्पेथियन पर्वतीय प्रदेश हंगरी का हिस्सा बना। मोराविआई तथा स्लोवाक जातीय भावना और जीवन शक्ति का एक-एक अंश बहुत पहले ही खो बैठे थे हालांकि अपनी भाषा को उन्होंने मुख्यतया अक्षुण्ण रखा। बोहीमिया तीनों ओर से पूर्णतया जर्मन प्रदेशों से घिरा हुआ था। जर्मन तत्व स्वयं उसकी भूमि पर बहुत प्रगति कर चुका था। स्वयं राजधानी प्राग तक में दो जातियां काफ़ी अच्छी तरह सन्तुलित थीं। पूंजी, व्यापार, उद्योग तथा बौद्धिक संस्कृति सर्वत्र जर्मनों के हाथों में थी। चेक जातीयता के प्रमुख समर्थक प्रोफ़ेसर पालात्स्की एक ऐसे विद्वान जर्मन के अलावा और कुछ नहीं है जिसका सिर फिर गया है और जो अब भी चेक भाषा सही ढंग से और बिना विदेशी उच्चारण के नहीं बोल सकता। परन्तु जैसा कि अक्सर होता है, मरणोन्मुख चेक जाति ने — जो चार सौ वर्षों के दौरान इतिहास में ज्ञात हर तथ्य के अनुसार मरणोन्मुख — १८४८ में अपनी पहले की जीवनक्षमता फिर से हासिल करने की आख़िरी कोशिश की, जिसकी विफलता को सारे क्रान्तिकारी कारणों के बहिर्गत यह सिद्ध करना है कि बोहीमिया अब से केवल जर्मनी के एक हिस्से के रूप में अस्तित्वमान रह सकता है भले ही उसके निवासियों का एक भाग कुछ सदियों तक ग़ैर जर्मन भाषा बोलता रहा हो।[31]

लन्दन, फ़रवरी १८५२

९

सर्वस्लाववाद। श्लेज़विग-होल्स्टिन युद्ध

बोहीमिया और क्रोएशिया (स्लाव परिवार का एक अन्य बिखरा हुआ सदस्य, जिस पर हंगेरियाइयों ने उसी तरह प्रभाव डाला जिस तरह बोहीमिया पर जर्मनों ने डाला था) यूरोपीय महाद्वीप में "सर्वस्लाववाद" कहलानेवाली चीज़ का जन्म स्थान था। बोहीमिया और क्रोएशिया में से कोई भी इतना ताक़तवार नहीं था कि स्वयं एक राष्ट्र के रूप में टिक पाता। ये दोनों जातियां जिन्हें ऐतिहासिक कारणों की उस प्रक्रिया ने धीरे-धीरे खोखला बना दिया था जो ऐसी जातियों को अनिवार्यत: अधिक क्रियाशील नसल में घुला-मिला देती है, अन्य स्लाव जातियों के साथ ऐक्य-बद्धता के माध्यम से ही किसी प्रकार की स्वतंत्रता की फिर से प्राप्ति की आशा कर सकती थीं। पोल २ करोड़ २० लाख, रूसी ४ करोड़ ५० लाख, सेर्बियाई तथा बल्गारियाई ८० लाख थे—तो क्यों इन पूरे ८ करोड़ स्लावों का एक महासंघ न बना लिया जाये और क्यों न पुनीत स्लाव धरती के अन्दर आ घुसनेवालों को, तुर्क, हंगेरियाई और सर्वोपरि घृणित लेकिन अपरिहार्य Niemetz को, जर्मन को पीछे धकेल दिया जाये अथवा उनका सफ़ाया कर दिया जाये? इस प्रकार इतिहास विज्ञान के चन्द अधकचरे स्लाव पंडितों के अध्ययन कक्षों में यह उपहासास्पद, यह इतिहासविरोधी आन्दोलन पैदा हुआ, एक ऐसा आन्दोलन पैदा हुआ जिसका प्रयोजन इस चीज़ के अलावा और कुछ नहीं था कि सभ्य पश्चिम को बर्बर पूर्व के, शहर को देहात के, व्यापार, उद्योग, बौद्धिक संस्कृति को स्लाव भू-दासों की आदिम कृषि के अधीन कर दिया जाये। परन्तु इस उपहासास्पद सिद्धान्त के पीछे **रूसी साम्राज्य** की भयावह वास्तविकता खड़ी थी, वह साम्राज्य खड़ा था जो प्रत्येक गतिविधि के माध्यम से अपना यह दावा घोषित करता रहा कि वह पूरे यूरोप को स्लाव नसल का, विशेष रूप से इस नसल के अधिक क्रियाशील अंग का, रूसियों का अधिकार क्षेत्र मानता है; वह साम्राज्य खड़ा था जो सेंट पीटर्सबर्ग तथा मास्को जैसी अपनी दो राजधानियों के होते हुए भी अभी तक अपना गुरुत्व-केन्द्र नहीं ढूंढ़ पाया है और जिसे वह तब तक नहीं पा सकता जब तक **"ज़ार का नगर"** (कुस्तुन्तुनिया, जिसे रूसी में

ज़ारग्राद, ज़ार का नगर कहते हैं), जिसे हर रूसी किसान अपने धर्म तथा अपनी जाति की वास्तविक राजधानी मानता है, रूसी सम्राट का सचमुच निवास स्थान नहीं बन जाता; वह साम्राज्य खड़ा था जिसने पिछले डेढ़ सौ वर्षों के अन्दर कभी कुछ नहीं खोया, उल्टे जिसने हर युद्ध से, जिसे उसने आरम्भ किया, हमेशा नये-नये इलाक़े हासिल किये। और मध्य यूरोप में वे तिकड़में सुविदित हैं जिनके ज़रिए रूसी नीति ने सर्वस्लाववाद की नवनिर्मित प्रणाली का समर्थन किया, उसके उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए इससे बेहतर प्रणाली तैयार नहीं की जा सकती थी। इस तरह बोहीमियाई तथा क्रोएशियाई सर्वस्लाववादियों ने, कुछ ने इरादतन और कुछ ने अनजाने में सीधे रूसी हितों की पूर्त्ति के लिए काम किया; उन्होंने एक ऐसी जातीयता की परछाई पकड़ने की ख़ातिर क्रान्तिकारी ध्येय के साथ ग़द्दारी की जिसकी हर सूरत में वही हालत होती जो रूसी प्रभुत्व के अन्तर्गत पोलिश जातीयता की हुई। परन्तु पोलों को इस बात का श्रेय देना पड़ेगा कि वे इन सर्वस्लाववादी फन्दों में कभी संजीदगी से नहीं उलझे। और पोल अभिजात वर्ग के बीच से जो चन्द लोग उग्र सर्वस्लाववादी बन गये थे, वे भी भली भांति जानते थे कि वे रूसी अधीनता में उससे कम खोयेंगे जो उन्हें अपने कृषक दासों के विप्लव के फलस्वरूप खोना पड़ता।

बोहीमियाइयों तथा क्रोएशियाइयों ने एक सार्वत्रिक स्लाव संघ बनाने की तैयारी के लिए प्राग में एक आम स्लाव कांग्रेस[32] बुलायी। यह कांग्रेस आस्ट्रियाई फ़ौज के हस्तक्षेप के बिना भी विफल सिद्ध होती। अनेक स्लाव भाषाएं अंग्रेज़ी, जर्मन तथा स्वीडिश भाषाओं की ही तरह एक दूसरे से काफ़ी भिन्न हैं। जब अधिवेशन आरम्भ हुआ तो ऐसी कोई समान स्लाव भाषा नहीं थी जिसके माध्यम से वक्ता दूसरों को अपनी बात समझा सकते। फ़्रांसीसी भाषा आज़मायी गयी परन्तु बहुसंख्या के लिए वह भी उतनी ही दुर्बोध रही। और बेचारे स्लाव अनुरागी, जिनमें एकमात्र समान भावना जर्मनों के विरुद्ध समान घृणा थी, अन्ततः अपनी बात घृणित जर्मन भाषा में व्यक्त करने के लिए बाधित हुए, क्योंकि वही एकमात्र भाषा थी जिसे आम तौर पर सब समझ सकते थे! पर ठीक उसी समय प्राग में एक और स्लाव कांग्रेस जमा हो रही थी – गैलीशियन लांसरों, क्रोएशियाई तथा स्लोवाक ग्रेनडीअरों और बोहीमियाई तोपचियों तथा क्विरैसीअर के रूप में; और इस वास्तविक, सशस्त्र स्लाव कांग्रेस ने विंडिशग्रेट्ज़ की कमान में चौबीस घंटे से भी कम समय के अन्दर काल्पनिक स्लाव प्रभुत्व के संस्थापकों को शहर से बाहर खदेड़ दिया तथा उन्हें तितर-बितर कर दिया।

आस्ट्रियाई संवैधानिक संसद में बोहीमियाई, मोराावियाई, डाल्माटियाई सदस्यों और पोलिश सदस्यों के एक भाग ने (अभिजात वर्गीय) इस सभा में जर्मन तत्त्व के विरुद्ध विधिवत लड़ाई छेड़ दी। इस सभा में जर्मन तथा पोलों का एक हिस्सा (उजड़े हुए अमीर-उमरे) क्रान्तिकारी प्रगति के प्रमुख समर्थक थे। उनका विरोध करनेवाले स्लाव सदस्यों की बड़ी संख्या ने उनके पूरे आन्दोलन की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियां स्पष्ट रूप से इस तरह प्रकट किये जाने पर असन्तोष प्रकट किया; उनका इतना पतन हो चुका था कि उन्होंने उसी आस्ट्रियाई सरकार के साथ सांठगांठ की तथा उसके साथ मिलकर षड्यंत्र किये जिसने प्राग में उनकी सभा विसर्जित की थी। उन्हें भी अपने इस कलंकपूर्ण आचरण की सज़ा मिल गयी। अक्तूबर १८४८ के विद्रोह के दौरान, उस घटना के दौरान, जिसने उन्हें संसद में अन्ततः बहुमत दिलाया था, सरकार का समर्थन करने के बाद अब इस पूर्णतया स्लाव संसद को आस्ट्रियाई सैनिकों ने ठीक प्राग कांग्रेस की ही तरह विसर्जित कर दिया। सर्वस्लाववादियों को धमकी दे दी गयी कि यदि उन्होंने फिर हलचल दिखायी तो उन्हें बन्दी बना लिया जायेगा। उनके हाथ केवल इतना ही लगा कि स्लाव जाति की जड़ पर अब हर जगह आस्ट्रियाई केन्द्रीयतावाद कुठाराघात कर रहा है, यह एक ऐसा परिणाम है जिसके लिए वे केवल अपने कठमुल्लेपन और अंधेपन को ही कोस सकते हैं।

यदि हंगरी और जर्मनी की सीमाओं के बारे में सन्देह की कोई गुंजाइश रहती तो वहां भी यक़ीनन झगड़ा होता। परन्तु सौभाग्य से इसके लिए कोई बहाना नहीं था और दोनों राष्ट्रों के हित चूंकि आपस में बहुत गुंथे हुए थे, इसलिए वे समान शत्रु के, अर्थात् आस्ट्रियाई सरकार और सर्वस्लाववादी कठमुल्लेपन के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। इस नेक समझदारी में क्षणभर के लिए भी विघ्न पैदा नहीं हुआ। परन्तु इटालवी क्रान्ति ने जर्मनी के कम से कम एक हिस्से को गृहयुद्ध की लपेट में ले लिया। और यहां इस बात के प्रमाण के रूप में कि मेट्टरनिख़ीय प्रणाली जन-चेतना के विकास को रोकने में किस हद तक सफल हो चुकी थी, यह कहना जरूरी है कि १८४८ के प्रथम छः माहों के दौरान ठीक वे ही लोग, जिन्होंने वियेना में बैरीकेड खड़े किये थे, पूरे उत्साह के साथ उसी फ़ौज में भर्ती होने के लिए आगे बढ़े जिसने इटालवी देशभक्तों के विरुद्ध लड़ाई ली थी। पर विचारों की यह निन्दनीय भ्रान्ति देर तक नहीं टिकी।

अन्ततः श्लेज़विग और होल्स्टिन को लेकर डेनमार्क के विरुद्ध लड़ाई हुई। ये प्रदेश जाति, भाषा तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से निर्विवाद रूप में जर्मन हैं, वे साथ

ही फ़ौजी, नौसैनिक तथा वाणिज्यिक कारणों से भी जर्मनी के लिए आवश्यक हैं। उनके निवासी पिछले तीन वर्षों से डेनिश घुसपैठ के विरुद्ध कठोर संघर्ष करते आये हैं। इसके अलावा संधियों पर आधारित अधिकार भी उनके पक्ष में था। मार्च की क्रान्ति ने उन्हें डेनों के साथ खुली टक्कर के मैदान में उतार दिया और जर्मनी ने उनका समर्थन किया। परन्तु जहां पोलैंड में, इटली में, बोहीमिया में और आगे चलकर हंगरी में फ़ौजी कार्रवाइयों को पूरे जोश से आगे बढ़ाया गया, वहां इस युद्ध में, एकमात्र लोकप्रिय, एकमात्र – कम से कम आंशिक रूप से – क्रान्तिकारी युद्ध में परिणामहीन अभियानों तथा प्रत्याभियानों की प्रणाली अपनायी गयी और विदेशी कूटनीति के हस्तक्षेप के आगे सिर झुका दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि अनेकानेक वीरतापूर्ण मुठभेड़ों के बाद घोर दुखद अन्त हाथ लगा। लड़ाई के दौरान जर्मन सरकारों ने हर मौक़े पर श्लेज़विग-होल्स्टिन क्रान्तिकारी सेना के साथ ग़द्दारी की और जिस समय वह विसर्जित या विभक्त थी, उस समय जर्मन सरकारों ने जानबूझकर डेनों को उसे नष्ट करने दिया। जर्मन स्वयंसेवक टुकड़ियों के साथ भी यही व्यवहार किया गया।

परन्तु जहां जर्मन नाम को हर तरफ़ से घृणा के अलावा और कुछ नहीं मिला, वहां जर्मन संवैधानिक तथा उदारपंथी सरकारें मारे ख़ुशी के झूम रही थीं। वे पोलिश तथा बोहीमियाई आन्दोलन कुचलने में सफल हो गयी थीं। उन्होंने हर जगह फिर से पुराने जातीय वैरभाव पैदा कर दिये थे, जिसने अब तक जर्मन, पोल तथा इतालवी लोगों के बीच कोई आपसी समझदारी नहीं होने दी तथा उन्हें संयुक्त कार्रवाई से रोक दिया। उन्होंने जनता को गृहयुद्ध तथा सेना द्वारा दमन किये जाने के दृश्यों का आदी बना दिया था। पोलैंड में प्रशियाई सेना तथा प्राग में आस्ट्रियाई सेना को अपनी शक्ति पर पुनः विश्वास हो गया था। जहां क्रान्तिकारी परन्तु अदूरदर्शी नौजवानों की अतिप्रचुर देशभक्ति (हाइने के शब्दों में «die patriotische Überkraft»*) को श्लेज़विग और लोम्बार्डी में दुश्मन की गोलियों से भुनने दिया गया, वहां प्रशा तथा आस्ट्रिया में नियमित सेना को, जो कार्रवाई करने का असल हथियार थी, विदेशियों पर विजयों की प्राप्ति के माध्यम से जनता का फिर से आशीर्वाद प्राप्त करने की स्थिति में पहुंचा दिया गया। परन्तु हम यह चीज़ दुहराते हैं – इन सेनाओं ने, जिन्हें

* हाइने, 'पेरिस में रात के चौकीदार के आगमन पर', ('आधुनिक कविताएं' नामक संग्रह से)। – सं०

उदारपंथियों ने अधिक अग्रगामी पार्टी के ख़िलाफ़ कार्रवाई के साधन के रूप में मज़बूत बनाया था, ज्योंही अपना आत्मविश्वास और अनुशासन फिर से प्राप्त किया, वे उदारपंथियों के ख़िलाफ़ खड़ी हो गयीं और उन्होंने पुरानी व्यवस्था के लोगों को फिर से सत्तारूढ़ कर दिया। जब आडिज के पार अपने खेमे में रादेत्स्की को वियेना से "उत्तरदायी मंत्रियों" की ओर से पहले आदेश मिले, उसने विस्मय भरे स्वर में कहा, "कौन हैं ये मंत्री? वे आस्ट्रिया की सरकार नहीं हैं! आस्ट्रिया तो अब मेरे खेमे में है, और कहीं नहीं; मैं और मेरी सेना–हम ही हैं आस्ट्रिया; जब हम इतालवी लोगों को पटक देंगे तो हम सम्राट के वास्ते साम्राज्य फिर हासिल करेंगे!" और वृद्ध रादेत्स्की की बात सही थी। परन्तु वियेना के मूढ़ "उत्तरदायी" मंत्रियों ने उसकी बात नहीं सुनी।

लन्दन, फ़रवरी १८५२

१०

पेरिस का विद्रोह। फ़्रैंकफ़ुर्ट की सभा

अप्रैल १८४८ के आरम्भ में ही यूरोपीय महाद्वीप में क्रान्तिकारी बाढ़ को उस संघ ने रोक दिया है जिसे पहली विजय से लाभान्वित वर्गों ने तुरन्त पराजितों के साथ मिलकर स्थापित किया था। फ़्रांस में छोटे व्यवसायी वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग का जनतंत्रीय पक्ष सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध राजतंत्रवादी पूंजीपति वर्ग के साथ मिल गया था। जर्मनी तथा इटली में विजयी पूंजीपति वर्ग आम जन-समुदाय तथा छोटे व्यवसायियों के विरुद्ध सामन्ती अमीर-उमराओं, सरकारी नौकरशाही तथा सेना का समर्थन पाने के लिए उत्सुकतापूर्वक याचना कर रहा था। संयुक्त अनुदारपंथी तथा प्रतिक्रान्तिकारी पार्टियों का पलड़ा फिर से जल्द भारी हो गया। इंगलैंड में असामयिक तथा ठीक तैयारी के बिना किया गया जन-प्रदर्शन (१० अप्रैल) आन्दोलन पार्टी की पूर्ण तथा निर्णायक पराजय में परिणत हो गया।[33] फ़्रांस में दो ऐसे ही आन्दोलन (१६ अप्रैल[34] तथा १५ मई[35]) उसी प्रकार परास्त हो गये। इटली में सम्राट बोम्बा ने* १५ मई को एक ही झटके

* फ़र्दीनांद द्वितीय। – सं०

में फिर से अपनी सत्ता हासिल कर ली।[36] जर्मनी में भिन्न प्रकार की नयी पूंजीवादी सरकारों तथा उनकी संविधान सभाओं ने अपने पांव मज़बूती से जमाये और यदि घटनापूर्ण १५ मई ने वियेना में जन विजय को जन्म दिया तो यह मात्र गौण महत्व की घटना थी और उसे जन स्फूर्ति की आख़िरी सफल कौंध माना जा सकता है। हंगरी में आन्दोलन पूर्ण वैधता की शान्त धारा में परिणत होते प्रतीत हुए। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, पोलिश आन्दोलन ज्योंही अंकुरित हुआ, प्रशियाई संगीनों ने उसे चीर डाला। परन्तु अभी यह क़तई तय नहीं हुआ था कि ऊंट आख़िर किस करवट बैठेगा। भिन्न-भिन्न देशों में क्रान्तिकारी पार्टियों के हाथों से निकली एक-एक इंच भूमि निर्णायक कार्रवाई के लिए उनकी क़तारों को अधिकाधिक ऐक्यबद्ध करने में सहायक ही सिद्ध हो रही थी।

निर्णायक कार्रवाई की घड़ी समीप आती जा रही थी। वह केवल फ़्रांस में ही की जा सकती थी, क्योंकि जब तक इंगलैंड क्रान्तिकारी संघर्ष में भाग न लेता, जब तक जर्मनी विभक्त रहता तब तक फ़्रांस ही एकमात्र ऐसा देश था जो अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता, अपनी सभ्यता तथा अपने केन्द्रीकरण के बल पर अपने चारों ओर के देशों के अन्दर सशक्त उथल-पुथल को वेग प्रदान कर सकता था। इसलिए जब २३ जून १८४८[37] को पेरिस में रक्तपातपूर्ण संघर्ष आरम्भ हुआ, जब तार या डाक से आनेवाले हर नये समाचार ने यूरोप की आंखों के सामने यह तथ्य स्पष्ट रूप से उजागर कर दिया कि यह संघर्ष एक ओर पेरिस के मज़दूर तथा दूसरी ओर सेना द्वारा समर्थित पेरिस की आबादी के सारे दूसरे वर्गों के बीच हो रहा है, जब लड़ाई कई दिनों तक आधुनिक गृहयुद्धों के इतिहास में बेमिसाल उत्तेजना के साथ परन्तु किसी पक्ष को प्रकटतया लाभ पहुंचाये बिना चलती रही तब हरेक के सामने यह स्पष्ट हो गया कि यह एक ऐसा महान, निर्णायक संघर्ष है जिसमें यदि विद्रोह विजयी होता है तो वह पूरे महाद्वीप को क्रान्तियों की नयी बाढ़ से जलथल कर देगा और यदि यह विद्रोह कुचल दिया जाता है तो यह निर्णायक संघर्ष कम से कम कुछ समय के लिए ही प्रतिक्रान्तिकारी शासन को अवश्य ही पुनःस्थापित कर देगा।

पेरिस के सर्वहारा इस तरह पराजित हो गये थे, इस तरह उनका संहार कर दिया गया था, इस तरह उन्हें कुचला जा चुका था कि वे अब तक उस आघात से नहीं सम्भल पाये हैं। तुरन्त पूरे यूरोप में नये-पुराने सारे अनुदारपंथियों और प्रतिक्रान्तिकारियों ने ऐसी धृष्टता के साथ अपना सिर उठाया कि उससे स्पष्ट था कि वे इस घटना का महत्व कितनी अच्छी तरह समझते हैं। अख़बारों

का हर जगह दमन किया गया, सभाएं करने तथा संघबद्धता के अधिकारों में सर्वत्र हस्तक्षेप किया गया; हर छोटे प्रान्तीय नगर में मामूली-सी घटना का भी जनता को निरस्त्र करने, घेरेबन्दी की स्थिति की घोषणा करने, सैनिकों को नये रणकौशल तथा दांवपेंचों का, जो उन्हें कैवेन्याक ने सिखाये थे, अभ्यास कराने के लिए उपयोग किया गया। इसके अलावा फ़रवरी[38] के बाद पहली बार यह सिद्ध हुआ कि किसी एक बड़े नगर में जन विद्रोह की अजेयता एक भ्रान्ति है; फ़ौजों को अपना सम्मान फिर हासिल हो गया था; अब तक सड़कों पर होनेवाली ज़रा भी महत्व की हर लड़ाई में परास्त होनेवाले सैनिकों ने इस तरह के संघर्ष में पुनः आत्मविश्वास प्राप्त कर लिया था।

पेरिस के मज़दूरों की इस पराजय को कुछ समय के लिए बनाये गये अपने साथियों तक से, मध्यम वर्गों तक से, छुटकारा पाने के लिए और जर्मनी को मार्च की घटनाओं से पहले की स्थिति में फिर से वापस लाने के लिए जर्मनी की पुरानी सामन्ती-नौकरशाही पार्टी द्वारा उठाये गये प्रथम ठोस पगों तथा निश्चित योजनाओं की शुरूआत का समय माना जा सकता है। सेना राज्य में पुनः निर्णायक शक्ति बन गयी और वह मध्यम वर्ग की नहीं थी, वह तो स्वयं इस पार्टी की थी। प्रशा तक में, जहां १८४८ से पहले यह देखने को आया था कि निचले दर्जे के अफ़सरों के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से का संवैधानिक सरकार की ओर झुकाव है, क्रान्ति द्वारा सेना में लायी गयी अव्यवस्था उन तर्क-वितर्क करनेवाले नौजवानों को पुनः राजनिष्ठा की ओर वापस ले आयी। सिपाहियों ने अफ़सरों के साथ जहां ज़रा भी धृष्टता दिखायी, वहां उन्हें प्रभावशाली ढंग से अनुशासन की और ख़ामोशी से आज्ञापालन करने की आवश्यकता से अवगत करा दिया गया। पराजित सामन्त तथा नौकरशाह अब अपने सामने रास्ता देखने लगे। पहले किसी भी समय की तुलना में अब अधिक ऐक्यबद्ध सेना को, छोटी-मोटी बग़ावतों को कुचलने तथा विदेशों में लड़ी गयी लड़ाइयों में विजय से उमंगित सेना को, फ़्रांसीसी सैनिकों द्वारा अभी-अभी हासिल की गयी बड़ी सफलता से ईर्ष्या करनेवाली इस सेना को जनता के साथ छोटे-छोटे संघर्षों में उलझाये रखना जरूरी था, और निर्णायक क्षण एक बार हाथ लगने पर वह एक ही चोट में क्रान्तिकारियों को कुचल सकती थी तथा मध्यम वर्गीय संसदवादियों के अभिमान को रौंद सकती थी। इस प्रकार के निर्णायक आघात की घड़ी जल्द ही आ गयी।

हम कभी-कभी दिलचस्प परन्तु अधिकतर उकता देनेवाली संसदीय कार्रवाइयों और उन स्थानीय संघर्षों को छोड़ देंगे जिनमें जर्मनी में उस ग्रीष्मकाल में विभिन्न

पार्टियां उलझी रहीं। इतना ही कहना काफ़ी होगा कि मध्यम वर्गीय हित के समर्थक नाना संसदीय विजयों के – जिनमें से एक का भी कोई व्यावहारिक फल नहीं निकला – बावजूद बहुधा यह अनुभव करते रहे कि उग्रवादी पार्टियों के बीच उनकी स्थिति नित्यप्रति अधिकाधिक अस्थिर होती जा रही है; इसलिए वे आज प्रतिक्रियावादियों के साथ ऐक्यबद्धता हासिल करने के लिए तो अगले ही दिन अधिक जनवादी पार्टियों की कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए विवश हो रहे थे। इस निरन्तर ढुलमुलपन ने जनमत के सामने उनकी प्रतिष्ठा का अन्तिम रूप से सफ़ाया कर दिया और घटनाचक्र जिस दिशा में घूम रहा था, उसके अनुसार ये लोग जिस तिरस्कार के भाजन बने थे, उससे उस समय मुख्यतया नौकरशाहों तथा सामन्तों को फ़ायदा पहुंचा।

पतझड़ के आरम्भ तक भिन्न-भिन्न पार्टियों के बीच सम्बन्ध इतने उद्दीप्त तथा संगीन हो चुके थे, कि वे निर्णायक संघर्ष को अवश्यम्भावी बनाने के लिए पर्याप्त थे। जनवादी और क्रान्तिकारी जनसाधारण तथा सेना के बीच पहली मुठभेड़ें फ़्रैंकफ़ुर्ट में हुई। यह मात्र गौण मुठभेड़ थी, फिर भी वह कोई महत्व रखनेवाली ऐसी पहली कामयाबी थी जो सैनिकों ने विद्रोह के विरुद्ध प्राप्त की जिसका बहुत बड़ा नैतिक प्रभाव पड़ा। फ़्रैंकफ़ुर्ट राष्ट्रीय सभा द्वारा स्थापित काल्पनिक सरकार को प्रशा ने अत्यन्त स्पष्ट कारणों से डेनमार्क के साथ विरामसंधि सम्पन्न करने दिया, जिसने डेनिश प्रतिशोध के सामने श्लेज़विग के जर्मनों को ही समर्पित नहीं किया, बल्कि उसने उन कमोबेश क्रान्तिकारी सिद्धान्तों की भी पूरी तरह तिलांजलि दे दी जो आम तौर पर डेनिश युद्ध के आधार माने जाते थे। यह विरामसंधि फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा में दो या तीन वोटों के बहुमत से अस्वीकृत हो गयी। इस वोट के बाद मंत्रिमण्डलीय संकट का तमाशा सामने आया। परन्तु तीन दिन बाद सभा ने अपने वोट पर पुनर्विचार किया तथा दरअसल उसे रद्द करने तथा विरामसंधि स्वीकार करने के लिए विवश किया गया था। इन शर्मनाक कार्रवाइयों ने जनता में रोष पैदा किया। बैरीकेड खड़े किये गये, परन्तु तब तक फ़्रैंकफ़ुर्ट में सैनिक पर्याप्त संख्या में बुलाये जा चुके थे। छः घंटे की लड़ाई के बाद विद्रोह दबा दिया गया। इस घटना से सम्बन्धित वैसे ही परन्तु कम महत्वपूर्ण आन्दोलन जर्मनी के अन्य भागों में (बाडेन, कोलोन) में भी हुए परन्तु उन्हें भी कुचल दिया गया।

इस आरम्भिक मुठभेड़ ने प्रतिक्रान्तिकारी पार्टी को एक बड़ा लाभ पहुंचाया। वह लाभ यह था कि वह एकमात्र सरकार जिसे पूरी तरह, कम से कम प्रतीयमानतः

जन-निर्वाचन ने जन्म दिया था, फ़्रैंकफ़ुर्ट की शाही सरकार और साथ ही राष्ट्रीय सभा जनता की दृष्टि में पूरी तरह नीचे गिर चुकी थीं। इस सरकार तथा इस सभा को जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति का मुक़ाबला करने के लिए सैनिकों की संगीनों का सहारा लेने के वास्ते विवश किया गया था। वे बदनाम हो चुकी थीं; अब तक वे जो थोड़ी-बहुत इज्ज़त का हक़दार होने का दावा करने की स्थिति में थीं, उसे उन द्वारा अपने मूल को दी गयी इस तिलांजलि ने, जन विरोधी सरकारों तथा उनके सैनिकों पर आश्रितता ने साम्राज्य के इस रीजेंट, उसके मंत्रियों तथा राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को अब पूर्णतया शून्य बना दिया। हम आगे जल्द देखेंगे कि पहले आस्ट्रिया, फिर प्रशा और उसके बाद छोटे-छोटे राज्यों ने नपुंसक स्वप्नद्रष्टाओं की इस संस्था की ओर से आनेवाले हर आदेश, हर अनुरोध, हर प्रतिनिधिमण्डल के साथ कैसा तिरस्कार भरा बर्ताव किया।

अब हम जर्मनी में जून की फ़्रांसीसी लड़ाई के उस शक्तिशाली प्रतिध्वनि के पास, उस घटना के पास पहुंचते हैं जो जर्मनी के लिए उतनी ही निर्णायक थी जितना निर्णायक पेरिस के सर्वहारा वर्ग का संघर्ष फ़्रांस के लिए था। हमारा तात्पर्य क्रान्ति से, और फिर अक्तूबर १८४८ में वियेना पर धावे से है। परन्तु इस लड़ाई का महत्व ऐसा है तथा इसके परिणाम पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालनेवाली परिस्थितियों पर प्रकाश डालने के लिए «*Tribune*» में इतनी जगह की जरूरत पड़ेगी कि उसको एक पृथक लेख में चर्चा करना आवश्यक होगा।

लन्दन, फ़रवरी १८५२

११

वियेना का विद्रोह

अब हम उस निर्णायक घटना पर पहुंचते हैं जो पेरिस में हुए जून विद्रोह का जर्मनी में हुई क्रान्ति का प्रतिरूप थी और जिसने एक ही वार में प्रतिक्रान्तिकारी पार्टी का पलड़ा भारी बना दिया था। वह घटना थी वियेना में अक्तूबर १८४८ का विद्रोह।

हम देख चुके हैं कि १३ मार्च को विजय के बाद वियेना में विभिन्न वर्गों की क्या स्थिति थी। हम यह भी देख चुके हैं कि जर्मन आस्ट्रिया का आन्दोलन

कैसे आस्ट्रिया के ग़ैर जर्मन प्रान्तों की घटनाओं से उलझा हुआ था तथा कैसे वे घटनाएं उस आन्दोलन का रास्ता रोके हुई थीं। अब हमारा काम केवल इतना रह जाता है कि हम संक्षेप में उन कारणों पर एक नज़र डालें जिनके फलस्वरूप जर्मन आस्ट्रिया का यह अन्तिम तथा सबसे भयंकर विद्रोह हुआ।

उच्च अभिजात वर्ग तथा स्टॉक दलाल पूंजीपति वर्ग को, जो मेट्टरनिख़ के शासन के प्रमुख ग़ैरसरकारी अवलम्ब थे, मार्च की घटनाओं के बाद भी सरकार पर अपना प्रभुत्वपूर्ण प्रभाव बनाये रखने दिया गया, इस प्रभुत्व को दरबार, फ़ौज तथा नौकरशाही ने ही नहीं वरन् इससे भी बढ़कर उस "अराजकता" के आतंक ने भी बने रहना दिया जो मध्यम वर्गों के बीच बहुत तेज़ रफ़्तार से बढ़ता जा रहा था। उन्होंने बहुत जल्द एक प्रेस क़ानून[39], तुच्छ संविधान[40] तथा "सामाजिक श्रेणियों" के पुराने विभाजन पर आधारित एक चुनाव क़ानून[41] के रूप में चन्द शोशे छोड़े। तथाकथित संवैधानिक मंत्रिमण्डल ने जिसमें अर्द्ध उदारपंथी कायर तथा अयोग्य नौकरशाह थे, १४ मई को राष्ट्रीय गार्ड तथा अकादमिक लीजन[42] के प्रतिनिधियों की केन्द्रीय समिति को, सरकार को नियंत्रित करने तथा आवश्यकता पड़ने पर उसके विरुद्ध जन शक्तियां बुलाने के विशुद्ध ध्येय से बनायी गयी संस्था को विघटित कर जनसाधारण के क्रान्तिकारी संगठनों पर सीधा हमला बोलने की जुर्रत की। परन्तु इस कार्रवाई ने १५ मई का विद्रोह भड़काने का ही काम किया जिसके ज़रिये सरकार को मजबूर किया गया कि वह समिति को मान्यता दे, संविधान और चुनाव क़ानून रद्द करे तथा सार्वजनिक मताधिकार द्वारा निर्वाचित संवैधानिक संसद को एक नया आधारभूत क़ानून तैयार करने का अधिकार प्रदान करे। इन सब बातों की पुष्टि अगले दिन एक शाही फ़रमान के ज़रिये ही गयी। परन्तु प्रतिक्रियावादी पार्टी ने—उसके भी मंत्रिमण्डल में सदस्य थे—अपने "उदारपंथी" सहयोगियों से जल्द जनता की फ़तहों पर प्रहार करा दिया। अकादमिक लीजन, जो आन्दोलन पार्टी का दुर्ग, निरन्तर चलनेवाले आन्दोलन का केन्द्र था ठीक इसी कारण वियेना के अधिक उदार बर्गरों के लिए घृणित हो गया था; २६ मई को मंत्रिमण्डल की एक आज्ञप्ति द्वारा उसे भंग कर दिया गया। अगर प्रहार करने का यह कार्य राष्ट्रीय गार्ड का एक हिस्सा ही करता तो सम्भवतः इसमें सफलता मिल जाती; परन्तु सरकार को तो उस पर भी भरोसा नहीं था, वह फ़ौज को सामने ले आयी; फिर क्या था, राष्ट्रीय गार्ड मुड़कर तुरन्त अकादमिक लीजन से ऐक्यबद्ध हो गया और इस तरह उसने मंत्रिमण्डल के मन्सूबे पर पानी फेर दिया।

परन्तु इस बीच सम्राट* और उसके दरबार ने १६ मई को वियेना छोड़कर इंसब्रुक की शरण ली। यहां कठमुल्ले टिरोलियन, जिनकी वफ़ादारी अपने देश पर सार्डिनियाई-लोम्बार्डियाई फ़ौज के आक्रमण के ख़तरे के कारण जग गयी थी, उनके इर्दगिर्द जमा थे तथा रादेत्स्की की सेना के – इंसब्रुक उसके गोलों की मार के भीतर आ जाता था – सामीप्य का सहारा लेकर प्रतिक्रान्तिकारी पार्टी ने शरण पायी। यहां नियंत्रणहीन रहकर, बिना किसी की नजर में आये तथा सुरक्षित रूप से वह अपनी तितर-बितर शक्तियों को फिर जमा कर सकती थी तथा पूरे देश में अपनी साज़िशों का जाल फैला सकती थी। रादेत्स्की, जेलाचिच और विंडिशग्रेट्ज़ के साथ, साथ ही भिन्न-भिन्न प्रान्तों के प्रशासनिक सोपानक्रम में विश्वसनीय लोगों के साथ फिर से सम्बन्ध-सम्पर्क स्थापित किये गये; स्लाव सरदारों के साथ मिलकर साज़िशें शुरू की गयीं, और इस तरह प्रतिक्रान्तिकारी गुट के पास एक वास्तविक शक्ति तैयार हो गयी, जबकि वियेना के अशक्त मंत्रियों को अपनी अल्पकालिक और क्षीण लोकप्रियता को क्रान्तिकारी जनसाधारण के साथ निरन्तर झड़पों और आगामी संविधान सभा की बहसों में गंवाने दिया गया। इस तरह राजधानी के आन्दोलन को फ़िलहाल उसी के चाल पर छोड़ देने की नीति, ऐसी नीति, जिसके फलस्वरूप फ़्रांस जैसे केन्द्रीकृत तथा समरूप देश में आन्दोलन पार्टी सर्वशक्तिमान बन जाती, यहां, आस्ट्रिया में, पंचमेली राजनीतिक जमघट में प्रतिक्रियावादियों की शक्ति का पुनर्गठन करने का सबसे अचूक तरीक़ा थी।

वियेना में मध्यम वर्ग अपने को यह आश्वस्त करने के बाद कि दरबार की तीन निरन्तर पराजयों के बाद और सार्वजनिक मताधिकार पर आधारित संविधान सभा के मौजूद रहते दरबारी पार्टी अब ऐसी विरोधी शक्ति नहीं रह गयी है जिससे भयभीत होने की जरूरत हो, उस थकावट तथा उदासीनता के गर्त्त में धंसता चला गया, व्यवस्था तथा शान्ति के लिए उस निरन्तर कोलाहल के चक्कर में फंसता चला गया जिन्होंने उग्र हलचलों तथा उनके फलस्वरूप व्यवसायगत जीवन की अस्तव्यस्तता के बाद इस वर्ग को सर्वत्र अपनी लपेट में लिया है। आस्ट्रियाई राजधानी का औद्योगिक उत्पादन प्रायः विलास सामग्रियों के उत्पादन तक सीमित है और क्रान्ति के तथा दरबार के भाग जाने के बाद इन वस्तुओं की स्वभावतया मांग बहुत घट गयी थी। शासन की नियमित व्यवस्था की ओर वापसी और

---

*फ़र्दीनांद प्रथम। – सं०

दरबार की वापसी के लिए—इन दोनों चीज़ों से वाणिज्यिक समृद्धि के पुनरुज्जीवन की आशा की जाती थी—चीख़-पुकार अब मध्यम वर्गों में आम चीज़ बन गयी थी। जुलाई में संविधान सभा का अधिवेशन हुआ, जिसका क्रान्तिकारी युग के पटाक्षेप के रूप में हर्षपूर्वक अभिनन्दन किया गया; इसी तरह दरबार की वापसी का अभिनन्दन किया गया। दरबार ने इटली में रादेत्स्की की विजयों के बाद तथा डोब्लहाफ़ के प्रतिक्रियावादी मंत्रिमण्डल की स्थापना के बाद जनता के हमलों का विरोध करने के लिए अपने को पर्याप्त रूप में बलिष्ठ माना, साथ ही उसके वियेना में उपस्थित होने की ज़रूरत थी ताकि संसद की स्लाव बहुसंख्या के साथ षड्यंत्रों को पूरा किया जा सके। संविधान सभा जहां कृषक समुदाय को सामन्ती बेड़ियों से तथा सामन्तों की बेगारी से मुक्त करने से सम्बन्धित क़ानूनों पर बहस कर रही थी, वहां दरबार बहुत सफलतापूर्वक एक ज़ोरदार चाल चलने में सफल हो गया। १९ अगस्त को सम्राट को राष्ट्रीय गार्ड की सलामी लेने के लिए विवश किया गया। शाही परिवार, दरबारी तथा जनरल सशस्त्र बर्गरों की चापलूसी करने में होड़ करते थे, जो यह देखकर पहले से ही गर्वोन्मत्त थे कि उन्हें सार्वजनिक रूप से एक महत्वपूर्ण राजकीय शक्ति स्वीकार कर लिया गया है। इसके फ़ौरन बाद एक आज्ञप्ति प्रकाशित की गयी जिस पर मंत्रिमण्डल के एकमात्र लोकप्रिय मंत्री श्री श्वार्ज़ेर के हस्ताक्षर थे; इस आज्ञप्ति ने वह सरकारी सहायता वापस ले ली जो अब तक बेरोज़गार व्यक्तियों को दी जाती थी। तिकड़म कामयाब रही। मेहनतकश वर्गों ने जलूस निकाला; मध्यम वर्गीय राष्ट्रीय गार्डों ने अपने मंत्री की आज्ञप्ति के पक्ष में अपने समर्थन की घोषणा की; उन्हें "अराजकतावादियों" पर टूट पड़ने के लिए छोड़ दिया गया; वे निरस्त्र, मुक़ाबला न करनेवाले मेहनतकशों पर भूखे शेरों की तरह टूट पड़े और उन्होंने २३ अगस्त को बहुत बड़ी संख्या में उनका क़त्लेआम किया। इस तरह क्रान्तिकारी शक्ति की एकता तथा बल को भंग कर दिया गया। वियेना में पूंजीपति तथा सर्वहारा के बीच वर्ग-संघर्ष ख़ूनख़राबी के साथ शुरू होना ही था तथा प्रतिक्रान्तिकारी गुट ने निर्णायक प्रहार किये जाने का दिन समीप आते देखा।

हंगेरियाई मामलों ने खुलेआम वे सिद्धान्त घोषित करने का अवसर प्रस्तुत कर दिया जिन्हें वह अमल में लाने का इरादा रखता था। ५ अक्तूबर को वियेना के सरकारी «*Wiener Zeitung*»[43] में एक शाही आज्ञप्ति प्रकाशित हुई, जिसपर हंगरी के एक भी उत्तरदायी मंत्री के हस्ताक्षर नहीं थे। उसने घोषणा की कि हंगेरियाई संसद भंग की जाती है तथा क्रोएशिया के बान जेलाचिच को देश का नागरिक

तथा सैनिक गवर्नर नियुक्त किया जाता है जो दक्षिण-स्लाव प्रतिक्रियावाद का नेता था और जिसका साथ ही हंगरी के विधिसम्मत अधिकारियों के साथ झगड़ा चल रहा था। साथ ही वियेना स्थित सैनिकों को कूच करने और उस सेना से जा मिलने का आदेश दे दिया गया जिसे जेलाचिच की सत्ता स्थापित करनी थी। परन्तु यह तो अपना भेद बिल्कुल जाहिर कर देने का काम था। वियेना मे हर व्यक्ति ने अनुभव किया कि हंगरी के ख़िलाफ़ युद्ध संवैधानिक शासन के सिद्धान्त के ख़िलाफ़ युद्ध है। इस सिद्धान्त को उस आज्ञप्ति में किसी उत्तरदायी मंत्री के हस्ताक्षर के बिना आज्ञप्तियों को क़ानूनी शक्ति प्रदान करने की सम्राट की चेष्टा द्वारा पैरों तले रौंद दिया गया। ६ अक्तूबर को वियेना की जनता, अकादमिक लीजन, राष्ट्रीय गार्ड ने आम विद्रोह किया और उन्होंने सैनिकों की रवानगी का विरोध किया। कुछ ग्रेनिडि जनता से जा मिले। जन-शक्तियों तथा सैनिकों के बीच कुछ देर तक संघर्ष चला; जनता ने युद्धमंत्री लाटूर को क़त्ल कर दिया और शाम को वह विजयी हो गयी। इस बीच बान जेलाचिच ने, जिसे पेर्सल ने श्तुलवाइसेन्बर्ग* में पराजित कर दिया था, वियेना के पास जर्मन-आस्ट्रियाई इलाक़े में शरण ली। वियेना की गैरीज़न ने, जिसे उसके समर्थन के लिए कूच करना था, अब उसके विरुद्ध प्रत्यक्षतया शत्रुतापूर्ण तथा रक्षात्मक स्थिति अपनायी। सम्राट और उसके दरबारी फिर भागकर अर्द्ध स्लाव क्षेत्र में ओलम्युट्ज़** नामक स्थान में पहुंच गये।

परन्तु ओलम्युट्ज़ में दरबार ने अपने को उनसे बहुत भिन्न अवस्थाओं के बीच पाया जो इंसब्रुक में विद्यमान थीं। अब वह क्रान्ति के ख़िलाफ़ तुरन्त मुहिम चलाने की स्थिति में था। उसके इर्दगिर्द जमा थे संविधान सभा के स्लाव सदस्य जिनके झुंड के झुंड ओलम्युट्ज़ पहुंच गये थे, तथा राजतंत्र के सभी हिस्सों के उत्साही स्लाव लोग। उनकी नज़र में इस अभियान को स्लाव पुनस्स्थापन का युद्ध तथा उस जगह, जिसे स्लाव धरती माना जाता था, दो घुस-पैठियों के विरुद्ध—जर्मन तथा माग्यार के विरुद्ध—संहार का युद्ध बनना था। विंडिशग्रेट्ज़, प्राग का विजेता, अब वियेना के इर्दगिर्द जमा फ़ौज का कमांडर, पलक झपकते ही स्लाव जाति का नायक बन गया। उसकी फ़ौज बहुत तेज़ी से चारों ओर से जमा होती गयी। बोहीमिया, मोराविया, स्टीरिया, उत्तरी आस्ट्रिया और

*हंगेरियाई नाम है सेकेशफ़ेख़ेर्वार। – सं०

**चेक नाम है ओलोमोउत्स। – सं०

इटली से एक के बाद दूसरी रेजीमेंट जेलाचिच के सैनिकों तथा राजधानी की भूतपूर्व गैरीजन से जा मिलने के लिए वियेना की ओर जा रही थी। इस तरह ६० हज़ार से ऊपर सैनिक अक्तूबर के अन्त तक ऐक्यबद्ध हो चुके थे और जल्द वे चारों ओर से शाही शहर पर घेरा डालने लगे और अन्ततः ३० अक्तूबर तक वे इतना आगे बढ़ चुके थे कि वे निर्णायक धावा बोलने की हिम्मत कर सकते थे।

इस बीच वियेना में घबराहट और परेशानी छायी रही। विजय हाथ लगते ही मध्यम वर्ग "अराजकतावादी" मेहनतकश वर्गों के प्रति फिर अपने पुराने अविश्वास के वशीभूत हो गये। मेहनतकश लोगों को याद था कि छः हफ़्ते पहले उनके साथ हथियारबन्द पूंजीपतियों ने किस तरह का बर्ताव किया था और कुल मिलाकर मध्यम वर्ग ने कैसी ढुलमुल नीति का परिचय दिया था, इसलिए वे नगर की हिफ़ाज़त का काम उन्हें नहीं सौंप सकते थे, अतः उन्होंने अपने लिए हथियारों तथा अपने फ़ौजी संगठन की मांग की। शाही निरंकुशता के विरुद्ध संघर्ष करने के उत्साह से ओतप्रोत अकादमिक लीजन दो वर्गों के अलगाव के स्वरूप को समझने अथवा स्थिति की आवश्यकताओं को पहचानने में सर्वथा असमर्थ थी। जनता के दिमाग़ में घबराहट थी, सत्तारूढ़ निकायों में भी घबराहट थी। संसद के अवशेष, जर्मन सदस्य तथा चन्द स्लाव—जिन्होंने चन्द अधिक क्रान्तिकारी पोलिश सदस्यों के अलावा ओलम्युट्ज़ में अपने मित्रों के लिए जासूसों की भूमिका अदा की—अविराम रूप से अधिवेशन में बैठे रहे। परन्तु दृढ़तापूर्वक कार्रवाई करने के बजाय उन्होंने संवैधानिक रीतियों की सीमा का उल्लंघन किये बिना शाही फ़ौज का मुक़ाबला कर सकने की सम्भावना पर बहस करने में सारा समय गंवा दिया। यह सच है कि सुरक्षा समिति ने, जो वियेना के लगभग सारे जनवादी संगठनों के प्रतिनिधियों को लेकर बनी थी, मुक़ाबला करने का फ़ैसला किया परन्तु उसपर उन बर्गरों तथा छोटे व्यवसायियों की बहुसंख्या का दबदबा था जिन्होंने उसे कभी कोई दृढ़, सक्रिय कार्रवाई नहीं करने दी। अकादमिक लीजन की समिति ने वीरत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये परन्तु वह कदापि कोई अगुवाई नहीं कर पायी। मज़दूर जो अविश्वास के पात्र थे, जो निरस्त्र थे, असंगठित थे, जो पुराने शासन की बौद्धिक दासता से अभी छुटकारा भी नहीं पा सके थे, जिनमें अपनी सामाजिक स्थिति तथा कार्यकलाप की उपयुक्त राजनीतिक लाइन का ज्ञान नहीं, बल्कि स्वतःस्फूर्त प्रवृत्ति मुश्किल से जगी थी, केवल कोलाहलपूर्ण प्रदर्शन कर ही अपनी आवाज़ उठा सकते थे, उनसे यह अपेक्षा नहीं

की जा सकती थी कि वे उस समय सामने आनेवाली कठिनाइयों का सामना कर सकेंगे। परन्तु वे हथियार हाथ लगते ही आख़िरी दम तक लड़ने के लिए उसी तरह तैयार थे, जिस तरह वे जर्मनी में क्रान्ति के समय तैयार थे।

ये थे वियेना के हालात। बाहर खड़ी थी इटली में रादेत्स्की की विजयों से हर्षोन्मत्त आस्ट्रियाई सेना, ६० या ७० हज़ार लोग, शस्त्रों से सुसज्जित तथा सुसंगठित। उनके पास भले ही अच्छे कमांडर न रहे हों, कम से कम कमांडर तो थे। अन्दर थी घबराहट, वर्ग विभाजन, अव्यवस्था। ऐसा राष्ट्रीय गार्ड जिसका एक भाग बिल्कुल न लड़ने के लिए सर्वथा कृतसंकल्प था, एक भाग डगमगा रहा था और केवल सबसे छोटा भाग लड़ने के लिए तैयार था; अन्दर था सर्वहारा जनसमुदाय, जो तादाद की दृष्टि से बलवान था परन्तु जिसके पास नेता नहीं थे, जिसे राजनीतिक शिक्षा प्राप्त नहीं थी, जो भयग्रस्त हो सकता था तथा जिसे प्रायः बिना किसी कारण रोषोन्माद के दौरे पड़ सकते थे, जो फैलायी जानेवाली हर झूठी अफ़वाह का शिकार बन सकता था, जो लड़ने के लिए उत्सुक था परन्तु निरस्त्र था कम से कम आरम्भ में; और जब उसे रणक्षेत्र में पहुंचाया गया तो वह हथियारों से अधूरे तौर पर लैस था और नाममात्र के लिए संगठित था; अन्दर थी असहाय संसद जो उस समय भी सैद्धान्तिक बारीकियों पर बहस कर रही थी जबकि ठीक ऊपर छत लगभग जल रही थी; वह संवेगहीन अथवा शक्तिहीन समिति। मार्च और मई के दिनों की तुलना में सब कुछ बदल गया था; तब प्रतिक्रान्तिकारी खेमे में केवल घबराहट ही घबराहट थी, तब एकमात्र शक्ति वह थी जिसे क्रान्ति ने तैयार किया था। अब इस प्रकार के संघर्ष के परिणाम के बारे में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी थी और यदि कोई गुंजाइश थी भी तो उसे ३० और ३१ अक्तूबर तथा १ नवम्बर की घटनाओं ने दूर कर दिया।

लन्दन, मार्च १८५२

१२

वियेना पर धावा। वियेना के साथ ग़द्दारी

विंडिशग्रेट्ज़ की जमा सेना ने जब वियेना पर अन्ततः धावा बोला, उस समय बचाव के लिए आगे लायी जा सकनेवाली शक्ति इस उद्देश्य के लिए बहुत ही कम थी। राष्ट्रीय गार्ड के केवल एक ही हिस्से को खाइयों में भेजा जा सका।

यह सच है कि अन्ततः जल्दी-जल्दी में सर्वहारा गार्ड संगठित किया गया। परन्तु आबादी की सबसे बड़ी संख्या वाले, सबसे ज़्यादा साहसी और सबसे ज़्यादा जोशीले हिस्से को इस तरह उपयोग के लिए उपलब्ध करने की चेष्टा चूंकि बहुत विलम्ब से की गयी थी, इस कारण वह सफलतापूर्वक प्रतिरोध के लिए हथियारों का उपयोग करने तथा अनुशासन के प्राथमिक सिद्धान्तों तक का पालन करने के काम का बहुत कम अभ्यस्त था। इस तरह अकादमिक लीजन, जिसमें तीन हज़ार से लेकर चार हज़ार ऐसे सैनिक थे, जिन्हें अच्छा सैनिक अभ्यास प्राप्त था, जो कुछ हद तक अनुशासनबद्ध थे, साहसी तथा जोशीले थे, फ़ौजी दृष्टि से एकमात्र ऐसी शक्ति थी जो अपना काम सफलतापूर्वक कर सकने की स्थिति में थी। परन्तु वे, मुट्ठीभर विश्वसनीय राष्ट्रीय गार्ड और सर्वहाराओं के घबराये हुए समूह की विंडिशग्रेट्ज़ के तादाद की दृष्टि से कहीं अधिक नियमित सैनिकों की तुलना में क्या थे? और इनमें जेलाचिच के दस्यु गिरोहों की, उन गिरोहों की चर्चा नहीं की गयी है जो अपनी आदतों के स्वरूप के ही कारण घर-घर, गली-गली लड़ी जानेवाली लड़ाई के लिए बहुत उपयोगी थे। और अधिक संख्या वाली तथा पूर्णतः सुसज्जित तोप सेना का, जिसका विंडिशग्रेट्ज़ ने उचित-अनुचित का ध्यान रखे बिना उपयोग किया, मुक़ाबला करने के लिए विद्रोहियों के पास ऐसी चन्द पुरानी, बेकार तोपों के अलावा और क्या था जिन्हें ले जानेवाली गाड़ियां तक ख़राब थीं, जिनकी ठीक ढंग से देखभाल नहीं हुई थी और जिन्हें चलाने के लिए दक्ष लोग भी उपलब्ध नहीं थे?

ख़तरा जितना समीप आता गया, वियेना में गड़बड़ी उतनी ही बढ़ती चली गयी। संसद आख़िरी क्षण तक राजधानी से चन्द मील दूर जमा पेर्सल की हंगेरियाई सेना को मदद के लिए बुलाने की हिम्मत नहीं बटोर सकी। समिति ने* परस्पर विरोधी प्रस्ताव पास किये जो हथियारबन्द जनसाधारण की तरह सीधी और उल्टी दिशा में बहनेवाली अफ़वाहों के साथ कभी ज़ोर पकड़ते तो कभी शिथिल हो जाते। केवल एक चीज़ पर सब सहमत थे—वह थी स्वामित्व का सम्मान। और इसका परिचय इतनी मात्रा में दिया गया जो ऐसे मौक़ों के लिए प्रायः उपहासास्पद प्रतीत होती थी। जहां तक बचाव की योजना की अन्तिम व्यवस्था का सम्बन्ध था, उसके लिए जो कुछ किया गया, वह बहुत मामूली था। उस समय वियेना को यदि कोई बचा सकता था तो वह केवल बेम था, वह उस समय

*देखें प्रस्तुत खण्ड, पृष्ठ ४२।—सं०

वियेना में प्रायः अज्ञात विदेशी के रूप में मौजूद था। जन्म से वह स्लाव था। परन्तु सर्वत्र अविश्वास के कारण उसने इस काम से हाथ धो दिया था। यदि वह डटा रहता तो ग़द्दार के रूप में उसकी बोटी-बोटी काट दी जाती। विद्रोही सैनिकों का कमांडर मेस्सेनहाउज़ेर तो छोटा अफ़सर भी नहीं लगता था, उससे ज़्यादा तो वह उपन्यास-लेखक प्रतीत होता था और सामने आये कार्य को सम्भालने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था। आठ माह के क्रान्तिकारी संघर्षों के बाद भी जन पार्टी उससे ज़्यादा फ़ौजी योग्यता रखनेवाला आदमी सामने प्रस्तुत नहीं कर सकी थी। इस तरह दंगल शुरू हो गया। यदि इस बात को ध्यान में रखा जाये कि वियेनावासियों के पास रक्षा के सर्वथा अपर्याप्त साधन थे, यदि इस बात को ध्यान में रखा जाये कि उनमें सैनिक कौशल तथा उनकी क़तारों में संगठन का सर्वथा अभाव था, तो कहा जा सकता है कि उन्होंने सर्वाधिक वीरता के साथ प्रतिरोध किया। कई स्थानों में बेम ने, जब वह कमांडर था, आदेश दिया था—"आख़िरी आदमी के रहते अपने स्थान की रक्षा करो"—और इस आदेश का अक्षरशः पालन किया गया। परन्तु ताक़त की विजय हुई। शाही तोप सेना लम्बे-चौड़े रास्तों पर, जो उपनगरों के मुख्य पथ थे, एक के बाद दूसरे बैरीकेड को रौंदती चली गयी। दूसरे दिन की लड़ाई में शाम के समय क्रोएशियाइयों ने पुराने शहर की ढाल के सामने के कई मकानों पर क़ब्ज़ा कर डाला। हंगेरियाई सेना ने कमज़ोर और अव्यवस्थित आक्रमण किया। उसे पूरी तरह परास्त कर दिया गया। उधर विरामसंधि के दौरान, जब पुराने शहर के कुछ फ़ौजी दस्तों ने घुटने टेक दिये, जब कुछ दूसरे दस्ते हिचकिचा रहे थे और घबराहट फैला रहे थे, जब अकादमिक लीजन नयी खाइयों की मोर्चाबन्दी कर रही थी, शाही सेना अन्दर प्रविष्ट हो गयी तथा उसने इस आम गड़बड़ी के बीच पुराने शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया।

इस विजय के तात्कालिक परिणाम—मार्शल ला के अन्तर्गत पाशविक कृत्य तथा लोगों को फांसियां, वियेना में बेलगाम छोड़ दिये गये स्लाव गिरोहों की अश्रुतपूर्व निर्मम तथा नीचतापूर्ण कार्रवाइयां इतने सुविदित हैं कि यहां उनमें तफ़सील से जाने की ज़रूरत नहीं है। बाद के परिणामों पर—वियेना में क्रान्ति की पराजय द्वारा जर्मन मामलों को दिया गया बिल्कुल नया मोड़—हमें आगे प्रकाश डालने का मौक़ा मिलेगा। वियेना पर धावा बोले जाने से सम्बन्धित दो मुद्दे विचार करने के लिए बाक़ी रहते हैं। उस नगर के दो साथी थे—हंगेरियाई और जर्मन लोग। सवाल उठता है कि परीक्षा की घड़ी के समय वे कहां थे?

हम देख चुके हैं कि वियेनावासी नवस्वतंत्र जनता की सारी उदारता के साथ एक ऐसे ध्येय के लिए उठ खड़े हुए थे जो अन्ततः उनका अपना ज़रूर था परन्तु जो तात्कालिक रूप में और सर्वोपरि हंगेरियाइयों का भी था। हंगरी पर आस्ट्रियाई सैनिकों का धावा सहन करने के बजाय उन्होंने उनके पहले और सबसे भयंकर प्रहार को ख़ुद झेलना ज़्यादा पसन्द किया। और जहां वे इस तरह शराफ़त से अपने साथियों की मदद के लिए आगे बढ़े, जेलाचिच के विरुद्ध सफलता प्राप्त करनेवाले हंगेरियाइयों ने उसे वियेना की ओर भगा दिया और अपनी विजय से उस शक्ति को और भी सशक्त बनाया जिसको उस नगर पर आक्रमण करना था। इन परिस्थितियों में हंगरी का स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वह वियेना की संसद का नहीं, सुरक्षा समिति का नहीं, या वियेना के किसी अन्य सरकारी निकाय का नहीं वरन् **वियेना की क्रान्ति** का अविलम्ब तथा अपने पास विद्यमान सारी शक्ति से समर्थन करता। और यदि हंगरी यह भी भूल गया कि वियेना ने हंगरी की पहली लड़ाई लड़ी थी तो उसे कम से कम अपनी सुरक्षा की ही ख़ातिर यह नहीं भूलना चाहिए था कि वियेना हंगरी की स्वतंत्रता की एकमात्र चौकी रह गया था और वियेना के पतन के बाद हंगरी के ख़िलाफ़ आगे बढ़ते शाही सैनिकों के क़दमों का कोई सामना नहीं कर सकता था। अब हम वह सब कुछ जानते हैं जो वियेना की नाक़ाबन्दी तथा उसपर धावा बोले जाने के समय अपनी निष्क्रियता के पक्ष में हंगेरियाई कह सकते थे तथा जो उन्होंने कहा – अपनी सामरिक शक्ति की असन्तोषजनक स्थिति, वियेना में संसद या किसी भी अन्य सरकारी निकाय द्वारा उन्हें बुलाने से इन्कार करना, संवैधानिक आधार बनाये रखने की आवश्यकता तथा जर्मन केन्द्रीय सत्ता के साथ उलझने से बचना। जहां तक हंगेरियाई सेना की असन्तोषजनक स्थिति का प्रश्न है, तथ्य यह है कि वियेना की क्रान्ति के बाद और जेलाचिच के आगमन के बाद के पहले दिनों में नियमित सैनिकों की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि आस्ट्रियाई नियमित सेना जमाव की स्थिति से अभी बहुत दूर थी, और तथ्य यह है कि यदि और किसी की मदद से नहीं तो कम से कम जन स्वयंसेवक दल की, जिसने श्तुल्वाइसेन्बर्ग में लड़ाई में भाग लिया था, मदद से ही जेलाचिच पर पहली विजय का साहसपूर्वक, अविचल रूप से उपयोग किया गया होता तो यह कार्य वियेना के लोगों के साथ सम्बन्ध-सम्पर्क क़ायम करने के लिए पर्याप्त होता और छः माह के लिए आस्ट्रियाई सेना का कोई भी जमाव स्थगित करने के लिए पर्याप्त होता। युद्ध में, विशेष रूप से क्रान्तिकारी युद्ध में, कोई निश्चित सफलता हासिल किये जाने तक

कार्रवाई की द्रुत गति पहला नियम होती है। और हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि पेर्सेल को **महज फ़ौजी कारणों से** तब तक नहीं रुकना चाहिए था जब तक वह वियेना के लोगों के साथ सम्पर्क क़ायम न कर लेता। इसमें कुछ जोखिम ज़रूर था परन्तु ऐसा कौन है जिसने किसी न किसी चीज़ को ख़तरे में डाले बिना कभी लड़ाई जीती हो? और क्या वियेना के लोगों ने—चार लाख की आबादी ने—उस समय कोई जोखिम नहीं उठाया था जब उन्होंने १ करोड़ २० लाख हंगेरियाइयों पर विजय प्राप्त करनेवाली फ़ौज को अपने ही ख़िलाफ़ लक्षित कर दिया था? आस्ट्रियाइयों के ऐक्यबद्ध होने तक प्रतीक्षा करने और श्वेख़ात में क्षीण प्रदर्शन—जिसका अन्त कलंकपूर्ण पराजय में हुआ और जो ऐसे अन्त का पात्र भी था—करने की जो फ़ौजी ग़लती की गयी, उसमें यक़ीनन उससे कहीं ज्यादा जोखिम मोल लिया गया जितना जेलाचिच के बिखरे हुए गिरोहों के ख़िलाफ़ कूच करने में था।

परन्तु यह कहा जाता है कि किसी सरकारी निकाय की स्वीकृति के बिना हंगेरियाइयों का इस तरह आगे बढ़ना जर्मन इलाक़े का अतिक्रमण होता, उससे फ़्रैंकफ़ुर्ट की केन्द्रीय सत्ता के साथ पेचीदगियां पैदा होतीं और सर्वोपरि उस क़ानूनी तथा संवैधानिक नीति का त्याग होता जो हंगेरियाई ध्येय की शक्ति थी। वियेना के सरकारी निकाय तो नगण्य थे! क्या यह संसद थी, क्या यह जन समितियां थीं जो हंगरी के लिए उठ खड़ी हुई थीं या स्वयं वियेना की जनता थी, अकेले वियेना की जनता ही थी जिसे हंगरी की आज़ादी की पहली लड़ाई का मुख्य भार वहन करने के लिए हथियार उठाने पड़े थे? वियेना के इस या उस सरकारी निकाय की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं थी—इन सारे निकायों को क्रान्तिकारी विकास की लहर बहुत जल्द उलट देती—नहीं, क्रान्तिकारी आन्दोलन की लहर, स्वयं जनता के आन्दोलन की अनवरत प्रगति ही मुख्य प्रश्न थी, केवल उसमें ही हंगरी को आक्रमण से बचाने की शक्ति थी। यह क्रान्तिकारी आन्दोलन आगे चलकर क्या रूप ग्रहण करता, यह तब तक हंगेरियाइयों का नहीं वरन् वियेना के लोगों का मामला था जब तक वियेना तथा साधारणतया जर्मन आस्ट्रिया समान शत्रु के विरुद्ध अपनी ऐक्यबद्धता जारी रखते। परन्तु सवाल तो यह है—किसी तरह की कृत्रिम क़ानूनी अनुमति के लिए हंगरी सरकार के इस आग्रह के पीछे क्या हम काफ़ी संदिग्ध वैधता के उस दिखावे का पहला लक्षण नहीं देखते जिसने भले ही हंगरी को न बचाया हो परन्तु जिसने आगे चलकर मध्यम वर्गीय अंग्रेज़ जनता पर बहुत अनुकूल प्रभाव डाला।

जहां तक फ़्रैंकफ़ुर्ट में जर्मनी की केन्द्रीय सत्ता के साथ सम्भावित संघर्षों का बहाना है, वह सरासर निरर्थक है। फ़्रैंकफ़ुर्ट के अधिकारी वियेना में प्रतिक्रान्ति की विजय से वस्तुतः विचलित हो गये थे। यदि वहां क्रान्ति को अपने शत्रु पराजित करने लायक़ समर्थन प्राप्त हो गया होता तो वे तब भी ऐसे ही परेशान हो गये होते। अन्ततः यह महान तर्क कि हंगरी क़ानूनी और संवैधानिक आधार नहीं छोड़ सकता था, शायद ब्रिटिश फ़्री ट्रेडर्स[44] से ख़ूब आदर प्राप्त कर सकता है, परन्तु इतिहास की दृष्टि में उसे कभी पर्याप्त नहीं माना जायेगा। मान लीजिये कि १३ मार्च तथा ६ अक्तूबर को वियेना की जनता "क़ानूनी और संवैधानिक" साधनों पर अड़ी रहती तो उस "क़ानूनी और संवैधानिक" आन्दोलन तथा उन तमाम गौरवमयी लड़ाइयों का क्या होता जो हंगरी को पहली बार सभ्य संसार की नज़र के सामने लायीं? उनके लिए ठीक वही क़ानूनी और संवैधानिक आधार, जिसके बारे में यह दावा किया जाता है कि उसके बल पर हंगेरियाइयों ने १८४८ और १८४९ में प्रवेश किया था, वियेना की जनता द्वारा १३ मार्च को अत्यन्त गैरक़ानूनी और असंवैधानिक विद्रोह द्वारा हासिल किया गया था। यहां हमारा उद्देश्य हंगरी के क्रान्तिकारी इतिहास पर विचार करना नहीं है, परन्तु हमारे लिए इतना कहना उपयुक्त होगा कि प्रतिरोध के मात्र क़ानूनी साधनों का ऐसे शत्रु के ख़िलाफ़ उपयोग सरासर बेकार है जो ऐसी नैतिकपरायणता का मख़ौल उड़ाता हो। यहां हम इतना और कह दें कि यदि क़ानूनियत का यह चिरन्तन दिखावा, जिसे ग्योरगे ने फ़ायदा उठाया था और सरकार के ख़िलाफ़ उपयोग किया था, न किया गया होता तो ग्योरगे की सेना की अपने जनरल के प्रति वफ़ादारी तथा विलागोश में हुई शर्मनाक तबाही असम्भव होती।[45] और अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करने के लिए हंगेरियाइयों ने जब अन्ततः अक्तूबर १८४८ के उत्तरार्द्ध में लेइता पार किया तो यह कार्रवाई क्या किसी भी अन्य तात्कालिक और प्रबल आक्रमण जितनी ही ग़ैरक़ानूनी चीज़ नहीं थी?

यह सुविदित है कि हंगरी के प्रति हम अपने मन में कोई अमैत्रीपूर्ण भावनाएं नहीं पोसे हुए हैं। हमने संघर्ष के दौरान उसका साथ दिया; हमें यह कहने का हक़ है कि हमारे अख़बार *«Neue Rheinische Zeitung»*[46] ने माग्यार तथा स्लाव लोगों के संघर्ष के स्वरूप पर प्रकाश डालकर, तथा हंगेरियाई युद्ध पर एक पूरी लेखमाला में टिप्पणी कर हंगेरियाई ध्येय को जर्मनी में बाक़ी सब की तुलना में अधिक लोकप्रिय बनाया। इन लेखों को इस बात का सम्मान प्राप्त हुआ कि इस विषय पर आगे लिखी जानेवाली लगभग हर पुस्तक में–उन पुस्तकों

समेत जिन्हें स्वयं हंगेरियाइयों तथा "प्रत्यक्षदर्शियों" ने लिखा – उनकी सामग्री चुरायी गयी थी। हम यूरोपीय महाद्वीप में किसी भी भावी उथल-पुथल में हंगरी को अब भी जर्मनी का आवश्यक तथा स्वाभाविक साथी मानते हैं। परन्तु हम अपने पड़ौसियों के बारे में बोलने के अधिकार के लिए अपने देशवासियों को काफ़ी आड़े हाथों ले चुके हैं; फिर हमें यहां तथ्यों को ऐतिहासिक निष्पक्षता के साथ दर्ज करना है; इसलिए हमें कहना पड़ेगा कि इस विशेष मामले में वियेना की जनता की उदारतापूर्ण वीरता हंगेरियाई सरकार की फूंक-फूंककर पांव रखने की कार्रवाई से कहीं अधिक उदात्त ही नहीं वरन् कहीं अधिक दूरदर्शितापूर्ण भी थी। फिर, हमें, जर्मन होने के नाते यह कहने की भी इजाज़त है कि हंगेरियाई अभियान की सारी आडम्बरपूर्ण विजयों और शानदार लड़ाइयों का हम वियेना की जनता के, अपने देशवासियों के स्वतःस्फूर्त, अकेले किये गये विद्रोह और वीरतापूर्ण प्रतिरोध से मुक़ाबला नहीं करेंगे जिसने हंगरी को वह सेना संगठित करने का मौक़ा दिया जो इतने बड़े कारनामे कर पायी।

वियेना के दूसरे साथी थे जर्मन लोग। परन्तु वे सर्वत्र उसी संघर्ष में जुटे हुए थे जिस तरह के संघर्ष में वियेना के लोग जुटे हुए थे। फ़्रैंकफ़ुर्ट, बाडेन, कोलोन अभी-अभी परास्त और निरस्त किये जा चुके थे। बर्लिन और ब्रेस्लाऊ* में जनता और फ़ौज एक दूसरे के ख़िलाफ़ खड़ी थीं और रोज़ मुठभेड़ शुरू होने की उम्मीद कर रही थीं। कार्रवाई के प्रत्येक स्थानीय केन्द्र में यही स्थिति थी। हर जगह ऐसे सवाल अधर में लटके हुए थे जिन्हें सिर्फ़ हथियारों के बल पर हल किया जा सकता था। और अब पहली बार जर्मनी के पुराने अंगभंग और विकेन्द्रीकरण के विनाशकारी प्रभावों को बुरी तरह अनुभव किया जाने लगा था। हर राज्य, हर प्रान्त, हर शहर में भिन्न-भिन्न प्रश्न मूलतया एक जैसे ही थे; परन्तु उन्हें हर जगह अलग-अलग शक्लों में और बहानों के साथ सामने लाया गया; उन्होंने हर जगह पृथक-पृथक मात्रा में परिपक्वता ग्रहण कर ली थी। इस तरह जहां जगह-जगह वियेना की घटनाओं का निर्णायक महत्व अनुभव किया गया, वहां अब भी कहीं इस आशा से महत्वपूर्ण आघात नहीं किया जा सकता था कि उससे वियेना के लोगों को सहायता पहुंचेगी या उनके पक्ष में ध्यान बंटाने के लिए अन्यत्र कार्रवाई की जा सकेगी। उन्हें मदद देने के लिए फ़्रैंकफ़ुर्ट की संसद तथा केन्द्रीय सत्ता के अलावा और कुछ नहीं बचा था; उनसे चारों ओर से अपील की गयी पर उन्होंने किया क्या?

---

*पोलिश नाम – व्रोतस्लाव। – सं०

फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद तथा उस द्वारा पुरानी जर्मन संसद के साथ अनुचित सम्बन्धों से प्राप्त नाजायज़ औलाद, तथाकथित केन्द्रीय सत्ता ने अपनी पूर्ण नगण्यता प्रदर्शित करने के वास्ते वियेना के आन्दोलन से लाभ उठाया। जैसा कि हम देख चुके हैं, यह घृणित सभा अपने कौमार्य को बहुत पहले ही तिलांजलि दे चुकी थी। वह अभी जवान थी, फिर भी उसके बाल सफ़ेद होने लगे थे और वह वाचालता की सारी तिकड़मों और मिथ्या कूटनीतिक वेश्यावृत्ति का अनुभव प्राप्त कर चुकी थी। जर्मन पुनरुत्थान शक्ति तथा एकता के सपनों तथा भ्रमों में से, जो शुरू-शुरू में उस पर छाये हुए थे, अब सिवाय उस ट्यूटोनी आडम्बरपूर्ण शब्दजाल के अलावा, जिसकी हर मौक़े पर पुनरावृत्ति की जाती थी, अपने महत्व में तथा सहज विश्वासी जनता में हर सदस्य के अडिग विश्वास के अलावा कुछ बाक़ी नहीं रह गया था। शुरू-शुरू के भोलेपन को तिलांजलि दे दी गयी थी; जर्मन लोगों के प्रतिनिधि व्यावहारिक बन गये थे, कहने का मतलब है, वे जितना कम काम करेंगे तथा जितनी ज़्यादा बकबक करेंगे, जर्मनी के भाग्य के बारे में निर्णय देनेवालों के रूप में उनकी स्थिति उतनी ही सुरक्षित रहेगी। ऐसा नहीं था कि वे अपनी कार्रवाइयों को बेकार मानते थे। बात इसके बिल्कुल विपरीत थी। परन्तु उन्होंने यह पता लगा लिया था कि वस्तुतः बड़े-बड़े सवालों को, जो उनके लिए वर्जित क्षेत्र हैं, न छूना ही अच्छा है। वहां वे पतनोन्मुख साम्राज्य के बैज़न्तियाई पंडितों की तरह दम्भ और ज़ोरशोर के साथ – अन्ततः वे अपनी नियति के सर्वथा उपयुक्त पात्र थे – सैद्धान्तिक जड़सूत्रों पर, जो सभ्य संसार के हर भाग में बहुत पहले तय हो चुके थे, अथवा अतिसूक्ष्म व्यावहारिक प्रश्नों पर बहस करते रहे जिनसे कभी कोई व्यावहारिक फल हाथ नहीं लगा। इस प्रकार यह सभा चूंकि सदस्यों के पारस्परिक प्रशिक्षण के लिए एक तरह का लंकास्ट्रियन स्कूल[47] थी और इस कारण चूकि उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण चीज़ थी, उनके मन में यह धारणा जमा दी गयी कि जर्मन लोगों को उससे जितनी अपेक्षा करने का अधिकार है, वह उससे अधिक काम कर रही है, और उन्होंने हर उस व्यक्ति को देशद्रोही माना जिसने उनसे किसी परिणाम पर पहुंचने की मांग करने की धृष्टता की।

जब वियेना का विद्रोह शुरू हो गया तो उसके बारे में दर्जनों सवाल किये गये, बहसें हुईं, प्रस्ताव और संशोधन पेश किये गये। ज़ाहिर है, उनका कोई नतीजा नहीं निकला। केन्द्रीय सत्ता को हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने दो कमिश्नरों – श्री वेलकर, भूतपूर्व उदारपंथी तथा श्री मोस्ले – को वियेना भेजा। जर्मन एकता के इन

दो शूरवीरों के वीरतापूर्ण करिश्मों तथा उनकी अद्‌भुत साहसिक यात्राओं की तुलना में डान क्विग्ज़ोट और सांचो पांसा की यात्राएं किसी ओडिसी प्रभृति रचना की सामग्री प्रस्तुत करती हैं। वे वियेना जाने का साहस नहीं कर पाये। विंडिशग्रेट्ज़ ने उन्हें घुड़कियां दीं, मूर्ख सम्राट* ने उन्हें हैरानी भरी दृष्टि से देखा और मंत्री स्टेडियों ने उन्हें धृष्टतापूर्वक चकमा दिया। उनके सन्देश तथा रिपोर्टें फ़्रैंकफ़ुर्ट की कार्रवाइयों के शायद एकमात्र ऐसे अंग हैं जिनका जर्मन साहित्य में स्थान बना रहेगा; वे उत्तम व्यंग्यात्मक उपन्यास हैं, बिल्कुल बनी-बनायी सामग्री हैं, फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा तथा उसकी सरकार के लिए कलंक का स्थायी स्मारक हैं।

राष्ट्रीय सभा के वामपक्ष ने भी दो कमिश्नर – श्री फ़्रोबेल और श्री राबर्ट ब्लूम – वियेना भेजे ताकि वहां अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की जा सके। परन्तु जब ख़तरा पास आ गया तो ब्लूम ने सही हिसाब लगाया कि यहीं जर्मन क्रान्ति की महान लड़ाई लड़ी जायेगी और उसने मसले पर बिना किसी संकोच के अपना सिर दांव पर लगाने का फ़ैसला कर डाला। इसके विपरीत फ़्रोबेल की राय यह थी कि फ़्रैंकफ़ुर्ट में अपने पद के महत्वपूर्ण कर्त्तव्यों की ख़ातिर अपने को सुरक्षित रखना उसका कर्त्तव्य है। फ़्रैंकफ़ुर्ट की सभा के सबसे अच्छे वक्ताओं में ब्लूम की गिनती होती थी। वह यक़ीनन सबसे अधिक लोकप्रिय था। उसकी वक्तृत्व कला किसी भी अनुभवी संसदीय सभा की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो पाती – उसे किसी जर्मन धर्मोपदेशकपंथ जैसी खोखली वक्तृत्व कला बहुत पसन्द थी और उसके तर्कों में दार्शनिक कुशाग्रता का और व्यावहारिक पक्ष से परिचय का अभाव था। राजनीति में वह "नरम जनवाद" से सम्बन्धित था, जो एक तरह की अनिश्चित सी प्रवृत्ति थी और उसके सिद्धान्तों में निश्चितता का ठीक यही अभाव उससे लगाव का कारण था। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी राबर्ट ब्लूम स्वभाव से ही सरासर प्लेबियन था हालांकि कुछ शिष्ट अवश्य था। निर्णायक क्षणों में उसकी प्लेबियन प्रवृत्ति तथा प्लेबियन उत्साह उसके अनिश्चित और इस कारण ढुलमुल राजनीतिक धारणाओं तथा मान्यताओं पर हावी हो जाते थे। ऐसे क्षणों में वह अपनी आम क्षमताओं से कहीं ऊपर उठ जाता था।

इस तरह उसने वियेना में तुरंत देख लिया कि उसके देश की क़िस्मत का फ़ैसला फ़्रैंकफ़ुर्ट में मिथ्या शालीनता भरी बहसों में नहीं होगा वरन् उसका फ़ैसला

---

* फ़र्दीनांद प्रथम। – सं०

यहीं होगा। उसने तुरन्त निश्चय कर डाला कि उसे क्या करना होगा, उसने पीछे हटने के सारे विचार को तिलांजलि दे दी, क्रान्तिकारी सेना की कमान सम्भाल ली और असाधारण शान्तचित्त होकर तथा स्थिर भाव से काम करने लगा। वही शहर पर क़ब्ज़े को काफ़ी देर तक रोके रहा और उसी ने डेन्यूब पर टाबोर पुल को जलाकर शहर की आक्रमण से रक्षा की थी। यह सभी जानते हैं कि शहर पर धावा होने के बाद उसे पकड़ा गया, उस पर फ़ौजी अदालत में मुक़दमा चलाया गया और गोली से उड़ा दिया गया। उसने वीर गति प्राप्त की। और फ्रैंकफ़ुर्ट सभा ने, जो भयस्तब्ध थी, रक्तपातपूर्ण अपमान को प्रत्यक्षतया सहज भाव से गले से नीचे उतार लिया। एक प्रस्ताव पास किया गया जो अपनी भाषा की मृदुता तथा कूटनीतिक संयम के कारण आस्ट्रिया के प्रति शाप कम, क़त्ल किये गये शहीद का अपमान अधिक था। परन्तु यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि यह घृणित सभा अपने एक सदस्य, विशेष रूप से वामपंथ के नेता की हत्या पर रोष प्रकट करती।

लन्दन, मार्च १८५२

१३

प्रशियाई संविधान सभा। राष्ट्रीय सभा

१ नवम्बर को वियेना का पतन हो गया तथा उसी माह ९ तारीख़ को बर्लिन में संविधान सभा भंग किये जाने की कार्रवाई ने यह दिखा दिया कि इस घटना ने पूरे जर्मनी में प्रतिक्रान्तिकारी पार्टी के उत्साह और शक्ति को कितना बढ़ा दिया।

प्रशा में १८४८ की गर्मियों की घटनाओं का वर्णन करने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। संविधान सभा, या यूं कहिए कि "संविधान के बारे में दरबार के साथ सहमत होने के लिए निर्वाचित की गयी सभा" और मध्यम वर्गीय प्रतिनिधियों की उसकी बहुसंख्या जनता के अधिक जोशीले तत्वों के डर से दरबार की साज़िशों का साथ देकर जनता की नज़र में सारा सम्मान खो चुकी थी। उन्होंने सामन्तवाद के घिनौने विशेषाधिकारों की पुष्टि की, बल्कि कहना चाहिए, उन्होंने उन विशेषाधिकारों की पुनस्स्थापना की। इस तरह उन्होंने कृषक जनता की

स्वतंत्रता तथा हित के साथ ग़द्दारी की। वे न तो संविधान तैयार कर सके और न आम क़ानूनों में किसी तरह का संशोधन कर पाये। उन्होंने अपने को प्रायः विशिष्ट रूप से सूक्ष्म सैद्धान्तिक भेदों, मात्र औपचारिकताओं और संवैधानिक शिष्टाचार के प्रश्नों में व्यस्त रखा। संविधान सभा वस्तुतः अपने सदस्यों के लिए संसदीय savoir vivre* का विद्यालय अधिक और ऐसा निकाय कम थी जिसमें लोग कोई दिलचस्पी ले सकते। इसके अलावा बहुमत बहुत सुन्दर ढंग से सन्तुलित किये जाते थे और वे प्रायः सदा डगमगाते उन **"मध्यमार्गियों"** से तय किये जाते थे, जिनके दायें-बायें झूलते रहने से पहले काम्पहाउज़ेन के मंत्रिमण्डल और फिर आवेर्सवाल्ड – हन्सेमान के मंत्रिमण्डल का तख़्ता उलट गया। परन्तु सभी अन्य जगहों की भांति यहां भी उदारपंथियों ने जहां मौक़ा अपने हाथ से निकलने दिया, वहां दरबार ने अभिजातों, देहाती आबादी के सबसे अधिक पिछड़े हुए हिस्सों और साथ ही सेना तथा नौकरशाही के ज़रिये अपनी शक्ति पुनर्गठित की। हन्सेमान के मंत्रिमण्डल के पतन के बाद नौकरशाहों, फ़ौजी अफ़सरों, कट्टर प्रतिक्रियावादियों का मंत्रिमण्डल स्थापित हुआ जिसने प्रत्यक्षतः संसद की मांगों के आगे सिर झुका दिया। परन्तु "महत्व कार्रवाइयों का होता है, मनुष्यों का नहीं" के सुविधाजनक सिद्धान्त के अनुसार काम करते हुए सभा को वस्तुतः छलकर उससे इस मंत्रिमण्डल का अभिनन्दन कराया गया; उसने प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियों के जमाव तथा संगठन की ओर ध्यान नहीं दिया जिसे मंत्रिमण्डल काफ़ी खुले ढंग से कर रहा था। अन्ततः वियेना के पतन द्वारा संकेत दे दिये जाने पर सम्राट** ने अपने मंत्री बर्ख़ास्त कर दिये तथा वर्तमान मंत्री-राष्ट्रपति श्री मानटेइफ़ेल के नेतृत्व मे "कर्मठ लोगों" को नियुक्त कर दिया। तब स्वप्न में डूबी सभा ने एकाएक जगकर ख़तरा देखा; उसने मंत्रिमण्डल के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पास किया; इसका एक आज्ञप्ति के ज़रिए तुरन्त उत्तर दे दिया गया जिसने उसे बर्लिन से, जहां वह जनसाधारण के समर्थन का भरोसा कर सकती थी, हटाकर ब्रनदनबर्ग भेज दिया गया; वह एक छोटा-सा प्रान्तीय नगर था जो पूरी तरह सरकार पर निर्भर करता था। परन्तु सभा ने घोषणा की कि उसकी मर्ज़ी के बिना उसे न तो स्थगित किया जा सकता है, न हटाया जा सकता है और न भंग किया जा सकता है। इस बीच जनरल व्रांगेल कोई

*सांसारिक ज्ञान। – सं०

**फ़्रेडरिक-विल्हेल्म चतुर्थ। – सं०

चालीस हज़ार सैनिकों को लेकर बर्लिन में प्रविष्ट हो गया। म्युनिसिपल मैजिस्ट्रेटों तथा राष्ट्रीय गार्ड के अफ़सरों की बैठक में यह तय किया गया कि कोई प्रतिरोध नहीं किया जायेगा। संविधान सभा और उसके संघटकों – उदारपंथी पूंजी-पतियों – ने संयुक्त प्रतिक्रियावादी पार्टी को हर महत्वपूर्ण पद ग्रहण करने दिया था और उन्हें प्रतिरक्षा का लगभग हर साधन अपने हाथ से छीनने दिया था, इसके बाद अब उसने "निष्क्रिय और क़ानूनी प्रतिरोध" का शानदार प्रहसनात्मक नाटक खेलना आरम्भ किया; वे चाहते थे कि यह नाटक हाम्पडेन की मिसाल और स्वातंत्र्य युद्ध[48] में अमरीकियों के पहले प्रयत्नों की शानदार अनुकृति हो। बर्लिन की घेराबन्दी की स्थिति घोषित कर दी गयी और बर्लिन शान्त रहा; 'राष्ट्रीय गार्ड को सरकार ने भंग कर दिया और उसने समय की अधिकतम पाबन्दी के साथ हथियार सौंप दिये। संविधान सभा का एक पखवाड़े तक जगह-जगह, जहां कहीं उसकी सभा होती रही, पीछा किया गया, हर जगह सेना ने उसे विसर्जित कर दिया, और संविधान सभा के सदस्य नागरिकों से शान्त रहने की याचना करते रहे। सरकार ने अन्ततः जब संविधान सभा भंग करने की घोषणा कर दी तो सभा ने एक प्रस्ताव पास कर ऐलान किया कि टैक्सों का लगाया जाना ग़ैरक़ानूनी है। फिर उसके सदस्य टैक्स न देने का मुहिम संगठित करने के लिए देश के भिन्न-भिन्न भागों में पहुंच गये। परन्तु उन्होंने देखा कि अपने साधनों के चयन के मामले में उनसे भयंकर ग़लती हुई है। चन्द परेशानी भरे सप्ताह बीतने, फिर सरकार द्वारा विपक्ष के विरुद्ध कठोर पग उठाये जाने के बाद हरेक ने एक ऐसी मृत सभा को, जिसके पास अपनी रक्षा करने का साहस तक नहीं था, ख़ुश करने की ख़ातिर टैक्स देने से इन्कार करने का विचार त्याग कर दिया।

नवम्बर १८४८ के आरम्भ में सशस्त्र प्रतिरोध करने का वक़्त हाथ से निकल चुका था अथवा क्या सेना का एक हिस्सा गम्भीर प्रतिरोध का सामना करने पर संविधान सभा की ओर आ जाता, और इस तरह मामला उसके पक्ष में तय कर देता – यह एक ऐसा सवाल है जो शायद कभी हल नहीं हो सकेगा। परन्तु युद्ध की तरह क्रान्ति में भी हमेशा यह आवश्यक होता है कि दुश्मन का साहस-पूर्वक सामना किया जाये और जो प्रहार करता है, वही सुविधाजनक स्थिति में होता है; युद्ध की तरह क्रान्ति में भी निर्णायक घड़ी में सब कुछ दांव पर लगाना सबसे आवश्यक है, चाहे कैसी ही परिस्थिति क्यों न हो। इतिहास में एक भी ऐसी क्रान्ति नहीं हुई है जो इन स्वयंसिद्ध सूत्रों की सत्यता सिद्ध न

करती हो। जहां तक प्रशियाई क्रान्ति का प्रश्न है, नवम्बर १८४८ में वह निर्णायक घड़ी आ गयी थी; संविधान सभा ने, जो आधिकारिक रूप में पूरे क्रान्तिकारी आन्दोलन के शीर्ष भाग में थी, शत्रु का डटकर मुक़ाबला ही नहीं किया बल्कि शत्रु के हर बार आगे बढ़ने पर वह पीछे भी हट गयी; आक्रमण करने की तो बात ही क्या, उसने अपनी रक्षा को भी प्राथमिकता नहीं दी। और जब निर्णायक घड़ी आ पहुंची, जब ४० हज़ार लोगों को अपने साथ लेकर व्रांगेल ने बर्लिन के दरवाज़े खटखटाये तो जहां उसे और उसके अफ़सरों को पूरी उम्मीद थी कि हर सड़क बैरीकेडों से सटी पड़ी होगी और हर खिड़की से गोलियां दाग़ने का काम लिया जा रहा होगा, वहां उसने दरवाज़े पूरी तरह खुले पाये और सड़कों पर रुकावट के नाम पर केवल वे शान्तिपूर्ण बर्लिनवासी बर्गर थे जिन्होंने अपने हाथ-पांव बांधकर अपने को हैरान सैनिकों के हवाले कर दिया और जो इस तरह उसके साथ किये गये मज़ाक़ का आनन्द ले रहे थे। यह सच है कि यदि संविधान सभा और जनता ने मुक़ाबला किया होता तब भी वे पराजित हो जातीं; बर्लिन पर बमबारी होती, सैकड़ों लोग मारे गये होते और राजतंत्रवादी पार्टी की अन्तिम विजय न रोकी जा सकती थी। परन्तु यह तो तुरन्त हथियार डाल देने का कोई कारण नहीं था। डटकर लड़ने के बाद होनेवाली पराजय का सहज ढंग से प्राप्त विजय की ही तरह क्रान्तिकारी महत्व होता है। जून १८४८ में पेरिस की तथा अक्तूबर में वियेना की पराजयों ने इन दो नगरों के जनमत का क्रान्तिकरण करने के लिए फ़रवरी तथा मार्च की विजयों से कहीं अधिक काम किया। संविधान सभा तथा बर्लिन की जनता की भी शायद वही गति होती जो इन दो उपरोक्त नगरों की हुई थी। परन्तु उनका पतन गौरवमय ढंग से होता और वे जीवित लोगों के दिमाग़ में प्रतिशोध लेने की इच्छा छोड़ जातीं जो क्रान्तिकारी काल में उत्साहपूर्ण तथा आवेगपूर्ण कार्रवाई के लिए सबसे बड़ी प्रेरणादायी वस्तु होती है। यह सच है कि हर संघर्ष में जो कोई मैदान में उतरता है, वह पराजय का ख़तरा मोल लेता है; परन्तु क्या यह इस बात को स्वीकार कर लेने का कोई कारण है कि वह परास्त हो गया है और वह तलवार म्यान से खींचे बिना अपनी गर्दन जुए के नीचे रखने के लिए आगे बढ़ा दे?

क्रान्ति में जो कोई निर्णायक स्थिति में होते हुए भी दुश्मन को आक्रमण में अपनी आज़माइश करने के लिए विवश करने के बजाय उस निर्णायक स्थिति को दूसरों के हवाले कर देता है, उसके साथ हमेशा वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जो किसी ग़द्दार के साथ किया जाता है।

प्रशा के सम्राट की उसी आज्ञप्ति ने, जिसने संविधान सभा भंग की थी, एक नया संविधान भी उद्घोषित किया जो उस सभा की एक समिति द्वारा तैयार किये गये मसौदे पर आधारित था। परन्तु इस संविधान ने कुछ मुद्दों के मामले में राजमुकुट के अधिकारों का विस्तार किया और दूसरे मुद्दों के मामले में संसद के अधिकारों को सन्देहास्पद बना दिया। इस संविधान ने दो सदनों की स्थापना की। उसकी पुष्टि करने तथा उसे संशोधित करने के उद्देश्य से इन सदनों की जल्द बैठक होनी थी।

यह पूछने की शायद ही ज़रूरत हो कि प्रशियाई संविधानवादियों के "क़ानूनी और शान्तिपूर्ण" संघर्ष के समय जर्मन राष्ट्रीय सभा कहां थी। हमेशा की तरह वह फ़्रैंकफ़ुर्ट में थी, प्रशियाई सरकार की कार्रवाइयों के विरुद्ध बहुत ही विनयपूर्ण प्रस्ताव पास कर रही थी तथा "पाशविक शक्ति के ख़िलाफ़ पूरी जनता के निष्क्रिय, क़ानूनी और सर्वसम्मत प्रतिरोध के भव्य तमाशे" की प्रशंसा कर रही थी। केन्द्रीय सरकार ने मंत्रिमण्डल और सभा के बीच मध्यस्थता करने के लिए कमिश्नरों को बर्लिन भेजा। परन्तु उनका भी वही हाल हुआ जो उनके पूर्ववर्तियों का ओल्मुट्ज़ में हुआ था। उन्हें विनम्रतापूर्वक दरवाज़े से बाहर जाने का रास्ता दिखा दिया गया। राष्ट्रीय सभा के वामपक्ष ने अर्थात् तथाकथित आमूलवादी पार्टी ने भी अपने कमिश्नर भेजे। परन्तु बर्लिन सभा की असहाय स्थिति के बारे में अपने को आश्वस्त कर चुकने तथा स्वयं अपनी असहाय स्थिति स्वीकार कर चुकने के बाद वे काम की प्रगति की सूचना देने और बर्लिन की आबादी के प्रशंसनीय शान्तिपूर्ण आचरण की गवाही देने के लिए फ़्रैंकफ़ुर्ट लौट आये। इतना ही नहीं, केन्द्रीय सरकार के एक कमिश्नर श्री बासेरमान ने जब सूचित किया कि प्रशियाई मंत्रियों द्वारा हाल में उठाये गये पग बिना किसी आधार के नहीं हैं क्योंकि बर्लिन की सड़कों पर इधर क्रूरतापूर्ण शक्ल-सूरत वाले ऐसे बहुत-से लोग चक्कर काटते हुए देखे गये हैं जो अराजकतावादी आन्दोलनों से पहले हमेशा प्रकट हुआ करते हैं (और जो तब से हमेशा "बासेरमानियाई लोग" के नाम से पुकारे जाते रहे हैं) तो वामपक्ष के ये सुयोग्य सदस्य और क्रान्तिकारी हित के उत्साही प्रतिनिधि वस्तुतः यह क़सम खाने और गवाही देने के लिए उठ खड़े हुए कि बात ऐसी नहीं थी! इस तरह दो माह के अन्दर-अन्दर फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा की शक्तिहीनता प्रत्यक्षतः प्रमाणित हो गयी। इससे ज़्यादा और कोई ज्वलन्त प्रमाण नहीं हो सकता था कि यह निकाय उसके कार्यभार के लिए पूर्णतया अपर्याप्त था; इतना ही नहीं, उसे तो इस बात का लेशमात्र ज्ञान तक न था कि उसका

कार्यभार वस्तुतः क्या है। अकेला यही तथ्य कि क्रान्ति की क़िस्मत का फ़ैसला वियेना तथा बर्लिन में कर दिया गया था, कि इन दोनों राजधानियों में फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा के अस्तित्व को ज़रा भी ध्यान में रखे बिना सबसे महत्वपूर्ण तथा मौलिक प्रश्न तय कर दिये गये थे, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि यह चर्चित निकाय मात्र वाद-विवाद क्लब था, आसानी से धोखे में आनेवाले ऐसे भोले-भाले लोगों की मंडली था जिन्होंने सरकारों के हाथों में अपने को संसदीय कठपुतली बनने दिया, जिन्हें छोटे राज्यों तथा छोटे शहरों के दुकानदारों और छोटे व्यवसायियों को मनोरंजन के लिए तब तक दिखाया जाता रहा जब तक सरकारों ने इन लोगों का ध्यान बंटाना आवश्यक समझा। इस चीज़ को कितने समय तक आवश्यक समझा गया, यह हम जल्द देखेंगे। परन्तु यह तथ्य विचारणीय है कि इस सभा में सारे "प्रमुख" व्यक्तियों में एक भी ऐसा नहीं था जिसे इस बात का बोध होता, कि उनसे क्या भूमिका अदा करायी जा रही थी और आज तक फ़्रैंकफ़ुर्ट क्लब के भूतपूर्व सदस्यों के पास ऐतिहासिक अवबोध की ऐसी ज्ञानेन्द्रियां निरन्तर सुरक्षित बनी हुई हैं जो उनके लिए लाक्षणिक हैं।

लन्दन, मार्च १८५२

१४

व्यवस्था की पुनःस्थापना। संसद तथा सदन

आस्ट्रियाई तथा प्रशियाई सरकारों ने १८४६ के प्रथम माहों का उपयोग अक्तूबर तथा नवम्बर १८४८ में हासिल की गयी कामयाबियों के फल बटोरने में बिताये। वियेना पर क़ब्ज़ा हो चुकने के बाद से आस्ट्रियाई संसद ने क्रेम्सियर* नामक छोटे-से मोरावियाई शहर में अपने नाममात्र के अस्तित्व को किसी तरह क़ायम रखा। यहीं स्लाव सदस्यों को, जो अपने निर्वाचकों के साथ धराशायी आस्ट्रियाई सरकार को फिर से खड़ा करने के मुख्य साधन बने थे, यूरोपीय क्रान्ति के साथ ग़द्दारी करने के लिए मौलिक ढंग का दंड दिया

* चेक नाम – क्रोमेरजिज। – सं०

गया। सरकार ने अपनी शक्ति फिर से हासिल करते ही संसद तथा उसके स्लाव बहुमत के साथ घोर तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया और जब शाही शस्त्रास्त्रों की प्रथम सफलताओं ने हंगेरियाई युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाने का पूर्वसंकेत दे दिया तो ४ मार्च को संसद भंग कर दी गयी और सदस्यों को फ़ौजी ताक़त के ज़रिए विसर्जित कर दिया गया। स्लाव लोग अन्ततः समझ गये कि उन्हें छला गया है। तब वे चिल्लाये—चलो, फ़्रैंकफ़ुर्ट चलें और वहां वह विरोध जारी रखें जो हम यहां नहीं कर सकते! पर तब तक बहुत विलम्ब हो चुका था। अकेला यही तथ्य कि उनके पास या तो ख़ामोश रहने अथवा शक्तिहीन फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा के साथ जा मिलने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था, उनकी असहाय अवस्था सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था।

इस प्रकार अपने लिए फिर से स्वतंत्र जातीय अस्तित्व प्राप्त करने के वास्ते जर्मनी के स्लाव लोगों की कोशिशें फ़िलहाल और शायद हमेशा के लिए ख़त्म हो गयीं। नाना जातियों के बिखरे पड़े अवशेषों ने, जिनकी जातीयता तथा राजनीतिक जीवन-शक्ति बहुत पहले मिट चुकी थी और जो फलस्वरूप इंगलैंड में वेल्शों, स्पेन में बास्क्वेइयाइयों, फ़्रांस में बास-ब्रेटनों और अभी हाल तक उत्तरी अमरीका के उन भागों में, जिनपर इधर आंग्ल-अमरीकी नसल ने क़ब्ज़ा कर डाला था, स्पेनी तथा फ़्रांसीसी क्रेओलियाइयों की तरह लगभग एक हज़ार वर्ष तक अधिक शक्तिशाली राष्ट्र के, अपने विजेता के पीछे चलने के लिए मजबूर हुए थे, इन मरणोन्मुख जातियों—बोहेमियाइयों, कारिंथियाइयों, डाल्मेशियाइयों आदि ने १८४८ में सर्वत्र हुई गड़बड़ी से लाभ उठाने का प्रयत्न किया ताकि सन् ८०० के अपने status quo* को फिर से क़ायम कर सकें। हज़ार वर्षों के इतिहास से उन्हें यह पता लगना चाहिए था कि इस प्रकार पीछे हटना असम्भव था; कि एल्ब और ज़ाले के पूर्व के सारे इलाक़े पर यदि कभी सजातीय स्लाव लोगों का क़ब्ज़ा था तो इस तथ्य से केवल ऐतिहासिक प्रवृत्ति और साथ ही अपने प्राचीन पूर्वी पड़ोसियों को दबाने, अपने में सभा लेने और आत्मसात करने की जर्मन जाति की शारीरिक तथा बौद्धिक शक्ति ही सिद्ध होती है; कि दूसरों को अपने में सभा लेने की जर्मनों की यह प्रवृत्ति हमेशा उन सबसे शक्तिशाली साधनों में से एक रही और अब भी है जिनके माध्यम से पश्चिमी यूरोप की सभ्यता इस महाद्वीप के पूर्व में फैलायी गयी; कि यह केवल तभी

रुक सकती थी जब जर्मनीकरण की प्रक्रिया हंगेरियाइयों और कुछ हद तक पोलों जैसी उन बड़ी, सुगठित, अविश्रृंखलित जातियों की सीमाओं तक पहुंचती जिनमें स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन यापन की क्षमता थी; कि इन मरणोन्मुख जातियों की स्वाभाविक तथा अवश्यम्भावी नियति यही थी कि वे अपने से अधिक शक्तिशाली पड़ोसियों द्वारा किये जानेवाले विघटन तथा विलयन की इस अग्रगति को पूरा होने दें। यक़ीनन, सर्वस्लाववादी स्वप्नद्रष्टाओं की, जो बोहेमियाई तथा दक्षिणी स्लाव जनता के एक भाग को उद्वेलित करने में सफल हो गये थे, जातीय आकांक्षाओं के लिए यह कोई बहुत उज्ज्वल भविष्य नहीं है। परन्तु क्या वे यह उम्मीद कर सकते हैं कि इतिहास लोगों के उन चन्द क्षयरोगग्रस्त दलों को ख़ुश करने की ख़ातिर हज़ारों वर्ष पीछे हट जायेगा जो जिस किसी इलाक़े में बसे हुए हैं, वहां वे बिखरे पड़े हैं तथा जर्मनों से घिरे हुए हैं, जिनके पास प्राय: अज्ञात काल से सभ्यता की आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से जर्मन के अलावा और कोई भाषा नहीं रही है और जिनके पास जातीय अस्तित्व के लिए आधारभूत शर्तों का ही–संख्या और सुसंहत क्षेत्र–अभाव है? इस प्रकार सर्वस्लाववादी विप्लव की, जो जर्मन तथा हंगेरियाई स्लाव क्षेत्रों में हर जगह इन तमाम छोटी-छोटी अनगिनत जातियों की स्वतंत्रता की पुन:स्थापना की आड़ था, सर्वत्र यूरोपीय क्रान्तिकारी आन्दोलनों से टक्कर हुई, और स्लाव यद्यपि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का दावा कर रहे थे, उन्होंने अपने को हमेशा (पोलों के जनवादी भाग को छोड़कर) निरंकुशता तथा प्रतिक्रियावाद के साथ पाया। यही जर्मनी में हुआ, यही हंगरी में हुआ, यही तुर्की तक में यत्र-तत्र हुआ। जनता के ध्येय के प्रति ग़द्दार, आस्ट्रियाई सरकार के षड्यंत्र के समर्थक तथा मुख्य अवलम्ब इन लोगों ने समस्त क्रान्तिकारी जातियों की नज़रों के सामने अपने को ग़द्दार सिद्ध कर दिया। स्लाव जनसमुदाय ने जातीय झगड़ों में, जो स्लाववादी नेताओं ने पैदा किये थे, अपनी अनभिज्ञता के कारण ही सही कभी हिस्सा नहीं लिया था, फिर भी यह तथ्य कभी नहीं भुलाया जायेगा कि प्राग में, अर्द्ध जर्मन नगर में, स्लाव अंधानुरागियों की भीड़ ने जिस नारे पर हर्षध्वनि की तथा जिसे दुहराया, वह था "जर्मन आज़ादी से रूसी चाबुक बेहतर है!" १८४८ में पहले विफल प्रयास के बाद और आस्ट्रियाई सरकार के हाथों से मिले सबक़ के बाद इस बात की सम्भावना नहीं रह जाती कि वे आगे चलकर किसी मौक़े पर एक और प्रयास करेंगे। परन्तु वे यदि फिर उसी तरह के बहानों को लेकर अपने को प्रतिक्रान्तिकारी शक्ति के साथ ऐक्यबद्ध करेंगे तो उस दशा में जर्मनी का कर्तव्य

स्पष्ट है। कोई भी ऐसा देश, जो क्रान्ति की अवस्था में हो और विदेशी युद्ध में फंसा हुआ हो, अपनी हृदय-स्थली में इस प्रकार के वांदेय[49] को सहन नहीं करेगा।

जहां तक संसद के भंग होने के साथ ही सम्राट* द्वारा संविधान उद्घोषित किये जाने की बात है, उसकी ओर फिर से मुड़ने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि उसका व्यावहारिक अस्तित्व कभी रहा ही नहीं और उसे पूरी तरह तिलांजलि दे दी गयी है। ४ मार्च १८४९ से आस्ट्रिया में निरंकुशतावाद व्यवहारतया पुनःस्थापित हो चुका है।

सम्राट द्वारा घोषित नये चार्टर की पुष्टि और उसे संशोधित करने के लिए प्रशा में फ़रवरी में सदनों की बैठक हुई। उनकी बैठक लगभग ६ सप्ताह तक चलती रही। वे सरकार के प्रति व्यवहार में दब्बू ज़रूर थे परन्तु वे उस हद तक जाने के लिए तैयार नहीं थे जिस हद तक सम्राट तथा उसके मंत्री चाहते थे। इसलिए उपयुक्त अवसर मिलते ही उन्हें भंग कर दिया गया।

इस तरह आस्ट्रिया तथा प्रशा दोनों फ़िलहाल संसदीय नियंत्रण की बेड़ियों से मुक्त हो गये थे। सरकारों ने अब पूरी सत्ता अपने हाथों में ले ली थी। वे उस सत्ता को जहां भी ज़रूरत पड़ती, इस्तेमाल में ला सकती थीं: हंगरी तथा इटली के विरुद्ध आस्ट्रिया की तथा जर्मनी के विरुद्ध प्रशा की सत्ता को इस्तेमाल में ला सकती थीं। बात यह है कि प्रशा भी एक ऐसे अभियान की तैयारी कर रहा था जिसकी मदद से छोटे राज्यों में "व्यवस्था" पुनःस्थापित की जानी थी।

जर्मनी में आन्दोलन के दो बड़े केन्द्रों में, वियेना तथा बर्लिन में प्रतिक्रान्ति विजयी हो चुकी थी, अब केवल छोटे-छोटे राज्य ही ऐसे रह गये थे जहां संघर्ष का परिणाम तय नहीं हुआ था, हालांकि वहां भी पलड़ा क्रान्तिकारी हित के विरुद्ध निरन्तर भारी होता जा रहा था। हम बता चुके हैं कि इन छोटे राज्यों को फ़्रैंकफ़ुर्ट में राष्ट्रीय सभा के रूप में एक समान केन्द्र मिल गया था। इस तथाकथित राष्ट्रीय सभा का प्रतिक्रियावादी स्वरूप यद्यपि काफ़ी समय से इतना स्पष्ट हो चुका था कि फ़्रैंकफ़ुर्ट के ही लोग उसके विरुद्ध हथियार लेकर उठ खड़े हुए थे, फिर भी उसका मूल न्यूनाधिक क्रान्तिकारी स्वरूप का था। जनवरी में उसने असामान्य, क्रान्तिकारी स्थिति अपनायी; उसके अधिकार-क्षेत्र की कभी

* फ़्रांज़-जोज़ेफ़ प्रथम। –सं०

व्याख्या नहीं की गयी थी और अन्ततः वह इस निर्णय पर – जिसे वैसे बड़े राज्यों ने कभी मान्यता नहीं दी – पहुंची कि उसके प्रस्तावों को क़ानून की शक्ति प्राप्त है। इसलिए ऐसी परिस्थितियों में और ऐसे समय जब संवैधानिक-राजतंत्रवादी पार्टी ने देखा कि निरंकुशता के पक्षधरों के फिर से उभरने से उनकी स्थिति कमज़ोर हो रही थी, इस बात पर हैरानी नहीं होनी चाहिए कि प्रायः पूरे के पूरे जर्मनी के उदारपंथी-राजतंत्रवादी पूंजीपति वर्ग ने इस राष्ट्रीय सभा की बहुसंख्या पर उसी तरह अपनी अन्तिम आशाएं केन्द्रित कर दीं जिस तरह बढ़ते हुए संकट के समय निम्नपूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि, जो जनवादी पार्टी के केन्द्रक थे, उसी निकाय की अल्पसंख्या के इर्दगिर्द जमा हो गये जो वास्तव में जनवाद का अन्तिम सुगठित संसदीय गुट था। दूसरी ओर, बड़ी सरकारों, ख़ासकर प्रशियाई मंत्रिमण्डल को जर्मनी की पुनर्स्थापित राजतंत्रवादी शासन व्यवस्था के साथ इस तरह के अनियमित निर्वाचित निकाय की असंगतता अधिकाधिक दिखायी देनी लगी। उन्होंने यदि उसे तुरन्त ज़बर्दस्ती विघटित नहीं किया तो इसका कारण यही था कि इस काम का अभी वक़्त नहीं आया था और प्रशा को आशा थी कि वह उसे पहले अपने महत्वाकांक्षापूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल कर सकेगा।

इस बीच बेचारी राष्ट्रीय सभा स्वयं अधिकाधिक गड़बड़ी में फंसती चली गयी। उसके प्रतिनिधिमण्डलों और कमिश्नरों के साथ वियेना तथा बर्लिन दोनों जगह घोर तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया गया था। उसके एक सदस्य* को संसदीय अनुल्लंघनीयता प्राप्त होने के बावजूद वियेना में विद्रोही के रूप में फांसी दे दी गयी थी। सभा की आज्ञप्तियों की ओर कहीं भी ध्यान नहीं दिया गया; और यदि बड़ी ताक़तों ने कहीं ध्यान दिया भी तो यह काम केवल विरोध-पत्र देकर किया जिनमें क़ानून और प्रस्ताव पास कर उन्हें सरकारों के लिए अनिवार्य बनाने के उसके अधिकार को चुनौती दी गयी। राष्ट्रीय सभा की प्रतिनिधि, केन्द्रीय कार्यकारी सत्ता जर्मनी के लगभग तमाम मंत्रिमण्डलों के साथ राजनयिक झगड़ों में उलझी हुई थी। अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद राष्ट्रीय सभा और केन्द्रीय सरकार में से कोई भी आस्ट्रिया और प्रशा को यह बताने के लिए विवश नहीं कर सकी कि आख़िर उनके विचार, योजनाएं तथा मांगें क्या हैं। राष्ट्रीय सभा अन्ततः कम से कम अब स्पष्ट रूप से देखने लग गयी थी कि उसने सारी सत्ता

* राबर्ट ब्लूम। – सं०

अपने हाथों से खिसकने दी है, कि वह पूरी तरह आस्ट्रिया तथा प्रशा की दया पर आश्रित है, कि वह यदि जर्मनी के लिए सचमुच कोई संघात्मक संविधान बनाना चाहती है तो उसे तुरन्त और पूरी तत्परता के साथ काम में जुट जाना चाहिए। बहुत-से डगमगानेवाले सदस्यों ने भी स्पष्ट रूप से देखा कि सरकारों ने उनकी आंखों में अनूठे ढंग से धूल झोंका है। परन्तु वे अपनी इस असहाय स्थिति में अब क्या कर सकते थे? उन्हें एक ही चीज बचा सकती थी, वह यह थी कि वे तुरन्त और निश्चयपूर्वक जनता के खेमे में जा पहुंचें; परन्तु उस क़दम की सफलता भी सर्वथा सन्देहजनक थी। परन्तु निश्चय न कर पानेवाले, अदूरदर्शी और अहंमन्य जीवों की, जिन्होंने परस्परविरोधी अफ़वाहों तथा राजनयिक परिपत्रों के शाश्वत कोलाहल से पूरी तरह स्तब्ध होकर अपने लिए एकमात्र सान्त्वना तथा अवलम्ब स्थायी रूप से मिलनेवाले इस आश्वासन में पाया कि वे देश के सर्वोत्तम, सबसे बुद्धिमान महापुरुष हैं और केवल वे ही जर्मनी को बचा सकते हैं, इस असहाय भीड़ के बीच, इन बेचारे प्राणियों के बीच, जिन्हें अकेले एक साल के संसदीय जीवन ने पूर्ण मूर्खों में बदल डाला था, इनके बीच ऐसे लोग कहां थे जो उत्साहपूर्ण और सुसंगत कार्रवाई करना तो रहा दूर तुरन्त तथा निश्चित संकल्प के साथ काम कर पाते?

आस्ट्रियाई सरकार ने अन्ततः अपना नकाब उतार फेंका। उसने ४ मार्च के अपने संविधान में आस्ट्रिया को एक समान वित्त व्यवस्था वाला, एक ही सीमा-शुल्क प्रणाली वाला तथा एक ही सैनिक संगठन वाला अविभाज्य राजतंत्र घोषित कर दिया। इस तरह जर्मन तथा ग़ैर-जर्मन प्रान्तों के बीच के सारे अवरोध मिटा दिये गये। यह घोषणा फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा द्वारा पहले ही मंजूर किये जा चुके प्रस्तावों और संघात्मक संविधान की धाराओं की अवहेलना करते हुए की गयी थी। यह आस्ट्रिया द्वारा दी गयी चुनौती थी और बेचारी सभा के पास उसे स्वीकार करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। यह उसने काफ़ी डींगें हांकते हुए किया। परन्तु अपनी शक्ति से और सभा की सरासर नगण्य स्थिति से अवगत होने के कारण आस्ट्रिया उसे नजरअन्दाज़ करने की स्थिति में था। और अपने को जर्मन जनता के प्रतिनिधि के पद से अलंकृत करनेवाली इस बहुमूल्य सभा ने आस्ट्रिया के हाथ होनेवाले इस अपमान का बदला ले सकने के लिए इससे अच्छा और कुछ नहीं समझा कि वह अपने हाथ-पांव बांधकर प्रशियाई सरकार के आगे लेट जाये। भले ही यह बात अविश्वसनीय लगे, पर यह सच है कि वह वास्तव में ठीक उन मंत्रियों के आगे ही घुटने टेक कर बैठ गयी जिनकी उसने असंवैधानिक तथा

जन विरोधी कहते हुए निंदा की थी और जिनकी बर्ख़ास्तागी के लिए उसने निष्फल आग्रह किया था। इस शर्मनाक सौदेबाज़ी और उसके बाद की करुणा-प्रहसन मिश्रित घटनाएं हमारे अगले लेख की विषय-सामग्री होंगी।

लन्दन, अप्रैल १८५२

१५

प्रशा की विजय

अब हम जर्मन क्रान्ति के इतिहास के अन्तिम अध्याय की ओर – विभिन्न राज्यों की सरकारों, विशेष रूप से प्रशा की सरकार के साथ राष्ट्रीय सभा के संघर्ष; दक्षिण तथा पश्चिमी जर्मनी के विद्रोह और प्रशा द्वारा उसके अन्तिम रूप से दमन की ओर पहुंचते हैं।

हम फ़्रैंकफ़ुर्ट राष्ट्रीय सभा को काम करते हुए पहले ही देख चुके हैं। हम उसे आस्ट्रिया से लात खाते, प्रशा के हाथों अपमानित होते, छोटे राज्यों द्वारा उसकी अवज्ञा किये जाते, अपनी ही शक्तिहीन केन्द्रीय "सरकार" से, उस "सरकार" से मूर्ख बनाये जाते हुए देख चुके हैं जिसे देश के समस्त तथा प्रत्येक राजा ने मूर्ख बनाया था। लेकिन इस निर्बल, ढुलमुल, तुच्छ विधायी निकाय को हालात डरावने दिखायी देने लगे। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विवश हुआ कि "जर्मन एकता के उदात्त विचार की पूर्त्ति खटाई में है"। इसका अर्थ इससे न तो अधिक और न कम था कि बहुत सम्भव है, फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा और वे सब काम अपने पीछे कोई भी चिह्न छोड़े बिना लुप्त होने जा रहे हैं जो वह कर चुकी है या करने जा रही है। इसलिए वह पूरी लगन से काम में जुट गयी ताकि यथाशीघ्र अपनी शानदार कृति, "शाही संविधान" प्रस्तुत कर सके।

परन्तु एक कठिनाई थी। कार्यकारी सत्ता किस तरह की होगी? कार्यकारी परिषद? नहीं। नहीं, उसका मतलब तो जर्मनी को जनतंत्र बनाना होगा, दानिशमंदों की मंडली ने सोचा। "राष्ट्रपति"? नहीं, यह तो वही बात हुई। इसका मतलब यह है कि उन्हें पुराने शाही रुतबे को फिर से जीवित करना चाहिए। निस्सन्देह कोई राजा ही सम्राट होगा, पर कौन? यक़ीनन

dii minorum gentium* में से, रेउस-ग्रेइत्स-श्लेइत्स-लोबेनश्टेइन-एबेर्सडोर्फ़** से लेकर बवेरिया*** तक कोई नहीं; न आस्ट्रिया को और न प्रशा को ही वह स्वीकार्य होता। तो फिर आस्ट्रिया या प्रशा में से ही कोई हो सकता था। परन्तु दोनों में से कौन? इसमें सन्देह नहीं है कि परिस्थितियों के अधिक अनुकूल होने पर यह महिमामयी सभा किसी निष्कर्ष पर पहुंचे बिना इस महत्वपूर्ण द्विविधा पर आज तक बहस करती रहती बशर्ते आस्ट्रियाई सरकार ने गोर्डियस की विकट गांठ न काटी होती और उसे बेकार की भाग-दौड़ से न बचा लिया होता।

आस्ट्रिया बहुत अच्छी तरह जानता था कि वह जिस क्षण अपने तमाम प्रान्तों को दबाकर, एक सशक्त तथा महान यूरोपीय शक्ति के रूप में फिर से यूरोप के सामने प्रकट हो सकेगा, राजनीतिक गुरुत्वाकर्षण का नियम ही शेष जर्मनी को उसके कक्ष में ऐसी किसी सत्ता के बिना खींच लायेगा जो फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा के हाथों से पहनाया गया राजमुकुट उसे प्रदान करती। आस्ट्रिया तब से कहीं अधिक दृढ़, अपने कार्यकलाप में तब से कहीं अधिक स्वतंत्र था जब से उसने जर्मन साम्राज्य का शक्तिहीन राजमुकुट उतार फेंका था, इस राजमुकुट ने उसकी स्वतंत्र नीति को अवरुद्ध कर रखा था जबकि उसने न तो जर्मनी के अन्दर और न उसके बाहर उसकी शक्ति में रंचमात्र वृद्धि तक नहीं की थी। और मान लें कि आस्ट्रिया इटली तथा हंगरी में अपने पांव नहीं जमाये रख सका तो फिर उसका जर्मनी में भी तो विघटन तथा संहार किया गया था और वह उस राजमुकुट के फिर से छीनने का कभी दावा भी नहीं कर सकता था जो उसके हाथों से उस समय खिसक गया था जब उसके पास पूर्ण शक्ति थी। इसलिए आस्ट्रिया ने तुरन्त घोषणा की कि वह तमाम साम्राज्यवादी पुनरुत्थानों के विरुद्ध है तथा उसने सीधे-सादे शब्दों में जर्मन संसद की, जर्मनी की एकमात्र ज्ञात तथा १८१५ की संधियों में मान्यताप्राप्त केन्द्रीय सरकार की पुनःस्थापना की मांग की। ४ मार्च १८४९ को उसने वह संविधान जारी किया जिसका इसके अलावा और कोई अर्थ नहीं था कि आस्ट्रिया को अविभाज्य, केन्द्रीकृत तथा स्वतंत्र राजतंत्र घोषित किया जाये जो उस जर्मनी तक से भिन्न हो जिसे फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा को पुनर्गठित करना था।

---

*शाब्दिक अर्थ – कनिष्ठदेवता। आलंकारिक अर्थ – घटिया दर्जे के लोग। – सं०

**हेनरी बहत्तरवां। – सं०

***मिक्सिमिलियन द्वितीय। – सं०

युद्ध की इस खुली घोषणा ने फ़्रैंकफ़ुर्ट के लाल बुझक्कड़ों के लिए इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं छोड़ा कि वे आस्ट्रिया को जर्मनी से अलग रखें और उस देश के बाक़ी हिस्से से एक तरह का पूर्वी रोमन साम्राज्य[50], "लघु जर्मनी"[51], एक तरह का ऐसा फटा-पुराना शाही चोगा तैयार करें जिसे प्रशा के महामहिम सम्राट को पहनाया जा सके। स्मरण रहे, यह एक पुरानी योजना का नवीकरण था जो दक्षिण तथा मध्य जर्मनी के उदारपंथी मताग्रहियों की एक पार्टी द्वारा कोई छः-आठ वर्ष पहले सींचा-पोसा जा चुका था, जिन्होंने उन अपमानजनक परिस्थितियों को ईश्वरीय देन माना जिनके द्वारा उनकी पुरानी सनक को देश की मुक्ति के लिए "शतरंज की नवीनतम चाल" के रूप में अब फिर आगे ले आया गया था।

इस तरह उन्होंने फ़रवरी और मार्च १८४९ में अधिकारों के घोषणापत्र तथा शाही निर्वाचन क़ानून के साथ शाही संविधान पर बहस समाप्त कर दी परन्तु यह बहस कई मुद्दों पर सर्वाधिक परस्परविरोधी रियायतें देने से पहले, अभी अनुदारपंथी, या कहना चाहिए, प्रतिक्रियावादी पार्टी को, तो कुछ देर बाद सभा के अधिक अग्रणी पक्षों को रियायतें देने से पहले समाप्त नहीं हुई थी। वस्तुतः यह स्पष्ट था कि सभा का नेतृत्व, जो पहले दक्षिण पक्ष और दक्षिणपक्षोन्मुख केन्द्र (अनुदारपंथियों तथा प्रतिक्रियावादियों) के हाथ में था, अब क्रमिक रूप से हालांकि धीरे-धीरे उस निकाय के वामपक्ष या जनवादी पक्ष की ओर अग्रसर होता जा रहा था। आस्ट्रियाई सदस्यों की एक ऐसी सभा में, जिसने उनके देश को जर्मनी से अलग कर रखा था और जिसमें इसके बावजूद उनसे बैठने और वोट देने के लिए कहा गया, काफ़ी संदिग्ध स्थिति ने भी सभा में सन्तुलन भंग करने में मदद दी। इस तरह फ़रवरी के अन्त में ही वामपक्षोन्मुख केन्द्र तथा वामपक्ष आस्ट्रियाई वोटों की मदद से अपने को बहुधा बहुमत में पाता था जबकि दूसरे मौक़ों पर आस्ट्रियाइयों का अनुदारपंथी पक्ष एकाएक और सिर्फ़ मज़ा लेने के लिए दक्षिण पक्ष की ओर वोट देते हुए फिर दूसरी ओर का पलड़ा भारी कर देता था। वे इस तरह की एकाएक छलांगों से राष्ट्रीय सभा के प्रति घृणा पैदा करना चाहते थे, परन्तु इसकी क़तई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि जनसाधारण को बहुत पहले ही पूरा यक़ीन हो चुका था कि फ़्रैंकफ़ुर्ट से जो कुछ भी आयेगा, वह सरासर खोखला और निरर्थक होगा। इधर-उधर छलांगें मारने की अवस्था में किस नमूने का संविधान तैयार किया गया होगा, इसकी आसानी से कल्पना की जा सकती है।

राष्ट्रीय सभा का वामपक्ष, जो अपने को क्रान्तिकारी जर्मनी की शोभा और गौरव मानता था, आस्ट्रियाई निरंकुशतावाद के उकसावे से और उसके हित में काम करनेवाले आस्ट्रियाई राजनीतिज्ञों की एक मंडली की सद्भावना, बल्कि कहना चाहिए, दुर्भावना से प्राप्त चन्द तुच्छ सफलताओं के नशे में चूर था। इन जनवादियों के सिद्धान्तों को, जो अच्छी तरह परिभाषित नहीं होते थे, होमियोपैथीय विधि से पतला कर फ्रैंकफ़ुर्ट सभा से जब कभी किसी तरह की स्वीकृति मिल जाती, ये लोग घोषित करते कि उन्होंने देश और जनता को बचा लिया है। ये बेचारे, क्षीण बुद्धि वाले लोग अपने साधारणतया निष्प्रभ जीवन के दौरान सफलता जैसी वस्तु के इतने कम आदी थे कि वे सचमुच इस बात पर यक़ीन करते रहे कि दो या तीन वोटों के बहुमत से पारित उनके तुच्छ संशोधन यूरोप का रूपरंग बदल डालेंगे। वे अपने विधायी जीवन के आरम्भ से ही राष्ट्रीय सभा के किसी भी अन्य पक्ष की तुलना में उस असाध्य रोग से अधिक ग्रस्त रहे जिसे **संसदीय जड़वामनता** कहते हैं; यह ऐसा रोग है जो अपने शिकंजे में फंसनेवाले अभागे लोगों के दिमाग़ में इस गम्भीर आस्था के साथ प्रवेश करता है कि पूरा संसार, उसका इतिहास तथा उसका भविष्य उस प्रातिनिधिक निकाय में, जिसे अपने सदस्यों के बीच उनकी उपस्थिति का सम्मान प्राप्त है, बहुमत से शासित तथा निर्धारित होते हैं और उनके सदन की दीवालों के बाहर घट रही हर चीज़—युद्ध, क्रान्तियां, रेलवे-निर्माण, पूरे के पूरे नये महाद्वीपों का आबाद होना, कैलिफ़ोर्निया में सोने की खोज, मध्य अमरीका की नहरें, रूसी फ़ौजें,—संक्षेप में वे सब चीज़ें जो मानवजाति की नियति पर थोड़ा-बहुत प्रभाव डालने का दावा कर सकती हों, उन अतुलनीय घटनाओं के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं हैं जो उस महत्वपूर्ण प्रश्न पर, वह चाहे कुछ भी हो, उस प्रश्न पर अटकी हुई हैं जिस पर उस क्षण विशेष में उनके सम्माननीय सदन का ध्यान केन्द्रित है। इस तरह यह राष्ट्रीय सभा की जनवादी पार्टी ही थी जो अपने चन्द नुस्ख़ों को सफलतापूर्वक "शाही संविधान" में समाविष्ट कर उसका समर्थन करने के लिए बाध्य हो गयी हालांकि हर महत्वपूर्ण मुद्दे पर उसने अपने ही बहुधा घोषित सिद्धान्तों का साफ़-साफ़ प्रतिवाद किया। अन्ततः इस दोगली कृति के मुख्य प्रणेताओं ने जब उसे जनवादी पार्टी के नाम वसीयत करके उसे भाग्य के भरोसे छोड़ दिया तो इस पार्टी ने इस वसीयत को, इस **राजतंत्रवादी** संविधान को ग्रहण किया और उसकी उन लोगों के भी विरोध का सामना करते हुए रक्षा की जो **उस समय** उस पार्टी के ही **जनतंत्रीय** सिद्धान्तों को घोषित कर रहे थे।

परन्तु यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि इसमें अन्तर्विरोध तो केवल प्रतीयमान था। शाही संविधान का अनिश्चायक, परस्परविरोधी, अपरिपक्व स्वरूप तो इन जनवादी सज्जनों के अपरिपक्व, उलझे हुए, आपस में टकरानेवाले राजनीतिक विचारों की ही ठीक-ठीक छवि था। यदि उनके अपने कथन तथा लेखन – जहां तक वे लिख पाते – इस बात के पर्याप्त प्रमाण नहीं थे तो उनकी कार्रवाइयां इसका प्रमाण प्रस्तुत कर देतीं; क्योंकि समझ-बूझ रखनेवाले लोगों के लिए यह एक स्वाभाविक वस्तु है कि वे आदमी को उसके दावों से नहीं, वरन् उसकी कार्रवाइयों से जांचते हैं, इस चीज़ से नहीं जांचते कि वह अपने बारे में क्या जताता है, बल्कि इस बात से जांचते हैं कि वह क्या करता है और वस्तुतः क्या है। और जर्मन जनवाद के इन सूरमाओं की करनी उनकी असलीयत का पूर्ण साक्षी है, यह हमें आगे चलकर मालूम हो जायेगा। जो भी हो अपने तमाम परिशिष्टों तथा अनुपूरकों के साथ शाही संविधान निश्चित रूप से पास हो गया और प्रशा का राजा आस्ट्रिया को छोड़कर जर्मनी का सम्राट निर्वाचित हो गया, वह २९० वोटों से निर्वाचित हुआ जबकि २४८ ने मतदान में भाग नहीं लिया तथा लगभग २०० सदस्य अनुपस्थित रहे। इतिहास का व्यंग्य पूर्ण हो गया; १८ मार्च १८४८ की क्रान्ति[52] के तीन दिन बाद फ़्रेडरिक-विल्हेल्म चतुर्थ द्वारा विस्मित बर्लिन की सड़कों पर किये गये शाही तमाशे – उस समय राजा ऐसी हालत में था कि अन्यत्र उसके विरुद्ध "मेन मदिरा क़ानून" लागू हो जाता – को, इस घिनौने तमाशे को पूरे जर्मनी की नकली प्रातिनिधिक सभा ने स्वीकृति प्रदान की थी। तो यह था जर्मन क्रान्ति का परिणाम!

लन्दन, जुलाई १८५२

१६

राष्ट्रीय सभा तथा सरकारें

फ़्रैंकफ़ुर्ट की राष्ट्रीय सभा ने प्रशा के राजा को जर्मनी का (आस्ट्रिया **को छोड़कर**) सम्राट निर्वाचित कर चुकने के बाद उसे राजमुकुट पहनाने का प्रस्ताव लेकर एक प्रतिनिधिमण्डल बर्लिन भेजा और इसके बाद उसका सत्रावसान हो गया। ३ अप्रैल को फ़्रेडरिक-विल्हेल्म ने प्रतिनिधिमण्डल के सदस्यों से मुलाक़ात

की। उसने कहा—यद्यपि मैं जर्मनी के तमाम राजे-रजवाड़ों पर प्राथमिकता का यह अधिकार, जिसे जनता के प्रतिनिधियों का यह वोट मुझे देता है, स्वीकार करता हूं, फिर भी मैं राजमुकुट तब तक स्वीकार नहीं करूंगा जब तक मुझे यक़ीन नहीं हो जाता कि बाक़ी राजे-रजवाड़े मेरा आधिपत्य तथा मुझे ये अधिकार देनेवाला शाही संविधान स्वीकार कर लेंगे। उसने आगे कहा—यह संविधान जर्मनी की सरकारों द्वारा सम्पुष्ट किये जाने योग्य है या नहीं, इसका निर्णय करना उनका ही काम है। उसने अन्त में कहा—सम्राट हो या न हो, बहरसूरत आप मुझे विदेशी या आन्तरिक शत्रु के ख़िलाफ़ तलवार हाथ में लेने के लिए तैयार पायेंगे। हम देखेंगे कि उसने कैसे राष्ट्रीय सभा के लिए अप्रत्याशित ढंग से इस वचन का पालन किया।

फ़्रैंकफ़ुर्ट के ये लाल बुझक्कड़ गहन कूटनीतिक जांच-पड़ताल के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह उत्तर राजमुकुट अस्वीकार करने के बराबर है। उन्होंने तब (१२ अप्रैल) तय किया कि शाही संविधान देश का क़ानून है और उसे अवश्य ही क़ायम रखना होगा; चूंकि उन्हें अपने सामने रास्ता बिल्कुल नज़र नहीं आया, इसलिए उन्होंने तीस व्यक्तियों की एक समिति इस आशय का प्रस्ताव तैयार करने के लिए निर्वाचित की कि इस संविधान को किस तरह कार्यान्वित किया जा सकता है।

यह प्रस्ताव फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा तथा जर्मन सरकारों के बीच उस टक्कर का संकेत था जो अब छिड़ गया।

मध्यम वर्ग और विशेष रूप से छोटे व्यावसायिक वर्ग ने तुरन्त ऐलान किया कि वे इस संविधान के पक्ष में हैं। वे अब उस घड़ी का इन्तज़ार नहीं कर सकते थे जिसे "क्रान्ति का समापन" करना था। आस्ट्रिया तथा प्रशा में क्रान्ति फ़िलहाल सशस्त्र शक्ति के हस्तक्षेप द्वारा समाप्त हो गयी थी। सम्बन्धित वर्ग यह कारंवाई करने के लिए किसी कम सख़्त उपाय को ज़्यादा पसन्द करते, परन्तु उन्हें मौक़ा ही नहीं मिला। बात तो हो चुकी थी, अब उससे ही काम चलाना था, यह ऐसा निश्चय था जिसे उन्होंने तुरन्त किया और जिसे वे अत्यन्त साहसपूर्वक कार्यान्वित करने लगे। छोटे राज्यों में, जहां सब कुछ अपेक्षाकृत सुगमतापूर्वक चल रहा था, मध्यम वर्ग अपने लिए सर्वाधिक अनुकूल उस संसदीय आन्दोलन में बहुत पहले ही धकेले जा चुके थे जो आडम्बरपूर्ण था लेकिन इसलिए परिणामहीन था कि वह शक्तिहीन था। इस प्रकार जर्मनी के

भिन्न-भिन्न राज्य अलग-अलग देखे जाने पर वह नया तथा निश्चायक रूप ग्रहण करते प्रतीत हुए जिसके बारे में यह माना गया था कि वह उन्हें अब शान्तिपूर्ण संवैधानिक विकास के पथ पर ले जायेगा। बस एक ही खुला प्रश्न रह गया था, वह था जर्मन महासंघ के नये राजनीतिक संगठन का प्रश्न। और यह आवश्यक माना गया कि इस प्रश्न को, जो ख़तरे से भरा लगता था, तत्काल हल किया जाये। इस कारण मध्यम वर्गों ने फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा पर दबाव डाला ताकि उसे संविधान जल्द से जल्द तैयार करने के लिए अभिप्रेरित किया जा सके, इस कारण उच्च और निम्नपूंजीपति वर्ग में संविधान को–वह चाहे जैसा भी हो–स्वीकार करने और उसका समर्थन करने का संकल्प था ताकि अविलम्ब व्यवस्थित स्थिति पैदा की जा सके। इस तरह शाही संविधान के लिए आन्दोलन शुरू से ही प्रतिक्रियावादी भावना से पैदा हुआ और वह उन वर्गों में प्रस्फुटित हुआ जो क्रान्ति से बहुत पहले ही थक चुके थे।

परन्तु उसकी एक और विशेषता थी। भावी जर्मन संविधान के प्रथम तथा मौलिक सिद्धान्त १८४८ में वसन्त तथा ग्रीष्मकाल के पहले महीनों के दौरान, ऐसे समय पास किये गये जब जन आन्दोलन चल ही रहा था। उस समय पास किये गये प्रस्ताव–तब वे यद्यपि पूर्णतया प्रतिक्रियावादी थे–अब आस्ट्रियाई तथा प्रशियाई सरकारों की मनमानी कार्रवाइयों के बाद अतीव उदार, यही नहीं जनवादी भी प्रतीत होने लगे। तुलना का पैमाना बदल गया था। फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा एक बार पास की गयी इन धाराओं को नैतिक आत्महत्या किये बिना नहीं मिटा सकती थी तथा शाही संविधान को उन संविधानों के सांचे में नहीं ढाल सकती थी जिन्हें आस्ट्रियाई तथा प्रशियाई सरकारों ने तलवार के ज़ोर से मनवाया था। इसके अलावा, जैसा कि हम देख चुके हैं, उस सभा में बहुमत दूसरी ओर हो गया था और उदारपंथी तथा जनवादी पार्टी का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इस प्रकार शाही संविधान की विशेषता उसका प्रतीयमान विशिष्ट जनवादी मूल ही नहीं था, साथ ही परस्परविरोधों से भरपूर होते हुए भी वह पूरे जर्मनी का सबसे उदारपंथी संविधान था। उसकी सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि वह काग़ज़ का एक पन्ना मात्र था जिसके पास अपनी धाराओं को जीवन में लागू करने की कोई शक्ति नहीं थी।

इन परिस्थितियों में यह स्वाभाविक था कि तथाकथित जनवादी पार्टी, अर्थात् आम छोटा व्यावसायिक वर्ग शाही संविधान से चिपका रहे। यह वर्ग अपनी मांगों के मामले में उदारपंथी राजतंत्रवादी-संवैधानिकतावादी पूंजीपति वर्ग से

हमेशा आगे रहा। वह बढ़-बढ़ कर बातें करता था, वह अक्सर सशस्त्र प्रतिरोध की धमकी देता था, उसने आज़ादी की लड़ाई में अपने रक्त तथा जीवन को कुर्बान करने का वचन देने में मुक्त हृदय का परिचय दिया; परन्तु वह इस बात के पर्याप्त प्रमाण दे बैठा था कि ख़तरे की घड़ी में वह कहीं नज़र नहीं आता और उसने निर्णायक पराजय के अगले दिन से ज्यादा इत्मीनान कभी अनुभव नहीं किया, जब सब कुछ हाथ से निकल जाता तो उसे कम से कम इस जानकारी से सन्तोष मिलता कि चलो, किसी तरह मामला तय तो हो गया है। इसलिए बड़े बैंकपतियों, कारख़ानेदारों और व्यापारियों की फ़्रैंकफ़ुर्ट संविधान के प्रति संलग्नता जहां संयत स्वरूप की थी, उसके पक्ष में सामान्य प्रदर्शन अधिक थी, वहां उनके ठीक नीचे का वर्ग, हमारे ये शूरवीर जनवादी दुकानदार बड़े शानदार ढंग से सामने आये और हमेशा की तरह उन्होंने घोषणा की कि वे शाही संविधान को गिरते देखने के बजाय अपने ख़ून की आख़िरी बूंद बहाना ज्यादा पसन्द करेंगे।

शाही संविधान की तत्काल प्रतिष्ठापना का यह आन्दोलन, जिसे दो पार्टियों का – संवैधानिक राजतंत्र के पूंजीवादी पक्षधरों तथा न्यूनाधिक जनवादी दुकानदारों का – समर्थन प्राप्त था, तेज़ी से फैलता गया। उसे कई राज्यों की संसदों में सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। प्रशा, हैनोवर, सैक्सनी, बाडेन, वुर्टेम्बर्ग के सदनों ने उसका पक्ष लेने की घोषणा की। सरकारों तथा फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा के बीच संघर्ष ने भयावह स्वरूप धारण कर लिया।

परन्तु सरकारों ने बहुत फुर्ती से काम किया। प्रशियाई सदनों को असंवैधानिक ढंग से भंग कर दिया गया क्योंकि उन्हें संविधान संशोधित तथा सम्पुष्ट करना था; बर्लिन में दंगे हो गये जिन्हें सरकार ने जान-बूझकर भड़काया था; अगले दिन, २८ अप्रैल को प्रशियाई मंत्रिमण्डल ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें शाही संविधान को सरासर अराजकतावादी तथा क्रान्तिकारी दस्तावेज़ क़रार किया गया जिसे नये सांचे में ढालना तथा शुद्ध करना जर्मन सरकारों का काम है। इस तरह प्रशा ने वह सम्प्रभुतापूर्ण संविधायी सत्ता दो टूक ढंग से अस्वीकार कर दी जिसके बारे में फ़्रैंकफ़ुर्ट के पंडित लोग डींग हांका करते थे परन्तु जिसकी कभी स्थापना नहीं हुई थी। इस प्रकार राजाओं की एक कांग्रेस[53] – पुरानी संघात्मक संसद का नवीकृत रूप – उस संविधान पर सोच-विचार करने के लिए बुलायी गयी जिसे पहले ही क़ानून के रूप में जारी कर दिया गया था। साथ ही प्रशा ने क्रेयत्स्नाख़ में, जहां फ़्रैंकफ़ुर्ट से तीन दिन में पैदल पहुंचा जा सकता था, सैनिक दस्ते

जमा कर दिये। उसने छोटे राज्यों का आह्वान किया कि वे फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा से संलग्न होते ही अपने सदनों को भंग कर उसके उदाहरण का अनुसरण करें। इस उदाहरण का सैक्सनी तथा हैनोव्रर ने तेज़ी से अनुसरण किया।

यह स्पष्ट था कि हथियारों की ताक़त से संघर्ष टाला नहीं जा सकता था। सरकारों की शत्रुता की भावना तथा जनता के मध्य उत्तेजना दिन-प्रति-दिन उभरकर सामने आती जा रही थी। फ़ौज पर जनवादी नागरिक सर्वत्र प्रभाव डालते जा रहे थे, और जर्मनी के दक्षिण में यह बड़ी सफलता के साथ हो रहा था। सर्वत्र बड़ी-बड़ी जन सभाएं हो रही थीं जो शाही संविधान तथा राष्ट्रीय सभा का समर्थन करने के लिए—ज़रूरत पड़ने पर हथियारों के बल पर भी—प्रस्ताव पास कर रही थीं। कोलोन में राइनी प्रशा की सारी म्युनिसिपल परिषदों के सदस्यों की इसी उद्देश्य के लिए सभा हुई। फाल्त्र, बर्जन, फ़ुल्ड, नूरेम्बर्ग, ओडेनवाल्ड में किसानों की विशाल सभाएं हुईं तथा उन्होंने जोश का परिचय दिया। इसी बीच फ़्रांस की संविधान सभा भंग कर दी गयी थी और उग्र आन्दोलन के बीच नये चुनावों की तैयारी हो रही थी जबकि जर्मनी की पूर्वी सीमा पर हंगेरियाइयों ने एक महीने के अन्दर एक के बाद दूसरी शानदार विजय प्राप्त करते हुए आस्ट्रियाई धावे की लहर को टिसा से लेइता तक धकेल दिया; यह अपेक्षा की जा रही थी कि वे किसी भी दिन वियेना पर धावा बोलकर उस पर क़ब्ज़ा कर लेंगे। इस तरह चूंकि चारों ओर जनता की भावनाएं उच्चतम बिन्दु तक उत्तेजित हो चुकी थीं और सरकारों की आक्रामक नीति रोज़ अधिकाधिक निखरकर सामने आ रही थी, उग्र टक्कर टाली नहीं जा सकती थी और कायरतापूर्ण जड़बुद्धि ही अपने को यह यक़ीन दिला सकती थी कि संघर्ष शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त हो जायेगा। परन्तु इस कायरतापूर्ण जड़बुद्धि को फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा में सर्वाधिक व्यापक प्रतिनिधित्व प्राप्त था।

लन्दन, जुलाई १८५२

१७

विद्रोह

फ़्रैंकफ़ुर्ट की राष्ट्रीय सभा तथा जर्मन राज्य सरकारों के बीच अवश्यम्भावी टक्कर ने अन्ततः मई १८४९ के प्रथम दिनों के दौरान खुले संघर्ष का रूप धारण कर लिया। वामपंथी या जनवादी पार्टी के चन्द सदस्यों को छोड़कर बाक़ी

आस्ट्रियाई सदस्य, जिन्हें उनकी सरकार ने वापस बुला लिया था, राष्ट्रीय सभा छोड़कर अपने घरों को लौट गये। अनुदारपंथी सदस्यों का बहुत बड़ा समुदाय इस बात से अवगत होने के कारण कि परिस्थितियां क्या रूप ग्रहण करनेवाली हैं, अपनी-अपनी सरकारों के कहने से पहले ही राष्ट्रीय सभा से हट गया था। इस तरह यदि वे कारण न भी होते जिन्हें पूर्ववर्ती लेखों में वामपंथ के प्रभाव को दृढ़ बनानेवाले तत्वों के रूप में दिखाया गया है, तब भी राष्ट्रीय सभा में पुरानी अल्पसंख्या को बहुसंख्या में बदलने के लिए मात्र इतना कारण पर्याप्त होता कि दक्षिणपंथ के सदस्य सभा छोड़कर भाग खड़े हुए। नयी बहुसंख्या, जिसने पहले किसी भी समय यह सौभाग्य प्राप्त होने का स्वप्न तक नहीं देखा था, विपक्ष में अपने स्थान का लाभ उठाकर पुरानी बहुसंख्या और उसकी शाही सरकार की कमजोरी, उनमें निर्णय लेने की असमर्थता तथा उनकी निष्क्रियता के विरुद्ध ख़ूब भाषण झाड़ा करती थी। अब एकाएक स्वयं उन्हें उस पुरानी बहुसंख्या का स्थान लेना था। उन्हें अब दिखाना था कि वे क्या कर सकती हैं। जाहिर है, उनकी गतिविधियों को स्फूर्तिमय, संकल्पपूर्ण तथा सक्रिय बनना था। वे ही—जर्मनी का सर्वोत्कृष्ट भाग—सठिया गये शाही रीजेंट तथा उसके ढुलमुल मंत्रियों को शीघ्र आगे धकेल सकेंगी और अगर ऐसा सम्भव न हो सका तो वे—और इस बारे में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं थी—जनता की सार्वभौम शक्ति के बल पर अशक्त सरकार को बर्ख़ास्त कर देंगी तथा उसकी जगह पर ऐसी उत्साही, अथक कार्यकारी सत्ता की स्थापना करेंगी जो जर्मनी का निस्तार सुनिश्चित करेगी। बेचारे लोग! उनका शासन—यदि उसे शासन का नाम दे भी दिया जाये जिसकी आज्ञा का किसी ने पालन नहीं किया—उनके पूर्ववर्तियों के शासन से भी अधिक उपहासास्पद निकला।

नयी बहुसंख्या ने घोषित किया कि शाही संविधान तमाम बाधाओं के बावजूद लागू किया जायेगा और एकदम लागू किया जायेगा, कि आगामी १५ जुलाई को जनता नयी प्रतिनिधि सभा के लिए सदस्य चुनेगी, कि इस सभा का आगामी २२ अगस्त को फ़्रैंकफ़ुर्ट में अधिवेशन होगा। यह उन सरकारों के ख़िलाफ़ युद्ध की खुली घोषणा थी जिन्होंने शाही संविधान को मान्यता नहीं दी थी—इनमें सबसे पहले थीं प्रशा, आस्ट्रिया और बवेरिया की सरकारें जहां जर्मनी की तीन-चौथाई से ज्यादा आबादी बसती थी। उन्होंने युद्ध की यह घोषणा स्वीकार करने में देरी नहीं की। प्रशा तथा बवेरिया ने भी फ़्रैंकफ़ुर्ट भेजे गये अपने सदस्यों को वापस बुला लिया और वे राष्ट्रीय सभा के ख़िलाफ़ तेज़ी से फ़ौजी तैयारी करने लगीं। उधर,

दूसरी ओर, शाही संविधान तथा राष्ट्रीय सभा के पक्ष में जनवादी पार्टी के प्रदर्शन (संसद के बाहर) अधिकाधिक तूफ़ानी और उग्र रूप धारण करते चले गये और मेहनतकश जन समुदाय उग्रवादी पार्टी के लोगों के नेतृत्व में एक ऐसे ध्येय के लिए हथियार उठाने के वास्ते तैयार था जो निस्सन्देह उसका अपना ध्येय नहीं था, लेकिन जो उसे कम से कम जर्मनी को उसकी पुरानी राजतंत्रवादी बेड़ियों से मुक्त करते हुए अपने लक्ष्यों के कुछ नजदीक पहुंचने का मौक़ा तो देता था। इस तरह जनता और सरकार इस विषय को लेकर एक दूसरे के विरुद्ध तलवार म्यान से बाहर खींचकर खड़ी हो गयीं; टक्कर अवश्यम्भावी हो गयी थी; बारूद का ढेर तैयार था, उसे तो विस्फोटित होने के लिए बस एक चिनगारी की जरूरत थी। सैक्सनी में सदनों का भंग किया जाना, प्रशा में लांदवेर (रिज़र्व फ़ौज) का बुलाया जाना, शाही संविधान का सरकारों द्वारा खुला विरोध – ये सब चीजें ऐसी ही चिनगारियां थीं। वे चिनगारियां गिर गयीं और पूरे देश में आग की लपटें उठ गयीं। ४ मई को ड्रेस्डेन में जनता ने शहर पर सफलतापूर्वक अधिकार कर लिया तथा राजा* को खदेड़ दिया; आस-पड़ोस के सारे ज़िलों ने विद्रोहियों के लिए कुमुकें भेजीं। राइनी प्रशा और वेस्टफ़ेलिया में लांदवेर ने कूच करने से इन्कार कर दिया, उसने शस्त्रागार पर क़ब्ज़ा कर लिया और शाही संविधान की रक्षा के लिए उसने अपने को हथियारबन्द किया। फाल्ज़ में लोगों ने बवेरियाई सरकारी अधिकारियों और सार्वजनिक धन को अपने क़ब्ज़े में कर लिया, एक रक्षा समिति नियुक्त की जिसने प्रान्त को राष्ट्रीय सभा के संरक्षण में कर दिया। वुर्टेम्बर्ग में लोगों ने राजा** को शाही संविधान स्वीकार करने के लिए बाधित किया और बाडेन में जनता के साथ ऐक्यबद्ध सेना ने ग्रांड ड्यूक*** को भाग जाने के लिए मजबूर किया और अस्थायी सरकार की स्थापना की। जर्मनी के अन्य भागों में जनता हथियार उठाने के लिए और अपनी सेवाएं राष्ट्रीय सभा के सुपुर्द करने के लिए उससे केवल निर्णायक संकेत की प्रतीक्षा कर रही थी।

राष्ट्रीय सभा की स्थिति उससे कहीं अनुकूल थी जिसकी उसके कलंकमय अतीत के बाद अपेक्षा की जा सकती थी। जर्मनी का पश्चिमार्द्ध भाग राष्ट्रीय सभा की

---

* फ़्रेडरिक-अगस्त द्वितीय। – सं०

** विल्हेल्म प्रथम। – सं०

*** लियोपोल्ड। – सं०

रक्षा के लिए हथियार उठा चुका था। सैनिक सर्वत्र ढुलमुल स्थिति में थे। छोटे राज्यों में वे स्पष्टतः आन्दोलन के पक्ष में थे। आस्ट्रिया हंगेरियाइयों की विजयपूर्ण अग्रगति के सामने धराशायी हो गया था। और रूस–जर्मन सरकारों की वह आरक्षित शक्ति–माग्यार सेनाओं के ख़िलाफ़ आस्ट्रिया को मदद देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहा था। केवल प्रशा को ही क़ाबू में रखना बाक़ी था। देश में क्रान्तिकारी सद्भावना देखते हुए यक़ीनन उस लक्ष्य को पूरा करने का मौक़ा था। संक्षेप में सब कुछ सभा के आचरण पर निर्भर करता था।

युद्ध-कला या अन्य कलाओं की ही तरह विद्रोह भी एक कला है। वह आगे बढ़ने के कतिपय नियमों द्वारा शासित है; जो कोई पार्टी उन नियमों की उपेक्षा करेगी, वह अपनी बरबादी को न्यौता देगी। वे नियम, पार्टियों की प्रकृति तथा उन परिस्थितियों की प्रकृति से, जिनसे ऐसे मामलों में साबका पड़ा करता है, निकलनेवाले तार्किक परिणाम इतने साफ़ और सरल हैं कि १८४८ के अल्पकालिक अनुभव ने जर्मनों को उनसे बहुत अच्छी तरह परिचित करा दिया। पहली चीज़– विद्रोह से तब तक खिलवाड़ न करें जब तक आप उस खेल के परिणामों का सामना करने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं होते। विद्रोह तो एक ऐसा कलन है, जिसके परिमाण सर्वथा अनिश्चित होते हैं, जिनका मूल्य रोज़ बदल सकता है। मुक़ाबले में खड़ी शक्तियों को संगठन, अनुशासन तथा परम्परागत प्रतिष्ठा के सारे लाभ उपलब्ध होते हैं। यदि विद्रोही अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ और बड़ी ताक़त मैदान में नहीं उतारेंगे तो वे हार जायेंगे और बरबाद हो जायेंगे। दूसरी चीज़–एक बार विद्रोह शुरू होने पर अधिकतम दृढ़संकल्प के साथ काम करने तथा प्रहार करने की ज़रूरत होती है। प्रतिरक्षा की स्थिति प्रत्येक सशस्त्र विद्रोह की मौत हुआ करती है; अपने शत्रु से मुक़ाबला होने से पहले ही मैदान हाथ से निकल जाता है। जिस समय दुश्मन की शक्तियां बिखरी हुई हों, उसपर एकाएक टूट पड़ें, नयी-नयी सफलताओं के लिए तैयारी करते रहें, वे सफलताएं चाहे कितनी ही मामूली क्यों न हों, वे रोज़-रोज़ हासिल हों; प्रथम सफल विजय ने विद्रोहियों का जो हौसला बढ़ाया है, उसे निरन्तर बढ़ते रहने दें; उन ढुलमुल तत्वों को अपने पक्ष में एकजुट करते रहें जो सदैव ज्यादा शक्तिशाली का साथ देते हैं और जो हमेशा अधिक विश्वस्त पक्ष की तलाश करते रहते हैं; इससे पहले कि उनकी शत्रु अपनी शक्ति उनके विरुद्ध बटोर सकें, उन्हें पीछे हटने के लिए विवश करें; दांतों के, क्रान्तिकारी कार्यनीति के अब तक ज्ञात

सबसे बड़े आचार्य के शब्दों में – de l'audace, de l'audace, encore de l'audace! *

यदि फ़ैंकफ़ुर्ट की राष्ट्रीय सभा को उस निश्चित बरबादी से, जो उसके सामने मुंह बाये खड़ी थी, बचना था तो उसे क्या करना चाहिए था? सबसे पहले उसे स्थिति को साफ़-साफ़ देखना-समझना और अपने को यह यक़ीन दिलाना चाहिए था कि उसके सामने सरकारों के आगे बिना शर्त घुटने टेक देने अथवा बिना लाग-लपेट या संकोच के सशस्त्र विद्रोह का ध्येय अपनाने के अलावा और कोई चारा नहीं है। दूसरे, छिड़ चुके विद्रोहों को सार्वजनिक रूप से मान्यता देनी चाहिए थी, राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व की रक्षा के लिए जनता का सर्वत्र हथियार उठाने के लिए आह्वान करना चाहिए था तथा संप्रभुताप्राप्त जनता का, जिसका प्रतिनिधित्व उसके अधिदेशप्राप्त संस्थाएं कर रही थीं, विरोध करने की हिम्मत करनेवाले सारे राजाओं, मंत्रियों तथा अन्य लोगों को ग़ैरक़ानूनी घोषित करना चाहिए था। तीसरे, जर्मन शाही रीजेंट को तत्काल बर्ख़ास्त करना चाहिए था, मज़बूत, सक्रिय, **उचित-अनुचित का ख़्याल न करनेवाली** कार्यकारी सत्ता की स्थापना करनी चाहिए थी, विद्रोह फैलाने का क़ानूनी बहाना पेश करते हुए अपनी रक्षा के लिए विद्रोही सैनिकों को तत्काल फ़ैंकफ़ुर्ट बुलाना चाहिए था, अपने पास उपलब्ध सारी शक्तियों को एक सुसंहत निकाय के रूप में संगठित करना चाहिए था – संक्षेप में अपनी स्थिति मज़बूत बनाने और अपने विरोधियों की स्थिति बिगाड़ने के लिए हर उपलब्ध साधन से शीघ्र और बिना किसी संकोच के लाभ उठाना चाहिए था।

फ़ैंकफ़ुर्ट सभा के सदाचारी जनवादियों ने इन तमाम बातों के ठीक उलट काम किया। ये योग्य व्यक्ति केवल इसी से सन्तुष्ट नहीं हुए कि हालात जिधर चाहें, बढ़ते रहें, उन्होंने तो तैयार हो रहे सारे विद्रोही आन्दोलनों को दबा दिया। उदाहरण के लिए यही काम श्री कार्ल फ़ोग्ट ने नुरेम्बर्ग में किया। उन लोगों ने सैक्सनी, राइनी प्रशा, वेस्टफ़ेलिया के विद्रोहों का दमन होने दिया और उन्होंने उन विद्रोहों के मरणोपरान्त प्रशा की सरकार की कठोर पाशविकता के विरुद्ध एक भावुकता भरा विरोध भाव प्रकट करने के अलावा उनकी कोई और मदद नहीं की। उन्होंने दक्षिण जर्मन विद्रोहों के साथ प्रच्छन्न रूप से राजनयिक सम्पर्क रखा लेकिन उन्हें अपनी खुली मान्यता के जरिए कभी समर्थन प्रदान नहीं किया। वे जानते थे कि शाही रीजेंट सरकारों का साथ दे रहा था। फिर भी उन्होंने

* साहस, साहस, फिर साहस! – सं०

उससे, जिसने कभी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, इन सरकारों की तिकड़मों का विरोध करने के लिए कहा। शाही मंत्री, पुराने अनुदारपंथी हर अधिवेशन में इस अशक्त सभा का मज़ाक़ उड़ाया करते थे और वे लोग उसे सहन करते रहे। और जब विल्हेल्म वोल्फ़ नामक एक सिलेशियाई सदस्य ने, जो «*Neue Rheinische Zeitung*» के सम्पादकों में से एक था, उनसे शाही रीजेंट* को–जो, वोल्फ़ ने ठीक ही कहा, साम्राज्य के प्रथम तथा सबसे बड़े ग़द्दार के अलावा और कुछ नहीं था–ग़ैरक़ानूनी घोषित करने के लिए कहा तो उन जनवादी क्रान्तिकारियों ने अपने सर्वसम्मत और नेक रोष के ज़रिए हंगामा मचा दिया! संक्षेप में वे लोग बातें करते रहे, विरोध करते चले गये, उद्घोषणाएं करते रहे, घोषणाएं करते रहे परन्तु उनमें कार्रवाई करने की न तो कभी हिम्मत रही और न अक़्ल। उधर उनके शत्रुओं, सरकारों के सैनिक निरन्तर समीप आते जा रहे थे और उनकी अपनी कार्यकारी सत्ता याने शाही रीजेंट उन्हें जल्दी से नष्ट करने के लिए जर्मन राजाओं के साथ षड्यंत्र रचने में व्यस्त थी। इस तरह यह घृणित सभा अपनी रही-सही प्रतिष्ठा भी खो बैठी थी; उसकी रक्षा के लिए उठ खड़े होनेवाले विद्रोहियों ने उसकी चिन्ता करना छोड़ दिया; और अन्ततः जब वह अपने शर्मनाक अन्तिम छोर पर पहुंची तो हम देखेंगे कि वह इस तरह मृत्यु के मुंह में पहुंची कि किसी ने भी उसकी अपमानजनक विदाई की ओर ध्यान तक नहीं दिया।

लन्दन, अगस्त १८५२

१८

छोटे व्यवसायी

पिछले लेख में हमने यह दिखाया था कि एक ओर जर्मन सरकारों और दूसरी ओर फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद के बीच संघर्ष ने अन्ततः इतना अधिक भयंकर रूप धारण कर लिया था कि मई के प्रथम दिनों में जर्मनी के एक बड़े हिस्से में खुले विद्रोह शुरू हुए–पहले ड्रेस्डेन में, फिर बवेरियाई फाल्ज़ और राइनी प्रशा के हिस्सों में और अन्ततः बाडेन में।

---

*जोहान। – सं०

सभी मामलों में विद्रोहियों का **वास्तविक संघर्षशील** भाग, सबसे पहले हथियार उठानेवाला और सैनिकों से टक्कर लेनेवाला भाग **शहरों के मेहनतकश वर्गों** का था। देहातों की अधिक दरिद्र आबादी का एक हिस्सा – खेत-मज़दूर और छोटे किसान – संघर्ष के वास्तविक रूप से छिड़ने के बाद ही उनके साथ शामिल हुए। पूंजीपति वर्ग के नीचे के तमाम वर्गों के नौजवानों की बड़ी तादाद कम से कम कुछ समय तक विद्रोहियों की सेना के साथ थी। परन्तु हालात के कुछ पहलुओं ने ज्यों ही कुछ गम्भीर मोड़ लिया, नौजवान लोगों की यह एक तरह की रंगबिरंगी भीड़ जल्द छंटने लगी। ख़ास तौर पर छात्र लोग, "बौद्धिकता के प्रतिनिधि" – वे अपने को इस नाम से पुकारना पसन्द करते थे – अपना झंडा छोड़कर सबसे पहले भागनेवालों में होते थे बशर्ते उन्हें अफ़सरों का ओहदा देकर, जिसके लिए उनके पास निस्सन्देह विरले ही कोई योग्यता होती थी, न रोक लिया जाता।

मज़दूर वर्ग इस विद्रोह में उसी तरह शामिल हुआ जिस तरह वह किसी भी ऐसे अन्य विद्रोह में शामिल होता जो या तो राजनीतिक प्रभुत्व और सामाजिक क्रान्ति की ओर उसकी अग्रगति की राह से बाधा हटाने का या फिर समाज के अधिक प्रभावशाली परन्तु कम साहसी वर्गों को उससे ज्यादा निश्चित और क्रान्तिकारी मार्ग से बांधे रखने का वायदा करता जिस पर वे अब तक चलते आये थे। मज़दूर वर्ग ने इस बात की पूरी जानकारी के साथ हथियार उठाये थे कि जहां तक उसके प्रत्यक्ष लक्ष्य का सम्बन्ध है, यह उसकी अपनी लड़ाई नहीं थी। परन्तु उसने अपनी एकमात्र सच्ची कार्यनीति का अनुसरण किया। यह कार्यनीति थी – किसी भी ऐसे वर्ग को, जो उसके कंधों पर खड़ा हो (जैसे पूंजीपति वर्ग ने १८४८ में किया था) अपनी वर्ग प्रभुता तब तक सुदृढ़ न बनाने देना, जब तक मज़दूर वर्ग के लिए कम से कम अपने हितों के वास्ते संघर्ष करने की काफ़ी गुंजाइश न रहे। कुछ भी हो, मज़दूर वर्ग ने इस लक्ष्य का अनुसरण किया कि हालात को संकट के बिन्दु पर पहुंचा दिया जाये जिसके ज़रिए या तो राष्ट्र को दृढ़तापूर्वक तथा अरोध्य ढंग से क्रान्तिकारी पथ पर आगे बढ़ाया जा सके या फिर क्रान्ति से पहले का status quo फिर से यथासंभव क़ायम किया जा सके और इस तरह एक नयी क्रान्ति अपरिहार्य बनायी जा सके। दोनों मामलों में मेहनतकश वर्ग समूचे राष्ट्र के वास्तविक तथा सुस्पष्ट हित का प्रतिनिधित्व कर रहे थे – क्रान्तिकारी प्रवाह की रफ़्तार को यथासम्भव तेज़ करना, जो सभ्य यूरोप के पुराने समाजों के लिए अब ऐतिहासिक आवश्यकता बन गया है, और

जिसके बिना उनमें से कोई भी अपनी शक्तियों के अधिक निर्विघ्न तथा नियमित विकास की कल्पना नहीं कर सकता।

जहां तक विद्रोह में शामिल होनेवाले देहात के लोगों का सम्बन्ध था, उन्हें कर प्रणाली के अपेक्षाकृत भारी बोझ ने तथा अंशतः सामन्ती बोझों ने, जो उनकी कमर तोड़ रहे थे, क्रान्तिकारी पार्टी के पास पहुंचा दिया। अपनी कोई पहल के अभाव के कारण वे विद्रोह में शामिल अन्य वर्गों के पुच्छल्ले बन जाते और कभी मेहनतकश लोगों की ओर तो कभी छोटे व्यावसायिक वर्ग की ओर लुढ़कते रहते। वे किधर लुढ़कते थे, यह चीज प्रायः हर मामले में उनकी सामाजिक स्थिति पर निर्भर करती थी। खेतिहर मजदूर आम तौर पर शहर के मजदूर का समर्थन करता था और छोटे किसानों में छोटे दुकानदारों के साथ मिलकर चलने की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती थी।

छोटे व्यवसायियों के इस वर्ग को, जिसका बहुत बड़ा प्रभाव तथा महत्व हम पहले कई बार दिखा चुके हैं, मई १८४९ के विद्रोह का नेतृत्वकारी वर्ग माना जा सकता है। इस बार जर्मनी के बड़े शहरों में से कोई भी आन्दोलन का केन्द्र नहीं था, इस कारण छोटे व्यावसायिक वर्ग को, जिसका मध्यम और अपेक्षाकृत छोटे शहरों में दबदबा होता था, आन्दोलन के पथ-प्रदर्शन का कार्य अपने हाथ में लेने के साधन मिल गये। इसके अलावा हम यह भी देख चुके हैं कि शाही संविधान और जर्मन संसद के अधिकारों के लिए संघर्ष में इस वर्ग विशेष के हित दांव पर थे। सारे विद्रोही क्षेत्रों में गठित अस्थायी सरकारों में से हरेक की बहुसंख्या जनता के इस हिस्से का प्रतिनिधित्व करती थी। और वे जिस हद तक आगे बढ़ीं, उसे जर्मन निम्नपूंजीपति वर्ग की क्षमता को मापने का इस कारण अच्छा-खासा पैमाना माना जा सकता है। जैसा कि हम देखेंगे, जो कोई आन्दोलन अपनी बागडोर उसके हाथों में सौंपता है, उसे यह निम्नपूंजीपति वर्ग केवल तबाह ही कर सकता है और कुछ नहीं।

निम्नपूंजीपति वर्ग डींगें हांकने में बहुत आगे होता है, लेकिन कार्यकलाप में बहुत अशक्त होता है तथा कोई भी जोखिम उठाने से बहुत दूर भागता है। उसके वाणिज्यिक लेन-देनों तथा साख सम्बन्धी कारोबार की तुच्छ प्रकृति उसके पूरे स्वरूप पर अपना प्रभाव छोड़ती है और उसे किसी भी प्रकार की क्रियाशीलता तथा उद्यमशीलता से वंचित करती है; इसलिए यह अपेक्षा की जा सकती थी कि उसका राजनीतिक कार्यकलाप भी इसी तरह का होगा। वास्तव में निम्नपूंजीपति वर्ग ने इस बारे में कि वह क्या करने जा रहा है, बड़ी-बड़ी बातें कर तथा लम्बी

डींगें हांककर विद्रोह को प्रोत्साहित किया। विद्रोह के छिड़ते ही, जो वह नहीं चाहता था, वह सत्ता हथियाने के लिए उत्सुक था। उसने सत्ता को और किसी चीज़ के लिए नहीं, केवल विद्रोह के प्रभावों को नष्ट करने के लिए इस्तेमाल किया। सशस्त्र संघर्ष ने हालात को जहां कहीं पराकाष्ठा पर पहुंचाया, दुकानदार पैदा की गयी ख़तरनाक स्थिति को देखकर हक्के-बक्के रह गये, उन लोगों को देखकर हक्के-बक्के रह गये जिन्होंने हथियार उठाने की उनकी डींग भरी अपीलों को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार किया; वे हक्के-बक्के रह गये अपने हाथों में ठूंस दी गयी सत्ता को देखकर; वे हक्के-बक्के रह गये सर्वोपरि अपने लिए, अपनी सामाजिक स्थिति, अपनी सम्पत्ति के लिए उस नीति के परिणामों को देखकर जिसे अपनाने के लिए वे बाधित हुए थे। क्या उनसे विद्रोह की ख़ातिर "जीवन और सम्पत्ति" को ख़तरे में डालने की—जैसा कि वे कहा करते थे—अपेक्षा की गयी थी? क्या वे विद्रोह में अधिकृत स्थिति अपनाने के लिए बाधित नहीं हुए थे जिसमें पराजय की दशा में उनके लिए अपनी पूंजी से हाथ धो बैठने का ख़तरा था? और विजय की सूरत में उन्हें क्या इस बात का यक़ीन नहीं था कि विजयी सर्वहारा, जो उनकी जुझारू फ़ौज के मुख्य निकाय थे, उन्हें तुरन्त सत्ता से बाहर खदेड़ देंगे तथा उनकी पूरी नीति को उलट देंगे? इस तरह अपने को दो परस्परविरोधी ख़तरों के बीच पाकर निम्नपूंजीपति वर्ग ने अपनी सत्ता का केवल इसी चीज़ के लिए उपयोग किया कि हर चीज़ भाग्य के सहारे छोड़ दी जाये। सफलता की जो थोड़ी-बहुत गुंजाइश हो सकती थी, वह भी निस्सन्देह ख़त्म हो गयी और इस तरह विद्रोह पूरी तरह चौपट हो गया। उसकी नीति, बल्कि कहना चाहिए कि नीति का अभाव, सर्वत्र एक जैसा था, इसलिए जर्मनी के तमाम भागों में मई १८४९ के विद्रोह एक ही सांचे में ढले हुए थे।

ड्रेस्डेन में संघर्ष नगर की सड़कों पर चार दिन तक चलता रहा। ड्रेस्डेन के निम्नपूंजीपतियों ने, "शहरी गार्ड" से लड़ना तो रहा दूर, कई मौक़ों पर उन्होंने विद्रोहियों के विरुद्ध सैनिकों की कार्रवाइयों का साथ दिया। विद्रोही क़रीब-क़रीब विशुद्ध रूप से आस-पड़ोस के औद्योगिक ज़िलों के मेहनतकश लोग थे। उन्हें **मिख़ाईल बकूनिन नामक रूसी उत्प्रवासी के रूप में एक योग्य तथा शान्तचित्त कमांडर** मिल गया जिसे आगे चलकर बन्दी बना लिया गया और जो इस समय हंगरी में मुन्काच* क़िले में बन्द है। बहुत बड़ी संख्या में प्रशियाई सैनिकों द्वारा किये गये हस्तक्षेप ने इस विद्रोह को कुचल दिया।

---

*उक्रइनी नाम है मुकाचेवो।—सं०

राइनी प्रशा में वास्तविक संघर्ष का कोई महत्व नहीं था। चूंकि सारे बड़े शहर दीवारों से घिरे क़िले थे, इसलिए वहां विद्रोही केवल छुटपुट झड़पें ही कर सकते थे। ज्यों ही सैनिक पर्याप्त संख्या में जमा हो गये, सशस्त्र विरोध का अन्त हो गया।

इसके विपरीत फाल्ज़ और बाडेन में विद्रोहियों ने एक समृद्ध तथा उर्वर प्रान्त और एक पूरे राज्य पर क़ब्ज़ा कर डाला। यहां धन, हथियार, सैनिक, सामारिक सामग्री – सब चीज़ें उपयोग के लिए मौजूद थीं। नियमित सेना के सिपाही स्वयं विद्रोहियों में शामिल हो गये; इससे भी बढ़कर बाडेन में वे तो सबसे आगे की क़तारों में थे। सैक्सनी और राइनी प्रशा में विद्रोहों ने इस दक्षिण जर्मन आन्दोलन के लिए समय हासिल करने के वास्ते अपनी बलि दे दी थी। प्रान्तीय तथा आंशिक विद्रोहों के लिए इससे बढ़कर अनुकूल परिस्थिति पहले कभी नहीं थी। पेरिस में क्रान्ति की अपेक्षा की जा रही थी, हंगेरियाई वियेना के दरवाज़े पर खड़े थे, जर्मनी के मध्यवर्ती राज्यों में जनता ही नहीं, वरन् सैनिक तक विद्रोह के पक्ष में थे और उसमें खुले तौर पर शामिल होने का केवल मौक़ा ढूंढ़ रहे थे। फिर भी एक बार आन्दोलन निम्नपूंजीपतियों के हाथों में पड़ जाने पर शुरू से ही चौपट होने लग गया। निम्नपूंजीपति शासक, विशेष रूप से बाडेन के निम्नपूंजीपति शासक – श्री ब्रेंटानो उनका अगुवा था – कभी यह बात नहीं भूले कि "वैध" प्रभुसत्ताधारी, ग्रांड ड्यूक का पद तथा परमाधिकार हड़पकर वे राजद्रोह कर रहे हैं। वे अपने हृदयों में अपराध भावना लेकर मंत्रियों की आरामकुर्सियों पर बैठे। ऐसे कायरों से क्या अपेक्षा की जा सकती थी? उन्होंने विद्रोह को उसके केन्द्रहीन और इस कारण कारगरताशून्य स्वतःस्फूर्तता के हवाले ही नहीं छोड़ दिया, बल्कि उन्होंने वस्तुतः आन्दोलन को स्फूर्ति से वंचित करने, उसे दुर्बल बनाने तथा उसे नष्ट करने के लिए कुछ भी नहीं उठा रखा। और वे विचारों की गहनता वाले राजनीतिज्ञों के उस वर्ग की, निम्नपूंजीपति वर्ग के उन "जनवादी" सूरमाओं की बदौलत सफल हो गये, जो सचमुच यह सोच रहे थे कि वे "देश को बचा रहे हैं", जबकि ब्रेंटानो जैसे चन्द दक्ष लोगों को उन्होंने अपनी नकेल पकड़ने दी और उन्हें अपना नेतृत्व करने दिया।

जहां तक मामले के सैन्य पहलू से सम्बन्ध है, फ़ौजी कार्रवाइयां इतनी लापरवाही, इतनी नासमझी से पहले कभी नहीं की गयी थीं जितनी बाडेनी प्रधान सेनापति, नियमित सेना के भूतपूर्व लेफ़्टीनेंट ज़ीगेल के नेतृत्व में हुईं। सब कुछ गड्डमड्ड हो गया, हर सुयोग हाथ से निकल गया, हर क़ीमती क्षण विराट परन्तु

अव्यावहारिक योजनाएं बनाने पर बर्बाद किया गया और जब अन्ततः प्रतिभाशाली पोल मेरोस्लाव्स्की ने कमान सम्भाली, तब तक सेना अव्यवस्थित हो चुकी थी, पिट चुकी थी, उसका हौसला पस्त हो चुका था, उसके पास रसद की कमी थी और उसका चौगुनी ज्यादा संख्या वाले शत्रु से मुक़ाबला था। और मेरोस्लाव्स्की के लिए इसके अलावा और कोई चारा नहीं रह गया था कि वह वागहाइसेल में शानदार परन्तु विफल लड़ाई करे, चतुराई भरे ढंग से पीछे हटे, राष्टाट की दीवालों के पास अन्तिम, नैराश्यपूर्ण टक्कर दे तथा इस्तीफ़ा दे दे। विद्रोह से सम्बन्धित हर लड़ाई की तरह, जिसमें सेनाओं में सुप्रशिक्षित सिपाही तथा बिल्कुल नये रंगरूट इकट्ठा रहते हैं, क्रान्तिकारी सेना में भी काफ़ी वीरता तथा काफ़ी असैनिकोचित, प्रायः अकल्पनीय घबराहट रहती थी। उसका असर्वांगपूर्ण होना स्वाभाविक था, फिर भी उसे कम से कम इस बात का सन्तोष तो था कि उसे परास्त करने के लिए ऐसी सेना को पर्याप्त नहीं माना गया जिसके सैनिकों की संख्या उससे चौगुनी ज्यादा थी तथा बीस हजार विद्रोहियो के विरुद्ध अभियान में एक लाख नियमित सिपाहियों ने सैनिक दृष्टि से उसके प्रति ऐसे आदर भाव का परिचय दिया मानों उन्हें नेपोलियन के पुराने गार्ड से टक्कर लेनी पड़ रही हो।

मई में विद्रोह छिड़ गया; जुलाई १८४९ के मध्य तक उसे पूरी तरह दबा दिया गया तथा प्रथम जर्मन क्रान्ति का पटाक्षेप हो गया।

१९

विद्रोह का पटाक्षेप

जहां जर्मनी के दक्षिण तथा पश्चिम में खुला विद्रोह हो रहा था और जहां ड्रेस्डेन में पहली खुली टक्करों से लेकर राष्टाट में समर्पण तक सरकारों को पहली जर्मन क्रान्ति के इस अन्तिम विस्फोट को दबाने में दस से अधिक सप्ताह लगे, वहां राष्ट्रीय सभा राजनीतिक रंगमंच से इस तरह ग़ायब हो गयी कि उसकी ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया।

हम फ़्रैंकफ़ुर्ट के इस उदात्त निकाय को घबड़ाहट की हालत में छोड़ आये थे, वह अपनी प्रतिष्ठा पर सरकारों द्वारा किये गये उद्धततापूर्ण प्रहारों से, स्वयं उसके अपने हाथों में तैयार केन्द्रीय सत्ता की अशक्तता तथा ग़द्दारी से भरी अकर्मण्यता

से, अपनी हिफ़ाज़त के लिए छोटे व्यावसायिक वर्ग के विद्रोहों से तथा अधिक क्रान्तिकारी लक्ष्य के लिए मज़दूर वर्ग के विद्रोहों से घबड़ायी हुई थी। उसके सदस्यों में बेसहारेपन तथा निराशा की भावना छायी हुई थी; घटनाओं ने तत्काल ऐसा निश्चित तथा निर्णायक रूप ग्रहण कर लिया था कि अपनी वास्तविक शक्ति तथा प्रभाव के बारे में इन विद्वान संविधान निर्माताओं की भ्रान्तियां चन्द दिनों के अन्दर पूरी तरह चकनाचूर हो गयीं। अपनी-अपनी सरकारों के संकेत पर अनुदारपंथी उस संस्था से पृथक हो गये जो वैध सत्ता की अवज्ञा करने के अलावा और किसी तरह जीवित नहीं रह सकती थी। उदारपंथियों ने सरासर परेशानी की हालत में उसे हारी हुई बाज़ी माना और उन्होंने भी अपने सदस्यों के अधिकार त्याग दिये। माननीय सज्जन सैकड़ों की संख्या में भाग गये। आठ या नौ सौ की संख्या इतनी तेज़ी से घटती चली गयी कि पहले १५० और फिर १०० की संख्या को कोरम घोषित कर दिया गया। इतने सदस्य भी जमा करना मुश्किल हो रहा था हालांकि पूरी जनवादी पार्टी सभा में मौजूद रही।

संसद में बचे-खुचे लोगों को जो रास्ता अपनाना चाहिए था, वह स्पष्ट था। ज़रूरत केवल इस बात की थी कि वे खुलेआम और निर्णायक रूप से विद्रोह का साथ देते और इस तरह वैधता उसे जो भी शक्ति दे पाती, उसे देते तथा अपनी रक्षा के लिए स्वयं एक सेना हासिल करते। वे केन्द्रीय सत्ता को सारी लड़ाइयां तत्काल बन्द करने का आदेश देते। परन्तु जैसा कि पहले से ही देखा जा सकता था कि यह शक्ति न तो ऐसा करती और न कर सकती थी, उस दशा में उसे तुरन्त बर्खास्त कर उसकी जगह अधिक जोशीली सरकार क़ायम करते। यदि विद्रोही सैनिकों को फ़्रैंकफ़ुर्ट नहीं लाया जा सकता था (यह शुरू में आसानी से किया जा सकता था जब राज्यों की सरकारें बहुत कम तैयार थीं और जो उस समय तक असमंजस में ही थीं), तो सभा तुरन्त विद्रोही क्षेत्र में स्थानान्तरित हो सकती थी। यदि यह सब काम मई के मध्य या अन्त तक झटपट और दृढ़तापूर्वक कर दिया जाता तो वह विद्रोह तथा राष्ट्रीय सभा दोनों के लिए सफलता के द्वार खोल सकता था।

परन्तु जर्मन वणिकतंत्र से इस प्रकार का निश्चित मार्ग अपनाये जाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। ये महत्वाकांक्षी राजनेता अपनी भ्रान्तियों से क़तई मुक्त नहीं थे। जो सदस्य संसद की शक्ति तथा अनुल्लंघनीयता में अपनी घातक आस्था खो बैठे थे, वे दुम दबाकर भाग खड़े हुए। बाक़ी बचे रह गये जनवादियों को सत्ता तथा महानता के उन स्वप्नों को छोड़ने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सका

जिन्हें वे बारह महीने से संजोते आये थे। अब तक वे जिस रास्ते को अपनाये हुए थे, उसके प्रति निष्ठावान रहकर वे निर्णायक कार्रवाई से तब तक भागते रहे जब तक सफलता के सारे मौके, कहना चाहिए कम से कम युद्ध के गौरव के साथ धराशायी होने के सारे मौक़े हाथ से निकल नहीं गये। तब दिखावटी, व्यर्थ की दौड़धूप बढ़ाने के लिए, जिनकी नितान्त शक्तिहीनता और बड़ी दाम्भिकता मिलकर उनके प्रति केवल दया और उपहास के भाव ही पैदा कर सकती थीं, उन्होंने शाही रीजेंट के नाम, जिसने उनकी ओर नज़र तक नहीं घुमायी, मंत्रियों के नाम, जिनकी दुश्मन से खुली सांठ-गांठ थी, प्रस्ताव, सन्देश तथा निवेदनपत्र भेजना जारी रखा। और अन्ततः जब **विल्हेल्म वोल्फ़** ने जो श्त्रीगाउ* का प्रतिनिधि और «*New Rhenish Gazette*» के सम्पादकों में से एक था तथा पूरी सभा में एकमात्र वास्तविक क्रान्तिकारी व्यक्ति था, उनसे कहा कि यदि उनका अभिप्राय सचमुच वही है जो वे कह रहे हैं तो बेहतर यही है कि वे बातें करना बन्द करें तथा शाही रीजेंट को, देश के सबसे बड़े ग़द्दार को तुरन्त ग़ैरक़ानूनी घोषित करें, तब इन संसदीय सज्जनों का पूरा दबा पड़ा रोष इतनी शक्ति के साथ फूट पड़ा जितनी उनके पास उस समय भी नहीं थी जब शाही सरकार ने निरन्तर उनका अपमान किया था। निस्सन्देह **वोल्फ़** की प्रस्थापना सेंट पाल चर्च[54] में कही गयी पहली विवेकपूर्ण उक्ति थी; निस्सन्देह यही एकमात्र ऐसा काम था जो किया जाना चाहिए था—और ऐसी सीधी-सरल भाषा, जो सीधे उद्देश्य के मर्म तक पहुंचती थी, उन भावुकों की मंडली को अपमानित किये बिना नहीं रह सकती थी जो अपनी संकल्पहीनता के अलावा और किसी वस्तु में कृतसंकल्प नहीं थे और जिन्होंने कार्रवाई करने में अत्यन्त कायर होने के कारण अपने दिमाग़ में हमेशा के लिए निश्चय कर लिया था कि कुछ भी न करके वे ठीक वही कर रहे हैं जो किया जाना चाहिए। हर ऐसा शब्द, जो उनके मस्तिष्कों में इरादतन उत्पन्न अस्पष्टता को बिजली की कौंध की तरह साफ़ कर देता, हर वह प्रस्ताव, जिसमें उन्हें उस भूलभुलैये से बाहर निकालने की क्षमता थी जिसमें, जितनी देर सम्भव हो, ठहरे रहने की उन्होंने ज़िद पकड़ ली थी, वस्तुस्थिति के यथार्थ रूप के प्रति निर्मल दृष्टिकोण—यह सब निस्सन्देह इस सर्वसत्ताधारी सभा की शान के खिलाफ़ अपराध था।

प्रस्तावों, अपीलों, प्रश्नों तथा घोषणाओं के बावजूद अपनी स्थिति असुरक्षित

---

*पोलिश नाम है स्त्शेगोम। —सं०

हो जाने के शीघ्र ही बाद फ़्रैंकफ़ुर्ट के ये माननीय सज्जन पीछे हटे परन्तु विद्रोहियों के क्षेत्रों में नहीं। यह तो बहुत दृढ़तापूर्ण पग होता। वे स्टुटगार्ट पहुंचे जहां वुर्टेम्बर्ग सरकार एक तरह की प्रतीक्षात्मक तटस्थता अपनायी हुई थी। वहां अन्ततः उन्होंने घोषणा की कि शाही रीजेंट अपने अधिकार से वंचित कर दिया गया है। उन्होंने अपने निकाय से पांच व्यक्तियों की एक रीजेंसी निर्वाचित की। इस रीजेंसी ने तुरन्त नागरिक सेना क़ानून पास कर दिया जिसे आधिकारिक रूप में जर्मनी की तमाम सरकारों के पास भेज दिया गया। उन लोगों को, सभा के दुश्मनों को ही उसकी रक्षा के लिए शक्ति एकत्र करने का आदेश दिया गया! तब राष्ट्रीय सभा की हिफ़ाज़त के लिए एक सेना का निर्माण किया गया—निस्सन्देह काग़ज़ पर। डिवीजन, ब्रिगेड, रेजीमेंट, टुकड़ियां, हर चीज़ नियमित और निर्दिष्ट थी। वास्तविकता के सिवाय बाक़ी और किसी चीज़ की कमी नहीं थी क्योंकि उस सेना ने वस्तुतः कभी जन्म लिया ही नहीं।

एक अन्तिम योजना स्वयं राष्ट्रीय सभा के समक्ष प्रस्तुत हुई। देश के तमाम भागों से जनवादी आबादी ने अपनी सेवाएं अर्पित करने तथा उससे निर्णायक कार्रवाई का आग्रह करने के लिए प्रतिनिधिमण्डल संसद के पास भेजे। लोगों को पता था कि वुर्टेम्बर्ग सरकार के इरादे क्या थे, इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय सभा पर ज़ोर दिया कि वह इस सरकार को अपने विद्रोही पड़ोसियों के साथ खुले तौर पर और सक्रिय रूप से साथ देने के लिए मजबूर करे। लेकिन व्यर्थ। राष्ट्रीय सभा ने स्टुटगार्ट जाकर अपने को वुर्टेम्बर्ग सरकार की दया-अनुकम्पा के हवाले कर दिया था। सदस्यों को यह पता था तथा उन्होंने लोगों के बीच आन्दोलन को दबा दिया। इस तरह वे उस प्रभाव के अवशेष भी खो बैठे जो अब भी वे अपने पास बरक़रार रख सकते थे। उन्होंने अपने प्रति घृणा अर्जित की जिसके वे पात्र थे। वुर्टेम्बर्ग सरकार ने प्रशा तथा शाही रीजेंट के दबाव पर, १८ जून १८४९ को संसद का अधिवेशन कक्ष बन्द कर तथा रीजेंसी के सदस्यों को देश छोड़ने का आदेश देकर जनवादी तमाशे का अन्त कर दिया।

फिर वे बाडेन गये—विद्रोहियों के खेमे में। परन्तु वहां वे अब बेकार थे। किसी ने उनकी ओर नज़र भी नहीं घुमायी। परन्तु रीजेंसी ने सर्वसत्ताधारी जर्मन जनता के नाम पर अपने प्रयासों से मातृभूमि की रक्षा करना जारी रखा। उसने हर उस किसी को पासपोर्ट देकर, जो उसे स्वीकार कर लेता, विदेशी शक्तियों से मान्यता प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने घोषणाएं जारी कीं तथा वुर्टेम्बर्ग के ठीक उन जिलों में, जिनकी सक्रिय सहायता वह समय रहते इन्कार

कर चुकी थी, विद्रोह कराने के लिए कमिश्नर भेजे। निस्सन्देह इसका कोई नतीजा हाथ नहीं लगा। अब हमारी आंखों के सामने रोस्सलर (एल्स* के प्रतिनिधि) नामक एक कमिश्नर की रीजेंसी को भेजी गई मूल रिपोर्ट है जिसकी विषय-सामग्री, कहना चाहिए, लाक्षणिक है। इस रिपोर्ट पर ३० जून १८४६ की तारीख पड़ी हुई है। नक़द धन की निष्फल तलाश के लिए आधे दर्जन कमिश्नरों की भाग-दौड़ का वर्णन करने के बाद वह यह बताने के लिए बहानों का सिलसिला पेश करता है कि वह अभी तक क्यों अपने पद पर वापस नहीं लौटा है। फिर वह एक बहुत ज़ोरदार तर्क पेश करता है जिसमें प्रशा, आस्ट्रिया, बवेरिया तथा वुर्टेम्बर्ग के मध्य सम्भावित मतभेदों और उनके सम्भावित परिणामों का ख़्याल रखने की बात कही गयी है। परन्तु इन सब बातों पर पूरी तरह ग़ौर कर चुकने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अब कोई मौक़ा बाक़ी नहीं रह गया है। फिर वह प्रस्ताव करता है कि गुप्त सूचनाएं भेजने के वास्ते विश्वसनीय लोगों की एक शृंखला और वुर्टेम्बर्ग मंत्रिमण्डल के इरादों और सैनिकों की गतिविधियों के सिलसिले में जासूसी व्यवस्था की स्थापना की जाये। यह चिट्ठी निर्दिष्ट पते पर नहीं पहुंच पायी क्योंकि जिस समय यह लिखी गयी थी, "रीजेंसी" पूर्णतया "विदेश विभाग" में यानी स्विट्ज़रलैंड में पहुंच चुकी थी; और इधर बेचारा रोस्सलर जिस समय एक सर्वथा नगण्य राज्य के भयावह मंत्रिमण्डल के इरादों के बारे में माथापच्ची कर रहा था, उस समय एक लाख प्रशियाई, बवेरियाई तथा हेस्सेनियाई सैनिक राष्टाट की दीवालों के पास आख़िरी लड़ाई में पूरा मामला निपटा चुके थे।

इस प्रकार जर्मन संसद तथा उसके साथ क्रान्ति की पहली और अन्तिम कृति भी लुप्त हो गयी। उसका समाह्वान इस बात का पहला प्रमाण था कि जर्मनी में वस्तुतः क्रान्ति **हुई थी**; वह तब तक अस्तित्वमान रही जब तक इसका, प्रथम आधुनिक जर्मन क्रान्ति का पटाक्षेप नहीं हुआ था। पूंजीपति वर्ग के प्रभाव के अन्तर्गत छिन्न-भिन्न, बिखरी हुई देहाती आबादी द्वारा, जिसका अधिकांश भाग सामन्तवादी गूंगेपन से छुटकारा पाकर पहली बार जाग रहा था, चुनी गयी इस संसद ने १८२०–१८४८ के तमाम बड़े लोकप्रिय नामों को एक निकाय के रूप में राजनीतिक अखाड़े में लाने और फिर उन्हें पूरी तरह नष्ट करने का काम किया। मध्यम वर्गीय उदारपंथ के सारे प्रसिद्धिप्राप्त लोग यहां जमा थे। पूंजीपति

---

*पोलिश नाम है ओलेस्नित्सा।—सं०

वर्ग चमत्कारों की आशा लगाये बैठा था, पर उसने अपने तथा अपने प्रतिनिधियों की नाक कटवा दी। औद्योगिक और वाणिज्यिक पूंजीपति वर्ग की किसी भी अन्य देश की तुलना में जर्मनी में सबसे क़रारी शिकस्त हुई। पहले उसे जर्मनी के एक-एक राज्य में परास्त किया गया, उसकी कमर तोड़ी गयी, सरकारी पदों से उसे निकाल बाहर किया गया और फिर केन्द्रीय जर्मन संसद में उसे पछाड़ा गया, बेइज़्ज़त किया गया और उसका मज़ाक़ उड़ाया गया। राजनीतिक उदारपंथ – पूंजीपति वर्ग का शासन – वह चाहे सरकार के राजतंत्रीय रूप के अन्तर्गत हो अथवा जनतंत्रीय रूप के – जर्मनी में सदा-सर्वदा के लिए असम्भव हो गया।

अपने अस्तित्व की अन्तिम अवधि में जर्मन संसद ने उस पार्टी को हमेशा के लिए अपमानित करने का काम किया जिसने मार्च १८४८ से बराबर सरकारी विपक्ष का नेतृत्व किया था, यह थी जनवादी पार्टी जो छोटे व्यवसायियों, और आंशिक रूप से कृषक समुदाय के हितों का प्रतिनिधित्व करती थी। मई और जून १८४९ में इस वर्ग को जर्मनी में एक स्थायी सरकार की स्थापना करने की अपनी योग्यता दिखाने का मौक़ा दिया गया था। हम देख चुके हैं कि वह कैसे विफल रहा: उसे इतना प्रतिकूल परिस्थितियों ने पराजित नहीं किया जितना उसे क्रान्ति के छिड़ने के बाद सामने आनेवाले सारे कठिन आन्दोलनों के दौरान वास्तविक और निरन्तर कायरता ने, राजनीति में उसी अदूरदर्शी, कायरतापूर्ण, ढुलमुल भावना के प्रदर्शन ने पराजित किया था जो समस्त वाणिज्यिक कारोबार की विशिष्टता हुआ करती है। मई १८४९ में इस मार्ग पर चलने के कारण वह समस्त यूरोपीय विद्रोहों के वास्तविक संघर्षशील जनसमूह का, मजदूर वर्ग का विश्वास खो बैठा था। इसके बावजूद उसके लिए काफ़ी मौक़ा था। प्रतिक्रियावादियों तथा उदारपंथियों के हटने के बाद जर्मन संसद पूर्णतया उसके हाथों में आ चुकी थी। देहाती आबादी उसके पक्ष में थी। छोटे राज्यों की फ़ौजों का दो-तिहाई भाग, प्रशियाई फ़ौज का एक-तिहाई भाग तथा प्रशियाई लांदवेर (रिज़र्व अथवा जन-सेना) की बहुसंख्या उसके साथ आ मिलने के लिए तैयार थी, बशर्ते वह ऐसे दृढ़तापूर्वक तथा साहस के साथ काम करता जो परिस्थितियों की स्पष्ट समझ का फल होता है। परन्तु इस वर्ग का जो राजनीतिज्ञ नेतृत्व कर रहे थे, उनकी दृष्टि उन बहुत-सारे छोटे व्यवसायियों से अधिक निर्मल नहीं थी जो उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। वे तो उदारपंथियों की (अधिक अंधे,) तुलना में स्वेच्छया अक्षुण्ण रखी गयी भ्रान्तियों के पीछे अधिक

दीवाने, उनसे अधिक सहज विश्वासी, तथ्यों का सामना करने में अधिक अक्षम सिद्ध हुए। उनका राजनीतिक महत्व भी घटकर हिमांक से नीचे गिर गया है। परन्तु चूंकि वे अपने तुच्छ सिद्धान्तों को क्रियान्वित नहीं कर सके थे, वे **अत्यन्त** अनुकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत क्षणिक पुनरुज्जीवन प्राप्त करने में सक्षम थे बशर्ते उनसे यह अन्तिम आशा उसी तरह न छीन ली गयी होती जिस तरह उसे **लूई बोनापार्त** के राज्य-पर्युत्क्षेपण ने फ़्रांस में "शुद्ध जनवाद" के उनके सहयोगियों से छीन लिया था।

दक्षिण-पश्चिम जर्मन विद्रोह की पराजय तथा जर्मन संसद के विसर्जन के साथ प्रथम जर्मन क्रान्ति के इतिहास का पटाक्षेप हो जाता है। अब हमें प्रतिक्रान्तिकारी गठबंधन के विजयी सदस्यों पर आख़िरी नज़र डालनी है। यह कार्य हम अपने अगले लेख में करेंगे।[55]

लन्दन, २४ सितम्बर १८५२

एंगेल्स द्वारा अगस्त १८५१–सितम्बर १८५२ में लिखित।

२५ और २८ अक्तूबर,
६, ७, १२ और २८ नवम्बर, १८५१;
२७ फ़रवरी, ५, १५, १८ और १९ मार्च, ९, १७,
२४ अप्रैल, २७ जुलाई, १९ अगस्त, १८ सितम्बर, २ तथा २३ अक्तूबर, १८५२ को «*New-York Daily Tribune*» में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

हस्ताक्षर: **कार्ल मार्क्स**

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कोलोन में हाल का मुक़दमा

लन्दन, बुधवार, १ दिसम्बर १८५२

आपको प्रशा के कोलोन नगर में कम्युनिस्टों पर वीभत्स मुक़दमे[56] और उसके परिणामों के बारे में अनेकानेक रिपोर्टें यूरोपीय अख़बारों से मिल चुकी होंगी। परन्तु इनमें से कोई भी रिपोर्ट चूंकि तथ्यों का सच्चा खुलासा जैसी चीज़ नहीं है और ये तथ्य चूंकि उन राजनीतिक साधनों पर तेज़ रोशनी डालते हैं, जिनके ज़रिए यूरोपीय महाद्वीप को बेड़ियों में कसकर रखा जा रहा है, इसलिए मैं इस मुक़दमे की ओर मुड़ना ज़रूरी समझता हूं।

कम्युनिस्ट, या सर्वहारा पार्टी अन्य पार्टियों की ही तरह संघबद्ध होने तथा सभाएं करने के अधिकारों के कुचले जाने के कारण महाद्वीप में अपना क़ानूनी संगठन बनाने का साधन खो बैठी। इसके अलावा उसके नेताओं को अपने देशों से निर्वासित कर दिया गया। कोई भी राजनीतिक पार्टी संगठन के बिना जीवित नहीं रह सकती; और जनवादी दुकानदार वर्ग की तरह अगर उदारपंथी पूंजीपतियों को भी उनकी सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति तथा उनके सदस्यों के मध्य लम्बे अर्से से स्थापित दैनंदिन सम्पर्क काफ़ी हद तक इस तरह का संगठन मुहैया कर सकते थे तो इस प्रकार की सामाजिक स्थिति तथा आर्थिक साधनों से वंचित सर्वहारा वर्ग इस तरह का संगठन गुप्त संघबद्धता में हासिल करने के लिए विवश था। इसीलिए फ़्रांस तथा जर्मनी दोनों जगह वे नाना गुप्त सोसायटियां प्रकट होती चली गयीं जिनमें से एक-एक को पुलिस १८४६ से ही बराबर ढूंढ़ निकालती रही और उन्हें षड्यंत्र रचने के आरोप में सताती रही। लेकिन उनमें से यदि अनेक मौजूदा सरकारों को उलटने के वास्तविक अभिप्राय से गठित की गयी सचमुच षड्यंत्रकारी संस्थाएं थीं–और वह व्यक्ति कायर है जो कतिपय परिस्थितियों के अन्तर्गत षड्यंत्र नहीं रचता, ठीक उसी तरह जिस तरह वह व्यक्ति मूर्ख है जो भिन्न परिस्थितियों में ऐसा करेगा,–तो कुछ ऐसी भी

सोसायटियां थीं जो अधिक व्यापक तथा अधिक उदात्त उद्देश्य के लिए गठित की गयी थीं; उन्हें पता था कि मौजूदा सरकार को उलटना तो विराट आसन्न संघर्ष में एक बीच की कड़ी मात्र है, उनका इरादा पार्टी को, जिसका वे मूल केन्द्रबिन्दु थे, एकजुट करना तथा उसे अन्तिम एवं निर्णायक संग्राम के लिए तैयार करना था जिसे देर-सबेर यूरोप में "निरंकुशों", "स्वेच्छाचारियों" और "हड़पनेवालों" को ही नहीं, वरन् उनसे कहीं अधिक महती, उनसे कहीं अधिक भयंकर शक्ति को, श्रम पर पूंजी के प्रभुत्व को सदा-सर्वदा के लिए पैरों तले रौंद देना होगा।

जर्मनी में अग्रणी कम्युनिस्ट पार्टी[57] का संगठन इसी प्रकार का था। अपने घोषणापत्र (१८४८ में प्रकाशित) के सिद्धान्तों के अनुसार तथा उन सिद्धान्तों के अनुसार, जिनपर *«New-York Daily Tribune»* में **जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति*** पर प्रकाशित लेखमाला में प्रकाश डाला गया था, इस पार्टी ने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि वह किसी भी समय तथा अपनी इच्छानुसार उस क्रान्ति को जन्म देने में सक्षम है जिसे उसके विचारों को क्रियान्वित करना था। उसने १८४८ के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को जन्म देनेवाले कारणों तथा उन्हें विफल बनानेवाले कारणों का अध्ययन किया। समस्त राजनीतिक संघर्षों की जड़ में वर्गों के सामाजिक वैरभाव को स्वीकार करते हुए उसने उन परिस्थितियों का अध्ययन किया जिनके अन्तर्गत समाज के एक वर्ग को किसी राष्ट्र के पूरे हितों का प्रतिनिधित्व करने और इस प्रकार उसपर राजनीतिक दृष्टि से शासन करने का आह्वान किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिए। इतिहास ने कम्युनिस्ट पार्टी को बताया कि मध्य युग में अभिजात भू-स्वामियों के बाद कैसे प्रथम पूंजीपतियों की धन की शक्ति ने जन्म लिया तथा सरकारों की बागडोर छीनकर अपने हाथ में ले ली; पूंजीपतियों के इस **वित्तीय** भाग के सामाजिक प्रभाव तथा राजनीतिक प्रभुत्व को भाप के प्रचलन के बाद **औद्योगिक** पूंजीपतियों की बढ़ती ताक़त ने कैसे उलट दिया, और कैसे इस समय दो और वर्ग, छोटा व्यावसायिक वर्ग और औद्योगिक मज़दूर वर्ग प्रभुत्व की मांग कर रहे हैं। १८४८-१८४९ के व्यावहारिक क्रान्तिकारी अनुभव ने उन सैद्धान्तिक तर्कों की पुष्टि की, जिनके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया कि इससे पहले कि कम्युनिस्ट मज़दूर वर्ग अपने को स्थायी रूप से सत्तारूढ़ करने तथा उजरती

*इस खण्ड के पृष्ठ ७-११६ देखें। -सं०

दासता की उस प्रणाली को, जो उसे पूंजीपति वर्ग के जूए के नीचे रखती है, नष्ट करने की उम्मीद करे, निम्नपूंजीवादी जनवाद को अपनी बारी मिलनी चाहिए। इस प्रकार जर्मनी की **मौजूदा** सरकारों को उलटना कम्युनिस्टों के गुप्त संगठन का प्रत्यक्ष उद्देश्य नहीं हो सकता था। इन्हें नहीं, बल्कि देर-सबेर इनके स्थान पर आनेवाली विद्रोही सरकार को उलटने के लिए गठित होनेवाले कम्युनिस्टों के गुप्त संगठन के सदस्य status quo* के विरुद्ध समय आने पर क्रान्तिकारी आन्दोलन का निजी तौर पर समर्थन कर सकते थे तथा करते भी; परन्तु जनसाधारण में कम्युनिस्ट विचारों को गुप्त रूप से प्रसारित किये जाने के अलावा और किसी तरह इस प्रकार के आन्दोलन की **तैयारी** कम्युनिस्ट लीग का उद्देश्य नहीं हो सकता था। इसके सदस्यों की बहुसंख्या सोसायटी के आधारभूत सिद्धान्त को इतनी अच्छी तरह समझती थी कि जब उसके कुछ लोगों की पदलोलुपता ने ex tempore** क्रान्ति करने के लिए इसे षड्यंत्रकारी संगठन में बदलने का यत्न किया तो उसने उन्हें शीघ्र ही बाहर निकाल दिया।

दुनिया में कहीं भी किसी भी क़ानून के अनुसार इस प्रकार की संघबद्धता को एक साज़िश, किसी घोर राजद्रोह के उद्देश्य से किये जानेवाले षड्यंत्र के नाम से नहीं पुकारा जा सकता। यदि यह षड्यंत्र था भी तो यह मौजूदा सरकार के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि उसके सम्भावित उत्तराधिकारियों के ख़िलाफ़ था। और प्रशियाई सरकार इससे अवगत थी। यही कारण था कि अधिकारियों ने सबसे विचित्र न्यायिक करिश्मा दिखाते हुए ग्यारह प्रतिवादियों को अठारह माह के दौरान एकान्त कारावास में रखा। ज़रा कल्पना तो कीजिये, आठ माह तक हवालात में रखने के बाद बन्दियों को "उनके विरुद्ध जुर्म का कोई सबूत न होने के कारण" फिर से कई महीनों के लिए हिरासत में वापस भेज दिया गया! और जब उन्हें अन्ततः जूरी के सामने लाया गया तो उनके विरुद्ध राजद्रोहात्मक स्वरूप का एक भी प्रत्यक्ष मामला सिद्ध नहीं हो सका। इसके बावजूद उन्हें सज़ा दी गयी और आप अभी देखेंगे कि यह कैसे हुआ।

सोसायटी के एक दूत*** को मई १८५१ में गिरफ़्तार किया गया। उससे बरामद की गयी दस्तावेज़ों के आधार पर दूसरी गिरफ़्तारियां हुईं। **श्टिबर** नामक

* यथास्थिति। – सं०

** बिना किसी तैयारी के। – सं०

*** पीटर नौथयंग। – सं०

एक प्रशियाई पुलिस अफ़सर को लन्दन में काल्पनिक षड्यंत्र के जाल का पता लगाने का तत्काल आदेश दिया गया। वह सोसायटी से अलग हो जानेवाले उपरि-लिखित व्यक्तियों से, जिन्होंने सोसायटी से बाहर निकाल दिये जाने पर पेरिस तथा लन्दन में सचमुच षड्यंत्र संगठित किया था, सम्बन्धित काग़ज़ात हासिल करने में सफल रहा। ये काग़ज़ात दुहरे जुर्म के ज़रिये हासिल किये गये। रेइटर नामक एक व्यक्ति को सोसायटी के सेक्रेटरी* की मेज़ का ताला तोड़ने और वहां से काग़ज़ात चुराने के लिए रिश्वत दी गयी थी। परन्तु यह तो अभी कुछ भी नहीं था। इस चोरी के फलस्वरूप पेरिस में तथाकथित फ़्रांसीसी-जर्मन षड्यंत्र[58] का पता लगाया गया तथा लोगों को दंडित किया गया, परन्तु उससे बड़ी कम्युनिस्ट लीग के बारे में कोई सुराग़ नहीं मिला। प्रसंगतः, पेरिस षड्यंत्र लन्दन में चन्द महत्वाकांक्षी मूर्खों तथा राजनीतिक chevaliers d'industrie** की तथा पेरिस में उस समय पुलिस के जासूस का काम कर रहे एक भूतपूर्व सज़ायाफ़्ता जालसाज़*** की अगुवाई में रचा गया था। उन्होंने आवेशपूर्ण वक्तृत्व तथा घोर रोमांचकारी शब्दाडम्बर का सहारा लेते हुए अपने राजनीतिक अस्तित्व की सरासर तुच्छता को पूरा किया।

प्रशियाई पुलिस को तब नयी खोजें शुरू करनी पड़ीं। उसने लन्दन में प्रशियाई दूतावास में ख़ुफ़िया पुलिस का एक नियमित दफ़्तर खोल दिया। ग्रेइफ़ नामक एक पुलिस जासूस दूतावास के अताशे के पद की आड़ में इस घिनौने कारोबार में जुट गया, यह ऐसा पग था जो तमाम प्रशियाई दूतावासों को अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून की परिधि से बाहर रखने के लिए काफ़ी होता और जिसे उठाने की आस्ट्रियाइयों तक ने हिम्मत नहीं की थी। उसके नीचे फ़्लेरी नामक व्यक्ति काम कर रहा था, वह लन्दन सिटी का व्यापारी था, कुछ धनी था और उसके एक तरह से सम्मानप्राप्त क्षेत्रों से सम्बन्ध थे; वह उन तुच्छ प्राणियों में से था जो अपने अन्दर कमीनेपन की जन्मजात प्रवृत्ति होने के कारण गन्दे से गन्दा कार्य करते हैं। दूसरा जासूस था हिर्श नामक एक वाणिज्यिक क्लर्क। परन्तु वह ज्योंही लन्दन पहुंचा, उसपर जासूस होने का सन्देह प्रकट किया गया। वह लन्दन में कुछ जर्मन कम्युनिस्ट शरणार्थियों की सोसायटी में घुस गया और

---

* ओस्वाल्द दीत्स। – सं०

** दुस्साहसिकतावादी। – सं०

*** जूलियन शेर्वाल। – सं०

उन्होंने उसके वास्तविक स्वरूप का प्रमाण प्राप्त करने के लिए उसे कुछ देर के लिए अपने बीच आने दिया। पुलिस से उसके सम्बन्धों के प्रमाण बहुत जल्द मिल गये और श्री हिर्श उसी क्षण से ग़ायब हो गये। इस तरह उसने जानकारी हासिल करने के, जिसके लिए उसे पैसा मिल रहा था, सारे सुयोगों से वंचित होने की स्थिति स्वीकार ज़रूर कर ली थी, परन्तु वह निष्क्रिय नहीं रहा। केन्सिंगटन में एकान्तवास में बैठकर, जहां वह एक भी सम्बन्धित कम्युनिस्ट से नहीं मिला, वह कल्पित केन्द्रीय समिति की कल्पित बैठकों के उस षड्यंतकारी संगठन के बारे में कल्पित साप्ताहिक रिपोर्टें गढ़ता रहा जिसका प्रशियाई पुलिस पता नहीं लगा सकती थी। इन रिपोर्टों की सामग्री सबसे बेतुकी क़िस्म की थीं। एक भी नाम सही नहीं था, एक भी नाम सही ढंग से नहीं लिखा हुआ था, एक भी व्यक्ति के मुंह से शब्द उस तरह नहीं कहलाये गये थे जिस तरह वह, बहुत सम्भव है, कहता। उसके उस्ताद फ़्लेरी ने उसे इस जालसाज़ी में मदद दी। और अभी तक यह सिद्ध नहीं हो सका है कि "अताशे" ग्रेइफ़ इन कुख्यात कारंवाइयों के दायित्व से इन्कार कर सकता है। यह अविश्वसनीय लगता है कि प्रशियाई सरकार ने इन बेहूदी मनगढ़न्त बातों को पावन सत्य माना। कल्पना की जा सकती है कि अदालत के समक्ष प्रस्तुत प्रमाण में इस प्रकार की सामग्री ने किस तरह की गड़बड़ी पैदा की होगी। जब मुक़दमा शुरू हुआ तो पूर्वचर्चित पुलिस अफ़सर श्री श्टिबर साक्षी-कक्ष में पहुंचा, उसने इन सारी बेहूदी बातों को सच्चा बताने के लिए हलफ़ उठायी और उसने काफ़ी आत्म-तुष्टि के अन्दाज़ में दावे के साथ कहा कि उसका एक गुप्त जासूस है जो लन्दन में उन लोगों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क में है जिन्हें इस भयंकर षड्यंत्र के मुख्य संचालक माना जाता है। यह गुप्त जासूस सचमुच गुप्त था क्योंकि वह आठ माह तक केन्सिंगटन में इसलिए मुंह छुपाये रहा कि उसे डर था कि उसे कहीं सचमुच उन लोगों में से कोई नज़र न आ जाये जिनके सबसे गोपनीय विचारों, शब्दों तथा कार्यों की गढ़ी हुई ख़बरें वह सप्ताह-प्रति-सप्ताह भेज रहा था।

परन्तु श्री हिर्श तथा फ़्लेरी के पास एक और गढ़ी हुई चीज भी थी। उन्होंने जो रिपोर्टें तैयार की थीं उन्हें उन्होंने उस गुप्त सर्वोच्च समिति की "मूल कार्यवृत्त पुस्तक" का रूप दे डाला था जिसका अस्तित्व प्रशियाई पुलिस बनाये रखे हुए थी। और जब श्री श्टिबर ने देखा कि यह पुस्तक तो उन लोगों से पहले ही मिल चुकी रिपोर्टों से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाती है तो उन्होंने उसे तुरन्त जूरी के सामने पेश कर दिया और हलफ़ उठाकर घोषणा की कि

संजीदगी से जांच करने और अपनी पूरी जानकारी के आधार पर वह कह सकता है कि पुस्तक असली है। हिर्श की रिपोर्टों की अधिकांश बेहूदी बातें प्रकाशित कर दी गयीं। आप उस गुप्त समिति के कल्पित सदस्यों के आश्चर्य की कल्पना कर सकते हैं जब उन्हें अपने बारे में कही गयी ऐसी चीज़ों का पता चला जिनका उन्हें पहले कोई पता तक न था। जिसका नाम विल्हेल्म था इन रिपोर्टों में उसका नाम लूडविग या कार्ल रख दिया गया था; कुछ दूसरे जिस वक़्त इंगलैंड के दूसरे छोर पर थे, उन्हें लन्दन में भाषण करते हुए बताया गया; कुछ लोगों द्वारा ऐसी चिट्ठियां पढ़े जाने की ख़बरें दी गयी थीं जो उन्हें कभी मिली ही नहीं थीं; उनके बारे में यह तय कर दिया गया था कि उनकी हर गुरुवार को नियमित रूप से बैठक होती है जबकि सप्ताह में एक दिन, बुधवार के दिन सामान्यतया उनकी मिलन गोष्ठी हुआ करती थी; जिस मज़दूर को शायद ही लिखना आता हो, उसके बारे में बताया गया कि वह बैठक की कार्रवाई के विवरण लिखनेवालों में एक था तथा उसपर हस्ताक्षर किया करता था। उन सब के मुंह से जिस भाषा का प्रयोग कराया गया, वह भले ही प्रशियाई पुलिस थानों की भाषा रही हो, उस मिलन गोष्ठी की भाषा यक़ीनन नहीं थी जिसमें अपने देश में काफ़ी ख्याति-प्राप्त साहित्यकारों की बहुसंख्या थी। और सबसे बढ़कर रक़म की जाली रसीद तैयार की गयी, जिसमें यह बताया गया कि इस पुस्तक के लिए जालसाज़ों ने यह रक़म कल्पित केन्द्रीय समिति के कल्पित सेक्रेटरी को दी थी; परन्तु इस कल्पित सेक्रेटरी का अस्तित्व किसी बुरी नीयतवाले कम्युनिस्ट द्वारा बदनसीब हिर्श को दिये गये झांसे पर ही आश्रित था।

यह सारी जालसाज़ी इतना बड़ा घोटाला थी कि वह अभीष्ट प्रभाव के ठीक विपरीत वस्तु को जन्म दिये बिना नहीं रह सकती थी। यद्यपि प्रतिवादियों के लन्दन में मौजूद मित्रों को मामले के तथ्य जूरी के सामने पेश करने के सारे साधनों से वंचित किया गया था; यद्यपि पैरवी के लिए उन द्वारा वकीलों को भेजी गयी सारी चिट्ठियां डाक में ही दबा दी गयीं; यद्यपि वे सारी दस्तावेज़ें और हलफ़नामे, जो वे वकालत करनेवाले इन सज्जनों के हाथों में पहुंचाने में सफल हो गये थे, गवाही के तौर पर स्वीकार नहीं किये गये, फिर भी आम रोष ऐसा था कि सरकारी अभियोक्ताओं, और ख़ुद श्री श्टिबर तक को – जिनकी शपथ को उस पुस्तक की प्रामाणिकता की गारंटी के रूप में पेश किया गया था – यह स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा कि यह जालसाज़ी है।

परन्तु पुलिस जालसाज़ी की इस क़िस्म की हरक़त के लिए ही दोषी नहीं थी। मुक़दमे के दौरान इस तरह के दो या तीन और मामले आये। रेइटर द्वारा चुरायी गयी दस्तावेज़ों में पुलिस ने झूठी बातें भर दी थीं ताकि उन दस्तावेज़ों के अर्थ को बिगाड़ा जा सके। सरासर बकवास भरे एक काग़ज़ पर लिखाई डा० मार्क्स की लिखाई की नक़ल थी। कुछ समय तक यह माना जाता रहा कि यह उन्होंने ही लिखा था, परन्तु आख़िरकार अभियोक्ता को यह स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा कि वह जाली है। परन्तु पुलिस की एक दुष्टतापूर्ण कार्रवाई सिद्ध हो ही पाती कि पांच या छ: नयी दुष्टतापूर्ण कार्रवाइयां सामने आ जातीं, जिन्हें तुरन्त बेनकाब नहीं किया जा सकता था, क्योंकि सफ़ाई पक्ष के लिए वे सरासर अप्रत्याशित होतीं और सबूत लन्दन से मंगाने पड़ते जबकि लन्दन में प्रवासी कम्युनिस्टों से सफ़ाई पक्ष के वकील के हर पत्र-व्यवहार के साथ अदालत में कल्पित षड्यंत्र में सांठगांठ की तरह बर्ताव किया जाता!

ग्रेइफ़ और फ़्लेरी उसी तरह के व्यक्ति हैं जिस रूप में उन्हें यहां प्रस्तुत किया गया है, यह स्वयं श्री श्टिबर ने अपनी गवाही में कहा है; जहां तक हिर्श का सम्बन्ध है, उसने लन्दन के एक मैजिस्ट्रेट के सामने स्वीकार किया है कि उसने फ़्लेरी के आदेश और उसकी सहायता से जाली "कार्यवृत्त-पुस्तक" तैयार की थी और फिर वह अपने विरुद्ध फ़ौजदारी के मुक़दमे से बचने के लिए इस देश से भाग गया।

सरकार मुक़दमे के दौरान ऐसे शर्मनाक पर्दाफ़ाशों का मुश्किल से सामना कर सकती थी। उसके पास ऐसी जूरी थी जो राइनी प्रान्त ने अभी तक नहीं देखी थी—विशुद्ध प्रतिक्रियावादी छ: अभिजात, चार वित्तीय प्रभु, दो सरकारी अधिकारी। वे ऐसे लोग नहीं थे जो छ: हफ़्तों के दौरान, जब उनके कानों में बराबर यह भरा जाता रहा कि प्रतिवादी हर पुनीत वस्तु को—स्वामित्व, परिवार, धर्म, व्यवस्था, सरकार तथा क़ानून को—उलटने के लिए रचे गये एक भयंकर कम्युनिस्ट षड्यंत्र के मुखिया हैं, अपने सामने खड़े किये गये शहादत के अव्यवस्थित अम्बार को बारीकी से देखते! और यदि सरकार ने विशेषाधिकारसम्पन्न वर्गों को यह नहीं बता दिया होता कि इस मुक़दमे में रिहाई जूरी के ख़ात्मे का संकेत होगा, कि इसे प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रदर्शन—सबसे उग्रपंथी क्रान्तिकारियों के साथ तक ऐक्यबद्ध होने के लिए मध्यम वर्गीय उदारपंथी विपक्ष की तत्परता का प्रमाण—माना जायेगा तो रिहाई का फ़ैसला दे दिया जाता। और हुआ यही कि नयी प्रशियाई संहिता के पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ

कार्यान्वयन ने सरकार को सात बन्दियों को सज़ा देने में सक्षम बनाया जबकि केवल चार रिहा किये गये। जैसा कि आपने, निस्सन्देह, समाचार पाते ही देख लिया होगा, जिन लोगों को सज़ा दी गयी, उन्हें तीन से लेकर छः साल तक की क़ैद हुई।

२६ नवम्बर १८५२ को
एंगेल्स द्वारा लिखित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

२२ दिसम्बर १८५२ को
«New-York Daily Tribune»
में प्रकाशित।

हस्ताक्षर : **कार्ल मार्क्स**

कार्ल मार्क्स

लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर

१८६९ के दूसरे संस्करण के लिए कार्ल मार्क्स की भूमिका

मेरे दोस्त **जोजेफ़ वेडेमेयर***, जिनका असामयिक निधन हो गया, १ जनवरी १८५२ से न्यूयार्क में एक राजनीतिक साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ करना चाहते थे। उन्होंने मुझे इस साप्ताहिक के लिए coup d'état** के इतिहास के बारे में लिखने के लिए कहा। उसके अनुसार मैंने 'लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर' शीर्षक के अन्तर्गत उन्हें फ़रवरी के मध्य तक साप्ताहिक लेख लिखने आरम्भ किये थे। इस बीच वेडेमेयर की योजना टांय-टांय फिस हो गयी। उन्होंने उसकी जगह *«Die Revolution»* नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। उसके प्रथम अंक में मेरी 'अठारहवीं ब्रूमेर' है। उसकी कुछ सौ प्रतियां जर्मनी में पहुंचने में सफल हो गयीं हालांकि वे वास्तविक पुस्तक व्यापार के क्षेत्र में नहीं पहुंच पायीं। मैंने अत्यन्त उग्रवादी होने का दम्भ भरनेवाले एक जर्मन प्रकाशक को जब अपनी पुस्तक बिक्री के लिए देनी चाही तो वह इतनी "असमयोचित गुस्ताख़ी" को देखकर बहुत ही नैतिक ढंग से स्तब्ध रह गया।

उपरोक्त तथ्यों से यह पता चल जायेगा कि मौजूदा कृति घटनाओं के तात्कालिक प्रभाव के अन्तर्गत लिखी गयी थी तथा उसकी ऐतिहासिक सामग्री फ़रवरी (१८५२) तक ही सीमित है। अब अंशतः पुस्तक व्यापार की मांग के कारण तथा अंशतः जर्मनी में मेरे दोस्तों के फ़ौरी अनुरोधों के कारण उसका पुनः प्रकाशन होने जा रहा है।

---

*अमरीकी गृहयुद्ध के दिनों में सेंट लूई क्षेत्र के फ़ौजी कमांडर।

**राज्य-पर्युत्क्षेपण। — सं०

जिस विषय पर मैंने लिखा है, उससे सम्बन्ध रखनेवाली तथा लगभग **उसी समय** लिखी गयी रचनाओं में दो उल्लेखनीय हैं – विक्तोर ह्यूगो की कृति **'नेपोलियन लघु'** तथा प्रूदों की कृति **'राज्य-पर्युत्क्षेपण'**।

विक्तोर ह्यूगो अपने को राज्य-पर्युत्क्षेपण के उत्तरदायी प्रकाशक की कटु तथा तीखी भर्त्सना तक सीमित रखते हैं। उनकी कृति में स्वयं घटना बिना मेघ के वज्रपात की तरह प्रतीत होती है। वह उसमें एक अकेले व्यक्ति की हिंसात्मक कार्रवाई मात्र देखते हैं। उन्हें यह नहीं दिखायी देता कि उस व्यक्ति में विश्व इतिहास में पहल की अभूतपूर्व वैयक्तिक शक्ति की मौजूदगी बताकर वह इस व्यक्ति को लघु बनाने के बजाय महान बना रहे हैं। प्रूदों अपनी रचना में राज्य-पर्युत्क्षेपण को पूर्ववर्ती ऐतिहासिक विकास के फल के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। परन्तु राज्य-पर्युत्क्षेपण का उनका ऐतिहासिक रचना-विन्यास बिना नजर आये उसके नायक की ऐतिहासिक वकालत बन जाता है। इस प्रकार वह हमारे तथाकथित **वस्तुनिष्ठ** इतिहासकारों की ग़लती दुहरा बैठते हैं। इसके विपरीत मैं यह दिखाता हूं कि फ़्रांस में **वर्ग-संघर्ष** ने कैसे ऐसी परिस्थितियों तथा सम्बन्धों का निर्माण किया जिन्होंने एक हास्यास्पद, सामान्य व्यक्ति को नायक की भूमिका अदा करने में सक्षम बनाया।

प्रस्तुत कृति का संशोधन उसे अपने विशिष्ट रंग से वंचित कर देता। इसलिए मैंने अपने को केवल मुद्रण की ग़लतियां सुधारने तथा अब अबोधगम्य संकेतों को काट देने तक सीमित रखा है।

"किन्तु जब शाही चोग़ा लूई बोनापार्त के कंधों पर अन्तिम रूप से आ जायेगा तो नेपोलियन की कांस्य मूर्त्ति वांदोम स्तम्भ[59] से भहराकर नीचे गिर पड़ेगी", मेरी कृति के ये अन्तिम शब्द सत्य सिद्ध हो चुके हैं।

कर्नल शार्रा ने १८१५ के अभियान के बारे में अपनी कृति में नेपोलियन की पूजा पर प्रहार किया है। तदुपरान्त तथा विशेष रूप से पिछले चन्द वर्षों में फ़्रांसीसी साहित्य ने ऐतिहासिक अनुसंधान, आलोचना, व्यंग्य तथा विनोद के हथियारों से नेपोलियनी दन्तकथा का अन्त कर दिया। फ़्रांस के बाहर परम्परागत आम विश्वास से यह उग्र सम्बन्ध-विच्छेद, यह जबर्दस्त मानसिक क्रान्ति बहुत कम दृष्टिगोचर हुई है तथा उससे भी कम समझा गया है।

अन्त में मैं आशा करता हूं कि मेरी कृति स्कूली घुट्टी के साथ घोखे तथाकथित caesarism शब्द को – जो इस समय जर्मनी में विशेष रूप से प्रचलित है – पूरी तरह ख़त्म करने में योग देगी। इस सतही ऐतिहासिक सादृश्यता में मुख्य चीज़

भुला दी जाती है और वह यह कि प्राचीन रोम में वर्ग-संघर्ष केवल विशेषाधिकारप्राप्त अल्पसंख्या के अन्दर ही, स्वतंत्र अमीर तथा स्वतंत्र ग़रीब के बीच ही होता था जबकि आबादी का एक विशाल उत्पादक समूह, दासगण इन लड़नेवालों के लिए विशुद्ध निष्क्रिय आधार-स्तम्भ बने रहते थे। लोग **सीसमंदी** के इन उल्लेखनीय शब्दों को भूल जाते हैं—रोमन सर्वहारा समाज की क़ीमत पर ज़िंदा रहता था जबकि आधुनिक समाज सर्वहारा की क़ीमत पर ज़िंदा रहता है। प्राचीन तथा आधुनिक वर्ग-संघर्षों की भौतिक, आर्थिक अवस्थाओं के बीच इतना मौलिक अन्तर होने के कारण उन द्वारा प्रस्तुत की गयी राजनीतिक हस्तियों में परस्पर समानता उससे अधिक नहीं हो सकती जो कैंटरबरी के आर्च-बिशप तथा महा पुरोहित सैमुएल में है।

कार्ल मार्क्स

लन्दन, २३ जून १८६६

मार्क्स की कृति 'लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर' के द्वितीय संस्करण में प्रकाशित जो जुलाई १८६६ में हैम्बर्ग में छपा।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

१८८५ के तीसरे जर्मन संस्करण के लिए फ़्रेडरिक एंगेल्स की भूमिका

'अठारहवीं ब्रूमेर' के प्रथम प्रकाशन के तैंतीस वर्षों के बाद इसके नये संस्करण की आवश्यकता होना यह सिद्ध करता है कि इस पुस्तक के मूल्य में आज भी कोई कमी नहीं आयी है।

यह कृति सचमुच महान् प्रतिभा की ही देन थी। समस्त राजनीतिक जगत् को वज्रपात की तरह स्तम्भित कर देनेवाली उस घटना के फ़ौरन बाद—जिसकी कुछ लोगों ने नैतिक रोष के साथ ज़ोर-शोर से निन्दा की थी और जिसको कुछ ने क्रांति से उद्धार तथा उसकी भूलों का दण्ड मानकर स्वीकार किया था, जिस

पर चकित तो सभी थे किन्तु जिसको कोई समझ नहीं पा रहा था, — मार्क्स ने उसकी एक संक्षिप्त और अत्यन्त मार्मिक व्याख्या पेश की, जिसने फ़रवरी के दिनों से फ़्रांस के पूरे इतिहास-क्रम को उसके आंतरिक अंत:सम्बन्धों के साथ अनावृत किया, और २ दिसम्बर की घटना[60] को इस अंत:सम्बन्ध का एक क़ुदरती लाज़िमी नतीजा साबित कर उसके ऊपर से चमत्कार का आवरण हटा दिया, और ऐसा करते हुए उनके लिए यह भी आवश्यक नहीं हुआ कि वह राज्य-पर्युत्क्षेपण के नायक को सिवा तिरस्कार के, जिसका वह सर्वथा पात्र था, किसी अन्य भाव से दर्शाते। जो चित्र उन्होंने खींचा वह इतने कुशल हाथों से खींचा गया था कि उसके बाद होनेवाले प्रत्येक रहस्योद्घाटन ने सदा इस बात का नया प्रमाण ही प्रस्तुत किया है कि यह चित्र वास्तविकता का कितना सच्चा प्रतिबिंब था। जीवित और सामयिक इतिहास की ऐसी असामान्य समझ, घटनाओं के घटने के क्षण में ही उनका ऐसा सुलझा हुआ मूल्यांकन सचमुच बेजोड़ है।

किन्तु इसके लिए फ़्रांसीसी इतिहास का ऐसा सर्वांगपूर्ण ज्ञान अपेक्षित था जैसा ज्ञान मार्क्स का था। फ़्रांस वह देश है जहां अन्य किसी भी देश से अधिक ऐतिहासिक वर्ग-संघर्ष हर बार अंतिम निर्णय तक लड़े गये है; और जहां, इसके फलस्वरूप, बदलते हुए राजनीतिक रूप, जिन रूपों में ये संघर्ष चलते थे और जिनमें इन संघर्षों के परिणाम साररूप में प्रस्तुत होते थे, सुस्पष्ट आकार ग्रहण करते थे। मध्ययुग में सामंतवाद के केन्द्र, रेनासांस[61] के बाद से सामाजिक श्रेणी व्यवस्था पर आश्रित, एकताबद्ध राजतन्त्र के आदर्श देश फ़्रांस ने महान् क्रांति में सामंतवाद का सफ़ाया कर दिया और पूंजीपति वर्ग का अमिश्रित शासन स्थापित किया जिसकी अपूर्व विशुद्धता का किसी भी अन्य यूरोपीय देश में जोड़ नहीं मिलता। और अपनी उन्नति के लिए सचेष्ट सर्वहारा का शासक पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष भी फ़्रांस में इतने तीव्र रूप में प्रगट हुआ कि अन्यत्र उसकी मिसाल नहीं मिलती। यही कारण है कि मार्क्स ने न केवल फ़्रांस के विगत इतिहास का विशेष लगन के साथ अध्ययन किया, वरन् उसके वर्तमान इतिहास की प्रत्येक गतिविधि का भी अनुसरण किया और भविष्य में उपयोग के लिए प्रचुर सामग्री एकत्रित की। फलत: घटनाएं उन्हें चकित-विमूढ़ नहीं कर सकीं।

किन्तु इसके अतिरिक्त एक और भी चीज थी। मार्क्स ही ने सर्वप्रथम इतिहास की गति के उस महान् नियम का पता लगाया जिसके अनुसार सभी ऐतिहासिक संघर्ष, चाहे वे राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक क्षेत्र में अथवा किसी

अन्य बौद्धिक क्षेत्र में हों, वस्तुतः सामाजिक वर्गों के संघर्षों की न्यूनाधिक स्पष्ट अभिव्यक्तियां होते हैं, और इन वर्गों का अस्तित्व और फलतः इन वर्गों के बीच आपसी टक्करें भी उनकी आर्थिक स्थिति के विकास की अवस्था द्वारा, उनकी उत्पादन प्रणाली और उस द्वारा निर्धारित विनिमय प्रणाली द्वारा निश्चित होती हैं। इस नियम ने, जिसका इतिहास के लिए वही महत्व है जो प्राकृतिक विज्ञान के लिए ऊर्जा के रूपांतरण के नियम का है, मार्क्स को यहां भी द्वितीय फ़्रांसीसी जनतन्त्र[82] के इतिहास को समझने की कुंजी प्रदान की। उन्होंने अपने नियम को इन ऐतिहासिक घटनाओं की कसौटी पर परखा और हमें यह कहना होगा कि तैंतीस वर्षों के बाद आज भी यह नियम इस कसौटी पर बड़े शानदार ढंग से खरा उतरता है।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

१८८५ में लिखित।
Karl Marx. «*Der Achtzehnte Brumaire des Louis Bonaparte*». Hamburg, 1885, में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर

१

हेगेल ने एक जगह कहा है कि विश्व इतिहास में वे सभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएं और हस्तियां, कहा जा सकता है, दो बार आविर्भूत हुई हैं। वे इतना और कहना भूल गये: पहली बार दु:खान्त नाटक के रूप में और दूसरी बार प्रहसन के रूप में। जैसे, दांतों की जगह कोसीदियेर, रोबेसपियेर की जगह लूई ब्लां, १७९३–१७९५ के पर्वत दल की जगह १८४८–१८५१ का पर्वत दल; चाचा की जगह उसका भतीजा। इसी प्रकार अठारहवीं ब्रूमेर[63] का द्वितीय संस्करण जिन परिस्थितियों में हुआ है वे उसे प्रथम संस्करण का कार्टून बना देती हैं!

मानव-जन अपना इतिहास स्वयं बनाते हैं, पर अपने मनचाहे ढंग से नहीं। वे उसे अपनी मनचाही परिस्थितियों में नहीं, अपितु ऐसी परिस्थितियों में बनाते हैं जो उन्हें अतीत से प्राप्त और अतीत द्वारा सम्प्रेषित होती हैं और जिनका उन्हें सीधे-सीधे सामना करना पड़ता है। सभी मृत पीढ़ियों की परम्परा जीवित मानव के मस्तिष्क पर एक दु:स्वप्न के समान सवार रहती है। और ठीक ऐसे समय, जब ऐसा लगता है कि वे अपने को तथा अपने इर्द-गिर्द की सभी चीज़ों को क्रान्तिकारी रूप से बदल रहे हैं, और किसी ऐसी वस्तु का सृजन कर रहे हैं जिसका आज तक अस्तित्व न था, क्रांतिकारी संकट के ठीक ऐसे अवसरों पर वे अतीत के प्रेतों को अपनी सेवा के लिए उत्कण्ठापूर्वक बुलावा दे बैठते हैं और उनसे अतीत के नाम, अतीत के रणनाद और अतीत के परिधान मांगते हैं ताकि विश्व इतिहास की नवीन रंगभूमि को इस चिरप्रतिष्ठापित वेश में और इस मंगनी की भाषा में सजाकर पेश करें। इस तरह लूथर ने ईशदूत पॉल का बाना ओढ़ा, १७८९–१८१४ की क्रांति ने रोमन गणराज्य और रोमन साम्राज्य का बारी-बारी से परिधान धारण किया और १८४८ की क्रांति को कुछ न मिला तो

उसने कभी १७८९ की और कभी १७९३–१७९५ की क्रांतिकारी परम्परा की भोंडी नक़ल की। यह उसी तरह है जिस तरह अभी-अभी कोई नई भाषा सीखनेवाला मनुष्य सदा अपनी मातृभाषा में उसका उलथा करता रहता है, और नयी भाषा की आत्मा वह तभी हृदयंगम करता है और उसमें अबाध रूप से अपने विचारों को तभी अभिव्यक्त कर सकता है जब उस भाषा में वह इतना दक्ष हो जाता है कि पुरानी भाषा की याद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती और वह नयी भाषा का उपयोग करते समय अपनी मातृभाषा को भूल जाता है।

विश्व इतिहास की मृतात्माओं के इस आह्वान पर विचार करने से हमें तत्काल एक प्रत्यक्ष अंतर दिखाई देता है। कैमिले देमूलैं, दांतों, रोबेसपियेर, सेंत-जूस्त, नेपोलियन, पुरानी फ़्रांसीसी क्रांति के शूरवीर और उसकी पार्टियां एवं उसके जन-समुदाय, इन सबने अपने युग का कार्य–आधुनिक पूंजीवादी समाज को बंधन-मुक्त करने तथा उसे अपने पैरों पर खड़ा करने का कार्य–रोमन परिधान धारण कर और रोमन नारे देकर संपन्न किया। इनमें से पहले वालों ने सामंती आधार को चकनाचूर किया और इस आधार को ग्रहण कर जो सामंत पनपे थे, उनके सिर उतार लिये। दूसरे ने फ़्रांस के अंदर उन अवस्थाओं का सृजन किया जिनके अंतर्गत ही स्वतंत्र होड़ का विकास किया जा सकता था, टुकड़ों में बांटी गयी भू-सम्पत्ति का इस्तेमाल किया जा सकता था और राष्ट्र की बंधन-मुक्त औद्योगिक उत्पादक शक्ति उपयोग में लायी जा सकती थी। और फ़्रांस के बाहर सब जगह उसने सामंती संस्थाओं को उस हद तक उखाड़ फेंका जिस हद तक फ़्रांस में पूंजीवादी समाज को यूरोपीय महाद्वीप में एक उपयुक्त, आधुनिक परिवेश प्रदान करने की आवश्यकता थी। नवीन सामाजिक ढांचा जब स्थापित हो चुका तो पुरातन काल के दिग्गज, और उनके साथ ही रोमन साम्राज्य की पुनरुज्जीवित विभूतियां–ब्रूटस और ग्राक्ख़, पुब्लिकोला, ट्रिब्यून, सेनेटर, और स्वयं सीज़र–गायब हो गयीं। पूंजीवादी समाज ने जब होश संभाला तो उसने सेय, कूज़ैं, राइये-कोलार, बेंजामिन कांस्तां और गीज़ो जैसे व्यक्तियों के रूप में अपने असली व्याख्याता और प्रवक्ता उत्पन्न किये। उसके असली सेनानायक नियंत्रणकारी मेज़ों के पास बैठे थे। लूई अठारहवां, जिसके दिमाग़ में चर्बी भरी थी, उस पूंजीवादी समाज का राजनीतिक मुखिया बना। धन के उत्पादन तथा शांतिपूर्ण होड़ के संघर्ष में पूर्णतया तल्लीन इस समाज की समझ में अब यह बात नहीं आती थी कि उसका जन्म रोम के ज़माने की मृतात्माओं के संरक्षण

में हुआ था। किन्तु पूंजीवादी समाज यद्यपि वीरत्वशून्य है, फिर भी उसे अस्तित्व में लाने के लिए वीरत्व, त्याग, आतंक, गृहयुद्ध और जन संघर्षों की आवश्यकता पड़ी थी। और उसके सूरमाओं को रोमन गणराज्य की प्राचीन प्रतिष्ठित, कठोर परम्परा से वे आदर्श एवं कला-रूप, वे आत्म-प्रवंचनाएं प्राप्त हुईं, जिनकी उन्हें खुद अपने से अपने संघर्ष के अन्तर्य की पूंजीवादी सीमाओं को छिपाने के लिए और अपने उत्साह को महान् ऐतिहासिक दुःखांत नाटक के उच्च धरातल पर रखने के लिए आवश्यकता थी। इसी तरह, एक शताब्दी पूर्व, विकास की एक अन्य मंजिल में, क्रॉमवेल और अंग्रेज जनता ने अपनी पूंजीवादी क्रांति के लिए पूर्वविधान[64] से भाषण, आवेग एवं प्रवंचनाएं ग्रहण की थीं। अब जब उनका असली लक्ष्य प्राप्त हो गया, जब इंगलैंड के समाज का पूंजीवादी रूपान्तरण पूरा हो गया, तब हबक्कुक का स्थान लाक ने ले लिया।

इस प्रकार उन क्रांतियों में मृतात्माओं को पुनरुज्जीवित करने से जो प्रयोजन सिद्ध हुआ वह था नये संघर्षों को गौरवमंडित करना, न कि पुरानों की भोंडी नक़ल करना; सम्मुख उपस्थित कार्यभार को कल्पना में वृहद् आकार देना, न कि असलियत में उसे हल करने से भागना; एक बार फिर क्रान्ति की आत्मा को जागृत करना, न कि उसका भूत को मंडराने देना।

पुराने बैली का छद्मवेश धारण करनेवाले मारास्त से लेकर, उस républicain en gants jaunes* से लेकर, उस दुःसाहसी तक, जो अपना मामूली-सा कुरूप चेहरा मृत नेपोलियन के लौह-मुखावरण के पीछे छिपाता है, पुरानी क्रांति की केवल प्रेतात्मा ही १८४८ से १८५१ तक मंडराती रही। एक पूरी की पूरी जाति, जो यह कल्पना किये हुए थी कि उसने क्रांति द्वारा त्वरित ऐतिहासिक गति की क्षमता प्राप्त कर ली है, सहसा अपने को एक मृत युग में प्रत्यावर्तित पाती है। और मानों इसलिए कि इसमें कोई भी संदेह न रह जाये कि पुरानी दशा ने उसे फिर ग्रस लिया है, तमाम पुरानी तारीखें, पुराना इतिवृत्तक्रम, पुराने नाम और पुरानी राजाज्ञाएं, जिनको लेकर एक अरसे से केवल प्राचीन इतिहास के पण्डितगण ही सिर खपाया करते थे, और क़ानून के वे सभी अलमबरदार, जो न जाने कब के मर-गल चुके ज्ञात होते थे, फिर उठ खड़े होते हैं। राष्ट्र की भावना बेडलम में[65] उस पागल अंग्रेज जैसी है जो सोचता है कि वह प्राचीन फ़राऊनों के युग में रह रहा है, यह ख़याल कर आहें भरता

*शाब्दिक अर्थ – पीले दस्तानेवाला जनतन्त्रवादी; आलंकारिक अर्थ – बांका-छैला। – सं०

है कि उसे एथियोपिया की खानों में सोना निकालनेवाले खनक के रूप में भीषण श्रम करना पड़ रहा है, कि वह इस जमींदोज़ जेल में बंद है, एक टिमटिमाती लालटेन उसके सिर पर बंधी हुई है, दासों का निरीक्षक लम्बा कोड़ा लिये उसके सिर पर खड़ा है, और बाहर निकलने के रास्तों पर बर्बर सैनिकों–भाड़े के टट्टुओं–की एक भीड़ हंगामा मचाये हुए है, और ये सैनिक न तो खान में बेगार करनेवाले मज़दूरों की बात समझते हैं और न एक दूसरे की बात, क्योंकि उनकी कोई समान भाषा नहीं है। पागल अंग्रेज आह भरकर कहता है, "और यह सारा काम मुझसे, एक स्वतंत्रजात अंग्रेज़ से करवाया जा रहा है ताकि पुराने फ़राऊनों को स्वर्ण लाभ हो।" और फ़्रांसीसी राष्ट्र आह भरकर कहता है, "ताकि बोनापार्त परिवार के क़र्ज़ों की अदायगी हो।" वह अंग्रेज, जब तक उसका दिमाग़ दुरुस्त था, इस बद्धमूल विचार से छुटकारा न पा सका कि किस तरह सोना पैदा किया जाये। फ़्रांसीसी, जब तक वे क्रांति में लगे हुए थे, नेपोलियन की स्मृति से छुटकारा न पा सके थे, जैसा कि १० दिसम्बर के निर्वाचन[66] से सिद्ध हो गया। वे क्रांति की जोखिम से निकलकर मिस्र के मांस पात्रों[67] को फिर से प्राप्त करने को लालायित थे, और २ दिसम्बर १८५१ की घटना में उनकी यह आकांक्षा प्रतिफलित हुई। उन्हें पुराने नेपोलियन की एक भद्दी नक़ल ही नहीं मिल गयी, बल्कि स्वयं पुराना नेपोलियन, उस विकृत रूप में जिसमें उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वह दिखाई देता, मिल गया।

उन्नीसवीं शताब्दी की सामाजिक क्रांति अतीत से नहीं वरन् भविष्य से ही अपनी प्रेरणा प्राप्त कर सकती है। वह उस समय तक अपना समारम्भ नहीं कर सकती जब तक अतीत सम्बन्धी अपने सभी मूढ़ विश्वासों को दूर न कर ले। पहले की क्रांतियों को स्वयं अपनी अंतर्वस्तु के सम्बन्ध में अपने को मदहोश करने के लिए विगत विश्व इतिहास की स्मृतियों की आवश्यकता पड़ती थी। उन्नीसवीं शताब्दी की क्रांति के लिए जरूरी है कि अपनी अंतर्वस्तु प्राप्त करने के लिए जो बीत गया है, उसे भूला दे। पहली क्रान्तियों के नारे उनकी अंतर्वस्तु से आगे निकल गये थे; यहां अंतर्वस्तु नारों से आगे निकल जाती है।

फ़रवरी क्रांति पुराने समाज पर एक **आकस्मिक** आक्रमण थी, उसने उसे बेख़बरी की हालत में पकड़ लिया था और जनता ने इस अप्रत्याशित **प्रहार** को एक नये युग का सूत्रपात करनेवाली विश्वव्यापी महत्त्व की घटना घोषित किया। २ दिसम्बर को ताश के किसी जादूगर ने मानो फ़रवरी क्रांति को छूमन्तर कर दिया, और अब ज़ाहिर हुआ कि जिस चीज़ का सफ़ाया हुआ, वह राजतंत्र नहीं,

बल्कि वे उदारतावादी छूटें हैं जो सदियों के संघर्ष द्वारा राजतंत्र से प्राप्त की गयी थीं। समाज ने अपने लिए एक नयी अन्तर्वस्तु प्राप्त नहीं की, वरन् ऐसा लगता है कि राज्य अपनी प्राचीनतम अवस्था में, जब तलवार और लम्बे लबादों का सीधा-सीधा और नग्न बोलबाला था, वापस पहुंच गया। फ़रवरी, १८४८ के coup de main* का जवाब दिसम्बर, १८५१ के coup de tête** से दिया गया। जो आसानी से हाथ में आता है, वह उतनी ही आसानी से हाथ से जाता भी है। किन्तु बीच की अवधि बेकार नहीं गयी है। १८४८ से १८५१ के दौरान फ़ांसीसी समाज ने उन अध्ययनों और अनुभवों की कमी पूरी कर ली, और वह भी एक संक्षिप्त तरीक़े से क्योंकि वह क्रांतिकारी तरीक़ा था, जिन्हें, यदि फ़रवरी क्रांति महज़ सतही लहर न होती, तो उसके लिए, विकास के नियमित प्रक्रम में, अथवा यूं कहें कि उसके पाठ्य-पुस्तक में निरूपित प्रक्रम में, पूर्वापेक्षित होना चाहिए था। अब ऐसा लगता है कि समाज अपने प्रस्थान बिंदु से भी पीछे चला गया है; दरअसल उसे अपने लिए पहले क्रांतिकारी प्रस्थान बिंदु को उत्पन्न करना, उस परिस्थिति, उन सम्बन्धों और उन अवस्थाओं को उत्पन्न करना होगा जिनके अंतर्गत ही आधुनिक क्रांति गम्भीर वस्तु बनती है।

अठारहवीं शताब्दी की क्रांतियों जैसी पूंजीवादी क्रांतियां तूफ़ानी चाल से कामयाबियों पर कामयाबियां हासिल करती हैं; उनकी प्रत्येक नाटकीय निष्पत्ति दूसरी को मात करती है; मनुष्य और वस्तुएं दोनों जगमगाते दिखाई देती हैं; उल्लास की भावना प्रतिदिन की भावना बन जाती है; किन्तु ये सारी बातें अल्पजीवी होती हैं, वे शीघ्र ही अपने शिरोबिन्दु तक पहुंच चुकती हैं; समाज पर, इसके पहले कि वह अपने तूफ़ानी दौर के परिणामों को गम्भीरतापूर्वक आत्मसात् करना सीखे, एक ख़ुमारी-भरा अवसाद छा जाता है। दूसरी ओर, उन्नीसवीं शताब्दी की क्रांतियों जैसी सर्वहारा क्रांतियां निरंतर अपनी आलोचना करती हैं, आगे बढ़ते-बढ़ते स्वयं ही बार-बार रुक जाती हैं, ज़ाहिरा तै किये हुए रास्ते पर फिर लौट आती हैं ताकि अपनी यात्रा दोबारा शुरू करें, अपने प्रथम प्रयासों की अपर्याप्तताओं, कमजोरियों और तुच्छताओं की निर्मम अत्यंत भर्त्सना करती हैं, शत्रु को मानो इसी लिए पटकती हैं कि वह धरती से नवीन बल प्राप्त कर और अधिक विराट होकर फिर उनके सामने आये; स्वयं अपने लक्ष्यों के अस्पष्ट से विराट

*आकस्मिक प्रहार। – सं०

**उद्दंड कार्रवाई। – सं०

आकार से बारंबार झिझककर पीछे हट जाती हैं—तब तक, जब तक कि ऐसी परिस्थिति तैयार नहीं हो जाती जिसमें पीछे हटना बिल्कुल असम्भव होता है और अवस्थाएं स्वयं पुकारकर कहती हैं:

Hic Rhodus, hic salta!
यहां गुलाब, नाचो यहां![68]

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, प्रत्येक पर्याप्त योग्य प्रेक्षक को, चाहे उसने फ़्रांसीसी घटनाक्रम का प्रत्येक पग पर निरीक्षण न भी किया हो, यह पूर्वाभास अवश्य हुआ होगा कि क्रांति टांय-टांय फिस होकर रह जायेगी, जैसा कि पहले कभी देखा भी न गया हो। मई १८५२ के दूसरे रविवार[69] के प्रत्याशित सुखद परिणामों के बारे में जनवादी महानुभावों ने आत्मसंतोष से एक दूसरे को बधाइयां देते हुए विजयोल्लास से भरकर जो कोलाहल मचाया उसे सुनना ही इसके लिए काफ़ी था। जिस तरह किलिआस्टों[70] के मस्तिष्क में उस दिन का विचार बद्धमूल धारणा की तरह, अंधमत की तरह बैठ गया था, जिस दिन ईसा मसीह फिर अवतरित होंगे, और एक सहस्राब्दी का सुख-शान्ति का काल आरम्भ हो जायेगा, उसी प्रकार इन लोगों के मस्तिष्क में मई १८५२ के दूसरे रविवार का विचार बैठ गया था। जैसा कि सदा होता है, दुर्बलता ने चमत्कारों में विश्वास का आश्रय लिया था। उन्होंने यह कल्पना कर ली थी कि शत्रु पराजित हो गया है जबकि वस्तुतः उसे केवल कल्पना में फूंककर उड़ा दिया गया था। और उन्होंने भविष्य के तथा उन कारनामों के निष्क्रिय गौरवान्वयन में, जिनकी उन्होंने अपने मन में योजनाएं तैयार कर रखी थीं, पर जिन्हें वे अभी पूरा करना नहीं चाहते थे, वर्तमान का समस्त अवबोध भुला दिया था। वे सूरमा, जो एक दूसरे के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करके और एक मजमे में इकट्ठा होकर यह साबित करना चाहते थे कि वे सचमुच अयोग्य नहीं हैं, जबकि उनकी अयोग्यता प्रत्यक्ष हो चुकी थी, अपना बोरिया-बिस्तर बांध चुके थे तथा पहले ही कीर्ति के अपने पुष्पहारों को समेट चुके थे। तत्काल वे सर्राफ़े में in partibus उन जनतन्त्रों को जिस दाम पर भी हो भुना लेने में व्यस्त थे जिनकी सरकारों के सदस्य अपनी सरल चित्तवृत्ति की समस्त निश्चिंतता के साथ वे दूरदर्शितापूर्वक पहले ही तय कर चुके थे। २ दिसम्बर उनके लिए ऐसा था जैसे मेघहीन आकाश से बिजली गिरी हो। और उन लोगों को, जो बुज़दिली और पस्ती के समय अपने दिल की धुकधुकाहट को सबसे ज़ोर से चिल्लानेवालों के स्वर में प्रसन्नतापूर्वक डूब जाने

देते हैं, शायद यह यक़ीन हो गया होगा कि वह ज़माना कभी का लद गया जब बत्तख़ों की कुड़-कुड़ कैपिटोल[71] को बचा सकती थी।

संविधान, राष्ट्रीय सभा, राजवंशीय पार्टियां, नीले और लाल जनतंत्रवादी, अफ़्रीका के सूरमा[72], सभा मंच पर वक्ताओं का कड़कना, दैनिक पत्रों का बिजलियां चमकाना, पूरा साहित्य, राजनीतिक नाम और बौद्धिक ख्यातियां, दीवानी क़ानून और दंड संहिता, liberté, égalité, fraternité* और मई १८५२ का दूसरा रविवार—ये सभी किसी मायारूपी दृश्य की भांति एक ऐसे आदमी के जादू के ज़ोर से छूमंतर हो गये जिसको उसके शत्रु भी जादूगर नहीं बताते थे। ऐसा लगता है कि सर्व-मताधिकार केवल कुछ क्षणों के लिए इसलिए बचा रहा ताकि सारी दुनिया के सामने वह अपने हाथों से अपना अंतिम मृत्युपत्र और वसीयतनामा तैयार करे और स्वयं जनता के नाम पर घोषणा करे कि: "जो कुछ भी अस्तित्वमान् है, वह सब विनाशयोग्य है!"**

यह कहना—जैसा कि फ़्रांसीसी लोग कहते हैं—काफ़ी नहीं है कि उनका राष्ट्र ग़फ़लत का शिकार हुआ। राष्ट्र और नारी के लिए असजगता की वह घड़ी कभी क्षम्य नहीं जिसमें कोई भी दुस्साहसपूर्ण व्यक्ति आकर बलात्कार करे। ऐसी उक्तियों से पहेली हल नहीं होती, केवल भिन्न ढंग से निरूपित होती है। यह व्याख्या शेष रह जाती है कि किस प्रकार तीन ठग तीन करोड़ साठ लाख लोगों के एक राष्ट्र को चौंका सकते हैं और बिना किसी प्रतिरोध के बंदी बना सकते हैं।

आइये, उन दौरों पर मोटे तौर पर एक नज़र डालें जिनसे होकर फ़्रांसीसी क्रांति २४ फ़रवरी १८४८ से दिसम्बर १८५१ के बीच गुज़री है।

तीन मुख्य दौर सुस्पष्ट हैं जिनके बारे में कोई ग़लती नहीं की जा सकती: **फ़रवरी काल**; ४ मई १८४८ से २८ मई १८४९ तक—**जनतंत्र के गठन**, अथवा **राष्ट्रीय संविधान सभा के गठन का काल**; २८ मई १८४९ से २ दिसम्बर १८५१ तक—**वैधानिक जनतंत्र** अथवा **राष्ट्रीय विधान सभा का काल**।

प्रथम काल, अर्थात् २४ फ़रवरी से (जिस दिन लूई फ़िलिप गद्दी से उतारा गया) ४ मई १८४८ तक के काल को (जब संविधान सभा बैठी), अर्थात् असली **फ़रवरी काल** को हम क्रांति की **प्रस्तावना** कह सकते हैं। इस काल का

---

*स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व।—सं०

**गेटे के 'फ़ाउस्ट' में मेफ़िस्टोफ़ीलीस की उक्ति।—सं०

स्वरूप आधिकारिक रूप में इस बात द्वारा व्यक्त होता है कि उसमें जो सरकार बनायी गई, उसने स्वयं घोषित किया कि वह एक **अस्थायी** सरकार है; और उस सरकार की ही भांति इस काल में जिस चीज़ की भी प्रस्तावना, प्रयास अथवा निरूपण किया गया, उसने पुकार-पुकार कर कहा कि वह केवल **अस्थायी** है। कोई भी और कुछ भी जीने और वास्तव में कुछ करने के अधिकार का दावा करने का साहस न कर सकता था। उन सभी तत्वों को जिन्होंने क्रांति को आयोजित अथवा निर्धारित किया था—राजवंशीय विरोध-पक्ष, जनतंत्रवादी पूंजीपति, जनवादी-जनतंत्रवादी निम्नपूंजीपति और समाजवादी-जनवादी मजदूरों को—फ़रवरी की **सरकार** में आरज़ी तौर पर जगह मिली थी।

अन्यथा हो भी नहीं सकता था। शुरू-शुरू में फ़रवरी की घटनाओं का लक्ष्य इस प्रकार का निर्वाचन सुधार सम्पन्न करना था, जिसके द्वारा स्वामी वर्ग के ही अंदर राजनीतिक विशेषाधिकार सम्पन्न लोगों का दायरा बढ़ाया जा सके और केवल वित्तीय महाप्रभुओं का आधिपत्य समाप्त किया जा सके। किन्तु जब संघर्ष वस्तुतः आरम्भ हो गया, जब जनता बैरीकेडों पर आ डटी, राष्ट्रीय गार्ड ने प्रतिकारशून्य रुख़ अख़्तियार किया, सेना ने कोई वास्तविक प्रतिरोध न किया और राजतंत्र भाग खड़ा हुआ, तब ऐसा लगा कि जनतंत्र की स्थापना अवश्यम्भावी है। हर पार्टी ने इस जनतन्त्र की अपने-अपने ढंग से व्याख्या की। शस्त्रबल से उसे प्राप्त कर सर्वहारा ने उसके ऊपर अपनी छाप डाली और उसे **सामाजिक** जनतन्त्र घोषित किया। इस प्रकार आधुनिक क्रान्ति की सामान्य अंतर्वस्तु का निर्देश हुआ, उपलब्ध सामग्री तथा आम जनता की चेतना के विकास को देखते हुए वर्तमान परिस्थितियों और सम्बन्धों के अंतर्गत, जो कुछ भी तत्काल व्यवहार साध्य था, यह अंतर्वस्तु उसके सर्वथा प्रतिकूल थी। दूसरी ओर, फ़रवरी क्रांति में सहयोग करनेवाले तत्वों में एक सर्वहारा को छोड़कर बाक़ी सभी के दावे माने गये; यह इस बात से स्पष्ट है कि सरकार में उन्हें ही सबसे बड़ा हिस्सा मिला। अतएव अन्य किसी काल में हमें लम्बी-चौड़ी बातों के साथ वास्तविक अनिश्चयता और अपटुता की, परिवर्तन के लिए उत्साहपूर्ण प्रयास के साथ पुरानी बद्धमूल परिपाटी के गहरे प्रभाव की, पूरे समाज के प्रतीयमान सामंजस्य के साथ उसके तत्त्वों की गहरी अनबन की ऐसी विचित्र मिलावट नहीं मिलती। जबकि पेरिस का सर्वहारा वर्ग अपने सामने उन्मुक्त, व्यापक सम्भावनाओं की कल्पनाओं में लीन था और सामाजिक समस्याओं पर गम्भीरतापूर्ण वादानुवाद में लगा हुआ था, समाज की पुरातन शक्तियों ने अपने को जत्थेबन्द कर लिया था। वे सब इकट्ठा हुईं, उन्होंने

सोचा-विचारा और राष्ट्र के विशाल जनसमुदाय – किसानों और निम्नपूंजीपतियों – से, जो जुलाई राजतंत्र[73] की प्राचीरों के ढहते ही, राजनीतिक रंगमंच पर चढ़ आये थे, उन्हें अप्रत्याशित समर्थन प्राप्त हुआ।

दूसरा काल, अर्थात् ४ मई १८४८ से १८४९ की मई के अंत तक – **पूंजीवादी जनतन्त्र के गठन का, संस्थापन का** काल है। फ़रवरी काण्ड के बाद न केवल राजवंशीय विरोध-पक्ष[74] को जनतंत्रवादियों ने और जनतंत्रवादियों को समाजवादियों ने अचानक चौंका दिया था, वरन् पूरे फ़्रांस को पेरिस ने चौंका दिया था। राष्ट्रीय सभा, जिसकी बैठक ४ मई १८४८ को आरम्भ हुई, राष्ट्रीय निर्वाचन से उत्पन्न हुई थी और राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती थी। वह सभा फ़रवरी के दिनों के मिथ्या दावों के प्रति मूर्त्तिमान प्रतिरोध थी और वह क्रांति के परिणामों को नीचे पूंजीवादी स्तर पर ले आनेवाली थी। पेरिस के सर्वहारा ने, जिसने इस राष्ट्रीय सभा के चरित्र को फ़ौरन ही पहचान लिया था, उसके अधिवेशन के आरम्भ होने के कुछ ही दिनों बाद, १५ मई को, उसके अस्तित्व का बलपूर्वक निषेध करने, उसे भंग करने, उस जैविक रूप को, जिसे धारण कर राष्ट्र की प्रतिक्रियाशील भावना सर्वहारा के लिए ख़तरा पैदा कर रही थी, फिर से उसके संघटक भागों में विघटित कर देने का विफल प्रयत्न किया। पर जैसा कि विदित है, १५ मई की घटनाओं का एकमात्र परिणाम यह हुआ कि ब्लांकी और उनके साथी, अर्थात् सर्वहारा पार्टी के असली नेतागण इस पूरे कालचक्र के लिए, जिसकी हम यहां विवेचना कर रहे हैं, सार्वजनिक रंगमंच से हटा दिये गये।

लूई फ़िलिप के **पूंजीवादी राजतन्त्र** के बाद **पूंजीवादी जनतन्त्र** का ही अस्तित्व हो सकता है, अर्थात् जहां पूंजीपति वर्ग का एक सीमित भाग राजा के नाम पर राज्य किया करता था वहां अब पूरा पूंजीपति वर्ग जनता के नाम पर शासन करेगा। पेरिस के सर्वहारा की मांगें कल्पना जगत् की उड़ानें हैं, कोरी बकवास हैं, जिनका ख़ातमा करना होगा – राष्ट्रीय संविधान सभा की इस घोषणा का जवाब पेरिस के सर्वहारा ने **जून विद्रोह** द्वारा दिया जो यूरोपीय गृहयुद्धों के इतिहास की सबसे विराट घटना है। पूंजीवादी जनतन्त्र विजयी हुआ। उसके पक्ष में थे वित्तीय महाप्रभु, औद्योगिक पूंजीपति, मध्यम वर्ग, निम्नपूंजीपति, सेना, गश्ती गार्ड के रूप में संगठित लंपट सर्वहारा, बुद्धिजीवी, पादरी लोग और गांवों की आबादी। पेरिस के सर्वहारा के पक्ष में स्वयं उसके सिवा और कोई नहीं था। तीन हज़ार से अधिक बाग़ी जीत के बाद क़त्ल किये गये और पन्द्रह हज़ार को बिना मुक़दमा चलाये कालापानी भेजा गया। इस हार के साथ सर्वहारा वर्ग क्रांतिकारी रंगमंच

की **पृष्ठभूमि** में चला गया। हर मौक़े पर जहां आन्दोलन नये सिरे से उठता दिखायी देता है, वह फिर आगे बढ़ने की कोशिश करता है—परन्तु निरन्तर अल्पतर शक्ति और तुच्छतर सफलता के साथ। ज्यूं ही उससे ऊपर अवस्थित सामाजिक स्तरों में से किसी में **क्रांतिकारी** उफान आने लगता है, सर्वहारा वर्ग झट उसके साथ गठबन्धन कर लेता है। फलतः वह विभिन्न पार्टियों की हार में एक के बाद दूसरी का साझीदार बनता है। पर बाद के ये प्रहार, समाज के जितने ही बड़े धरातल पर फैले होते हैं, उतने ही कमज़ोर पड़ते जाते हैं। राष्ट्रीय सभा और समाचारपत्र जगत् के अंदर सर्वहारा के अधिक महत्त्वपूर्ण नेता एक के बाद एक अदालतों के शिकार बनते जाते हैं और अधिकाधिक संदिग्ध प्रकार के व्यक्ति उसका नेतृत्व ग्रहण करते हैं। अंशतः वह अपने को **मतवादी प्रयोगों, विनिमय बैंकों और मजदूर संघों में फंसा देता है, जिसका मतलब यह है कि वह अपने को ऐसे आन्दोलन में फंसा देता है जिसमें वह पुरानी दुनिया का स्वयं उस दुनिया के महान् संयुक्त साधनों द्वारा क्रांतिकारीकरण करने का लक्ष्य त्याग देता है और समाज के पीठ पीछे, निजी तौर पर, अपने अस्तित्व की सीमित अवस्थाओं के भीतर, अपना उद्धार करने का प्रयास करता है, और परिणामस्वरूप उसका अनिवार्य रूप से बेड़ा ग़र्क़ हो जाता है।** ऐसा लगता है कि वह अपने में फिर क्रांतिकारी महानता तब तक नहीं देख पाता, या नये संश्रयों से नयी स्फूर्ति प्राप्त करने में तब तक असमर्थ रहता है जब तक **सभी वर्ग**, जिनके साथ जून में उसका मुक़ाबला हुआ था, स्वयं धराशायी होकर उसके पार्श्व में नहीं पहुंच जाते। पर वह हारा तो कम से कम महान् विश्व ऐतिहासिक संघर्ष के सम्मान से मण्डित होकर हारा, केवल फ़्रांस ही नहीं वरन् पूरा यूरोप जून के भूकम्प से कांप उठा। इसके विपरीत, ऊपरी वर्गों की इसके बाद आनेवाली हारों में इतना कम मोल चुकाया गया था कि बिना विजयी पक्ष की निर्लज्ज ढिंढोरेबाज़ी के उन्हें घटनाओं का भी नाम नहीं दिया जा सकता; पराजित पार्टी सर्वहारा पार्टी से जितनी ही अधिक दूर थी, उतनी ही अधिक अपमानपूर्ण उसकी हार हुई।

इसमें संदेह नहीं कि जून के बाग़ियों की हार ने वह जमीन तैयार और चौरस कर दी थी जिस पर पूंजीवादी जनतंत्र की नींव डाली जा सकती थी और उसका निर्माण किया जा सकता था, पर साथ ही उसने यह भी दिखा दिया था कि यूरोप के सामने जो सवाल है वह यह नहीं है कि "जनतंत्र हो या राजतन्त्र रहे", वरन् कुछ और ही है। उसने यह प्रगट किया था कि **पूंजीवादी जनतंत्र** का यहां अर्थ है, एक वर्ग का अन्य वर्गों पर अबाध स्वेच्छाचारी शासन। उसने

सिद्ध किया था कि पुरानी सभ्यता वाले देशों में, जहां वर्गों का गठन विकसित अवस्था में है, उत्पादन की आधुनिक अवस्थाएं विद्यमान हैं और जहां बौद्धिक चेतना ऐसी है जिसमें शताब्दियों के कार्य के फलस्वरूप सभी परम्परागत धारणाएं घुल गयी हैं, **जनतंत्र का अर्थ सामान्यतः पूंजीवादी समाज की क्रांति का राजनीतिक रूप मात्र होता है, उसके जीवन का रूढ़िगत रूप नहीं**, जैसा कि, मसलन, उत्तर अमरीका के संयुक्त राज्यों में है, जहां वर्ग यद्यपि अस्तित्व में आ गये हैं पर वे अभी स्थिर नहीं हुए हैं वरन् अपने सतत प्रवहमान तत्त्वों का निरंतर परिवर्तन और अंतर्विनिमय कर रहे हैं, जहां उत्पादन के आधुनिक साधन स्थिर, बेशी जनसंख्या के साथ-साथ होने के बदले, हाथों और मस्तिष्कों के आपेक्षिक अभाव की पूर्ति करते हैं, और अंतिम बात यह कि जहां भौतिक उत्पादन, जिसे एक नई दुनिया को अपना बनाना है, की प्रचंड, युवावस्था जैसी गति ऐसी है कि पुराने प्रेत जगत् का उन्मूलन करने का न तो समय है और न अवसर।

जून के दिनों में सभी वर्ग और पार्टियां सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध, जिसे वे **अराजकता** की, समाजवाद की, कम्युनिज़्म की **पार्टी** समझती थीं, **अमन की पार्टी** में संयुक्त हो गयी थीं। उन्होंने "**समाज के शत्रुओं**" से समाज को "बचाया" था। अपनी सेना को उन्होंने बताया था कि पुराने समाज का मूल-मन्त्र – "**सम्पत्ति, परिवार, धर्म और व्यवस्था**" शत्रु-मित्र की पहचान बतानेवाला उसका संकेत शब्द होगा; तथा क्रांति विरोधी धर्मयुद्ध के योद्धाओं के बीच घोषणा की थी: "यह सलीब तुमको जितायेगा!"।[75] उस समय से ऐसा हुआ कि उन बहुत-सी पार्टियों में से, जो जून के विद्रोहियों के ख़िलाफ़ इस झण्डे के नीचे इकट्ठी हुई थीं, जब भी कोई पार्टी स्वयं अपने वर्ग हित के लिए क्रांतिकारी रणक्षेत्र में डटे रहने का प्रयत्न करती तो वह इस नारे – "सम्पत्ति, परिवार, धर्म और व्यवस्था!" – के सम्मुख धराशायी हो जाती थी। समाज का उतनी ही बार उद्धार होता है जितनी बार उसके शासकों का मण्डल संकुचित होता है, जितनी बार उसके अधिक विस्तृत हितों के विरुद्ध अधिक संकीर्ण हित बरक़रार रखे जाते हैं। मामूली से मामूली पूंजीवादी वित्तीय सुधार की, साधारणतम उदारपंथ की, औपचारिक से औपचारिक जनतन्त्रवाद की, उथले से उथले जनवाद की मांग को "समाज पर प्रहार" कहकर दण्डित और साथ ही "समाजवाद" कहकर लांछित किया जाता है। और अंततः "धर्म और व्यवस्था" के पण्डे स्वयं लात मारकर अपनी पिथियन तिपाइयों[76] से नीचे ढकेल दिये जाते हैं, रात के अंधेरे में वे अपनी चारपाइयों से

घसीट लाये जाते हैं और जेल की गाड़ियों में भरकर कालकोठरियों में बंद कर दिये जाते हैं अथवा निर्वासित कर दिये जाते हैं। उनका मंदिर ढहा दिया जाता है, उनकी ज़बानों पर ताले जड़ दिये जाते हैं, उनकी क़लमें तोड़ दी जाती हैं और उनके क़ानूनों की धज्जियां उड़ा दी जाती हैं। और यह सब धर्म, सम्पत्ति, परिवार और व्यवस्था के नाम पर! कट्टर व्यवस्थापंथी पूंजीपति सड़कों पर शराब पीकर गश्ती करनेवाले सिपाहियों की टोलियों द्वारा अपने घरों के छज्जों पर गोली का निशाना बनाये जाते हैं। सिपाही उनके घरों की अलंघनीयता को भी रौंद डालते हैं, उनके घरों पर मनोरंजन के लिए गोलियों की बौछार करते हैं। और यह सब सम्पत्ति, परिवार, धर्म और व्यवस्था के नाम पर! अंत में, पूंजीवादी समाज के निकृष्टतम लोग **व्यवस्था का पवित्र व्यूह** क़ायम करते हैं और सूरमा क्रापुलिन्स्की* **"समाज का उद्धारक"** बनकर तुलरी[77] में आसीन हो जाता है।

२

आइये, घटनाक्रम पर एक बार फिर दृष्टिपात करें।

जून की घटनाओं के बाद से **राष्ट्रीय संविधान सभा** का इतिहास **पूंजीपति वर्ग के जनतंत्रवादी गुट के प्रभुत्व और विघटन का इतिहास** है। यह उस गुट के प्रभुत्व और विघटन का इतिहास है जिसे तिरंगा जनतंत्रवादी, विशुद्ध जनतंत्रवादी, राजनीतिक जनतंत्रवादी, औपचारिक जनतंत्रवादी आदि नामों से पुकारते हैं।

लूई फ़िलिप के पूंजीवादी राजतंत्र के दिनों में यही गुट **अधिकृत** जनतंत्रवादी **विरोध दल** था, और इसलिए उस समय के राजनीतिक जगत् का एक माना हुआ अंशभूत भाग था। सदनों में उसके प्रतिनिधि थे तथा अख़बारी दुनिया में उसका एक बहुत बड़ा प्रभाव-क्षेत्र था। उसका पेरिस का मुखपत्र «*National*»[78] अपने ढंग का उतना ही सम्भ्रांत पत्र माना जाता था जितना «*Journal des Débats*»[79]। वैधानिक राजतंत्र के अंतर्गत उसका स्वरूप इस स्थिति के अनुरूप था। यह पूंजीपति वर्ग का कोई ऐसा गुट न था जो किन्हीं महत्त्वपूर्ण समान स्वार्थों के आधार पर एकताबद्ध हो और उत्पादन की विशेष अवस्थाओं द्वारा दूसरों से पृथक् किया गया हो। यह जनतांत्रिक विचारों वाले पूंजीपतियों, लेखकों, वकीलों, फ़ौजी और

---

*लूई बोनापार्त। – सं०

सरकारी अफ़सरों का एक संकीर्ण गुट था जिसके प्रभाव का कारण लूई फ़िलिप के विरुद्ध लोगों की वैयक्तिक नाराज़ी, पुराने जनतंत्र[80] की स्मृतियां, अनेक उत्साही जनों का जनतांत्रिक विश्वास, पर सबसे अधिक **फ़्रांसीसी राष्ट्रवाद** था जिसकी वियेना संधियों[81] और इंगलैंड के साथ गठबन्धन के प्रति घृणा को यह गुट लगातार उभारा करता था। लूई फ़िलिप के समय में «*National*» की नीति पर जो लोग चला करते थे, उनका एक बड़ा भाग इस छिपे हुए साम्राज्यवाद के कारण उसकी ओर आकर्षित हुआ था, और फलत: यही जनतंत्र काल में लूई बोनापार्त के रूप में स्वयं «*National*» का एक ख़तरनाक प्रतियोगी बनकर सामने आकर खड़ा हो सकता था। सभी पूंजीवादी विरोधी दलों की भांति «*National*» के गुट ने भी वित्तीय महाप्रभुओं से संघर्ष किया। बजट की तीव्र आलोचना द्वारा, जिसका उन दिनों फ़्रांस में वित्तीय महाप्रभुओं के विरुद्ध संघर्ष से घनिष्ठ सम्बन्ध था, इतनी आसानी से लोकप्रियता तथा शुद्धाचारवादी अग्रलेखों के लिए प्रचुर सामग्री प्राप्त होती थी, कि इस अस्त्र का इस्तेमाल न करना असंभव था। औद्योगिक पूंजीपति उसके इसलिए आभारी थे कि वह फ़्रांसीसी संरक्षण प्रणाली की आंख मूंद कर हिमायत करता था यद्यपि संरक्षण को वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के ख़याल से उतना नहीं जितना राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर स्वीकार करता था। समस्त पूंजीपति वर्ग उसका इसलिए आभारी था कि वह कम्युनिज्म और समाजवाद को पानी पी-पी कर गालियां देता था। किन्तु इन बातों को छोड़ दें तो, «*National*» की पार्टी **विशुद्ध जनतंत्रवादी** पार्टी थी, अर्थात् वह पूंजीवादी शासन के राजतांत्रिक रूप की नहीं, वरन् जनतांत्रिक रूप की मांग करती थी और सर्वोपरि यह मांग करती थी कि इस शासन में मुख्य हिस्सा उसी का हो। इस राजनीतिक रूपांतरण की शर्तें क्या होंगी, इसके सम्बन्ध में उसका दिमाग़ ख़ुद क़लई साफ़ न था। दूसरी ओर जो चीज़ उसके लिए एकदम साफ़ थी और जिसे लूई-फ़िलिप के शासन के अंतिम दिनों के सुधार आन्दोलन के प्रीतिभोजों में सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया गया था, वह थी जनवादी निम्नपूंजीपतियों के तथा ख़ासकर क्रांतिकारी सर्वहारा के बीच उसकी अलोकप्रियता। ये विशुद्ध जनतंत्रवादी, जैसा कि वस्तुत: सभी विशुद्ध जनतंत्रवादियों का क़ायदा है, प्रथमत: आर्लियां की डचेस की रीजेन्सी पर संतोष करने जा ही रहे थे, कि इतने में फ़रवरी क्रांति भड़क उठी और उसने इनके सबसे मशहूर प्रतिनिधियों को अस्थायी सरकार में गद्दीनशीं कर दिया। इन जनतंत्रवादियों को आरम्भ से ही स्वभावत: पूंजीपति वर्ग का विश्वास तथा राष्ट्रीय संविधान सभा में

बहुमत प्राप्त था। राष्ट्रीय सभा ने अपनी बैठक होने पर जो कार्यकारी आयोग बनाया था उससे अस्थायी सरकार के **समाजवादी** तत्त्व उसी समय बाहर रखे गये थे। «*National*» की पार्टी ने जून विद्रोह से लाभ उठाकर **कार्यकारी आयोग** को भी बर्ख़ास्त कर दिया और इस प्रकार अपने निकटतम प्रतियोगी, **निम्न-पूंजीवादी** अथवा **जनवादी जनतंत्रवादियों** (लेद्रू-रोलें आदि) से छुटकारा पा लिया। पूंजीवादी-जनतंत्रवादी पार्टी के जनरल कैवेन्याक ने, जिसकी कमान में जून का क़त्ले-आम हुआ था, कार्यकारी आयोग का स्थान ग्रहण कर एक प्रकार से अपना एकाधिपत्य स्थापित किया। «*National*» का भूतपूर्व प्रधान सम्पादक मारास्त राष्ट्रीय संविधान सभा का एक प्रकार से स्थायी अध्यक्ष बन गया तथा मंत्रालय और अन्य सभी महत्त्वपूर्ण पद विशुद्ध जनतंत्रवादियों के हाथों में आ गये।

इस प्रकार, जनतांत्रिक पूंजीवादी गुट की, जो बहुत दिनों से अपने को जुलाई राजतंत्र का वैध उत्तराधिकारी माने हुए था, गहनतम आकांक्षाएं आशातीत रूप में पूर्ण हुईं। किन्तु जैसी कि लूई फ़िलिप के ज़माने में उसकी उत्कट मनोकांक्षा थी, कि वह राज-सिंहासन के विरुद्ध पूंजीपति वर्ग के उदारपंथी विद्रोह द्वारा सत्ता प्राप्त करे, वैसी बात नहीं हुई, वरन् उसे पूंजी के विरुद्ध सर्वहारा के विद्रोह द्वारा, जिसे गोलियों की बौछार द्वारा दबाया गया था, सत्ता प्राप्त हुई। जिसे उसने अपने मस्तिष्क में **सबसे क्रांतिकारी** घटना के रूप में चित्रित किया था, वह वस्तुतः **सबसे प्रतिक्रांतिकारी** घटना सिद्ध हुई। फल उसके हाथ में आ टपका ज़रूर, पर वह ज्ञान वृक्ष से टपक पड़ा था, जीवन वृक्ष से नहीं।

पूंजीवादी जनतंत्रवादियों का पूर्ण **शासन** केवल २४ जून से १० दिसम्बर १८४८ तक चला। उसकी सम्पूर्ण उपलब्धि थी, **एक जनतंत्रवादी संविधान का मसविदा तैयार करना और पेरिस में घेरे की स्थिति क़ायम रखना।**

नया **संविधान** मूलतः १८३० के संविधानी चार्टर[82] का जनतंत्रीकृत संस्करण मात्र था। जुलाई राजतंत्र के समय की संकीर्ण मताधिकार योग्यता, जो पूंजीपति वर्ग के एक बड़े भाग को भी राजनीतिक शासन से वंचित कर देती थी, पूंजीवादी जनतंत्र के अस्तित्व के साथ मेल नहीं खाती थी। फ़रवरी क्रांति ने उस मताधिकार योग्यता के स्थान पर प्रत्यक्ष सर्व-मताधिकार की तत्काल घोषणा की थी। पूंजीवादी जनतंत्रवादी इस किये को अनकिया नहीं कर सकते थे। उन्हें निर्वाचन क्षेत्र में छः महीने के निवास की पाबन्दी लगाकर ही संतोष कर लेना पड़ा। प्रशासन की पुरानी व्यवस्था, नगरपालिका की प्रणाली, न्याय व्यवस्था और सेना आदि का पुराना संगठन अक्षुण्ण रहने दिया गया, अथवा, यदि संविधान ने उसमें

कहीं परिवर्तन किया भी तो यह परिवर्तन विषय सूची तक ही सीमित था, वह विषय को नहीं छूता था; केवल नाम बदला गया था, न कि विषय वस्तु।

१८४८ के स्वातंत्र्यों में जो निश्चय ही सर्वोच्च थे, जैसे व्यक्ति स्वातंत्र्य, प्रेस, वाक्, संघ तथा सभा स्वातंत्र्य, शिक्षा और धर्म स्वातंत्र्य आदि, उन्हें संविधानी लिबास पहनाया गया, जिसके कारण वे उल्लंघ्य न रह गये। इनमें से प्रत्येक स्वातंत्र्य फ़ांसीसी नागरिक का **पूर्ण** अधिकार घोषित किया गया परन्तु साथ ही, हाशिये में यह टिप्पणी लगाकर कि यह अधिकार उसी सीमा तक प्राप्त रहेगा जहां तक यह **"अन्य लोगों के समान अधिकार तथा जन-सुरक्षा"** अथवा उन "क़ानूनों" द्वारा परिसीमित नहीं होता जिनका उद्देश्य इन अलग-अलग स्वातंत्र्यों में तथा इनमें और जन-सुरक्षा में तालमेल बनाये रखना है। उदाहरणार्थ, "नागरिकों को संघबद्ध होने, शांतिपूर्ण तथा बिना हथियार के सभा करने, आवेदन करने तथा अपने मतों को समाचारपत्रों में या अन्य प्रकार से व्यक्त करने का अधिकार प्राप्त है। **इन अधिकारों के उपभोग पर अन्य लोगों के समान अधिकारों तथा जन-सुरक्षा को छोड़कर और कोई बन्धन नहीं है।**" (फ़्रांस के संविधान का दूसरा अध्याय, धारा ८।) – "शिक्षा पर कोई रोक नहीं है। शिक्षा स्वातंत्र्य का **उपभोग** क़ानून द्वारा निर्धारित अवस्थाओं के तथा राज्य के सर्वोच्च नियंत्रण के अंतर्गत किया जायेगा।" (संविधान का वही अध्याय, धारा ९।) – "प्रत्येक नागरिक का घर, क़ानून द्वारा विहित रूपों के अतिरिक्त, अनतिक्रमणीय है।" (अध्याय २, धारा ३।) आदि, आदि। इस प्रकार संविधान में बराबर उन भावी **संघटनात्मक** क़ानूनों का ज़िक्र है जो हाशिये में लिखी इन टिप्पणियों को कार्यरूप देंगे और इन असीमित स्वातंत्र्यों के उपभोग का इस ढंग से नियमन करेंगे कि वे आपस में या जन-सुरक्षा के साथ नहीं टकरायेंगे। बाद में अमन के पक्षधरों ने ये संघटनात्मक क़ानून तैयार किये और इन सभी स्वातंत्र्यों का इस ढंग से नियमन किया कि इनका उपभोग करने में पूंजीपति वर्ग को अन्य वर्गों के समान अधिकारों से कोई बाधा नहीं पड़ती है। जहां वह इन स्वातंत्र्यों का "अन्य लोगों" के लिए पूर्ण निषेध कर देता है या केवल ऐसी शर्तों के साथ इनका उपभोग करने की अनुमति देता है जो महज़ पुलिस के फंदे हैं, वहां यह संविधान द्वारा निर्दिष्ट रूप में सदा केवल **"जन-सुरक्षा"** के हित में, यानी पूंजीपति वर्ग की सुरक्षा के हित में किया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों ही पक्ष – अमन की पार्टी के पक्षधर, जिन्होंने इन सभी स्वातंत्र्यों को मंसूख़ किया, और जनवादी, जिन्होंने इन सारे स्वातंत्र्यों की मांग की – बिल्कुल वाजिब

तौर पर संविधान की दुहाई देने लगे थे। संविधान के हर पैरा में अपनी ही काट मौजूद है, उसके अंदर अपने उपरि और अवर सदन हैं, अर्थात् एक आम शब्दावली है जिसमें स्वातंत्र्य लिखा है और एक हाशिये का नोट है जिसमें स्वातंत्र्य की मंसूखी लिखी हुई है। अतः जब तक स्वतंत्रता के **नाम** का आदर किया जाता रहा और केवल उसका चरितार्थ होना रोका जाता रहा—बेशक यह काम क़ानूनी तरीक़े से किया जाता था—तब तक स्वातंत्र्य का वैधानिक अस्तित्व अनतिक्रम्य और यथावत रहा, भले ही **वास्तविक** जीवन में उसके ऊपर घातक से घातक प्रहार किये जाते रहे।

किंतु यह संविधान, जिसे इतनी चतुरता के साथ अनतिक्रमणीय बनाया गया था, एकिलीज़ की एड़ी की तरह, एक स्थल पर भेद्य था। वह जगह एड़ी न थी, बल्कि मस्तक था, या यूं कहें कि दो मस्तक थे जिन में संविधान की परिणति हुई थी—एक मस्तक था **विधान सभा** और दूसरा था **राष्ट्रपति**। संविधान को देख जाइये, तो आप पायेंगे कि उसके केवल वे अनुच्छेद परम, सुनिश्चित, विरोधाभासरहित और विकृति के अयोग्य हैं, जिनमें राष्ट्रपति और विधान सभा के सम्बन्ध की परिभाषा की गयी है। इसका कारण यह है कि यहां सवाल पूंजीवादी जनतंत्रवादियों की अपनी हिफ़ाजत का था। संविधान की धारा ४५ से धारा ७० तक की धाराओं को इस प्रकार सूत्रबद्ध किया गया है कि विधान सभा राष्ट्रपति को वैधानिक रूप से पदच्युत कर सकती है पर राष्ट्रपति विधान सभा को केवल अवैधानिक रूप में ही, स्वयं संविधान को परे करके ही, भंग कर सकता है। अतः संविधान का यह स्थल उसे बलात् भंग करने की एक चुनौती है। वह १८३० के चार्टर की ही भांति, न केवल सत्ता विभाजन को प्रतिष्ठित करता है, अपितु उसे एक असह्य अन्तर्विरोध के रूप में एक और भी व्यापक रूप देता है। **वैधानिक शक्तियों का खेल**, जैसा कि गीज़ो ने विधायी और कार्यकारी सत्ताओं के संसदीय झगड़े के बारे में एक बार कहा था, १८४८ के संविधान में लगातार, सब कुछ दांव पर लगाकर, खेला जाता है। एक ओर जनता के साढ़े सात सौ प्रतिनिधि हैं जो सर्व-मताधिकार के आधार पर चुने गये हैं और फिर चुनाव में खड़े हो सकते हैं। वे एक राष्ट्रीय सभा गठित करते हैं जो नियंत्रित नहीं की जा सकती, भंग नहीं की जा सकती और विभाजित नहीं की जा सकती। वह ऐसी राष्ट्रीय सभा है जो क़ानून बनाने के मामले में सर्वशक्तिमान् है, जो युद्ध, शांति और वाणिज्य संधियों के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करती है, जो क्षमादान के अधिकार की एकमात्र स्वामिनी है और जो अपने स्थायित्व द्वारा राजनीतिक रंगमंच पर

सदा सबसे आगे रहती है। दूसरी तरफ़ राष्ट्रपति है, जो राजसी सत्ता के सभी लक्षणों से विभूषित है, जो राष्ट्रीय सभा से स्वतंत्र रूप में अपने मंत्रियों को नियुक्त और बर्खास्त करने का अधिकार रखता है, जिसके हाथों में कार्यकारी सत्ता के सभी साधन हैं, जो सभी नियुक्तियां करता है और इस प्रकार, जिसके हाथों में फ़्रांस में कम से कम पन्द्रह लाख लोगों की आजीविका है, क्योंकि देश के पांच लाख सरकारी कर्मचारियों और सभी श्रेणी के पदाधिकारियों के ऊपर इतने लोग आश्रित हैं। पूरी सेना उसके इशारे पर चलती है। उसे अपराधी व्यक्तियों को क्षमादान देने, राष्ट्रीय गार्ड वालों को मुअत्तल करने, स्वयं नागरिकों द्वारा निर्वाचित साधारण, कैन्टन और नगर परिषदों को, राज्य परिषद की सहमति से, बर्खास्त करने का विशेषाधिकार प्राप्त है। अन्य देशों के साथ की जानेवाली सभी संधियों में पेशक़दमी करने और निर्देशन करने का उसका अधिकार आरक्षित है। जबकि राष्ट्रीय सभा को निरंतर दर्शकों के समक्ष रंगमंच पर अपनी भूमिका अदा करनी पड़ती है और प्रतिदिन सार्वजनिक रूप से की जानेवाली आलोचना का सामना करना पड़ता है, राष्ट्रपति चैम्पस एलिज़े में, जनता की आंखों से दूर, निवास करता है और संविधान की धारा ४५ सदा उसकी आंखों के सामने हमेशा नाचती रहती है और उसके मन से क्षण भर के लिए भी नहीं उतरती और उससे रोज़ पुकार-पुकारकर कहती है: "Frère, il faut mourir!"* आपकी सत्ता आपके निर्वाचन के बाद चौथे वर्ष के सुन्दर मई मास के द्वितीय रविवार को समाप्त हो जायेगी! तब आपके गौरव का अंत हो जायेगा, यह खेल दुबारा खेलने को नहीं मिलेगा, और यदि आपको क़र्ज़ उतारना है तो चेतकर, समय रहते, उसे उन छः लाख फ़्रेन्कों से उतार डालिये जो संविधान द्वारा आपको मिले हुए हैं; हां, यदि सुन्दर मई मास के द्वितीय सोमवार को आपको क्लीशी[83] जाना ही पसंद हो, तो बात दूसरी है! इस प्रकार संविधान जहां वास्तविक सत्ता राष्ट्रपति के हाथों में देता है, वहां राष्ट्रीय सभा को नैतिक सत्ता प्रदान करने का प्रयास करता है। इसके अलावा कि क़ानून के अनुच्छेदों द्वारा नैतिक सत्ता की सृष्टि नहीं की जा सकती, यह उल्लेखनीय है कि संविधान सभी फ़्रांसीसियों द्वारा राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष निर्वाचन कराकर एक बार फिर स्वयं अपना ही निषेध करता है। फ़्रांस के सारे वोट एक ओर राष्ट्रीय सभा के साढ़े सात सौ प्रतिनिधियों में बंटते हैं और दूसरी ओर वे एक ही व्यक्ति में संकेन्द्रित होते हैं। जबकि जनता का हर

*"मेरे भाई, तुम मौत से नहीं बच सकते!"—सं०

अलग-अलग प्रतिनिधि केवल इस या उस पार्टी का, इस या उस नगर का, इस या उस सीमांत स्थित चौकी का प्रतिनिधित्व करता है, और कभी-कभी तो केवल इस आवश्यकता का प्रतिनिधित्व करता है कि साढ़े सात सौ में से किसी एक को चुनना ही है, और ऐसी हालत में न उम्मीदवार के व्यक्तित्व की और न उस ध्येय की, जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है, जांच की जाती है, तो दूसरी ओर, **राष्ट्रपति** संपूर्ण राष्ट्र द्वारा चुना गया व्यक्ति होता है और उसे चुनने का कार्य तुरुप का वह पत्ता है जिसे सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनता प्रत्येक चार वर्ष में एक बार फेंकती है। निर्वाचित राष्ट्रीय सभा का राष्ट्र के साथ अधिभूतवादी सम्बन्ध होता है, पर राष्ट्रपति का व्यक्तिगत सम्बन्ध होता है। राष्ट्रीय सभा, वस्तुत:, अपने अलग-अलग प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय आत्मा के नाना पहलुओं को प्रदर्शित करती है, किन्तु राष्ट्रपति में यह राष्ट्रीय आत्मा स्वयं साकार होती है। राष्ट्रीय सभा के मुक़ाबले में उसे एक प्रकार का दिव्य अधिकार प्राप्त है, वह जनता के अनुग्रह से राष्ट्रपति बनता है।

सागर देवी थीटिस ने एकिलीज़ के सम्मुख भविष्यवाणी की थी कि उसकी भरी जवानी में मौत होगी। संविधान को, जिसका एकिलीज़ की भांति एक विशेष मर्म-स्थल था, एकिलीज़ की ही भांति यह पूर्वाभास हुआ था कि उसकी मौत जल्द आनेवाली है। थीटिस को इस बात की ज़रूरत न थी कि वह सागर से बाहर निकलकर उन्हें इस रहस्य से अवगत करे; विधान बनानेवाले विशुद्ध जनतंत्रवादियों का अपने आदर्श जनतंत्र के उच्चाकाश से एक दृष्टि पार्थिव जगत् पर डाल लेना ही यह देखने के लिए पर्याप्त था कि जैसे-जैसे उनकी महान् विधायी कला-कृति पूरी होने को आ रही थी वैसे-वैसे ही राजतंत्रवादियों, बोनापार्तपंथियों, जनवादियों और कम्युनिस्टों की उद्धतता तथा उनकी अपनी बदनामी बराबर, दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थीं। उन्होंने संविधान में एक अर्गला लगाकर, उसकी धारा १११ के ज़रिये, नियति को ठगने का प्रयत्न किया, जिसके अनुसार **संविधान में किसी संशोधन** के लिए कम से कम तीन-चौथाई वोट, लगातार तीन बहसों में जिनके बीच एक पूरे मास का अंतर होना चाहिए, प्राप्त करना आवश्यक था और साथ ही यह अतिरिक्त उपबंध था कि राष्ट्रीय सभा के कम से कम पांच सौ सदस्य मतदान में भाग लें। ऐसा करके उन्होंने केवल यह अशक्त प्रयास किया कि संसद में अल्पमत में ही रह जाने के बाद भी – और वे अभी से अपने मानसचक्षु से अपना यह भविष्य देख पा रहे थे – वे उस शक्ति का उपभोग करते रहें, जो इस समय, जबकि संसद में उनका बहुमत था और शासन-सत्ता के सभी

साधन उनके हाथों में थे, दिनोंदिन उनके निर्बल हाथों से अधिकाधिक खिसकती जा रही थी।

अंत में संविधान ने, एक नाटकीय अनुच्छेद में, अपने को "समस्त फ़ांसीसी जनता और प्रत्येक फ़ांसीसी की जागरूकता और देशभक्ति" के हवाले किया। और यह उसने, इससे पहले के एक अन्य अनुच्छेद में, "जागरूक" और "देशभक्त" जनों को अपने द्वारा इसी प्रयोजन के लिए आविष्कृत हाई कोर्ट, "haute cour", की कृपापूर्ण और उद्यमपूर्ण देख-रेख में छोड़ने के बाद किया।

ऐसा था १८४८ का संविधान जो २ दिसम्बर १८५१ को उलट दिया गया, लेकिन किसी के सिर के ज़ोर से नहीं, वह तो एक हैट के स्पर्श मात्र से धराशायी हो गया। हां, वह हैट तिकोना नेपोलियनी हैट ज़रूर था।

जिस समय राष्ट्रीय सभा के अंदर पूंजीवादी जनतंत्रवादी इस संविधान को बनाने, उस पर विचार-विमर्श करने और मतदान देने में व्यस्त थे, उसी समय राष्ट्रीय सभा के बाहर कैवेन्याक **पेरिस में घेरे की स्थिति** बरक़रार रखे हुए था। यह घेरे की स्थिति जनतन्त्र को जन्म देने में संविधान सभा की धात्री थी। यदि संविधान की जीवन-लीला बाद में संगीनों से समाप्त कर दी गयी, तो इसे न भूलना चाहिए कि संगीनों के ही ज़ोर से—जनता की ओर तनी हुई संगीनों के ज़ोर से—मां के गर्भ में उसकी रक्षा करनी पड़ी थी और संगीनों के ज़ोर से ही उसका जन्म कराया गया था। "सम्भ्रान्त जनतंत्रवादियों" के पूर्वजों ने अपने प्रतीक, तिरंगे झंडे[84] को यूरोप के दौरे पर भेजा था और स्वयं उन्होंने एक ऐसे आविष्कार को जन्म दिया जिसने अपने-आप पूरे यूरोप का चक्कर लगाया, और सदा अभिनव प्रेमभावना लेकर फ़्रांस लौटा। यहां तक कि वह अब फ़्रांस के आधे ज़िलों में अंगीकृत पद्धति बन गया है। वह आविष्कार है—**घेरे की स्थिति**। यह एक शानदार ईजाद है, जिसका फ़्रांसीसी क्रांति के प्रक्रम में उपस्थित होनेवाले हर संकट में समय-समय पर इस्तेमाल किया गया। किन्तु इस प्रकार समय-समय पर फ़ौजी बारिक और पड़ाव का दबाव फ़्रांसीसी समाज के मस्तिष्क पर डालकर उसे ठंडा कर देना; इस प्रकार तलवार और बंदूक़ को समय-समय पर न्यायाधीश और प्रशासक, अभिभावक और सेंसर बनने देना, उन्हें पुलिसमैन और रात के संतरी का काम करने देना; इस प्रकार फ़ौजी मूंछ और फ़ौजी वर्दी को समय-समय पर, ढिंढोरा पीटकर, समाज की सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता एवं समाज का उपदेष्टा घोषित करना—यह सब करने के बाद क्या अंत में यह लाज़िमी न था कि फ़ौजी बारिक और पड़ाव, तलवार और बंदूक़, मूंछ और वर्दी को एक दिन यह सूझ

पैदा होती कि क्यों न अपने शासन को सर्वोच्च घोषित करके एक ही बार समाज का उद्धार कर दिया जाये तथा नागरिक समाज को अपना शासन आप करने की चिंता से सब दिनों के लिए मुक्त कर दिया जाये? फ़ौजी बारिक और पड़ाव, तलवार और बंदूक़, मूंछ और वर्दी को यह सूझ आना और भी लाज़िमी इसलिए था कि ऐसी हालत में, अपनी उच्चतर सेवाओं के लिए, उन्हें अधिक नगद-नारायण की प्राप्ति की आशा हो सकती थी, जबकि केवल समय-समय पर घेरे की स्थिति घोषित किये जाने और इस या उस पूंजीवादी गुट के हुक्म पर समाज की रक्षा के लिए अस्थायी रूप से बुलाये जाने में सिवा इसके कि उनमें से कुछ मारे जाते हैं और कुछ घायल होते हैं और कुछ पूंजीपति दोस्ताना अन्दाज़ से पेश आते हैं, अन्य किसी सारपूर्ण वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। क्या यह लाज़िमी न था कि एक दिन सैनिक स्वयं, अपने हित के लिए, अपने लाभार्थ, घेरे की स्थिति का खेल खेलते, और लगे हाथ नागरिकों की थैलियों पर भी घेरा डाल देते? इसी प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि सैनिक आयोग का अध्यक्ष **कर्नल बेर्नार**, जिसने कैवेन्याक की मातहती में १५,००० विद्रोहियों को बिना मुक़दमा चलाये निर्वासित किया था, फिर उन सैनिक आयोगों का अध्यक्ष है जो आज पेरिस में सरगर्मी से काम कर रहे हैं।

जहां "सम्भ्रांत", विशुद्ध जनतंत्रवादियों ने पेरिस में घेरे की स्थिति क़ायम करके वह शिशुशाला स्थापित की, जिसमें २ दिसम्बर १८५१ के प्रीटोरियन[85] पलनेवाले थे, वहीं उनकी इस बात के लिए प्रशंसा करनी पड़ेगी कि लूई फ़िलिप के शासनकाल की तरह राष्ट्रीय भावना को अतिरंजित करने के बजाय, अब, जब राष्ट्रीय सत्ता उनके हाथ में थी, वे अन्य देशों के समक्ष घुटनों के बल रेंग रहे थे और इटली को आज़ाद करने के बदले उन्होंने उसे आस्ट्रियाइयों और नेपल्सवासियों[86] द्वारा पुनर्विजित होने दिया। १० दिसम्बर १८४८ को लूई बोनापार्त के राष्ट्रपति पद पर निर्वाचन ने कैवेन्याक के एकाधिपत्य का और संविधान सभा का अन्त कर दिया।

संविधान की धारा ४४ में कहा गया है: "फ़्रांसीसी जनतंत्र का राष्ट्रपति वही व्यक्ति हो सकता है जिसने फ़्रांसीसी नागरिक की अपनी हैसियत को हमेशा बरक़रार रखा हो।" फ़्रांसीसी जनतंत्र का प्रथम राष्ट्रपति लूई नेपोलियन बोनापार्त केवल फ़्रांसीसी नागरिक की अपनी हैसियत ही नहीं खो चुका था, वह एक अंग्रेज़ विशेष कांस्टेबल ही नहीं रहा था, अपितु स्विट्ज़रलैंड का देशीकृत नागरिक भी था।[87]

मैंने अन्यत्र १० दिसम्बर के निर्वाचन का विश्लेषण किया है।* यहां मैं फिर उसे नहीं दुहराऊंगा। यहां इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि यह राष्ट्र के बाक़ी वर्गों के विरुद्ध **किसानों की,** जिन्हें फ़रवरी क्रांति का व्यय वहन करना पड़ा था, **प्रतिक्रिया थी; यह नगर के विरुद्ध देहात की प्रतिक्रिया थी।** सेना ने इसकी तहेदिल से ताईद की, क्योंकि *«National»* के जनतंत्रवादियों ने उसे न गौरव दिया था और न वेतनवृद्धि। बड़े पूंजीपतियों ने इसकी ताईद की; उन्होंने राजतंत्र की स्थापना के लिए एक चौकी के रूप में बोनापार्त का स्वागत किया। सर्वहारा और निम्नपूंजीपतियों ने इसकी ताईद की, जिन्होंने बोनापार्त का स्वागत कैवेन्याक के लिए एक दण्ड के रूप में किया। फ़्रांसीसी क्रांति के साथ किसानों के सम्बन्ध के विषय में अधिक विशद विवेचना करने का मेरे लिए आगे अवसर आयेगा।

२० दिसम्बर १८४८ से मई १८४९ तक का काल, जब संविधान सभा भंग हुई, पूंजीवादी जनतंत्रवादियों के पतन के इतिहास का काल है। **पूंजीपतियों** के लिए एक जनतंत्र की स्थापना करने, क्रांतिकारी सर्वहारा को मैदान से खदेड़ देने और जनवादी निम्नपूंजीपतियों को फ़िलहाल ख़ामोश कर देने के बाद, वे ख़ुद पूंजीवादी समुदाय द्वारा, जिसने बिल्कुल उचित ही इस जनतंत्र को **अपनी जायदाद** मानकर इस पर क़ब्ज़ा जमा लिया, ढकेलकर किनारे कर दिये गये। किन्तु यह पूंजीवादी समुदाय **राजतंत्रवादी** था। उसके एक भाग – बड़े भूस्वामियों – ने **पुनःस्थापना**[88] के जमाने में राज किया था और इसलिए वह **लेजिटिमिस्ट** था। दूसरे हिस्से – वित्तीय महाप्रभुओं और बड़े उद्योगपतियों – ने जुलाई राजतंत्र के ज़माने में राज किया था, अतः वह आर्लियानिस्ट[89] था। सेना, विश्वविद्यालय, चर्च, वकालत पेशे, अकादमी तथा अख़बारों के उच्चपदस्थ व्यक्ति दोनों पक्षों में पाये जाते थे, यद्यपि अनुपात भिन्न-भिन्न थे। यहां पूंजीवादी जनतंत्र में, जिस पर न **बूर्बों** नाम की मुहर थी न **आर्लियां** की, अपितु जिस पर **पूंजी** की मुहर थी, उन्हें राज्य का वह रूप उपलब्ध हो गया था जिसमें वे **मिलकर** राज कर सकते थे। जून की बग़ावत ने उन्हें पहले ही "अमन की पार्टी"[90] में एकताबद्ध कर दिया था। अब, पूंजीवादी जनतंत्रवादियों के उस संकीर्ण जत्थे को हटाना आवश्यक था जो राष्ट्रीय सभा की सीटों पर अब भी विराजमान था। ये विशुद्ध जनतंत्रवादी जनता के विरुद्ध हिंसा का प्रयोग करते समय जितने निष्ठुर और

---

*का० मार्क्स, 'फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष', १८४८–१८५०।– सं०

निर्मम थे, उतने ही वे अब—जब उन्हें पीछे हटना पड़ रहा था और सवाल कार्यकारी सत्ता और राजतंत्रवादियों के मुक़ाबले में अपने जनतंत्रवाद को और अपने विधायी अधिकारों को बरक़रार रखने का था—कायर, मृदुभाषी, भग्नहृदय और लड़ने के अयोग्य निकले। उनके विघटन का शर्मनाक इतिहास बयान करने की ज़रूरत नहीं है। उनका पतन नहीं हुआ, वरन् उन्होंने अपने अस्तित्व से ख़ुद हाथ धो लिया। उनके इतिहास का सदा के लिए अंत हो गया, और परवर्त्ती काल में राष्ट्रीय सभा के अंदर या बाहर, दोनों ही जगह, वे केवल परछाइयों के रूप में रह गये जिन परछाइयों में जीवन का संचार केवल उस समय होता है जब जनतंत्र का कोरे औपचारिक रूप में प्रश्न उपस्थित होता है और जब क्रांतिकारी संघर्ष निम्नतम स्तर पर पहुंचने को होता है। चलते हुए हम यह बता दें कि वह अख़बार, अर्थात् *«National»*, जिसके नाम पर यह पार्टी नेशनलपंथी कहलाई, परवर्त्ती काल में समाजवाद का हामी बन गया।

इस काल की विवेचना समाप्त करने से पहले, हमें फिर उन दो शक्तियों का पीछे मुड़कर सिंहावलोकन कर लेना चाहिए जिनमें से एक ने दूसरी को २ दिसम्बर १८५१ को समाप्त कर दिया, जबकि २० दिसम्बर १८४८ से संविधान सभा के विदा होने तक उनका चोली दामन का साथ था। हमारा तात्पर्य एक ओर लूई बोनापार्त और दूसरी ओर संयुक्त राजतंत्रवादियों, यानी अमन की पार्टी, बड़े पूंजीपतियों की पार्टी से है। राष्ट्रपति पद पर आसीन होने पर बोनापार्त ने तत्काल अमन की पार्टी का मंत्रिमण्डल बनाया, जिसका प्रधान उसने—ज़रा ग़ौर फ़रमाइये—संसदीय पूंजीपतियों के सबसे अधिक उदारपंथी गुट के पुराने नेता ओदिलां बारो को बनाया। बारो महोदय को आख़िरकार वह मंत्रिपद हासिल हुआ जिसका विचार १८३० से ही भूत की तरह उनके मन पर हावी था, और इससे भी बड़ी बात यह हुई कि वह मंत्रिमण्डल के प्रधान हो गये। किन्तु इस पद पर वह संसदीय विरोध-पक्ष के सबसे बड़े नेता के रूप में नहीं आये, जैसा कि वह लूई फ़िलिप के समय में कल्पना किया करते थे, वरन् संसद को मौत के घाट उतारने का परवाना लेकर और अपने तमाम जानी दुश्मनों, जेज़ुइटों और लेजिटिमिस्टों के संगी-संघाती बनकर आये। वह आख़िरकार दुल्हन को घर लाये, लेकिन तब, जब वह भ्रष्ट की जा चुकी थी। बोनापार्त ने मानो अपने को मैदान से बिल्कुल हटा लिया। यह पार्टी ही उसका काम कर रही थी।

मंत्रि-परिषद् की पहली ही बैठक ने फ़ैसला किया कि अभियान सेना रोम भेजी जाये। इस सम्बन्ध में तय पाया कि यह काम राष्ट्रीय सभा के पीठ पीछे

करना होगा और इसके लिए साधन झूठे बहानों द्वारा हस्तगत करने होंगे। इस प्रकार श्रीगणेश राष्ट्रीय सभा को ठगने तथा विदेश की निरंकुश शक्तियों के साथ क्रांतिकारी रोमन जनतंत्र के विरुद्ध गुप्त षड्यंत्र द्वारा किया गया। बोनापार्त ने इसी तरीक़े से और इन्हीं हथकण्डों द्वारा राजतंत्रवादी विधान सभा और उसके वैधानिक जनतंत्र के विरुद्ध अपने २ दिसम्बर के राज्य-पर्युत्क्षेपण की तैयारी की। हमें यह न भूलना चाहिए कि जिस पार्टी ने २० दिसम्बर १८४८ को बोनापार्त का मंत्रिमण्डल गठित किया था, २ दिसम्बर १८५१ को उसी का राष्ट्रीय विधान सभा में बहुमत था।

अगस्त में संविधान सभा ने तय किया था कि वह संविधान के पूरक के रूप में संघटनात्मक क़ानूनों की एक पूरी माला तैयार और जारी करने के बाद ही अपने को भंग करेगी। ६ जनवरी १८४९ को अमन की पार्टी ने रातो नामक एक सदस्य द्वारा यह प्रस्ताव पेश कराया कि सभा संघटनात्मक क़ानूनों को छोड़ दे और **स्वयं अपने को भंग करने** का फ़ैसला करे। उस समय केवल मंत्रिमण्डल ने ही नहीं, जिसका प्रधान ओदिलां बारो था, वरन् राष्ट्रीय सभा के "सभी" राजतंत्रवादी सदस्यों ने धौंस जमाते हुए सभा से कहा कि उसका भंग होना फिर से साख लौटाने के लिए, सुव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए, अनिश्चित अस्थायी बंदोबस्त का ख़ातमा करने के लिए और निश्चित प्रकार की स्थिति स्थापित करने के लिए आवश्यक है; कि वह नयी सरकार की सृजनात्मक क्रियाशीलता में बाधक हो रही है और केवल दुर्भावनापूर्ण हठवश अपना जीवन काल बढ़ाना चाहती है, और यह कि देश उससे तंग आ चुका है। बोनापार्त ने विधायी सत्ता के विरुद्ध इन सारे अपशब्दों को सुना, इन्हें रट डाला और २ दिसम्बर १८५१ को उसने संसदीय राजतंत्रवादियों के सामने यह सिद्ध कर दिखाया कि उसने उनसे सबक़ हासिल किया था। उसने उनके विरुद्ध उन्हीं के नारों को दुहराया।

बारो मंत्रिमण्डल और अमन की पार्टी ने इससे भी आगे क़दम उठाया। उन्होंने फ़्रांस में सभी जगहों से **राष्ट्रीय सभा के नाम अर्जियां** भिजवानी शुरू कीं जिनमें बड़ी नरमी के साथ उससे कहा गया था कि वह बराय मेहरबानी अपने को विसर्जित कर ले। इस प्रकार उन्होंने असंगठित आम जनता को राष्ट्रीय सभा, अर्थात् जनता की वैधानिक रूप से संगठित अभिव्यक्ति के विरुद्ध घमासान लड़ाई में उतारा। उन्होंने बोनापार्त को संसदीय सभाओं के विरुद्ध जनता से अपील करना सिखाया। आख़िरकार २९ जनवरी १८४९ को वह दिन आया जब संविधान सभा को स्वयं अपने विसर्जन के विषय में फ़ैसला करना था। उस दिन राष्ट्रीय

सभा ने देखा कि जिस भवन में उसकी बैठकें होती थीं, उस पर फ़ौज ने क़ब्ज़ा कर लिया है; अमन की पार्टी के जनरल शांगार्नियें ने, जिसकी मातहती में राष्ट्रीय गार्ड की सर्वोच्च कमान और फ़ौजी दस्ते एकताबद्ध कर दिये गये थे, पेरिस में एक बड़ा सैनिक प्रदर्शन कराया, मानों कोई बड़ा युद्ध छिड़नेवाला हो, और संश्रयी राजतंत्रवादियों ने संविधान सभा को धमकाया कि यदि उसने अनिच्छा दिखायी तो ज़ोर-ज़बरदस्ती से काम लिया जायेगा। पर वह राज़ी थी, और उसे बस एक अल्प अतिरिक्त अवधि मिल गयी, जिसके लिए उसने मोलतोल किया था। २९ जनवरी की घटना २ दिसम्बर १८५१ का coup d'état* ही थी; फ़र्क़ इतना ही था कि यह पर्युत्क्षेपण राजतंत्रवादियों ने, बोनापार्त के साथ मिलकर, जनतंत्रवादी राष्ट्रीय सभा के विरुद्ध सम्पन्न किया था। इन महानुभावों ने यह नहीं देखा, या वे देखना नहीं चाहते थे, कि बोनापार्त ने २९ जनवरी १८४९ की घटना से फ़ायदा उठाकर तूलरी के सामने कुछ सैनिक टुकड़ियों से मार्च करवाकर सलामी ली और संसदीय सत्ता के विरुद्ध सैनिक सत्ता के इस प्रथम खुले प्रदर्शन को आग्रहपूर्वक ग्रहण कर कालीगुला[91] के अवतरण का पूर्वाभास दिया। उन बेचारों को केवल अपना शांगार्नियें ही दिखायी दे रहा था।

जिस चीज़ ने संविधान सभा के जीवन काल को संक्षिप्त करने में अमन की पार्टी को विशेष रूप से प्रेरित किया था वह थी विधान के पूरक के रूप में बनाये जानेवाले **संघटनात्मक** क़ानून, जैसे शिक्षा क़ानून, धार्मिक उपासना सम्बन्धी क़ानून आदि। संश्रयी राजतंत्रवादियों के लिए यह बड़े महत्त्व की बात थी कि जनतंत्रवादियों को, जिनके अन्दर अविश्वास की भावना उत्पन्न हो गयी थी, ये क़ानून न बनाने देकर, वे उन्हें ख़ुद बनायें। पर इन संघटनात्मक क़ानूनों में एक क़ानून राष्ट्रपति के उत्तरदायित्व के बारे में भी था। १८५१ में विधान सभा ठीक ऐसे ही एक क़ानून का मसविदा तैयार करने में लगी हुई थी जब इसके पहले कि यह coup** हो सके बोनापार्त ने २ दिसम्बर का अपना coup सम्पन्न कर डाला। यदि संश्रयी राजतंत्रवादियों को १८५१ के जाड़े के अपने संसदीय आंदोलन में "उत्तरदायित्व क़ानून" तैयार मिल सकता और वह भी एक अविश्वासपूर्ण, विरोधी जनतंत्रवादी सभा द्वारा तैयार किया हुआ मिल सकता, तो ऐसी कौनसी क़ीमत है, जो वे इसके लिए चुका नहीं सकते थे?

---

* राज्य-पर्युत्क्षेपण। – सं०

** प्रहार। – सं०

जब संविधान सभा ने २९ जनवरी १८४९ को अपना अंतिम आयुध स्वयं टूक-टूक कर दिया तो बारो मंत्रिमण्डल तथा अमन के तरफ़दारों ने उसे खदेड़कर मौत के कगार तक पहुंचा दिया, उसको अपमानित करने में कोई कसर न उठा रखी, और अशक्त और पस्तहिम्मत विधान सभा का गला दबाकर उससे ऐसे क़ानून बनवाये जिनसे जनता की आंखों में उसकी रही-सही इज्ज़त भी जाती रही। बोनापार्त ने, जिसके मस्तिष्क में नेपोलियनीयी धारणा जमकर बैठी हुई थी, निस्संकोच भाव से संसदीय सत्ता की इस अधोगति से खुलकर लाभ उठाया। ८ मई १८४९ को जब राष्ट्रीय सभा ने जनरल ऊदिनो द्वारा चिविता-वेक्किया पर अधिकार किये जाने के कारण मंत्रिमण्डल के विरुद्ध निन्दा का एक प्रस्ताव पास किया और मंत्रिमण्डल को रोमन अभियान को उसके तथाकथित लक्ष्य की ओर पुनः उन्मुख करने का आदेश दिया, तब बोनापार्त ने उसी शाम «*Moniteur*»[92] में ऊदिनो के नाम अपना एक पत्र छपवाया जिसमें उसने वीरतापूर्ण कारनामों के लिए ऊदिनो को बधाई दी और क़लम-घसीटू संसदवादियों की तुलना में स्वयं अपने को सेना के उदारचेता संरक्षक के रूप में उपस्थित किया। राजतंत्रवादी इस पर मुस्कराये थे – वे उसको अपना भोला शिकार समझते थे। इसके अलावा संविधान सभा के अध्यक्ष मारास्त को जब एक क्षण के लिए ऐसा लगा कि राष्ट्रीय सभा की सुरक्षा ख़तरे में है और उसने संविधान का आश्रय ले एक कर्नल को उसकी रेजीमेंट के साथ बुला भेजा, तो कर्नल ने आने से इनकार कर दिया; उसने अनुशासन की दुहाई दी और मारास्त को शांगार्नियें से बात करने को कहा, जिसने यह कहकर कि मुझे «baïonnettes intelligentes»* पसंद नहीं हैं, इस अनुरोध को तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर दिया। नवम्बर १८५१ में जब संश्रयी राजतंत्रवादी बोनापार्त से निर्णायक संघर्ष आरम्भ करना चाहते थे तो उन्होंने अपने कुख्यात **केस्टर्स बिल**[93] में राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष द्वारा सीधे सेना को बुला सकने के अधिकार के सिद्धांत को समाविष्ट कराना चाहा। उनके लेफ़्लो नामक एक जनरल ने विधेयक पर हस्ताक्षर किया। शांगार्नियें ने उसके पक्ष में वोट दिया और थियेर ने भूतपूर्व संविधान सभा की दूरदर्शिता का प्रशंसापूर्वक उल्लेख किया, पर यह सब व्यर्थ हुआ। **युद्ध मंत्री सेंत-आर्नो** ने इसका वही उत्तर दिया जो शांगार्नियें ने मारास्त को दिया था – और जिसपर पर्वत दल ने करतल ध्वनि की थी!

---

*बौद्धिक संगीनें। – सं०

अतः **अमन की पार्टी** ने उस समय, जब वह अभी राष्ट्रीय सभा नहीं बनी थी, जब वह अभी मंत्रि-परिषद् ही थी, स्वयं ही **संसदीय शासन प्रणाली** की निन्दा की थी। और वही, जब २ दिसम्बर १८५१ के राज्य-पर्युत्क्षेपण ने इस प्रणाली को फ़्रांस से निर्वासित कर दिया, चीख़-पुकार मचाने लगी!

हम शुभकामना करते हैं कि उसका मार्ग अकंटक हो!

३

२८ मई १८४६ को राष्ट्रीय विधान सभा का अधिवेशन आरंभ हुआ। २ दिसम्बर १८५१ को वह बर्ख़ास्त कर दी गयी। यही अवधि **वैधानिक**, **अथवा संसदीय**, **जनतंत्र** के जीवन की अवधि रही है।

प्रथम फ़्रांसीसी क्रांति में **संविधानवादियों** के शासन के बाद **जीरांदों** का और **जीरांदों** के बाद **जैकोबिनों**[94] का शासन हुआ था। इनमें से हर पार्टी ने अपने से अधिक प्रगतिशील पार्टी के समर्थक का भरोसा किया। इनमें से एक पार्टी ज्यूं ही क्रांति को इतना आगे बढ़ा चुकती थी कि वह उसके पीछे चलने में—उससे आगे बढ़ जाने की बात तो दूर रही—असमर्थ हो जाती थी, त्यूं ही उसके पीछे खड़ी उससे अधिक साहसी मित्र-पार्टी उसे ढकेलकर किनारे कर देती थी और उसे गिलोटीन पर चढ़ा देती थी। इस प्रकार क्रांति बराबर ऊपर उठती गयी।

१८४८ की क्रांति में इसका उलटा हुआ। सर्वहारा पार्टी निम्नपूंजीवादी जनवादी पार्टी के पुछल्ले के रूप में अवतरित होती है। निम्नपूंजीवादी जनवादी पार्टी १६ अप्रैल[95], १५ मई और जून के दिनों में उसे धोखा देती है और उसका साथ छोड़ देती है। जनवादी पार्टी स्वयं पूंजीवादी-जनतंत्रवादी पार्टी के कंधों का सहारा लेती है। पूंजीवादी-जनतंत्रवादियों को ज्यूं ही यह विश्वास हो जाता है कि उनके पैर अच्छी तरह जम गये हैं, त्यूं ही वे अपने बखेड़िये साथी से पल्ला छुड़ा लेते हैं और अमन की पार्टी के कंधों का सहारा लेते हैं। अमन की पार्टी अपने कंधे झटकारती है, पूंजीवादी-जनतंत्रवादियों को भहरा जाने देती है और ख़ुद सेना के कंधों का सहारा लेती है। वह सोचती है कि वह अब तक सेना के कंधों के सहारे आराम से बैठी हुई है, लेकिन सहसा एक दिन वह अनुभव करती है कि फ़ौजी कन्धे संगीनों में बदल गये हैं। हर पार्टी पीछे वाली पार्टी पर, जो उसे आगे की ओर धकेलती है, दुलत्ती मारती है; और आगे वाली पार्टी का, जो उसे पीछे की ओर ढकेलती है, सहारा लेती है। अतः इसमें आश्चर्य

की कोई बात नहीं कि इस हास्यास्पद स्थिति में वह लड़खड़ा जाती है और अपने को संभालने की कोशिश में अजीब-अजीब ढंग की कलाबाज़ियां दिखाने के बाद, मुंह के बल गिर पड़ती है। इस प्रकार, क्रांति यहां नीचे की ओर गिरती चली जाती है। फ़रवरी के आख़िरी बैरीकेडों के हटाये जाने और प्रथम क्रांतिकारी सत्ता गठित होने से पहले ही क्रांति की यह प्रतिगामी गति आरंभ हो जाती है।

हमारे सामने का यह काल अत्यन्त विविधतापूर्ण, अनोखे और प्रचण्ड विरोधाभासों से भरा हुआ है। इसमें संविधानवादी हैं जो संविधान के ख़िलाफ़ खुली साजिशें करते हैं, क्रांतिकारी हैं जो खुद ही संविधानवादी होना क़बूल करते हैं; एक राष्ट्रीय सभा है जो सर्वशक्तिमान बनना चाहती है, पर सदा संसदीय बनी रहती है; एक पर्वत दल है जिसका धंधा धीरज रखना है और जो अपनी वर्तमान पराजयों की काट आगे आनेवाली अपनी विजयों की भविष्यवाणियां करके करता है; राजतंत्रवादी हैं जो जनतंत्र के patres conscripti* हैं और जो परिस्थितियों द्वारा विरोधी राजवंशों को, जिनके वे अनुयायी हैं, फ़्रांस से बाहर तथा जनतन्त्र को, जिससे वे नफ़रत करते हैं, फ़्रांस के अंदर रखने को विवश हैं; एक कार्यकारी सत्ता है जिसकी दुर्बलता ही उसकी शक्ति है और वह तिरस्कार भावना ही, जिसे वह अपने प्रति जगाती है, जिसकी सम्भ्रांतता है; एक जनतंत्र है जो शाही लेबुल के साथ, दो राजतंत्रों की, अर्थात् पुनःस्थापना और जुलाई राजतंत्र की संयुक्त अपकीर्त्ति के सिवा और कुछ नहीं है; ऐसे संश्रय हैं जिनकी सबसे पहली शर्त अलगाव है; ऐसे संघर्ष हैं जिनका सबसे बड़ा नियम अनिर्णय है; अमन के नाम पर अनियंत्रित, खोखला आंदोलन और क्रांति के नाम पर अमन के बड़े संजीदे उपदेश हैं; सत्यशून्य आवेग हैं और आवेगशून्य सत्य हैं; वीर नायक हैं पर वीरत्वपूर्ण कार्य नहीं; इतिहास है पर घटनाएं नहीं; विकास है जिसकी एकमात्र चालक शक्ति मानो कैलेण्डर है, और जो एक ही तनाव और एक ही ढील की निरंतर पुनरावृत्ति से क्लान्त है; विग्रह हैं जो समय-समय पर तेज़ी पर आते हैं और तेज़ी खोकर बिना समाधान प्राप्त किये ही बैठ जाते हैं; विश्व विनाश के ख़तरे पर आडम्बरपूर्ण सरगर्मियों का दिखाया जाना और कूपमण्डूकों जैसा संत्रास प्रगट किया जाना है, पर साथ ही विश्व के उद्धारकों का, जिनका "हर चीज़ को अपने क्रम से चलने दो" का रुख़ उतनी

---

*सिनेटर। – सं०

क़यामत की नहीं जितनी फ़्रान्द[96] के समय की याद दिलाता है, ओछी दुरभिसन्धियों और दरबारी प्रहसनों म व्यस्त होना भी है; फ़्रांस की सरकारी सामूहिक प्रतिभा का एक व्यक्ति की धूर्ततापूर्ण मूर्खता द्वारा निराकृत होना; राष्ट्र की सामूहिक इच्छा का – जब भी वह सर्व-मताधिकार द्वारा मुखरित होती है – अपनी समुचित अभिव्यंजना की चेष्टा में, आम जनता के हितों के घोर शत्रुओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाना, यहां तक कि अंत में उसका एक डकैत के दुराग्रह में अपनी अभिव्यक्ति पाना। यदि इतिहास का कोई भाग धौले पर धौला रंगा गया है, तो वह यह है। व्यक्ति और घटनाएं औंधे श्लेमीलों जैसी, परछाइयों जैसी, जिनका शरीर ग़ायब हो गया है, लगती हैं। क्रांति स्वयं ही अपने ही वाहकों को पक्षाघातग्रस्त कर देती है, और केवल अपने विरोधियों में आवेगपूर्ण ओज भरती है। अब "लाल हौआ", जिसे प्रतिक्रांतिकारी लगातार बुलाया और भगाया करते थे, अंततः प्रकट हुआ तो उसके सिर पर अराजकता की फ़्रीजियन टोपी[97] नहीं थी, वरन् वह अमन की वर्दी, **लाल बिर्जिस** पहने हुए था।

हम देख चुके हैं कि बोनापार्त ने अपने पदारूढ़ होने के दिवस, २० दिसम्बर १८४८ को जो मंत्रिमण्डल स्थापित किया, वह अमन की पार्टी का, गठबन्धनकारी लेजिटिमिस्टों और आर्लियानिस्टों का मंत्रिमण्डल था। यह बारो–फ़ालू मंत्रिमण्डल जनतंत्रवादी संविधान सभा के, जिसका जीवन उसने एक प्रकार से बलपूर्वक विच्छिन्न किया था, बाद तक जीवित रहा और अपने को अब भी स्थिति का सूत्रधार पा रहा था। गठबंधनकारी राजतंत्रवादियों का जनरल शांगार्निये, प्रथम सेना डिवीजन और पेरिस के राष्ट्रीय गार्ड, दोनों की कमान संभाले हुए था। इसके अलावा सार्वजनिक चुनाव से अमन की पार्टी को राष्ट्रीय सभा में बड़ा बहुमत प्राप्त हुआ था। यहां लूई फ़िलिप के आदमियों–निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा लार्डों का सामना लेजिटिमिस्टों की एक गौरवान्वित भीड़ से हुई, जिसके लिए राष्ट्र के बहुत-से मतपत्र राजनीतिक रंगमंच के लिए प्रवेशपत्र के रूप में बदल गये थे। बोनापार्ती जन-प्रतिनिधि इतने थोड़े थे कि वे कोई स्वतंत्र संसदीय पार्टी नहीं बना सकते थे। वे केवल अमन की पार्टी के mauvaise queue* के रूप में सामने आये। अतः अमन की पार्टी के हाथ में सरकारी सत्ता थी, सेना थी और विधायी निकाय था, एक शब्द में उसके हाथ में सम्पूर्ण राज्य-सत्ता थी। आम चुनाव ने, जिसके फलस्वरूप उसका शासन जनता की इच्छा पर आश्रित

*मनहूस पुछल्ले।–सं०

दिखाई देता था, और सारे यूरोपीय महाद्वीप में पंग-संग प्रतिक्रांति की विजय ने उसे नैतिक बल प्रदान किया था।

इससे अधिक साधनों से लैस होकर तथा इससे अधिक शुभ मुहूर्त्त में कभी कोई पार्टी मैदान में नहीं उतरी थी।

विशुद्ध जनतंत्रवादी, जिनकी नैया डूब चुकी थी, राष्ट्रीय विधान सभा के अंदर कोई पचास आदमियों का एक छोटा जत्था बनकर रह गये, जिनके नेता अफ़्रीकी जनरल कैवेन्याक, लामारिसियेर और बीदो थे। पर महान् विरोधी पार्टी का काम पर्वत दल कर रहा था। **सामाजिक-जनवादी** पार्टी ने अपना संसदीय बप्तिस्मा करके यही नामधारण किया था। राष्ट्रीय सभा के साढ़े सात सौ वोटों में से दो सौ से अधिक इस पार्टी के पास थे, अतः वह कम से कम उतनी ही शक्तिशाली थी, जितने अलग-अलग अमन की पार्टी के तीनों गुट थे। समूचे राजतंत्रवादी संश्रय की तुलना में संख्या की उसकी हीनता कुछ विशेष परिस्थितियों से निराकृत हो गयी प्रतीत होती थी। ज़िलों (देपार्टमां) के चुनाव फलों से यह सिद्ध तो हुआ ही था कि देहाती आबादी के अंदर उसे काफ़ी अनुयायी प्राप्त हो गये थे; साथ ही पेरिस से निर्वाचित सभी के सभी सदस्य इसी दल के थे। सेना ने भी तीन ग़ैर-कमीशनयाफ़्ता अफ़सरों को चुनकर अपनी जनवादी आस्था घोषित की थी। और पर्वत दल का नेता लेद्रू-रोलें पांच ज़िलों द्वारा, जिन्होंने उसके लिए अपने वोट जोड़े थे, संसद के लार्ड सदस्य के पद पर आरूढ़ किया गया था, जबकि अमन की पार्टी के किसी भी प्रतिनिधि को ऐसी विशिष्टता प्राप्त नहीं थी। इस बात को दृष्टिगत रखते हुए कि राजतन्त्रवादियों में आपस में, तथा पूरी अमन की पार्टी का बोनापार्त के साथ संघर्ष होना अनिवार्य था, यह ज्ञात हो रहा था कि पर्वत दल के पास, २८ मई १८४९ को, सफलता के सभी उपादान थे। पर वह एक पखवारे के अंदर ही सब कुछ, और यहां तक कि अपनी इज़्ज़त भी गंवा बैठा।

संसदीय इतिहास की और आगे विवेचना करने से पहले इस दौर के पूरे स्वरूप के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रांत धारणाओं से बचने के लिए कुछ बातें कह देना आवश्यक है। जनवादियों की आंखों से देखने में, राष्ट्रीय संविधान सभा का काल उसी चीज़ से सम्बन्धित है जिससे विधान सभा का काल था, अर्थात् वह जनतंत्रवादियों और राजतंत्रवादियों के सीधे-सादे संघर्ष से सम्बन्धित था। किन्तु स्वयं आंदोलन को वे एक पिटे-पिटाये शब्द में समेट लेते हैं: **"प्रतिक्रियावाद"**—यानी वह रात, जिसमें हर बिल्ली धौली होती है, और

जिसकी बदौलत रात का संतरी अपनी घिसी-घिसायी कहानी बेधड़क दुहरा सकता है। और सचमुच प्रथम दृष्टि में अमन की पार्टी ऐसे विभिन्न राजतन्त्रवादी गुटों का गोरखधन्धा दिखाई देती है जो एक दूसरे के खिलाफ़ साजिशें करते हैं– प्रत्येक गुट तख़्त के अपने दावेदार को गद्दी पर बिठाने और विरोधी गुट के दावेदार को दूर रखने की कोशिश करता है–किन्तु साथ ही "जनतंत्र" के प्रति समान घृणा रखने में तथा उस पर समान रूप से प्रहार करने में सब एकजुट हो जाते हैं। इस राजतंत्रवादी षड्यन्त्र के खिलाफ़ पर्वत दल "जनतंत्र" का प्रतिनिधि प्रतीत होता है। अमन की पार्टी निरंतर "प्रतिक्रिया" में लग्न ज्ञात होती है, जिसका निशाना अखबार, संघबद्धता तथा ऐसी अन्य चीजें होती हैं। यह काम वह उतनी ही ज्यादा या कम सरगर्मी के साथ करती है जैसे वह प्रशा में किया जाता है और, जो, प्रशा की ही भांति, नौकरशाही, राजनीतिक पुलिस और अदालतों के बर्बर हस्तक्षेप के रूप में किया जाता है। इधर पर्वत दल इन प्रहारों का निराकरण करने में और इस प्रकार "मानव के शाश्वत अधिकारों" की रक्षा करने में, जैसा कि डेढ़ शताब्दी से प्रत्येक तथाकथित लोक पार्टी ने न्यूनाधिक किया है, निरंतर संलग्न ज्ञात होता है। किन्तु स्थिति को एवं इन पार्टियों को अधिक निकटता से देखने पर यह बाहरी दिखावा, जिसके पर्दे के भीतर **वर्ग संघर्ष** तथा इस काल की विशिष्ट आकृति छिपी हुई है, ग़ायब हो जाता है।

जैसा कि हम बता चुके हैं, लेजिटिमिस्ट और आर्लियानिस्ट अमन की पार्टी के दो बड़े गुट थे। जिस चीज ने इन लोगों को तख़्त के अलग-अलग दावेदारों का वफ़ादार अनुयायी बना रखा था और उन्हें एक दूसरे से अलग कर रखा था, क्या वह केवल लिली[98] और तिरंगे झंडे का निशान था, बूर्बों और आर्लियां का राजवंश था, क्या वह राजतन्त्रवाद के भिन्न-भिन्न रंगों का अंतर था, क्या वह किसी भी प्रकार राजतंत्रवाद में विश्वास की स्वीकृति थी? बूर्बों के ज़माने में **बड़ी भू-सम्पत्ति** ने, अपने पण्डों-पुरोहितों और दरबारियों के साथ, राज किया था। आर्लियां राजवंश के शासन काल में उच्च वित्त, बड़े पैमाने के उद्योग, बड़े पैमाने के व्यापार, अर्थात् **पूंजी** ने, वकीलों, प्रोफ़ेसरों और पालिशदार ज़बान वाले भाषणकर्त्ताओं के अपने दल-बल के साथ, राज किया। वैध राजतंत्र भू-स्वामियों के मौरूसी शासन की राजनीतिक अभिव्यक्ति मात्र था; उसी प्रकार जैसे जुलाई राजतंत्र नौबढ़िये पूंजीपतियों की अनधिकृत रूप में हस्तगत सत्ता की राजनीतिक अभिव्यक्ति था। अतः जो चीज दोनों गुटों को अलग रखे हुए थी, वह कोई तथाकथित सिद्धान्त न थी, वह थी उनके अस्तित्व की भौतिक अवस्थाएं,

दो भिन्न *प्रकार की सम्पत्तियां; वह थी शहर और देहात का पुराना विरोध, पूंजी और ज़मींदारी की प्रतिद्वंद्विता। पुरानी स्मृतियां, व्यक्तिगत बैर, भय और आशाएं, पूर्वाग्रह और भ्रम, हमदर्दियां और अदावतें, विश्वास, आस्थाएं और सिद्धान्त, उन्हें इस या उस राजघराने के साथ बांधे हुए थीं – इससे कौन इनकार करता है? सम्पत्ति के भिन्न-भिन्न रूपों का अस्तित्व की सामाजिक अवस्थाओं का आधार ग्रहण कर पृथग्भूत एवं विशिष्ट रूप से गठित भावनाओं, भ्रमों, विचार पद्धतियों और विश्वदृष्टिकोणों का एक पूरा ऊपरी ढांचा खड़ा होता है। सम्पूर्ण वर्ग अपनी भौतिक अवस्थाओं से तथा तदनुरूप सामाजिक सम्बन्धों से इनका सृजन और गठन करता है। एक पृथक् व्यक्ति जो परम्परा एवं शिक्षा द्वारा इन्हें प्राप्त करता है, सोच सकता है कि वास्तव में ये ही उसके कार्यकलाप के वास्तविक प्रेरणा स्रोत और प्रारम्भ-बिंदु हैं। आर्लियानिस्ट और लेजिटिमिस्ट, यानी दोनों गुटों में से प्रत्येक, हालांकि अपने को तथा औरों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करते थे कि अपने-अपने राजघराने के प्रति उनकी वफ़ादारी ही उन्हें अलग किये हुए थी, परन्तु तथ्यों ने बाद में यह सिद्ध कर दिया कि वस्तुतः ये उनके विभक्त हित थे जिन्होंने दोनों राजघरानों को एक होने से रोका था। और जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य क्या सोचता है और अपने बारे में क्या कहता है और वास्तव में वह क्या है और क्या करता है, इन दोनों में हम भेद करते हैं, उसी प्रकार ऐतिहासिक संघर्षों में हमें पार्टियों के शब्दों तथा कल्पनाओं और उनकी असली बनावट तथा उनके असली हितों में, अपने बारे में उनकी धारणा और उनकी असलियत में और भी ज्यादा भेद करना चाहिए। आर्लियानिस्टों और लेजिटिमिस्टों ने जनतंत्र में अपने को अग़ल-बग़ल और बराबर दावों के साथ खड़ा पाया। इनमें से प्रत्येक **अपने** राजघराने का दूसरे के विरुद्ध यदि **पुनःस्थापन** चाहता था तो इसका अर्थ केवल यह था कि उन **दोनों बड़े हितों** में से प्रत्येक, जिनमें **पूंजीपति वर्ग** विभक्त है, अर्थात् भू-सम्पत्ति और पूंजी, ख़ुद अपना बोलबाला क़ायम करना तथा दूसरे को नीचे रखना चाहता था। हम पूंजीपति वर्ग के दो हितों की बात करते हैं क्योंकि आधुनिक समाज के विकास द्वारा बड़ी भू-सम्पत्ति अपनी सामंती ऐंठ और जातिगत अहंकार के बावजूद, पूर्णतया पूंजीवादी बना दी गयी है। इंगलैंड के टोरी, इसी तरह, एक लम्बे अरसे से यह माने बैठे थे कि वे राजतंत्र, चर्च तथा इंगलैंड के पुराने संविधान की ख़ूबसूरतियों के भक्त हैं, पर जब ख़तरे की घड़ी आई तो उनके मुंह से यह स्वीकारोक्ति निकल गयी कि दरअसल उनकी भक्ति का विषय केवल **ज़मीन का लगान** है।

संश्रयी राजतंत्रवादी एक दूसरे के ख़िलाफ़ अपनी साज़िशें सभी जगह—अख़बारों में, एम्स में, क्लेरमां में[99], संसद के बाहर—चला रहे थे। पर्दे के पीछे वे अपनी आर्लियां तथा लेजिटिमिस्ट राजवंशीय पुरानी वर्दियां फिर धारण करके फिर अपने पुराने दंगल में जुट जाते थे। किन्तु सार्वजनिक रंगमंच पर, अपने भव्य राजकीय अभिनयों में, एक महान् संसदीय पार्टी के नाते, वे अपने-अपने राजघरानों को केवल शीश नवाकर दरकिनार कर देते थे और राजतंत्र की पुन:स्थापना को in infinitum* स्थगित कर देते थे। अपना असली कारबार वे **अमन की पार्टी** के रूप में; अर्थात् एक **सामाजिक** पदवी से, **राजनीतिक** पदवी से नहीं; पूंजीवादी विश्व व्यवस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से, भूली-भटकी शाहज़ादियों के सूरमा सामंतों की हैसियत से नहीं; अन्य वर्गों के मुक़ाबले में पूंजीपति वर्ग की हैसियत से, जनतंत्रवादियों के मुक़ाबले में राजतंत्रवादियों की हैसियत से नहीं, चलाते थे। और अमन की पार्टी के रूप में वे समाज के अन्य वर्गों के ऊपर पहले से, पुन:स्थापना काल या जुलाई राजतंत्र की तुलना में, कहीं अधिक अबाध और सख़्त हुकूमत चलाते थे। ऐसी हुकूमत, सामान्यत:, संसदीय जनतंत्र के ढांचे में ही सम्भव थी, क्योंकि इस ढांचे में ही फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग के दो बड़े भाग एकजुट हो सकते थे और ऐसा करके अपने वर्ग के किसी एक विशेषाधिकारप्राप्त गुट के राज के बदले पूरे वर्ग का राज चालू कर सकते थे। किन्तु यदि इसके बावजूद, अमन की पार्टी के नाते, उन्होंने जनतंत्र का अपमान भी किया और उसके प्रति अपनी घृणा भी प्रकट की, तो इसका कारण केवल राजतंत्रीय स्मृतियां न था। सहजबुद्धि उनको यह सिखाती थी कि यद्यपि यह सच है कि जनतंत्र द्वारा उनका राजनीतिक शासन पूर्णता प्राप्त करता है, तथापि साथ ही वह उसके सामाजिक आधार को भी खंडित करता है, क्योंकि उन्हें अब अधीनस्थ वर्गों का, बिना किसी बिचाव के, बिना उस व्यवधान के जो राजा की उपस्थिति से प्राप्त होता है, बिना राष्ट्रीय हित को अपने गौण आपसी संघर्षों और राजा के साथ संघर्षों द्वारा दूसरी ओर मोड़े सीधे-सीधे सामना करना पड़ता है। कमज़ोरी के इस एहसास के कारण ही वे अपने वर्ग के शासन की विशुद्ध अवस्थाओं से झिझकते थे और अपने शासन के पहले के अधिक अपूर्ण, अधिक अविकसित—और ठीक इसी कारण से कम ख़तरनाक—रूपों के लिए उत्कण्ठित रहते थे। दूसरी ओर, संश्रयी राजतंत्रवादियों का जब सत्ता के उस दावेदार

*अनन्त काल के लिए।—सं०

से, जिससे उनका मुक़ाबला था, अर्थात् बोनापार्त से झगड़ा होता था, जब उन्हें ऐसा लगता था कि उनकी संसदीय सर्वशक्तिमत्ता कार्यकारी सत्ता द्वारा ख़तरे में डाल दी गयी है, अर्थात् जब वे यह अनुभव करते कि उन्हें शासन करने का अपना राजनीतिक अधिकार सिद्ध करना चाहिए, तब वे **राजतंत्रवादी** नहीं, **जनतंत्रवादी** बनकर सामने आते थे। आर्लियानिस्ट थियेर से लेकर, जो राष्ट्रीय सभा को यह चेता रहा है कि जनतंत्र हमें सबसे कम विभक्त करता है, लेजिटिमिस्ट बेरिये तक, जो २ दिसम्बर १८५१ को तिरंगा स्कार्फ़ लपेटे एक जनप्रवक्ता के रूप में दसवें जिले के टाउन हॉल के सामने इकट्ठी जनता को जनतंत्र के नाम पर ललकारता है, सभी पर यह बात लागू होती है। यह सच है कि इस ललकार के जवाब में मुंह चिढ़ानेवाली यह प्रतिध्वनि उठती है: Henry V! Henry V!

संश्रित पूंजीपतियों के विरुद्ध निम्नपूंजीपतियों और मज़दूरों का एक संयुक्त मोर्चा, **सामाजिक-जनवादी** पार्टी के नाम से बना है। निम्नपूंजीपतियों ने देखा कि १८४८ के जून के दिनों के बाद उन्हें उचित पुरस्कार बिल्कुल नहीं मिला, उनके भौतिक हित ख़तरे में थे, और प्रतिक्रांति ने उन जनवादी गारंटियों पर आपत्ति प्रकट की है जिनसे इन हितों की निष्पन्नता सुनिश्चित हो सकती थी। अत: वे मज़दूरों के निकटतर आये। दूसरी ओर, उनके संसदीय प्रतिनिधि, **पर्वत दल** ने, जिसे पूंजीवादी-जनतंत्रवादियों के एकाधिपत्य काल में एक ओर ढकेल दिया गया था, संविधान सभा के जीवन के उत्तरार्ध में, बोनापार्त और राजतंत्रवादी मंत्रियों के विरुद्ध अपने संघर्ष द्वारा अपनी खोयी हुई लोकप्रियता फिर प्राप्त कर ली थी। उसने समाजवादी नेताओं के साथ एक समझौता सम्पन्न किया था। फ़रवरी १८४९ में दोनों का पुनर्मिलन प्रीतिभोजन द्वारा मनाया गया। एक संयुक्त कार्यक्रम का मसविदा तैयार किया गया, संयुक्त चुनाव कमेटियां बनायी गयीं और संयुक्त उम्मीदवार खड़े किये गये। सर्वहारा की सामाजिक मांगों की क्रांतिकारी तीक्ष्णता नष्ट कर दी गई और उन्हें एक जनवादी दिशा प्रदान की गयी; निम्नपूंजीपतियों के जनवादी दावों से उनका विशुद्ध राजनीतिक रूप अलग कर दिया गया और उन्हें समाजवादी रंग दिया गया। इस तरह **सामाजिक-जनवाद** दल का जन्म हुआ। इस संयोग से उत्पन्न नये **पर्वत दल** में, मज़दूर वर्ग के कुछ निष्क्रिय लोगों तथा कुछ समाजवादी संकीर्णतावादियों के अतिरिक्त वे ही तत्त्व थे जो पुराने पर्वत दल में थे; हां, संख्या में नया पर्वत दल दृढ़तर था। किन्तु विकासक्रम में उस वर्ग के साथ, जिसका वह प्रतिनिधित्व करता था,

वह भी बदला था। सामाजिक-जनवाद के विशिष्ट चरित्र का सार इस बात में है कि वह जनवादी-जनतंत्रवादी संस्थाओं की मांग दो छोरों—पूंजी और उजरती श्रम—को मिटाने के साधन के रूप में नहीं, अपितु उनके विरोध को घटाने तथा उसे मेल में परिवर्तित करने के साधन के रूप में करता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चाहे कितने ही भिन्न साधन प्रस्तावित किये जायें, उसे न्यूनाधिक क्रांतिकारी धारणाओं से कितना ही सजाया-संवारा जाये, अंतर्वस्तु वही की वही बनी रहती है। यह अंतर्वस्तु है समाज का जनवादी मार्ग से रूपांतरण करना, किन्तु ऐसा रूपांतरण जो निम्नपूंजीपतियों की चौहद्दी के अंदर हो। पर हमें यह संकीर्णबुद्धियुक्त धारणा नहीं बना लेनी चाहिए कि निम्नपूंजीपति वर्ग सिद्धान्ततः स्वार्थी वर्ग हित लादना चाहता है। बल्कि उसे यह विश्वास है कि उसकी मुक्ति की **विशेष** अवस्थाएं वे **सामान्य** अवस्थाएं हैं, जिनके दायरे में ही आधुनिक समाज का उद्धार किया जा सकता है और वर्ग-संघर्ष से बचा जा सकता है। इसी प्रकार हमें यह न सोच लेना चाहिए कि जनवादी प्रतिनिधि सभी के सभी दूकानदार हैं या दूकानदारों के जोशीले हिमायती हैं। अपनी-अपनी शिक्षा-दीक्षा और वैयक्तिक स्थिति के अनुसार उनमें आकाश-पाताल का अंतर हो सकता है। जो चीज़ उन्हें निम्नपूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि बनाती है वह यह है कि अपने मस्तिष्क में वे उन सीमाओं के बाहर नहीं जाते जिन के बाहर निम्नपूंजीपति अपने जीवन में नहीं जाते; अतः सिद्धांततः वे उन्हीं समस्याओं और समाधानों की ओर प्रेरित होते हैं जिनकी ओर निम्नपूंजीपति अपने भौतिक हित और सामाजिक स्थिति द्वारा व्यवहारतः प्रेरित होते हैं। सामान्यतः यही किसी वर्ग के **राजनीतिक और साहित्यिक प्रतिनिधियों** और उस वर्ग का, जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, सम्बन्ध होता है।

उपरोक्त विश्लेषण के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि पर्वत दल यदि अमन की पार्टी के साथ जनतंत्र एवं तथाकथित मानव अधिकारों के लिए लगातार झगड़ा करता है तो उसका अंतिम लक्ष्य न तो जनतंत्र है, न ही मानव अधिकार हैं; उसी तरह जैसे यदि कोई किसी फ़ौज को निरस्त्र करना चाहता है तो फ़ौज मैदान में उतरकर अपने हथियार अपने क़ब्ज़े में रखने के लिए ही युद्ध नहीं करती है।

राष्ट्रीय सभा की बैठक होने के साथ ही अमन की पार्टी ने पर्वत दल को उकसाया। पूंजीपतियों ने जिस प्रकार ठीक एक वर्ष पूर्व क्रांतिकारी सर्वहारा से-निबट लेने की जरूरत महसूस की थी, उसी प्रकार अब उन्होंने जनवादी निम्नपूंजीपतियों का अंत कर देने की आवश्यकता अनुभव की। अंतर केवल यह था कि इस बार शत्रु की स्थिति भिन्न थी। सर्वहारा पार्टी की शक्ति सड़कों पर थी,

और निम्नपूंजीपतियों की शक्ति स्वयं राष्ट्रीय सभा के अंदर थी। अतः प्रश्न यह था कि किस प्रकार धोखा देकर उन्हें राष्ट्रीय सभा के बाहर सड़कों पर लाया जाये और ख़ुद उन्हीं के द्वारा उनकी संसदीय शक्ति को, बजाय इसके कि समय और परिस्थितियां उसे सुदृढ़ कर सकें, चकनाचूर कर दिया जाये। पर्वत दल दौड़कर इस जाल में कूद पड़ा।

फ़ांसीसी सेना द्वारा रोम पर गोलाबारी का उसे फंसाने के लिए चारे के रूप में इस्तेमाल किया गया। फ़ांसीसी सेना का यह कार्य संविधान की धारा ५ के विरुद्ध था, जिसके द्वारा फ़ांसीसी जनतंत्र को अन्य जनगण की स्वाधीनता के विरुद्ध अपनी सैन्य शक्ति का प्रयोग करने की मनाही की गयी थी। इसके अतिरिक्त धारा ५४ कार्यकारी सत्ता द्वारा, राष्ट्रीय सभा की मंज़ूरी के बिना, युद्ध की घोषणा का निषेध करती थी तथा संविधान सभा ८ मई के अपने प्रस्ताव द्वारा रोम के अभियान को अस्वीकृत कर चुकी थी। इस आधार पर लेद्रू-रोलें ने बोनापार्त और उसके मंत्रियों के विरुद्ध ११ जून १८४९ को महाभियोग का एक विधेयक उपस्थित किया। थियेर के ततैया जैसे डंकों से बौखलाकर उसने यहा तक कह डाला कि हम हर उपाय से, यहां तक कि हाथों में हथियार लेकर भी, संविधान की रक्षा करेंगे। पर्वत दल ने एक स्वर से हथियार उठाने का यह आह्वान दोहराया। १२ जून को राष्ट्रीय सभा ने महाभियोग का विधेयक अस्वीकृत कर दिया और पर्वत दल संसद से बाहर निकल आया। १३ जून की घटनाएं सुविदित हैं: पर्वत दल के एक भाग ने यह घोषणा जारी की कि बोनापार्त और उसके मंत्री "संविधान के दायरे से बाहर" हैं; जनवादी राष्ट्रीय गार्ड ने सड़क पर जुलूस निकाला, और बेहथियार होने की वजह से शांगार्निये की फ़ौज का सामना होते ही तितर-बितर हो गया आदि, आदि। पर्वत दल का एक भाग विदेश भागा, दूसरे भाग को बूर्जे[100] में हाई कोर्ट के सामने खड़ा किया गया और बाक़ी को संसद के एक विनियमन द्वारा स्कूली बच्चों की भांति राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष की निगरानी में रखा गया। पेरिस में फिर घेरे की हालत का एलान कर दिया गया और राष्ट्रीय गार्ड का जनवादी भाग विघटित कर दिया गया। इस प्रकार संसद में पर्वत दल का तथा पेरिस में निम्नपूंजीपतियों का प्रभाव नष्ट कर दिया गया।

लियों में भी, जहां १३ जून के बिगुल पर मज़दूरों की एक ख़ूनी बगावत हुई थी, चारों ओर के पांच ज़िलों के साथ, घेरे की स्थिति घोषित की गयी और वह अभी तक जारी है।

पर्वत दल के बड़े भाग ने अपने अग्रगामी भाग का आपत्काल में साथ छोड़ दिया, उसने उसके घोषणापत्र का समर्थन करने से इनकार किया। अख़बार भी साथ छोड़कर भागे, केवल दो ने घोषणापत्र छापने का साहस किया। निम्न-पूंजीपतियों ने अपने प्रतिनिधियों के साथ ग़द्दारी की थी, क्योंकि राष्ट्रीय गार्ड या तो अलग रहा, या जहां वह आया भी वहां बैरीकेड खड़े करने में बाधा डाली। इन प्रतिनिधियों ने निम्नपूंजीपतियों को धोखा दिया था, क्योंकि सेना में उनके तथाकथित मित्रों का कहीं पता न था। अंतिम बात यह कि जनवादी पार्टी ने सर्वहारा वर्ग से शक्ति प्राप्त करने के बदले उस में अपनी कमज़ोरी की छूत डाल दी और, जैसा कि जनवादियों के महान् कृत्यों के साथ आम तौर से होता है, नेताओं को "जनता" पर दग़ा देने का आरोप लगाने का संतोष प्राप्त हुआ और जनता को अपने नेताओं पर झूठे दावे करने का आरोप लगाने का संतोष प्राप्त हुआ।

पर्वत दल ने अपने आनेवाले आंदोलन का जितना ज़ोर-शोर से ढिंढोरा पीटा था, उतने शोरग़ुल के साथ शायद ही कभी किसी संघर्ष की पूर्व-सूचना दी गयी हो। जितनी अधिक निश्चयात्मकता तथा जितना पहले से इस बात का ढिंढोरा पीटा गया था कि जनवाद की जीत अवश्यम्भावी है, उतनी शायद ही कभी किसी घटना की तुरही बजायी गयी हो। निश्चय ही, जनवादियों को तुरहियों के चमत्कार में विश्वास है जिसकी फूंकों से ही जेरिको की दीवारें[101] भहराकर गिर पड़ी थीं। और वे जब भी निरंकुशता के दुर्ग के प्राचीरों के सम्मुख खड़े होते हैं तो इसी चमत्कार को दोहराने की कोशिश करते हैं। यदि पर्वत दल संसद के अंदर जीतना चाहता था तो उसे हथियार उठाने का आह्वान नहीं करना चाहिए था। यदि उसने संसद में हथियार उठाने का आह्वान किया, तो सड़कों पर उसे संसदीय आचरण नहीं करना चाहिए था। यदि शांतिपूर्ण प्रदर्शन गम्भीर उद्देश्य से किया गया था तो पहले से यह न देखना कि उसका सामरिक स्वागत होगा बुद्धिहीनता थी। यदि असली संघर्ष छेड़ने का इरादा था तो यह बड़ी विचित्र बात रही कि उन हथियारों को डाल दिया गया जिनसे यह लड़ाई लड़ी जा सकती थी। पर निम्नपूंजीपतियों और उनके जनवादी प्रतिनिधियों की क्रांतिकारी धमकियां विरोधी पर महज़ धौंस जमाने की कोशिश मात्र होती हैं। और जब वे बन्द गली में पहुंच जाते हैं, जब वे अपने को इतना काफ़ी फंसा लेते हैं कि अपनी धमकियों को कार्यान्वित करना लाज़िमी हो जाता है, तो यह काम वे द्विधायुक्त ढंग से करते हैं, ऐसे ढंग से करते हैं जिसमें लक्ष्य प्राप्ति के साधनों से सबसे

अधिक कतराया जाता है और हथियार डाल देने के बहाने ढूंढ़े जाते हैं। दंगल शुरू करने का एलान करनेवाली डंके की चोट दंगल शुरू होने का समय आते ही एक बुज़दिलाना गुर्राहट में बदल जाती है, नायक अपने प्रति गम्भीरता का रुख़ त्याग देते हैं और कार्रवाई फूटे हुए बुलबुले की भांति वायु में विलीन हो जाती है।

जनवादी पार्टी के सिवा और कोई पार्टी अपने साधनों को इतना बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताती, और न कोई पार्टी परिस्थिति के विषय में इतनी ग़ैरसंजीदगी के साथ अपने को धोखे में डालती है। चूंकि सेना के एक भाग ने उसे अपने वोट दिये थे इसलिए पर्वत दल को यक़ीन हो गया कि फ़ौज उसकी ओर से विद्रोह करने को तैयार है। और वह भी किस अवसर पर? ऐसे अवसर पर, जिसका फ़ौजियों की दृष्टि में इसके सिवा और कोई अर्थ न था कि क्रांतिकारी लोग फ़्रांसीसी सैनिकों के विरुद्ध रोम के सैनिकों का पक्ष ले रहे हैं। दूसरी ओर, जून १८४८ की स्मृतियां अब भी इतनी ताज़ा थीं कि सर्वहारा वर्ग में राष्ट्रीय गार्ड के प्रति गहरी घृणा के अतिरिक्त तथा गुप्त सोसाइटियों के नेताओं में जनवादी नेताओं के प्रति घोर अविश्वास के अतिरिक्त अन्य कोई भावना हो ही नहीं सकती थी। इस पारस्परिक वैपरीत्य को दूर करने के लिए यह आवश्यक था कि दोनों पक्षों के गहरे, समान हित दांव पर हों। संविधान के एक अमूर्त पैराग्राफ़ का अतिक्रमण किया जाना ऐसा गहरा हित न था। संविधान क्या ख़ुद जनवादियों के आश्वासन के अनुसार कई बार तोड़ा नहीं जा चुका था? क्या सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र उसे प्रतिक्रांतिकारी पैवंदकारी नहीं बता चुके थे? किन्तु निम्नपूंजीपतियों का प्रतिनिधि होने के कारण, अर्थात् एक **संक्रमणशील वर्ग** का प्रतिनिधि होने के कारण जिसमें दो वर्गों के हित एकसाथ एक दूसरे की धार को कुंद कर देते हैं, जनवादी सामान्यतः अपने को वर्ग विरोध से ऊपर समझते हैं। जनवादी स्वीकार करते हैं कि उनके सामने एक विशेषाधिकारप्राप्त वर्ग खड़ा है, पर वे ही, शेष राष्ट्र के साथ, **जनता** हैं। वे जिस चीज़ का प्रतिनिधित्व करते हैं वह है **जनता के अधिकार**; जिस चीज़ में उनकी दिलचस्पी है वह है **जनता के हित**। अतः संघर्ष आसन्न होने पर वे विभिन्न वर्गों के हितों और स्थितियों का निरीक्षण करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते। वे अपने साधनों को बहुत अधिक आलोचनात्मक दृष्टि से तौल लेने की आवश्यकता नहीं महसूस करते। वे समझते हैं कि उन्हें इशारा भर करना है, और **जनता** अपने समस्त अक्षय साधनों के साथ **उत्पीड़कों** पर टूट पड़ेगी। इसके बाद यदि कार्यक्षेत्र में

उनके हित ग़ैर दिलचस्प साबित होते हैं और उनका बल पुंसत्वहीन सिद्ध होता है, तो दोष उन बुरे मिथ्या तर्कवादियों का है जिन्होंने **अखण्ड जनता** को अलग-अलग विरोधी शिविरों में विभक्त किया है, या सेना में इतनी अधिक पशु मनोवृत्ति आ गयी है और वह इतनी अंधी हो गयी है कि उसे यह समझ में नहीं आया कि जनवाद के विशुद्ध लक्ष्य उसके लिए भी सर्वोत्तम हैं, या क्रियान्वयन में कहीं कोई ब्यौरे की भूल हो जाने की वजह से सब कुछ बंटाधार हो गया है, अथवा किसी अप्रत्याशित दुर्घटना ने इस बार खेल बिगाड़ दिया। बहरसूरत शर्मनाक से शर्मनाक हार के बाद भी जब जनवादी संघर्ष से निकलता है तब वह उतना ही बेदाग़ होता है जितना अबोध वह उसमें प्रवेश करते समय था। वह यह दृढ़ विश्वास लेकर बाहर आता है कि उसकी विजय अनिवार्य है। यह वह नहीं सोचता कि स्वयं उसे और उसकी पार्टी को अपना पुराना दृष्टिकोण बदलना चाहिए, बल्कि, इसके विपरीत, उसकी धारणा होती है कि अवस्थाओं को ही इस प्रकार परिपक्व होना है कि वे उसके लिए उपयुक्त बन जायें।

अतः आप यह न सोचें कि पर्वत दल नष्ट-भ्रष्ट एवं छिन्न-भिन्न होने तथा नये संसदीय ज़ाब्ते द्वारा अपमानित किये जाने के बाद कुछ बहुत अधिक खिन्न था। १३ जून ने यद्यपि उसके मुखियों को हटा दिया था, पर दूसरी ओर उसने अल्पतर "योग्यता के व्यक्तियों" के लिए स्थान बनाया था और ये लोग अपना यह नया स्थान पाकर इतराये हुए थे। यद्यपि संसद में उनकी अशक्तता के विषय में संदेह की गुंजाइश नहीं रह गयी थी, तथापि उन्हें यह अधिकार प्राप्त था कि वे अपनी कार्रवाइयों को नैतिक रोष के उद्गारों और गर्जनभरी लफ़्फ़ाज़ी तक सीमित रखें। यदि अमन की पार्टी इन्हें क्रांति के अन्तिम आधिकारिक प्रतिनिधियों के नाते अब भी अराजकता के समस्त आतंक का साकार रूप समझने का दिखावा कर रही थी, तो वास्तव में ये और भी अधिक फीके और विनीत और संकोची हो सकते थे। पर १३ जून की हार के लिए वे इस प्रकाण्ड उक्ति द्वारा अपने को दिलासा देते थे: "ठीक है, लेकिन अगर वे सर्व-मताधिकार पर चोट करने की जुर्रत करते हैं, फिर हम उन्हें दिखा देंगे कि हम भी किस धातु के बने हुए हैं! Nous verrons!"*

जहां तक उन पर्वत दलीय लोगों का सम्बन्ध है, जो विदेश भाग गये थे, यहां इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि लेद्रू-रोलें ने चूंकि कुल एक पखवारे के

---

*देख लेंगे! – सं०

अंदर एक शक्तिशाली पार्टी को, जिसका वह नेता था, कामयाबी के साथ ऐसा चौपट कर दिया था, कि सुधार की कोई गुंजाइश न रही थी, इसलिए अब उसने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि एक in partibus फ़्रांसीसी सरकार की स्थापना करें। जिस मात्रा में क्रांति का स्तर नीचा होता गया और सरकारी फ़्रांस के उच्च सरकारी नेता बौने जैसे होते गये, उसी मात्रा में संघर्ष क्षेत्र से अलग, दूरी पर खड़ा लेद्रू-रोलें का व्यक्तित्व अधिकाधिक विराट होता दिखाई देने लगा। वह १८५२ के चुनाव में सत्ता के जनतन्त्रीय दावेदार के रूप में आ सका। और उसने वालाशियनों तथा अन्य देशों के जनगण के नाम समय-समय पर गश्ती चिट्ठियां जारी कीं जिनमें यूरोपीय महाद्वीप के स्वेच्छाचारी शासकों को धमकी दी गई थी कि वे और उसके साथी उनके ख़िलाफ़ कार्रवाई करेंगे। प्रूदों का कहना बिल्कुल ग़लत न था जब उन्होंने इन महानुभावों से कहा था: "Vous n'êtes que des blagueurs!"*

१३ जून को अमन की पार्टी ने केवल पर्वत दल की ही कमर नहीं तोड़ी थी, उसने **संविधान को राष्ट्रीय सभा के बहुमत के निर्णयों के अधीन** कर दिया था। और जनतंत्र के सम्बन्ध में उसकी समझ यह थी: यहां पूंजीपति वर्ग संसदीय तरीकों से हुकूमत करता है, जिसमें, राजतंत्र की तरह, कार्यकारी सत्ता के निषेधाधिकार अथवा संसद को भंग कर देने के अधिकार जैसी किसी बाधा का उसे सामना नहीं करना पड़ता। यही, थियेर के अनुसार, **संसदीय जनतंत्र** है। किन्तु १३ जून को पूंजीपति वर्ग ने जहां संसद के भीतर अपनी सर्वशक्तिमत्ता स्थापित कर ली; वहां क्या यह भी सच नहीं है कि संसद से उसके सबसे लोकप्रिय भाग को निष्कासित करके उसने कार्यकारी सत्ता एवं जनता के समक्ष उसे असाध्य रूप से दुर्बल कर दिया? बहुत-से सदस्यों को अदालतों की मांग पर, बिना किसी बखेड़े के, उनके हवाले करके उसने अपनी संसदीय निरापदता का ख़ातमा कर लिया। पर्वत दल पर उसने जो अपमानजनक ज़ाब्ते लगाये थे, उनसे जिस मात्रा में जनतन्त्र के राष्ट्रपति का रुतबा बढ़ा था, उसी मात्रा में जनता के वैयक्तिक प्रतिनिधियों का सम्मान घटा था। संवैधानिक चार्टर की रक्षा के लिए किये जानेवाले विद्रोह को समाज विध्वंसक अराजकतावादी कार्य क़रार देकर उसने कार्यकारी सत्ता द्वारा अपने संबंध में संविधान के उल्लंघन की अवस्था में विद्रोह का आह्वान कर सकने

* "तुम लोग कोरे बकवादी हो!" —सं०

का द्वार पहले ही से बन्द कर दिया। और इतिहास का ऐसा व्यंग्य, कि उसी जनरल, अर्थात् **ऊदिनो**, को जिसने बोनापार्त के आदेश पर रोम पर गोलाबारी की थी और इस प्रकार १३ जून के संवैधानिक विद्रोह का तात्कालिक अवसर उपस्थित किया था, अमन की पार्टी ने २ दिसम्बर १८५१ को, बोनापार्त के विरुद्ध संविधान की ओर से जनरल के रूप में जनता के सामने अनुनयपूर्वक एवं असफलतापूर्वक पेश किया। १३ जून का एक और नायक **वियेरा**, जिसकी राष्ट्रीय गार्ड के, उच्च वित्तीय मण्डलों के अधीनस्थ, कुछ सैनिकों का गिरोह लेकर जनवादी अख़बारों के दफ़्तरों में घुसकर पाशविक कृत्य करने के लिए राष्ट्रीय सभा के रंगमंच से बड़ी बड़ाई की गयी थी, यही वियेरा बोनापार्त के षड्यंत्र में शामिल कर लिया गया, और राष्ट्रीय सभा के अपनी मौत की घड़ी में राष्ट्रीय गार्ड के संरक्षण से सर्वथा वंचित होने में मूलतः उसी का हाथ था।

१३ जून का एक और अर्थ था। पर्वत दल ने बोनापार्त पर महाभियोग लाना चाहा था। अतः उसकी हार बोनापार्त की प्रत्यक्ष जीत थी, अपने जनवादी शत्रुओं पर उसकी वैयक्तिक विजय थी। विजय अमन की पार्टी ने प्राप्त की; बोनापार्त को केवल उसका फ़ायदा हासिल करना था। और यह उसने किया। १४ जून को पेरिस की दीवारों पर आप एक एलान पढ़ सकते थे जिसमें राष्ट्रपति बहुत हिचकिचाते हुए, मानो अपनी इच्छा के विरुद्ध घटनाक्रम से बिल्कुल बाध्य होकर, अपने तपश्चर्यापूर्ण एकांतवास से बाहर निकलता है, तथा ग़लत समझ ली गयी साधुता का स्वांग भरते हुए, अपने विरोधियों द्वारा लगाई गई तोहमतों पर दुःख प्रकट करता है, और अपने व्यक्तित्व को अमन के ध्येय से अभिन्न जताने का दिखावा करते हुए वस्तुतः अमन के ध्येय को अपने व्यक्तित्व से अभिन्न सिद्ध करता है। इसके अतिरिक्त, यह सत्य है कि राष्ट्रीय सभा ने बाद में रोम विरोधी अभियान को अनुमोदन प्रदान किया था, पर इस मामले में पहल बोनापार्त ने ही की थी। अब महापुरोहित सैमुएल को वैटिकन में गद्दीनशीन करने के बाद वह स्वयं राजा डेविड के रूप में तुलरी में प्रवेश करने की आशा कर सकता था।[102] उसने पादरियों को अपनी ओर कर लिया था।

जैसा कि हम देख चुके हैं, १३ जून का विद्रोह एक शांतिपूर्ण जुलूस तक सीमित था। इसलिए उसमें जंग जीतने की सरफ़राज़ी हासिल करने का कोई सवाल ही न था। किन्तु वीर नायकों और घटनाओं से रहित इस अकिंचन युग में, अमन की पार्टी ने इस रक्तहीन युद्ध को ही आस्टरलित्ज़[103] की दूसरी लड़ाई का रुतबा दे डाला। सभामंचों से और अख़बारों में आम जनता के मुक़ाबले में

जिसे अशक्त अराजकता का प्रतिनिधि कहा गया, सेना को अमन की ताक़त बताकर उसकी ख़ूब तारीफ़ें की गईं; शांगार्निये को "समाज का स्तम्भ" कहकर इतना उछाला गया कि वह स्वयं इस प्रवंचना में विश्वास करने लगा। किन्तु उन सैनिक दस्तों का जो संदिग्ध जान पड़ते थे, चुपके-चुपके, पेरिस से तबादला कर दिया गया और उन रेजीमेंटों को जिन्होंने चुनाव के समय सबसे अधिक जनवादी भावनाएं प्रदर्शित की थीं, फ़्रांस से अल्जीरिया निर्वासित कर दिया गया। सैनिकों में जो ज्यादा हंगामा मचानेवाले थे उन्हें ताज़ीरी दस्तों में डाल दिया गया, और अंततः अख़बारों को बारिकों से और बारिकों को नागरिक समाज से विलग करने का कार्य क्रमबद्ध रूप से पूरा किया गया।

यहां हम फ़्रांसीसी राष्ट्रीय गार्ड के इतिहास के निर्णायक परिवर्तन-बिंदु पर आ गये हैं। १८३० में पुनःस्थापना की समाप्ति में निर्णायक भूमिका उसी की रही थी। लूई फ़िलिप के ज़माने में वे सारे विप्लव विफल हुए थे जिनमें राष्ट्रीय गार्ड सेना के पक्षों में रहा। १८४८ की फ़रवरी के दिनों में, जब उसने बग़ावत के प्रति प्रतिकारशून्य तथा लूई फ़िलिप के प्रति द्विधायुक्त रुख़ प्रदर्शित किया, तो लूई फ़िलिप ने समझ लिया कि वह बाज़ी हार चुका है, और सचमुच वह बाज़ी हार गया। इस प्रकार यह धारणा पक्की हो गयी कि क्रांति राष्ट्रीय गार्ड **के बिना** विजयी नहीं हो सकती, न सेना उसके **विरुद्ध** सफल हो सकती है। यह नागरिकों की सर्वशक्तिमत्ता के सम्बन्ध में सेना का एक अंधविश्वास था। १८४८ की जून की घटनाओं ने जब पूरे राष्ट्रीय गार्ड ने सेना के साथ बग़ावत को दबाया था, इस अंधविश्वास को दृढ़ किया था। बोनापार्त के पद-ग्रहण करने के बाद राष्ट्रीय गार्ड की कमान के प्रथम सैनिक डिवीजन की कमान के साथ शांगार्निये के हाथों में अवैधानिक रूप से संयुक्त किये जाने से राष्ट्रीय गार्ड की स्थिति कुछ कमज़ोर पड़ गयी।

जिस प्रकार राष्ट्रीय गार्ड की कमान प्रधान सेनापति की एक उपाधि ज्ञात होने लगी, उसी प्रकार राष्ट्रीय गार्ड स्वयं सेना का एक पुछल्ला मात्र लगने लगा। अंततः १३ जून को उसकी शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी गयी, न केवल इस प्रकार कि उसे आंशिक रूप से विघटित कर दिया गया, जैसा कि समय-समय पर पूरे फ़्रांस में कई बार किया गया, यहां तक कि उसके कुछ टुकड़े ही बचे रहे। १३ जून का प्रदर्शन, सर्वोपरि, राष्ट्रीय गार्ड के जनवादी भाग का प्रदर्शन था। यह सच है कि उन्होंने हथियार नहीं उठाये थे, पर सेना के विरुद्ध अपनी वर्दियां निकाली थीं, और इन वर्दियों में ही तो सारा टोना था। फ़ौज ने देख

लिया कि यह वर्दी साधारण ऊनी कपड़ा मात्र है। जादू का असर ख़त्म हो गया। जून १८४८ की घटनाओं के समय सर्वहारा के विरुद्ध पूंजीपति और निम्नपूंजीपति राष्ट्रीय गार्ड के रूप में सेना के साथ संयुक्त हुए थे; १३ जून १८४९ को पूंजीपतियों ने निम्नपूंजीवादी राष्ट्रीय गार्ड को सेना द्वारा तितर-बितर किये जाने दिया; २ दिसम्बर १८५१ को पूंजीपतियों का राष्ट्रीय गार्ड ख़ुद ग़ायब हो चुका था, और बोनापार्त ने जब बाद में उसे भंग करने की आज्ञप्ति पर हस्ताक्षर किये तो उसने केवल इस तथ्य को अंकित किया। इस प्रकार पूंजीपति वर्ग ने सेना के विरुद्ध अपना अंतिम आयुध स्वयं तोड़ डाला था, पर यह काम उसे उस क्षण करना ही था जिस क्षण कि निम्नपूंजीपति उसके पीछे चाकर की तरह हाथ बांधे खड़े न होकर उसके आगे विद्रोही के रूप में खड़े हो गये थे, उसी तरह जैसे स्वयं निरंकुश बन जाने के बाद निरंकुशता के विरुद्ध प्रतिरक्षा के अपने सभी साधनों को स्वयं नष्ट कर देना उसके लिए सामान्यतः अनिवार्य था।

इधर अमन की पार्टी ने उस सत्ता की पुनर्विजय का उत्सव मनाया जो १८४८ में उसके हाथों से चली गयी प्रतीत हुई थी और १८४९ में अटकावों से मुक्त होकर फिर प्राप्त हो गयी थी। यह विजयोत्सव जनतंत्र और संविधान को गालियां देकर, सभी भावी, वर्तमान और अतीतकालीन क्रांतियों को–उस क्रांति समेत जिसे उसके नेताओं ने सम्पन्न किया था–कोसकर, और ऐसे क़ानून पास कर मनाया गया, जिनसे अख़बारों का मुंह बंद किया गया, संघ-स्वातन्त्र्य नष्ट किया गया और घेरे की स्थिति का एक बुनियादी व्यवस्था के रूप में नियमन किया गया। इसके बाद राष्ट्रीय सभा अपनी अनुपस्थिति की अवधि के लिए एक स्थायी आयोग नियुक्त करने के बाद अगस्त के मध्य से अक्तूबर के मध्य तक के लिए स्थगित कर दी गयी। इस तातील के दौरान लेजिटिमिस्ट एम्स के साथ, आर्लियानिस्ट क्लेरमां के साथ, बोनापार्त शाही दौरे आयोजित करके तथा ज़िला परिषदें संविधान को संशोधित करने से सम्बन्धित बहसों द्वारा अपनी साज़िशें करते रहे। इन तथ्यों की राष्ट्रीय सभा की समय-समय पर होनेवाली तातीलों के दौरान बराबर पुनरावृत्ति होती रही और इन पर मैं तभी विचार करूंगा जब ये घटनाएं बन जायें। यहां बस इतना ही और कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय सभा का लम्बे अर्से के लिए रंगमंच से हट जाना और जनतंत्र के शीर्ष-स्थान में केवल एक आकृति को, भले ही वह आकृति एक उपहासजनक आकृति थी, अर्थात् लूई बोनापार्त को छोड़ जाना, जबकि उधर सार्वजनिक अपकीर्त्ति का दृश्य उपस्थित करती हुई अमन की पार्टी अपने राजतंत्रीय टुकड़ों में बंटकर

पुनःस्थापना की अपनी परस्परविरोधी इच्छाओं का अनुसरण कर रही थी, नासमझी का काम था। इन तातीलों में जब-जब **संसद** का कोलाहल शांत हो जाता था और उसका शरीर राष्ट्र में तिरोहित हो जाता था, यह एकदम स्पष्ट हो जाता था कि इस जनतंत्र का पूरा का पूरा सच्चा रूप उपस्थित करने के लिए केवल एक चीज़ की कसर है: वह यह कि **संसद** की तातील मुस्तकिल बना दी जाये और जनतंत्र के नारे – Liberté, égalité, fraternité* – की जगह द्वयर्थकता से मुक्त ये शब्द रख दिये जायें – Infanterie, Cavalerie, Artillerie! **

४

अक्तूबर १८४९ के मध्य में राष्ट्रीय सभा फिर बैठी। १ नवम्बर को बोनापार्त ने एक संदेश भेजकर उसे आश्चर्य में डाल दिया जिसमें उसने बारो-फ़ालू मंत्रिमण्डल की बर्ख़ास्तगी और एक नये मंत्रिमण्डल के गठन की सूचना दी थी। जैसी शिष्टाचारशून्यता के साथ बोनापार्त ने अपने मंत्रियों को निकाला, उस तरह लोग अपने नौकरों को भी नहीं निकालते। जो लातें राष्ट्रीय सभा को लगाने का उसका मंसूबा था, वे इस बीच बारो और उसकी मण्डली की पीठ पर बरस पड़ीं।

जैसा कि हम देख चुके हैं, बारो मंत्रिमण्डल लेजिटिमिस्टों और आर्लियानिस्टों को लेकर गठित हुआ था, वह अमन की पार्टी का मंत्रिमण्डल था। बोनापार्त को उसकी आवश्यकता जनतंत्रीय संविधान सभा को भंग करने, रोम का अभियान पूरा करने और जनवादी पार्टी को तोड़ने के लिए थी। इस मन्त्रिमण्डल की आड़ में उसने ऐसा प्रगट किया कि वह बिल्कुल नाचीज़ है, सरकारी सत्ता अमन की पार्टी के हाथों में सौंप दी और एक साधारण पात्र का वह नक़ाब पहन लिया जो लूई फ़िलिप के ज़माने में अख़बारों के उत्तरदायी सम्पादक पहना करते थे – homme de paille***। अब उसने उसे उतार डाला जो आकृति छिपाने लायक़ झीना-सा अवगुण्ठन न रहकर ऐसा लौह नक़ाब बन गया

*स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व। – सं०

**पैदल सेना, घुड़सवार सेना, तोपख़ाना। – सं०

***निःसत्व व्यक्ति का चेहरा। – सं०

था जो उसे अपनी आकृति का प्रदर्शन करने से रोक रहा था। उसने बारो मंत्रि-मण्डल को इसलिए नियुक्त किया था कि अमन की पार्टी के नाम पर जनतन्त्रीय राष्ट्रीय सभा को छिन्न-भिन्न कर सके; उसने उसे बर्ख़ास्त इसलिए किया कि अपने नाम को अमन की पार्टी की राष्ट्रीय सभा से स्वतंत्र रूप में घोषित कर सके।

इस बर्ख़ास्तगी के लिए माक़ूल बहानों का अभाव न था। बारो मंत्रिमण्डल ने उन शिष्टाचारों की भी उपेक्षा कर रखी थी जिनसे जनतंत्र का राष्ट्रपति राष्ट्रीय सभा के समकक्ष एक सत्ता के रूप में अपने को दिखा सकता। राष्ट्रीय सभा की तातील के वक़्त बोनापार्त ने एदगर नेई के नाम अपना एक पत्र प्रकाशित कराया जिसमें पोप* के अनुदार रुख़ पर उसने नापसंदगी ज़ाहिर की थी, उसी प्रकार जैसे उसने संविधान सभा के विरुद्ध एक पत्र प्रकाशित कराया था जिसमें उसने रोमन जनतंत्र पर आक्रमण के लिए ऊदिनो की प्रशंसा की थी। जब इस समय राष्ट्रीय सभा रोमन अभियान के व्यय को पास कर रही थी, विक्तोर ह्यूगो ने तथाकथित उदारतावाद से प्रेरित होकर इस पत्र पर बहस छेड़ी थी। इस ख़याल पर तिरस्कार और कोलाहलपूर्ण अविश्वास प्रगट करते हुए कि बोनापार्त के विचारों का कोई राजनीतिक महत्त्व भी हो सकता है, अमन की पार्टी ने उसे ठुकरा दिया था। उस समय किसी मन्त्री ने बोनापार्त को दी गई इस चुनौती के जवाब में उसकी ओर से कुछ नहीं कहा था। एक अन्य अवसर पर बारो ने अपनी मशहूर आलंकारिक भाषा में, जो भीतर से सदा खोखली होती थी, सभामंच से उन "गंदी साज़िशों" के सम्बन्ध में कुछ रोषपूर्ण शब्द कहे थे जो, उसके कथनानुसार, राष्ट्रपति के दरबारियों के बीच चल रही थीं। अंतिम बात यह कि मंत्रिमण्डल ने जहां राष्ट्रीय सभा से डचेस ऑफ़ आर्लियां के लिए विधवाओं की पेंशन दिलवाई वहां राष्ट्रपति का भत्ता बढ़ाने का प्रस्ताव उसने नामंज़ूर कर दिया। और बोनापार्त के व्यक्तित्व में शाही दावेदार और बदक़िस्मत जुएबाज़ का ऐसा संयोग हुआ था कि उसके मन की यह भावना कि वह फ़्रांसीसी साम्राज्य की पुन:स्थापना के लिए अवतरित हुआ है, इस अन्य भावना के साथ जुड़ी रहती थी कि फ़्रांस की जनता का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वह उसके ऋण भरे।

बारो–फ़ालू मंत्रिमण्डल बोनापार्त द्वारा स्थापित प्रथम और अंतिम **संसदीय मंत्रिमण्डल** था। अतः उसकी बर्ख़ास्तगी एक निर्णायक मोड़ है। उसकी बर्ख़ास्तगी

*पियस नवें। – सं०

से अमन की पार्टी के हाथ से एक एसी चौकी निकल गई जो संसदीय राज क़ायम रखने के लिए अनिवार्य थी, अर्थात् वह कार्यकारी सत्ता का लीवर खो बैठी। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि फ़्रांस जैसे देश में जहां कार्यकारी सत्ता के अधीनस्थ पांच लाख से अधिक अहलकारों की एक पूरी फ़ौज है और इसलिए जिसके ऊपर एक विशाल जनसमुदाय के हित और रोज़ियां पूर्णतया आश्रित हैं; जहां राज्य नागरिक समाज को उसकी व्यापकतम जीवन अभिव्यक्तियों से लेकर उसकी नगण्य गतिविधियों तक, उसके अस्तित्व की सामान्यतम विधाओं से लेकर उसके व्यक्तियों के निजी अस्तित्व तक, जाल में बांधे हुए है, उसे नियंत्रित और नियमित करता है तथा उसकी निगरानी और सरपरस्ती करता है; जहां अत्यंत असाधारण केन्द्रीकरण के द्वारा यह परजीवी निकाय एक ऐसी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञान तथा एक ऐसी वर्धित गति क्षमता और नमनीयता प्राप्त कर लेता है जिसका प्रतिपक्ष असली सामाजिक निकाय की निस्सहाय परवशता और शिथिल आकार-हीनता ही है—वहां, ऐसे देश में यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय सभा मंत्रिपदों के अपने क़ब्ज़े से निकल जाने पर, अपना समस्त वास्तविक प्रभाव खो देती है, यदि वह राज्य प्रशासन को सरलीकृत न कर दे, सरकारी अहलकारों की संख्या यथासम्भव घटा न दे, और नागरिक समाज एवं जनमत को सरकारी सत्ता से स्वतंत्र स्वयं अपने अवयव न बनाने दे। किंतु इस विस्तृत राज्य-यंत्र को उसकी नाना शाखाओं समेत क़ायम रखने से ही तो फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग के **भौतिक हित** घनिष्ठतम रूप में अन्तःसम्बद्ध हैं। यहां उसे अपने फ़ाज़िल लोगों के लिए नौकरियां प्राप्त होती हैं; और मुनाफ़ा, सूद, लगान और मानदेय के रूप में आमदनी करने में जो कसर रह जाती है उसे वह सरकारी वेतन के रूप में पूरी करता है। दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग के **राजनीतिक हितों** ने उसे रोज़-ब-रोज़ दमनकारी कार्रवाइयों को और इस वजह से राज्य-सत्ता के साधनों और अहलकारों की संख्या को बढ़ाते चले जाने को बाध्य किया, जबकि साथ ही उसे जनमत के विरुद्ध अबाध रूप से युद्ध करने तथा सामाजिक आन्दोलन के स्वतंत्र अवयवों को, जहां वह उन्हें बिल्कुल ही काटकर फेंकने में सफल न हुआ, वहां आशंकित भाव से उनका अंग-भंग करने और उन्हें पंगु बनाने का काम करना पड़ा। इस प्रकार फ़्रांस का पूंजीपति वर्ग अपनी वर्ग स्थिति के कारण एक ओर तो समग्र संसदीय सत्ता, और इसलिए स्वयं अपनी सत्ता की जीवंत अवस्थाओं का उन्मूलन करने को और दूसरी ओर अपनी शत्रु कार्यकारी सत्ता को दुर्द्धर्ष बनाने को विवश हुआ।

नये मंत्रिमण्डल को द'ओपूल मंत्रिमण्डल कहते थे। यह इस अर्थ में नहीं कि जनरल द'ओपूल को प्रधान मंत्री का ओहदा मिला था। बल्कि बारो की बर्ख़ास्तगी के साथ-साथ बोनापार्त ने इस ओहदे को ही मिटा दिया था, गो यह सच है कि उसकी वजह से जनतंत्र का राष्ट्रपति एक वैधानिक राजा की क़ानूनी दृष्टि से निःसत्त्व स्थिति में डाल दिया गया – और वह भी ऐसे वैधानिक राजा की जिसके पास तख़्त या राजमुकुट, राजदंड या खड्ग, अनुल्लंघनीयता का विशेषाधिकार या राज्य के उच्चतम पद का असंहार्य स्वामित्व न था, और इससे भी बुरी बात जो थी वह यह कि उसके पास राजकुल व्यय के लिए संसदीय भत्ता न था। द'ओपूल मंत्रिमण्डल में संसदीय ख्याति का केवल एक आदमी था, वह था महाजन फ़ूल्द जो बड़े रोकड़ियों में सबसे कुख्यात लोगों में से था। वित्त-मंत्री का पद उसी के हिस्से पड़ा। पेरिस के शेयर बाज़ार के निर्ख़ों को देख जाइए तो आपको पता चलेगा कि १ नवम्बर १८४९ के बाद से फ़्रांस के सरकारी ऋणपत्रों का भाव बोनापार्त की साख़ के गिरने और उठने के साथ गिरता और उठता रहा है। इस प्रकार बोनापार्त को शेयर बाज़ार के रूप में अपना संघाती मिला और साथ ही कार्लिये को पेरिस का पुलिस प्रीफ़ेक्ट बनाकर उसने पुलिस को भी अपने क़ब्ज़े में कर लिया।

मंत्रियों की तब्दीली के परिणामों का घटनाओं के विकासक्रम में ही पता चल सकता था। शुरू में तो ऐसा हुआ कि बोनापार्त ने जो आगे क़दम बढ़ाया, उसके बदले वह और भी अधिक खुले रूप में पीछे खदेड़ दिया गया। अपने उद्दंडतापूर्ण संदेश के बाद उसे राष्ट्रीय सभा के प्रति वफ़ादारी का चापलूसी भरा एलान करना पड़ा। मंत्रिगण जब-जब उसके ज़ाती ख़ब्तों को विधिकारी प्रस्तावों के रूप में हिचकते-हिचकते पेश करने का साहस करते थे, तब-तब ऐसा लगता था कि अपनी इच्छा के खिलाफ़ और अपनी स्थिति से मजबूर होकर वे ऐसे उपहासास्पद आदेशों का पालन कर रहे हैं जिनकी निष्फलता के सम्बन्ध में उन्हें पहले से ही विश्वास था। जब-जब बोनापार्त मंत्रियों की पीठ के पीछे अपने इरादे ज़ाहिर कर बैठता और अपनी "idées napoléoniennes"[104] के साथ खिलवाड़ करता तो उसके अपने ही मंत्रिगण राष्ट्रीय सभा के मंच से उसे मानने से इनकार करते थे। बलापहारी की उसकी मनोकांक्षा मानो इसलिए लोगों के सामने प्रकट होती थी कि उसके विरोधियों की द्वेषयुक्त हंसी कभी ख़तम न होने पाये। उसका आचरण उस प्रतिभाशाली व्यक्ति की तरह का था जिसकी प्रतिभा को कोई मानता नहीं, और जिसे सारी दुनिया मूर्ख समझती है। इस काल में उसे सभी वर्गों का जैसी पूर्ण मात्रा में तिरस्कार प्राप्त हुआ, वैसा और कभी नहीं

हुआ था। पूंजीपति वर्ग जितने अबाध रूप में इस काल में शासन कर रहा था, उतना उसने और कभी नहीं किया था, उसने पहले कभी इतने निरंकुश रूप में शासन नहीं किया था, उसने इतने धूमधड़क्के के साथ अपने प्रभुत्व के अधिकार चिह्न को कभी प्रदर्शित नहीं किया था।

मुझे यहां उसके विधिकारी कार्यकलाप का इतिहास नहीं लिखना है। इस काल का सार दो क़ानूनों में अंतर्निहित है–एक तो वह क़ानून जिसने **मद्य कर** को फिर से लागू किया और दूसरा **शिक्षा क़ानून** जिसने धर्म में अनास्था को अवैध बना दिया। जहां फ़ांसीसियों के लिए शराब पीना अधिक कठिन हो गया, वहीं सच्चे जीवन का गंगा-जल उन्हें और भी प्रचुर मात्रा में दिया गया। जहां मद्य कर सम्बन्धी क़ानून द्वारा पूंजीपति वर्ग ने पुरानी और घृणित फ़ांसीसी कर व्यवस्था को अनतिक्रम्य घोषित किया, वहीं शिक्षा क़ानून द्वारा उसने आम जनता में वही पुरानी मनोवृत्ति सुनिश्चित बनानी चाही जो कर व्यवस्था को चुपचाप बर्दाश्त करती थी। यह देखकर आश्चर्य होता है कि आर्लियानिस्टों ने, उदारपंथी पूंजीपतियों ने, वाल्तेयरवाद और सर्वसंग्रहवादी दर्शन के इन पुराने भक्तों ने फ़ांसीसी मस्तिष्क की देखरेख अपने वंशानुगत शत्रु–जेजुइटों–के सुपुर्द कर दी। किंतु तख़्त के दावेदारों के सम्बन्ध में आर्लियानिस्टों और लेजिटिमिस्टों के बीच चाहे कितना भी विभेद क्यों न रहा हो, एक बात दोनों ही समझते थे, यानी यह कि अपने संयुक्त शासन को सुरक्षित बनाने के लिए दो युगों के दमन के साधनों को संयुक्त करना आवश्यक है–जुलाई राजतंत्र के अधीनीकरण के साधनों के साथ पुनःस्थापना के अधीनीकरण के साधन जोड़कर उन्हें मज़बूत बनाना ज़रूरी है।

ज़िलों में किसान, जिनकी सभी आशाएं निराशा में परिणत हो चुकी थीं, जो एक ओर अनाज की सस्ती क़ीमतों और दूसरी ओर करों और बन्धकों के बढ़ते हुए भार से कुचले जा रहे थे, जितने वे कभी कुचले नहीं गये थे, आन्दोलित होने लगे थे। स्कूलों के शिक्षकों के विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ करके, जिन्हें पादरियों के अधीनस्थ कर दिया गया, मेयरों के विरुद्ध कार्यवाही करके, जिन्हें प्रीफ़ेक्टों के अधीनस्थ किया गया, तथा ख़ुफ़ियागीरी का एक जाल बिछाकर, जिसके सभी अधीनस्थ किये गये, उनके इस आन्दोलन का जवाब दिया गया। पेरिस तथा बड़े नगरों में प्रतिक्रिया की आकृति अपने युग के अनुरूप ही है, वह जितना प्रहार करती है, उससे अधिक ललकारती है। देहातों में वह मलिन, अशिष्ट, ओछी, श्रांतकर और पीड़क रूप–एक शब्द में, पुलिस

कांस्टेबल का रूप धारण करती है। यह समझ में आता है कि तीन वर्ष तक के पुलिस राज द्वारा, जिसे पादरी राज ने धार्मिक प्रतिष्ठा प्रदान की थी, अपरिपक्व आम जनता का पस्तहिम्मत हो जाना लाज़िमी था।

अमन की पार्टी ने अल्पसंख्यकों के विरुद्ध राष्ट्रीय सभा के मंच से जितना भी जोश और वाक्‌चातुर्य दिखाया हो उसका वक्तव्य ईसाइयों की हां-हां और ना-ना की तरह एकाक्षरी ही रहा। सभामंच हो या अख़बारों के कालम – सभी जगह वही एकाक्षरी वक्तव्य – उस पहेली की तरह नीरस था जिसका उत्तर पहले ही से ज्ञात होता है। चाहे आवेदनपत्र देने के अधिकार का प्रश्न हो या मद्य कर का, प्रेस-स्वातंत्र्य का सवाल हो या मुक्त व्यापार का, क्लबों की समस्या हो या म्युनिसिपल चार्टर की, व्यक्ति स्वातंत्र्य का प्रश्न हो या राज्य-बजट के नियमन का, बस वही एक मंत्र दुहरा दिया जाता, वही एक राग अलापा जाता, वही एक फ़ैसला सुना दिया जाता – "**समाजवाद!**" यहां तक कि पूंजीवादी उदारपंथ को भी **समाजवादी** घोषित किया गया, पूंजीवादी ज्ञानोद्दीप्ति समाजवादी क़रार दी गयी, पूंजीवादी वित्तीय सुधार को समाजवादी बताया गया। जहां पहले से नहर मौजूद हो, वहां रेलवे लाइन बनवाना समाजवाद था, तलवार के हमले से छड़ी लेकर बचाव करना भी समाजवाद था।

यह भाषा का अलंकार, फ़ैशन अथवा पार्टीबाज़ी का दांव मात्र न था। पूंजीपति वर्ग को इस तथ्य का सच्चा ज्ञान था कि सामंतवाद के विरुद्ध उसने जो आयुध गढ़े थे, उनकी धारें अब उसी की ओर मुड़ गयी थीं; कि शिक्षा के जो साधन उसने तैयार किये थे, वे उसकी अपनी सभ्यता के ही विरुद्ध विद्रोह कर बैठे थे; कि जिन देवताओं की उसने सृष्टि की थी, वे सभी उससे दूर हो गये थे। वह इसे समझता था कि सभी तथाकथित नागरिक स्वतंत्रताएं और प्रगति के अवयव उसके **वर्ग शासन** के सामाजिक आधार तथा राजनीतिक शीर्ष, दोनों पर एकसाथ प्रहार करते और इन्हें ख़तरे में डालते थे, और इसलिए "**समाजवादी**" बन गये थे। इस ख़तरे और इस हमले को उसने 'समाजवाद की – जिसके महत्त्व और जिसकी प्रवृत्ति को जितना तथाकथित समाजवाद स्वयं आंक सकता है, उससे अधिक सही-सही वह आंक सकता है – कुंजी के रूप में बिल्कुल ही ठीक परख लिया। अतः समाजवाद की समझ में नहीं आता कि क्यों जब वह मानव कष्टों का भावुकतापूर्वक रोना रोता है, या ईसाइयों की भांति सुख-शान्ति की सहस्राब्दी के आगमन एवं विश्व बंधुत्वपूर्ण प्रेम के आविर्भाव की भविष्यवाणी करता है, या मानवतावादी शैली में मस्तिष्क, शिक्षा और स्वतंत्रता का राग अलापता है,

अथवा मतवादी ढंग से सभी वर्गों के समन्वय और कल्याण की व्यवस्था के विषय में चिंतन करता है—हर समय ही पूंजीवाद उसके प्रति इतना निर्मम और निष्ठुर क्यों बना रहता है। किंतु, एक चीज़ जिसे पूंजीपति वर्ग ने नहीं समझा, वह थी यह तर्कसंगत निष्कर्ष कि उसके **अपने संसदीय शासन**, उसके सामान्य **राजनीतिक शासन** के विरुद्ध भी **समाजवादी** होने का आरोपपूर्ण निर्णय सुनाया जाना अनिवार्य था। जब तक पूंजीपति वर्ग का शासन पूर्णरूपेण संगठित नहीं हुआ था, जब तक उसे अपना विशुद्ध राजनीतिक रूप नहीं उपलब्ध हुआ था, तब तक दूसरे वर्गों का विरोध भी, उसी प्रकार, अपने विशुद्ध रूप में नहीं प्रगट हो सकता था, और जहां वह प्रगट हुआ भी था, वहां वह ऐसा ख़तरनाक रुख़ नहीं अख़्तियार कर सकता था जो राज्य-सत्ता के विरुद्ध प्रत्येक संघर्ष को पूंजी विरोधी संघर्ष में परिवर्तित कर देता है। अगर समाज में ज़िंदगी की हर हरकत से पूंजीपति वर्ग को "शान्ति" के लिए ख़तरा महसूस होने लगा था, तो वह यह कैसे इच्छा कर सकता था कि समाज के शीर्षस्थान में **अशान्ति का राज**, उसका अपना राज, **संसदीय राज**, वह राज जो स्वयं उसके एक प्रवक्ता के कथनानुसार संघर्ष में और संघर्ष द्वारा ही जीता है, बरक़रार रहे? संसदीय राज बहस-मुबाहसों में पलता है, ऐसी हालत में वह बहस-मुबाहसों पर किस प्रकार रोक लगा सकता है? उसमें प्रत्येक हित, प्रत्येक सामाजिक संस्थान सामान्य धारणाओं में परिवर्तित हो जाता है, और इन धारणाओं के ही रूप में उस पर वादानुवाद किया जाता है; ऐसी हालत में कोई हित, कोई संस्थान किस प्रकार विचारोपरि रहकर अपने को क़ायम रख सकता और निष्ठा की वस्तु के रूप में अपने को आरोपित कर सकता है? सभामंच पर वक्ताओं के संघर्ष से समाचारपत्रों के क़लमघसीटू लेखकों के संघर्ष प्रेरित होते हैं; बैठकख़ानों और मद्य गृहों के वाद-विवाद क्लब संसद रूपी वाद-विवाद क्लब के लाज़िमी तौर पर पूरक का काम करते हैं; संसद प्रतिनिधि जनमत का निरंतर आह्वान करके जनमत को आवेदनपत्रों द्वारा अपना असली अभिप्राय व्यक्त करने का अधिकार प्रदान करते हैं। संसदीय शासन सब कुछ बहुमत के निर्णय पर छोड़ देता है; ऐसी हालत में संसद के बाहर स्थित विराट् बहुमत भला निर्णय करना क्यों न चाहेगा? राज्य के शीर्ष पर खड़े होकर आप बीन बजायेंगे तो नीचे के लोग नाचेंगे ही।

अतः जिसका पहले "**उदारपंथी**" कहकर उछाला गया था, उसे ही अब "**समाजवादी**" कहकर निन्दित करके, पूंजीपति क़बूल करते हैं कि उनका अपना हित यह प्रेरित कर रहा है कि उन्हें **ख़ुद अपने शासन** के ख़तरे से उबारा जाये;

कि देश में शान्ति पुनःस्थापित करने के लिए ख़ुद उनके पूंजीवादी संसद को सबसे पहले शांत करना होगा; कि उनकी सामाजिक सत्ता अक्षुण्ण रखने के लिए, उनकी राजनीतिक सत्ता छिन्न-भिन्न करनी होगी; कि पृथक् पूंजीपति दूसरे वर्गों का शोषण तथा सम्पत्ति, परिवार, धर्म और व्यवस्था का निर्विघ्न उपभोग इसी शर्त पर करता रह सकता है कि अन्य वर्गों की भांति उसका वर्ग भी राजनीतिक रूप से नाचीज़ बन जाये; कि अपनी थैली बचाने के लिए उन्हें तख़्त गंवाना होगा कि जो तलवार उनकी रक्षा करती है उसे साथ ही डैमोक्लिज़ की तलवार बनकर उनके सिर के ऊपर लटकना भी होगा।

आम नागरिकों के हितों के क्षेत्र में राष्ट्रीय सभा ऐसी बोझ साबित हुई कि उदाहरणार्थ, पेरिस–एविग्नोन रेलवे सम्बन्धी बहस, जो १८५० की शीत ऋतु में आरम्भ हुई थी, २ दिसम्बर १८५१ तक भी किसी नतीजे पर न पहुंच सकी थी। जहां वह दमन नहीं कर रही होती थी, या प्रतिक्रियावादी लीक पर नहीं चल रही होती थी, वहां वह बांझपन के असाध्य रोग से पीड़ित होती थी।

जबकि बोनापार्त का मंत्रिमण्डल अंशतः अमन की पार्टी की भावना के अनुरूप क़ानूनों को बनाने में पेशक़दमी दिखा रहा था और अंशतः इन क़ानूनों पर अमल करने तथा प्रशासकीय कार्रवाई करने में कड़ाई से काम लेने में उस पार्टी को भी मात दे रहा था, तो दूसरी ओर, बोनापार्त अपने बचकाने सुझाव पेश करके लोकप्रियता प्राप्त करने की, राष्ट्रीय सभा के प्रति अपने विरोध को सामने लाने की तथा यह इशारा करने की कोशिश कर रहा था कि उसके पास एक गुप्त रक्षित कोष है जिसके छिपे हुए रत्नों को फ़्रांसीसी जनता को उपलब्ध कराने से परिस्थितियों ने उसे अस्थायी तौर पर रोक रखा है। मसलन्, उसने सुझाव रखा कि ग़ैरकमीशनयाफ़्ता अफ़सरों के वेतन में चार सू प्रति दिन की वृद्धि करने का हुक्म जारी किया जाये। इसी क़िस्म का उसका एक प्रस्ताव यह था कि मजदूरों के लिए वचन प्रणाली पर ऋण देनेवाले बैंक की स्थापना की जाये। पुरस्कार के रूप में धन और ऋण के रूप में धन प्राप्त करने की सम्भावनायें दिखाकर वह आम जनता को लुभाना चाहता था। अनुदान और ऋण–लंपट सर्वहारा का वित्तीय विज्ञान, चाहे वे ऊंचे पद पर हों या नीचे, इन्हीं दो वस्तुओं तक सीमित है। बोनापार्त भी केवल इन्हीं कुंजियों को ऐंठना जानता था। किसी भी दावेदार ने आम जनता की मूढ़ता पर इससे अधिक मूढ़पन के साथ जूए में दांव नहीं लगाया है।

राष्ट्रीय सभा अपने मत्थे लोकप्रियता प्राप्त करने के बोनापार्त के इन स्पष्ट प्रयत्नों पर, इस बढ़ते हुए ख़तरे पर कि यह जोखोंबाज़, जिसको उसके ऋणों की चिन्ता एड़ी लगाकर आगे बढ़ा रही थी और जिसके पास नेकनामी की कोई पूंजी न थी जो अंकुश का काम करती, आव या ताव देखे बिना बलात् सत्ता-अपहरण पर किसी भी दिन उतारू हो सकता है, बारम्बार आवेश में आ जाती थी। अमन की पार्टी और राष्ट्रपति के झगड़े ने ख़तरनाक सूरत अख़्तियार कर ली थी जब एक अप्रत्याशित घटना ने राष्ट्रपति को पश्चात्तापी के रूप में राष्ट्रीय सभा के सामने हाथ बांधे ला खड़ा किया। हमारा तात्पर्य १० मार्च १८५० के उपचुनावों से है। ये चुनाव उन स्थानों की पूर्ति के लिए कराये गये थे जो १३ जून के बाद कुछ प्रतिनिधियों के जेल भेज दिये जाने अथवा निर्वासित किये जाने के कारण रिक्त हुए थे। पेरिस ने सामाजिक-जनवादी उम्मीदवारों को ही निर्वाचित किया। उसने यहां तक किया कि अपने अधिकांश वोट जून १८४८ के देफ़्लोत नामक एक बाग़ी को दे डाले। पेरिस के निम्नपूंजीपतियों ने, जिनका सर्वहारा के साथ गठबंधन था, १३ जून १८४९ की अपनी हार का इस तरह बदला लिया। ऐसा ज्ञात होता था कि ख़तरे की घड़ी में वह रणक्षेत्र से केवल इसलिए ग़ायब हो गया था कि अधिक अनुकूल अवसर पर अधिक सैन्यदल लेकर तथा अधिक साहसपूर्ण रण के नारे के साथ फिर उपस्थित हो सके। एक परिस्थिति ऐसी थी जो चुनाव की इस जीत के ख़तरे को बहुत अधिक बढ़ाती ज्ञात होती थी: सेना ने पेरिस में बोनापार्त के एक मंत्री लाहित्त के विरुद्ध जून के बाग़ी को अपने वोट दिये तथा ज़िलों में अधिकतर पर्वत दल वालों को अपने वोट दिये, अपने शत्रुओं के मुक़ाबले जिनका पलड़ा यहां भी भारी रहा यद्यपि उतने निर्णायक रूप में नहीं जितना कि पेरिस में रहा था।

बोनापार्त ने सहसा अपने को एक बार फिर क्रांति के रूबरू पाया। २९ जनवरी १८४९ और १३ जून १८४९ की तरह १० मार्च १८५० को भी वह झट अमन की पार्टी की आड़ में छिप गया। उसने ख़ुशामदें कीं, नाक रगड़कर माफ़ी मांगी, संसदीय बहुमत की मर्ज़ी के मुताबिक़ मंत्रिमण्डल नियुक्त करने की बात कही, यहां तक किया कि आर्लियानिस्टों और लेजिटिमिस्टों के पार्टी नेता थियेर, बेरिये, ब्रोल्यी, मोले जैसे लोगों, यानी तथाकथित बुर्गग्राफ़ों[105] से विनती की कि वे राज्य की बागडोर अपने हाथों में ले लें। अमन की पार्टी इस अवसर से, जो फिर लौटकर नहीं आने को था, लाभ उठाने के अयोग्य सिद्ध हुई। जो अधिकार उसे देने की बात कही जा रही थी उसे साहस के साथ हाथ में ले

लेना तो दूर रहा, उसने बोनापार्त को इसके लिये भी विवश नहीं किया कि वह १ नवम्बर को बर्खास्त किये गये मंत्रिमण्डल को फिर से बहाल करे। उसने अपने क्षमादान द्वारा उसे नीचा दिखाकर तथा दे'ओपूल मंत्रिमण्डल के साथ **बारोश** को नत्थी कर संतोष कर लिया। ये बारोश महाशय सरकारी वकील की हैसियत से बूर्ग स्थित हाईकोर्ट के सामने पहली बार १५ मई के क्रान्तिकारियों के विरुद्ध और दूसरी बार १३ जून के जनवादियों के विरुद्ध ख़ूब गरजे-तड़पे थे, और दोनों बार इसलिये कि राष्ट्रीय सभा पर प्राणघातक प्रहार करने का प्रयत्न किया गया था। किन्तु बाद में उसी राष्ट्रीय सभा का मान भंग करने में जितना बड़ा योगदान इस महाशय ने किया, उतना बोनापार्त के अन्य किसी मंत्री ने नहीं किया। और २ दिसम्बर १८५१ के बाद तो हम उसे सीनेट के उपाध्यक्ष के उच्चवेतनयुक्त पद पर आराम के साथ कुर्सीनशीन पाते हैं। उसने क्रान्तिकारियों की थाली में इसलिए थूका था कि बोनापार्त उसे चट कर सके।

जहां तक सामाजिक-जनवादी पार्टी का सवाल था, वह मानो स्वयं अपनी विजय को फिर से संदिग्ध बनाने और उसकी धार को कुन्द करने के बहाने ढूंढ रही थी। पेरिस का एक नव-निर्वाचित प्रतिनिधि, वीदाल साथ ही स्ट्रासबर्ग से भी चुना गया था। पार्टी की हिदायत पर उससे पेरिस की सीट छुड़वा दी गयी और स्ट्रासबर्ग की सीट रखवायी गयी। इस प्रकार जनवादी पार्टी ने, अपनी निर्वाचन विजय की पूर्णाहुति देकर और ऐसा करके अमन की पार्टी को तत्क्षण संसद के भीतर अपने साथ भिड़ने के लिये बाध्य करने के बदले, शत्रु को ऐसे क्षण युद्ध करने के लिये विवश करने के बदले जब जनता में उत्साह था और सेना की मन:स्थिति अनुकूल थी, मार्च और अप्रैल के महीने में नया चुनाव आंदोलन कराके पेरिस को उबा दिया; दूसरी बार के इस आरज़ी चुनाव के खेल में जनता के जागृत आवेगों को थककर ठंडा हो जाने दिया, क्रांतिकारी स्फूर्ति को वैधानिक सफलताओं द्वारा अपनी तुष्टि करने दी, उसे ओछी बंदिशों, खोखली उद्घोषणाओं और नक़ली आंदोलनों में अपने को क्षय होने दिया, पूंजीपतियों को एकजुट होने और अपनी तैयारियां कर लेने का अवसर दिया, और अंतिम बात यह कि मार्च के निर्वाचनों के महत्त्व को अप्रैल के उपनिर्वाचन में भावुकतापूर्ण भाष्यों द्वारा – अपने चुनाव में एजेन सू के भाष्यों द्वारा – विनष्ट होने दिया। तात्पर्य यह कि १० मार्च को उसने "एप्रिल फ़ूल" में परिवर्तित कर दिया।

संसदीय बहुमत अपने विरोधियों की कमजोरी को समझता था। अमन की पार्टी के सत्रह बुर्गग्राफ़ों ने – बोनापार्त ने उसी के हाथ में आक्रमण के निर्देशन

का भार और उत्तरदायित्व सौंप रखा था – एक नये चुनाव क़ानून का मसविदा तैयार किया जिसे पेश करने का दायित्व फ़ोशे को दिया गया जिसने स्वयं मांग की थी कि उसी को यह इज़्ज़त बख़्शी जाये। ८ मई को उसने सर्व-मताधिकार समाप्त कर देने, निर्वाचकों पर निर्वाचन क्षेत्र में तीन वर्ष के आवास की शर्त लगाने और मज़दूरों के सम्बन्ध में उनके इस आवास का प्रमाण मालिक के प्रमाण-पत्र पर आश्रित कर देने का विधेयक पेश किया।

जनवादियों ने जिस तरह वैधानिक निर्वाचन संघर्ष के समय क्रांतिकारी ढंग से मस्तिष्क को आंदोलित किया और गरजे-बरसे थे, उसी तरह हाथ में हथियार लेकर उस विजय के गम्भीर स्वरूप को सिद्ध कर दिखाने की आवश्यकता के समय उन्होंने विधानवादी ढंग से अमन का, भव्य शांति (calme majestueux) का, क़ानूनी कार्रवाई का उपदेश देना आरम्भ किया, जिसका अर्थ यह था कि प्रतिक्रान्ति की इच्छा की, जो क़ानून बनकर सिर पर चढ़ बैठी थी, आंख मूंदकर अधीनता स्वीकार कर ली जाये। बहस के समय पर्वत दल ने अमन की पार्टी के क्रान्तिकारी आवेग के जवाब में अपने को क़ानून के दायरे में महदूद रखनेवाले कूपमण्डूकों का आवेगशून्य रुख़ अपना करके और उस पार्टी को क्रांतिकारी रवैया अख़्तियार करने की भयानक फटकार से धराशायी कर उसे शर्मिंदा कर दिया। नव-निर्वाचित सदस्यगण भी अपने शालीन और संयत आचरण द्वारा यह सिद्ध करने को व्यग्र थे कि अराजकतावादी कहकर उनकी आलोचना करना और चुनाव में उनकी सफलता को क्रांति की जीत समझना भ्रांत धारणा है। ३१ मई को नया चुनाव क़ानून पास हो गया। पर्वत दल ने राष्ट्रपति की जेब में चुपके से एक विरोध पत्र डालकर संतोष कर लिया। चुनाव क़ानून के बाद एक नया अख़बार क़ानून बनाया गया जिसके द्वारा क्रांतिकारी समाचारपत्रों का पूरी तौर से गला घोंट दिया गया।[106] वे इसके पात्र भी थे। इस जल-प्रलय के बाद केवल दो पूंजीवादी पत्र, *«National»* और *«Presse»*[107] क्रांति की सबसे आगे की चौकियों के रूप में बचे रहे।

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार मार्च और अप्रैल में जनवादी नेताओं ने पेरिस की जनता को नक़ली लड़ाई में फंसा देने की पूरी कोशिश की थी और किस प्रकार उन्होंने ८ मई के बाद असली लड़ाई में उतरने से उसे रोकने की पूरी कोशिश की। इसके अतिरिक्त, हमें यह हरगिज़ न भूलना चाहिए कि सन् १८५० उद्योग और वाणिज्य की समृद्धि के सबसे शानदार वर्षों में से था, जिसके फलस्वरूप पेरिस के सर्वहारा पूर्ण रोजगार पर लगा था। पर ३१ मई १८५०

के चुनाव क़ानून ने राजनीतिक सत्ता में किसी प्रकार से भी हिस्सा लेने से सर्वहारा को वंचित कर दिया। उसने उसे संघर्ष के अखाड़े से ही दूर हटा दिया। उसने मज़दूरों को फिर अछूतों की सी उस स्थिति में डाल दिया जिसमें वे फ़रवरी क्रांति से पहले थे। उन्होंने ऐसी घटना से मुक़ाबला पड़ने के समय जनवादियों को अपना नेतृत्व करने देकर और क्षणिक चैन और आराम की ख़ातिर अपने वर्ग के क्रांतिकारी हितों को भुलाकर विजयिनी शक्ति होने का सम्मान त्याग दिया, भाग्य के सामने घुटने टेक दिये, यह सिद्ध किया कि जून १८४८ की हार ने उन्हें वर्षों के लिये लड़ाई के मैदान से हटा दिया था तथा ऐतिहासिक प्रक्रिया को इस समय फिर उन्हें पूछे बिना ही अग्रसर होना होगा। जहां तक निम्नपूंजीवादी जनवाद का सम्बन्ध है जिसने १३ जून को ललकारकर कहा था कि "लेकिन अगर सर्व-मताधिकार पर हमला किया गया तो हम दिखा देंगे!", उसने अब यह दलील देकर अपनी तसल्ली कर ली कि जो प्रतिक्रांतिकारी प्रहार उसके ऊपर हुआ था वह प्रहार न था और ३१ मई का क़ानून क़ानून न था। मई १८५२ के दूसरे रविवार को हर फ़्रांसीसी मतदान केन्द्र पर एक हाथ में मतदान पत्र और दूसरे में तलवार लेकर पहुंचेगा। यह भविष्यवाणी करके उसने संतोष कर लिया। अंतिम बात यह कि सेना को उसके उच्च अफ़सरों ने मार्च और अप्रैल १८५० के निर्वाचन के लिये ठीक उसी प्रकार दण्डित किया जिस प्रकार वह २८ मई १८४९ के निर्वाचन के लिये दण्डित की गयी थी। पर इस बार उसने निश्चयात्मक रूप से कहा, "क्रांति के बहकावे में हम तीसरी बार नहीं आयेंगे!"

३१ मई १८५० का क़ानून पूंजीपति वर्ग द्वारा coup d'état था। अभी तक उसने क्रांति पर जो जीतें हासिल की थीं, वे सब अस्थायी प्रकार की थीं। विद्यमान् राष्ट्रीय सभा के मंच से हटते ही वे ख़तरे में पड़ जाती थीं। वे नये आम चुनाव के अनिश्चित परिणाम पर आश्रित थीं, और १८४८ से चुनाव के इतिहास ने यह अकाट्य रूप में सिद्ध किया था कि आम जनता पर पूंजीपति वर्ग का नैतिक प्रभाव उस मात्रा में घटता जाता था जिस मात्रा में उसका वास्तविक प्रभुत्व बढ़ता जाता था। १० मार्च को सर्व-मताधिकार ने प्रत्यक्ष रूप से अपने को पूंजीपतियों के प्रभुत्व के विरुद्ध घोषित किया था। पूंजीपतियों ने इसका जवाब सर्व-मताधिकार को क़ानून बाहर करके दिया। अतः उनमें ३१ मई का क़ानून वर्ग-संघर्ष की एक अनिवार्य अभिव्यक्ति भी था। दूसरी ओर, संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव तभी वैध हो सकता था जब कम से कम

२० लाख वोट मिलें। यदि राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों में से किसी को कम से कम इतने वोट न मिलें तो राष्ट्रीय सभा उन पांच उम्मीदवारों में से एक को राष्ट्रपति चुनेगी जिनको सबसे अधिक वोट मिले हों। जिस समय संविधान सभा ने यह क़ानून पास किया था, उस समय एक करोड़ निर्वाचक वोटर सूची में नामांकित थे। अतः, उसकी राय में वोट देने के अधिकारी लोगों का पांचवां भाग राष्ट्रपति पद के निर्वाचन को वैध बनाने के लिये पर्याप्त था। ३१ मई के क़ानून ने कम से कम तीस लाख नामों को वोटर सूची से ख़ारिज कर दिया, वोट देने के अधिकारी लोगों की संख्या घटाकर ७० लाख कर दी, किन्तु इसके बावजूद राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये कम से कम वोटों की क़ानूनी शर्त २० लाख ही रहने दी। ऐसा करके उसने कम से कम वोटों की क़ानूनी शर्त कुल कारगर वोटों के पांचवें भाग से बढ़ाकर तीसरा भाग कर दिया, अर्थात् उसने राष्ट्रपति के निर्वाचन को जनता के हाथों से चुपके-चुपके निकालकर राष्ट्रीय सभा के हाथों में कर देने का पूरा बन्दोबस्त किया। इस प्रकार ऐसा लगा कि ३१ मई के चुनाव क़ानून द्वारा अमन की पार्टी ने राष्ट्रीय सभा के और राष्ट्रपति के निर्वाचनों को समाज के अनुदार भाग के हवाले करके अपने शासन को दोहरे तौर पर सुरक्षित कर लिया है।

५

ज्यों ही क्रांतिकारी संकट झेल लिया गया और सर्व-मताधिकार का ख़ातमा कर दिया गया, राष्ट्रीय सभा और बोनापार्त के बीच संघर्ष फिर आरम्भ हो गया।

संविधान में बोनापार्त का वेतन ६ लाख फ़्रैंक तय किया गया था। पदासीन होने के ६ महीने बीतते न बीतते उसने यह रक़म दुगुनी करा ली, क्योंकि ओदिलां बारो ने तथाकथित प्रतिनिधान धन के नाम पर राष्ट्रीय संविधान सभा से ६ लाख फ़्रैंक प्रति वर्ष का एक अतिरिक्त भत्ता मंजूर करवा लिया। १३ जून के बाद बोनापार्त ने वैसे ही अनुरोध फिर करवाये, पर इस बार बारो की ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। अब, ३१ मई के बाद, उसने फ़ौरन स्थिति की अनुकूलता से लाभ उठाया और अपने मंत्रियों से राष्ट्रीय सभा में राजकुल व्यय के लिये तीस लाख का भत्ता प्रस्तावित करवाया। लम्बे अर्से तक शोहदों की जोखोंबाज़ ज़िंदगी बिता चुकने के कारण उसमें एक ज़बरदस्त स्पर्शक शक्ति विकसित हो गयी थी जिससे वह उन दुर्बल क्षणों को झट ताड़ लेता था

जिनमें अपने पूंजीपतियों से वह धन हथिया सकता था। वह ब्लैकमेल का नियमित धंधा करता था। राष्ट्रीय सभा ने उसकी सहायता एवं उसकी अवेक्षा से जनता की सार्वभौमता का अतिक्रमण किया था। उसने धमकी दी कि अपनी थैलियों का मुंह खोल दो और तीस लाख सालाना देकर मेरा मुंह बंद करो, वरना मैं जनता के सामने तुम्हारे अपराध का भण्डाफोड़ कर दूंगा। राष्ट्रीय सभा ने तीस लाख फ़ांसीसियों का मताधिकार छीना था। बोनापार्त की मांग थी कि हर फ़ांसवासी पर, जो चालू सिक्का नहीं रह गया था, एक चालू सिक्का यानी ठीक तीस लाख मेरे हवाले करो। उसकी दलील थी कि ६० लाख आदमियों ने मुझे चुना है, अब मुझे जितने वोटों से अतीतप्रभावी रूप में वंचित किया गया है, उतने का मुझे हरजाना मिलना चाहिए। राष्ट्रीय सभा के आयोग ने इस अड़ियल आवेदक का दावा ख़ारिज कर दिया। बोनापार्ती अख़बारों ने धमकियां दीं। राष्ट्रीय सभा क्या ऐसे समय राष्ट्रपति से अपना नाता तोड़ सकती है जबकि वह राष्ट्र के विशाल जनसमुदाय से सिद्धान्ततः निश्चित रूप में अपना नाता तोड़ चुकी है? यह सच है कि उसने राजकुल व्यय के लिये सालाना भत्ता नामंजूर कर दिया, पर उसने, केवल इस बार के लिये, इक्कीस लाख साठ हज़ार फ़्रैंक का अतिरिक्त भत्ता स्वीकृत किया। ऐसा करके उसने दोहरी कमज़ोरी दिखायी—एक तो रक़म मंजूर की, और दूसरे अपनी झुंझलाहट ज़ाहिर करके यह प्रगट किया कि यह रक़म अनिच्छा से मंजूर की जा रही है। आगे चलकर हम देखेंगे कि बोनापार्त को किस काम के लिये इस रक़म की जरूरत थी। सर्व-मताधिकार की समाप्ति के तत्काल बाद की इस परेशानी की अवधि में, उस अवधि में जिसमें बोनापार्त ने मार्च और अप्रैल के संकट के समय का अपना विनम्रतापूर्ण रुख़ त्याग कर बलापहारी संसद के प्रति चुनौती का उद्धत भाव अपनाया था, राष्ट्रीय सभा तीन महीने—११ अगस्त से ११ नवम्बर तक के लिये स्थगित हो गयी। अपनी जगह पर वह अठाईस सदस्यों का एक स्थायी आयोग बैठा गयी जिसमें कोई बोनापार्तवादी न था, पर कुछ नरम जनतंत्रवादी अवश्य थे। १८४६ के स्थायी आयोग में केवल अमन की पार्टी के लोग और बोनापार्तवादी थे। किंतु उस समय अमन की पार्टी ने अपने को स्थायी रूप से क्रांति का विरोधी घोषित कर रखा था। इस बार संसदीय जनतंत्र ने अपने को स्थायी रूप से राष्ट्रपति के विरुद्ध घोषित किया था। ३१ मई के क़ानून के बाद यही एकमात्र प्रतिद्वंद्वी था जो अब भी अमन की पार्टी के मुक़ाबले में खड़ा था।

नवम्बर १८५० में जब राष्ट्रीय सभा फिर बैठी तो ऐसा प्रतीत होने लगा

कि राष्ट्रपति के साथ हुई अब तक की मामूली झड़पों की जगह दोनों शक्तियों के बीच एक जबरदस्त और निर्मम संघर्ष, जीवन और मृत्यु का संघर्ष अनिवार्य हो गया है।

जैसा १८४९ में हुआ था, उसी प्रकार इस बार के संसदीय मध्यावकाश में भी अमन की पार्टी के गुट अलग-अलग हो गये और प्रत्येक पुनःस्थापन सम्बन्धी अपनी-अपनी साजिशों में, जिन्हें लूई फ़िलिप की मृत्यु से नया बल प्राप्त हुआ था, लग गया। लेजिटिमिस्टों के राजा आंरी पंचम ने तो बाक़ायदा अपनी एक मंत्रि-परिषद् भी मनोनीत कर दी जो पेरिस में रहती थी और जिसमें स्थायी आयोग के सदस्य भी शामिल थे। अतएव बोनापार्त को भी यह अधिकार मिल गया कि फ़्रांस के ज़िलों का दौरा करे और जिस नगर की श्री-वृद्धि करे उसके झुकाव के अनुसार कहीं कमोबेश छिपे और कहीं कमोबेश खुले रूप में पुनःस्थापन सम्बन्धी अपनी योजनाओं को प्रकाश में लाये और अपने लिये वोट मांगे। उसके इन दौरों में, जिन्हें महान् सरकारी पत्र *«Moniteur»* तथा बोनापार्त के छोटे-छोटे ग़ैरसरकारी पत्रों को, स्वभावतः, विजय दौरों के रूप में मनाना पड़ता था, १० **दिसम्बर समाज** से सम्बद्ध लोगों का एक दल सदा उसके साथ रहता था। यह समाज १८४९ में बना था। एक परोपकारी समाज की स्थापना के बहाने पेरिस के लंपट-सर्वहारा का गुप्त संगठन बनाया गया, जिसके प्रत्येक विभाग का नेता एक बोनापार्तपंथी गुर्गा था और पूरे समाज का सरदार एक बोनापार्तपंथी जनरल था। पतित roués*, जिनकी रोज़ी का ज़रिया और वंश मूल संदिग्ध थे, पूंजीपतियों के दिवालिया और सट्टेबाज़ अंकुर तथा इनके साथ-साथ आवारे, फ़ौज से निकले सिपाही, जेल से छूटे फ़ौजदारी मुजरिम, जहाज़ से भागे बंधुवे मल्लाह, ठग, सफ़री दवाफ़रोश, lazzaroni[108], पाकेटमार, पक्के चार सौ बीस, जुआड़ी, maquereaus**, चकलों के मालिक, ख़लासी, literati***, बाजेवाले, चिथड़े चुननेवाले, सान धरनेवाले, कसेरे, भिखमंगे— यानी वह पूरा, इधर-उधर बिखरा हुआ, अनिश्चित शक्ल का विघटित जन-समुदाय जिसे फ़्रांसीसी लोग la bohème**** कहकर पुकारते हैं—इसी सजातीय

---

*लंपट, ऐयाश, लफ़ंगे। —सं०

**रण्डियों के दलाल। —सं०

***क़लमघसीटू। —सं०

****स्वच्छंद सामाजिक आचार-विचार और नैतिकता के व्यक्ति। —सं०

समूह को लेकर बोनापार्त ने अपने १० दिसम्बर समाज का केन्द्र गठित किया था। बेशक यह एक "परोपकारी समाज" था – इस मानी में कि बोनापार्त की ही तरह इसके सभी सदस्य श्रमशील राष्ट्र के मत्थे अपना उपकार करने की इच्छा रखते थे। जो बोनापार्त **लंपट-सर्वहारा का सरताज** है, जो इसी जगह उस हित को व्यापक रूप में पाता है जिसका वह स्वयं अनुसरण करता है, जो इस तलछट में, इस कूड़े-कचरे में, सभी वर्गों के इस मल में उस वर्ग को चीन्हता है जिसे वह बेशर्त अपना आधार बना सकता है, वही बोनापार्त असली बोनापार्त, sans phrase* बोनापार्त है। चूंकि वह स्वयं एक पुराना roué है, इसलिये उसकी कल्पना में राष्ट्रों का ऐतिहासिक जीवन और उनके राज्यीय कार्यकलाप भोंडे से भोंडे अर्थ में प्रहसन हैं, एक व्यंग्य-रूपक मात्र हैं जिनमें अभिनेताओं के भव्य परिधान, शब्द और मुद्राएं ओछी चालबाजी के लिये टट्टी की ओट मात्र हैं। स्ट्रासबर्ग के उसके अभियान में ऐसा ही हुआ था, जहां एक सिखाये स्विस गिद्ध ने नेपोलियानी उक़ाब का पार्ट किया था। इसी प्रकार बूलोन की अपनी चढ़ाई के लिये उसने लन्दन के कुछ भाड़े के टट्टुओं को फ़ांसीसी फ़ौजी वर्दियों में उतारा था। वे सेना के प्रतिनिधि थे।[109] अपने १० दिसम्बर समाज में वह दस हज़ार लुच्चे-लफ़ंगों को इकट्ठा करता है जो उसी प्रकार जनता की भूमिका में उतरेंगे जिस प्रकार निक बाटम शेर की भूमिका में उतरा था। जब पूंजीपति स्वयं एक पूरा-पूरा स्वांग प्रस्तुत कर रहे थे, और उसे बड़ी ही संजीदगी के साथ, फ़ांसीसी नाट्य पद्धति के एक भी पण्डिताऊ नियम की अवहेलना किये बिना प्रस्तुत कर रहे थे, और कुछ तो ठगे गये थे तथा कुछ अपने राजकीय कार्य के अभिनय के संजीदा होने का सचमुच विश्वास कर रहे थे, ऐसे समय बोनापार्त जैसे जोखोंबाज़ की, जो प्रहसन को विशुद्धतः प्रहसन ही मानता था, बाजी बीस पड़ना लाज़िमी था। हां, अपने संजीदा दुश्मन को ख़त्म कर चुकने के बाद, जब वह स्वयं अपनी शाही भूमिका को संजीदा नज़र से देखने लगा है और नेपोलियन का नक़ाब पहनकर अपने को असली नेपोलियन समझने लगा है – तभी वह विश्व की अपनी धारणा का स्वयं शिकार हो जाता है और एक संजीदा विदूषक बन जाता है जो विश्व इतिहास को प्रहसन न समझकर अपने प्रहसन को ही विश्व इतिहास समझने लगा है। जो चीज़ समाजवादी मज़दूरों के लिये राष्ट्रीय वर्कशॉप

* शब्दावरण रहित। – सं०

थी, जो चीज़ पूंजीवादी जनतंत्रवादियों के लिये गश्ती गार्ड थी, वही बोनापार्त के लिये १० दिसम्बर समाज – उसके लिये विशिष्ट, पार्टी का लड़ाकू दस्ता – थी। जब वह यात्रा पर निकलता था तो इस समाज के दस्ते रेलों में भरकर उसके लिये जनता का काम करने के लिये भेजे जाते थे, वे जन-उत्साह का दिखावा प्रस्तुत करते थे, ज़ोर-शोर से «Vive l'Empereur!»* के नारे लगाते थे, जनतंत्रवादियों को अपमानित करते और पीटते थे; बेशक वे ऐसा पुलिस की संरक्षकता में करते थे। पेरिस वापसी के समय वे अगले दस्ते का काम करते थे, इसके पहले कि विरोधी प्रदर्शन हो सकें ख़ुद प्रदर्शन करते थे, या विरोधी प्रदर्शन को तितर-बितर करते थे। १० दिसम्बर समाज बोनापार्त की बिल्कुल अपनी चीज थी, **उसकी अपनी** कृति, अपनी सूझ थी। इसके अतिरिक्त जो कुछ वह हस्तगत करता है, वह परिस्थितियां उसके हाथों में रख देती हैं; और जो कुछ वह करता है, वह परिस्थितियां उसके लिये कर देती हैं, या दूसरों के किये की नक़ल करके वह संतोष करता है। पर वह बोनापार्त जो बाहर, नागरिकों के सामने, व्यवस्था, धर्म, परिवार और सम्पत्ति आदि के सम्बन्ध में औपचारिक शब्दावली दुहराता है, और जिसके पीछे शुफ़्टर्लेयों और श्पीगलबर्गों की गुप्त समिति है, जिसके पीछे अव्यवस्था, वेश्यावृत्ति और चोरी-बटमारी का समाज है, वह, मौलिक रचयिता की अपनी हैसियत में स्वयं बोनापार्त है; १० दिसम्बर समाज का इतिहास उसका अपना इतिहास है। यह एक अपवादस्वरूप घटना थी कि अमन की पार्टी के जन-प्रतिनिधियों पर दिसम्बरपंथियों ने अपनी लाठियों का अभ्यास कर डाला। इतना ही नहीं। पुलिस कमिश्नर योन ने जिसकी सेवायें राष्ट्रीय सभा को सौंपी गईं और जो उसकी सुरक्षा के लिये ज़िम्मेदार था, आले नामक एक व्यक्ति के बयान के आधार पर स्थायी आयोग को सूचना दी कि दिसम्बरपंथियों के एक भाग ने जनरल शांगार्नियें और राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष दुपिन को मार डालने का फ़ैसला किया है और यह कार्य सम्पन्न करने के लिये अपने आदमी अभी से चुन लिये हैं। इस सूचना को पाकर दुपिन को जो दहशत हुई, उसे हम आसानी से समझ सकते हैं। १० दिसम्बर समाज की संसदीय जांच, अर्थात् बोनापार्ती गुप्त जगत् का अतिक्रमण अब अवश्यम्भावी ज्ञात होने लगा। राष्ट्रीय सभा की बैठक आरंभ होने के ठीक पहले बोनापार्त ने दूरदर्शिता प्रदर्शित करते हुए अपने समाज को तोड़ दिया। स्वभावतः, यह कार्य केवल

* "सम्राट की जय!" – सं०

कागज़ी तौर पर किया गया था, क्योंकि १८५१ के अंत में, एक विशद स्मृति-पत्र तैयार करके, पुलिस-प्रीफ़ेक्ट कार्लिये दिसम्बरपंथियों को सचमुच विघटित कर देने के लिये उसे प्रेरित करने की अब भी व्यर्थ कोशिश कर रहा था।

१० दिसम्बर समाज उस समय तक बोनापार्त की निजी फ़ौज बना रहा जब तक वह राज्य सेना को ही १० दिसम्बर समाज में परिवर्तित करने में सफल नहीं हो गया। इसकी पहली कोशिश बोनापार्त ने राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन स्थगित होने के कुछ ही समय बाद की; और तुर्रा यह कि यह काम उसने उस धन की सहायता से किया जो वह अभी-अभी राष्ट्रीय सभा से ऐंठने में सफल हुआ था। एक नियतिवादी की हैसियत से वह यह विश्वास लिये जीता है कि कुछ ऐसी उच्चतर शक्तियां हैं जिनके आगे आदमी, और विशेषकर फ़ौजी सिपाही, लाचार है। इन शक्तियों में सर्वप्रथम स्थान वह सिगार और शैम्पेन, जंगली मुर्ग़ी के ठण्डे मांस और लहसुन के सॉसेज को देता है। अतः उसने श्रीगणेश इस रूप में किया कि उसने एलिज़े प्रासाद में सेना के ऊंचे तथा ग़ैर-कमीशनयाफ़्ता अफ़सरों को सिगार और शैम्पेन, मुर्ग़ी के ठण्डे मांस और लहसुन के सॉसेजों की दावतें दीं। ३ अक्तूबर को यही हथकण्डा उसने सेंट-मावर के रिव्यू में आम सैनिकों के सम्बन्ध में अपनाया; और १० अक्तूबर को सातोरी की फ़ौजी परेड के मौक़े पर इसे और भी बड़े पैमाने पर दुहराया। चचा को एशिया में सिकंदर के अभियान की कहानी याद थी, तो भतीजे ने उसी प्रदेश में बाक्कुस के विजयपूर्ण भ्रमणों का वृत्तांत सुन रखा था। और जबकि सिकंदर आधा ही देवता था, तो बाक्कुस पूरा देवता था, इतना ही नहीं, वह १० दिसम्बर समाज का संरक्षक देवता था।

३ अक्तूबर के रिव्यू के बाद स्थायी आयोग ने युद्ध-मंत्री द'ओपूल को तलब किया। उसने वादा किया कि अनुशासन भंग के ये कार्य आगे फिर न होंगे। हम जानते हैं कि १० अक्तूबर को बोनापार्त ने किस प्रकार द'ओपूल के वचन की रक्षा की। पेरिस की सेना का सेनाध्यक्ष होने के नाते, शांगार्नियें ने दोनों रिव्युओं की कमान सम्भाली थी। स्थायी आयोग का सदस्य, राष्ट्रीय गार्ड का प्रधान, २९ जनवरी और १३ जून का "उद्धारक", समाज का "रक्षा दुर्ग", राष्ट्रपति पद के लिये अमन की पार्टी का उम्मीदवार, वह आदमी जिसे दो-दो शाही हुकूमतों का मांक अनुमानित किया जाता था—इतने सारे गुणों से एकसाथ विभूषित शांगार्नियें ने अपने को कभी युद्ध-मंत्री के मातहत नहीं माना था, वह जनतंत्रीय संविधान का सदा खुलेआम मज़ाक़ उड़ाया करता था और बोनापार्त के साथ निरंतर एक

प्रकार के दोमानिये शाहाना संरक्षण के भाव से पेश आता था। अब उसे युद्ध-मंत्री के विरुद्ध अनुशासन का और बोनापार्त के विरुद्ध संविधान का झण्डा बुलन्द करने की धुन सवार हुई थी। १० अक्तूबर को जब घुड़सवार सेना के एक दल ने «Vive Napoléon! Vivent les saucissons!»* के नारे लगाये थे तो शांगार्निये ने ऐसा बंदोबस्त किया था कि कम से कम पैदल सेना, जो उसके मित्र नेमेयर की कमान में मार्च कर रही थी, उदासीन भाव से मौन धारण किये रह जाये। इसके दण्डस्वरूप, बोनापार्त के उकसावे से, युद्ध-मंत्री ने जनरल नेमेयर को उसे १४वे और १५वें फ़ौजी डिवीजनों का सेनाध्यक्ष नियुक्त करने के बहाने पेरिस के अपने पद से हटा दिया। नेमेयर ने पदों की यह अदला-बदली अस्वीकार कर दी, अतः उसे इस्तीफ़ा देना पड़ा। बदले में, शांगार्निये ने २ नवम्बर को एक सैनिक आदेश जारी किया जिसमें सैनिकों को, जब वे पांतों में हों, किसी प्रकार का राजनीतिक नारा लगाने या प्रदर्शन करने की मनाही की गयी थी। एलिज़े के पत्रों[110] ने शांगार्निये को फटकारा; अमन की पार्टी के पत्रों ने बोनापार्त को फटकारा; स्थायी आयोग ने बारम्बार अपनी गुप्त बैठकें कीं जिनमें यह बार-बार प्रस्तावित किया गया कि देश को संकटापन्न घोषित किया जाये; सेना दो विरोधी शिविरों में विभक्त ज्ञात हो रही थी जिनकी दो विरोधी कमानें थीं, एक एलिज़े प्रासाद में जहां बोनापार्त रहता था और दूसरी तुलरी में जहां शांगार्निये का निवास था। ऐसा ज्ञात होता था कि लड़ाई का सिगनल देने के लिये राष्ट्रीय सभा के बैठने की ही कसर है। फ़्रांस के सर्वसाधारण बोनापार्त और शांगार्निये की इस रगड़ को उस अंग्रेज पत्रकार की दृष्टि से देख रहे थे जिसने निम्न शब्दों में इसका चरित्र-निरूपण किया था:

> "फ़्रांस की राजनीतिक महरियां क्रांति की ज्वालामुखी के तप्त लावा को पुराने झाड़ुओं से बुहार रही हैं, और यह करते समय तू-तू मैं-मैं कर रही हैं।"

इस बीच बोनापार्त ने अपने युद्ध-मंत्री द'ओपूल को जल्दी-जल्दी हटाया उसका बोरा-बिस्तर बंधवाकर उसे हड़बड़ी में अल्जीरिया रवाना किया और उसकी जगह जनरल श्राम्म को युद्ध-मंत्री बनाया। १२ नवम्बर को उसने राष्ट्रीय सभा को अमरीकी तर्ज़ पर एक लम्बा-चौड़ा संदेश भेजा, जो ब्योरों से भरपूर, व्यवस्था

* "नेपोलियन ज़िंदाबाद! सासेज ज़िन्दाबाद!"—सं०

की सुगंध से भीना हुआ, मेल की भावना से और संविधान को शिरोधार्य करने की इच्छा से परिपूर्ण था। इस सन्देश में उस समय के questions brûlantes* छोड़कर सभी विषयों की चर्चा थी। इसमें, मानो चलते हुए, उसने यह उल्लेख किया था कि संविधान के स्पष्ट अनुबंधों के अनुसार केवल राष्ट्रपति ही सेना के बारे में फ़ैसला कर सकता है। संदेश का अंत बड़े ही संजीदा निम्न शब्दों के साथ होता था :

> "**सबसे अधिक, फ़्रांस शान्ति चाहता है ... किंतु जिस शपथ को मैंने ग्रहण किया है, उसके अनुसार मैं उस संकीर्ण सीमा के अंदर ही कार्य करूंगा जो उसने मेरे लिये बांध दी है** ... जहां तक मेरा ताल्लुक़ है, मैं, जिसे जनता ने चुना है और जिसकी सत्ता का स्रोत केवल जनता है, सदैव क़ानून के अनुसार व्यक्त उसकी इच्छाओं के आगे नतमस्तक रहूंगा। यदि इस अधिवेशन में आपने संविधान में संशोधन करने का निर्णय किया, तो एक संविधान सभा कार्यकारी सत्ता की स्थिति का नियमन करेगी। यदि नहीं, तो जनता १८५२ में अपने गंभीर निर्णय की घोषणा करेगी। किंतु भविष्य के लिये चाहे जो समाधान निकले, आइये, हम एक निश्चित समझ क़ायम करें ताकि एक महान् राष्ट्र के भाग्य का निर्णय आवेग, अप्रत्याशितता और बल प्रयोग द्वारा कभी न हो ... अभी जो वस्तु सर्वाधिक मेरी चिन्ता का विषय है, वह यह नहीं है कि १८५२ में फ़्रांस का शासन कौन करेगा, वरन् यह है कि मेरे पास जो समय बच रहा है उसका किस प्रकार उपयोग किया जाये, कि बीच की यह अवधि आंदोलन अथवा उपद्रव के बिना बीत सके। मैंने मुक्त भाव से अपना हृदय आपके सामने खोलकर रख दिया है; मेरी कामना है कि मेरी इस साफ़गोई का उत्तर आप अपने एतबार द्वारा, मेरे सत्प्रयासों का उत्तर अपने सहयोग द्वारा देंगे; शेष कार्य ईश्वर पूरा करेगा।"

पूंजीपतियों की इस सम्भ्रांत, पाखंडपूर्ण रूप से नरम, भलमनसाहत वाली थोथी भाषा का गहनतम अर्थ १० दिसम्बर समाज के इस तानाशाह और सेंट-मावर तथा सातोरी के उपवन-भोजों के नायक की ज़बान से ही प्रगट होता है।

इस मुक्तहृदयता पर कितना एतबार करना चाहिए, इस सम्बन्ध में अमन की पार्टी के बुर्गग्राफ़ों को एक क्षण के लिये भी कोई मुग़ालता न था। जहां तक शपथों का प्रश्न था, इसका तो उनके यहां बहुत दिनों से अजीर्ण था; उनके

*ज्वलन्त प्रश्न। —सं०

बीच राजनीतिक शपथ-त्याग के एक से एक बड़े ग्रौर पुराने ग्रखाड़िये ग्रौर उस्ताद भरे पड़े थे। संदेश में सेना के सम्बन्ध में जो बात कही गयी थी, उसे भी उन्होंने सुना। उन्हें यह देखकर झुंझलाहट हुई कि संदेश में जहां हाल के बने क़ानूनों को एक बेसिलसिले ढंग से गिनाया गया था वहां सबसे महत्त्वपूर्ण क़ानून – चुनाव क़ानून – पर सोच-समझ कर चुप्पी साध ली गयी थी ग्रौर इतना ही नहीं, संविधान का संशोधन न होने की सूरत में, १८५२ में राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता के हाथों कराने की बात कही गई है। चुनाव क़ानून ग्रमन की पार्टी के पैर से बंधी लोहे की चक्की थी, जिससे वह हिल-डोल नहीं सकती थी, ग्रागे बढ़कर धावा करने की तो बात ही दूर रही! इसके ग्रतिरिक्त १० दिसम्बर समाज को सरकारी तौर पर विघटित करके ग्रौर युद्ध-मंत्री द'ग्रोपूल को बर्ख़ास्त करके बोनापार्त ग्रपने हाथों से देश की वेदी पर बलि के बकरे को चढ़ा चुका था। प्रत्याशित मुठभेड़ की तीव्रता उसने कम कर दी थी। ग्रंतिम बात यह कि ग्रमन की पार्टी कार्यकारी सत्ता के साथ किसी प्रकार की निर्णायक टक्कर से बचने, उसे धीमा करने ग्रौर उससे कतरा जाने के लिये स्वयं व्यग्र थी। क्रांति के पर प्राप्त की गयी ग्रपनी विजयों को गंवा देने के भय से इन विजयों के सारे फल उसने ग्रपने प्रतिद्वंद्वी को हड़प लेने दिये। "सबसे ग्रधिक फ़्रांस शांति चाहता है।" ये शब्द ग्रमन की पार्टी ने फ़रवरी* से ही क्रांति को सम्बोधित करके कहे थे; ग्रब बोनापार्त के संदेश में ये ही शब्द ग्रमन की पार्टी को सम्बोधित करके कहे गये: "सबसे ग्रधिक फ़्रांस शान्ति चाहता है।" बोनापार्त ऐसे काम कर रहा था जिनका लक्ष्य सत्ता का बलात् ग्रपहरण था, किंतु ग्रमन की पार्टी यदि इन कार्यों के विषय में हो-हल्ला मचाये ग्रौर उनका घोर विषादपूर्ण ग्रर्थ लगाये तो वह "ग्रशान्ति" उत्पन्न करनेवाली हो जाती है। ग्रगर सातोरी के सॉसेजों के सम्बन्ध में कोई कुछ बोले नहीं तो वे ऐसे ही निरीह थे जैसे चूहे। "सबसे ग्रधिक फ़्रांस शान्ति चाहता है।" ग्रर्थात् बोनापार्त की मांग थी कि उसे वह जो चाहे करने को चुपचाप छोड़ दिया जाये, ग्रौर संसदीय पार्टी दोहरे भय से जड़ विमूढ़ स्थिति में पड़ी हुई थी, एक तो यह भय कि कहीं फिर क्रान्तिकारी ग्रशान्ति न भड़क जाये ग्रौर दूसरा यह कि कहीं ग्रपने ही वर्ग की ग्रांखों में, पूंजीपति वर्ग की ग्रांखों में वह ख़ुद ऐसी ग्रशान्ति भड़कानेवाली न बन जाये। ग्रतः चूंकि फ़्रांस सबसे ग्रधिक शान्ति चाहता था, इसलिये बोनापार्त द्वारा ग्रपने संदेश में

*फ़रवरी, १८४८। – सं०

"शान्ति" की बातें करने के बाद अमन की पार्टी को यह हिम्मत न हुई कि जवाब में "युद्ध" की बात करती। सर्वसाधारण को, जो राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन आरंभ होने पर बड़े-बड़े गुल खिलने की उम्मीद लगाये बैठे थे, निराशा हाथ लगी। विरोध पक्ष के जिन सदस्यों ने अक्तूबर की घटनाओं के सम्बन्ध में स्थायी आयोग का कार्य विवरण पेश करने की मांग की, उनका प्रस्ताव बहुमत से गिर गया। सिद्धान्ततः, ऐसी सभी बहसों से जिनसे उत्तेजना फैलने की आशंका थी, बचा गया। नवम्बर और दिसम्बर १८५० के दौरान राष्ट्रीय सभा की कार्यवाहियां बदमज़ा रहीं।

अंततः, दिसम्बर के आख़िर में संसद के कुछ परमाधिकारों को लेकर छापेमार लड़ाई छिड़ी। किन्तु चूंकि सर्व-मताधिकार को नष्ट कर पूंजीपतियों ने वर्ग-संघर्ष फ़िलहाल ख़त्म कर दिया था, इसलिये आंदोलन दो सत्ताओं के परमाधिकारों के सम्बन्ध में कुछ मामूली झगड़ों के दलदल में फंसकर रह गया।

मोगेन नामक एक जन-प्रतिनिधि के विरुद्ध अदालत ने क़र्ज़ की एक डिगरी जारी की थी। न्यायाधीश के पूछने पर न्याय-मंत्री रूए ने घोषित किया कि क़र्ज़दार के ख़िलाफ़ गिरफ़्तारी का परवाना बेधड़क जारी किया जाना चाहिए। इस प्रकार मोगेन क़र्ज़दारों के जेल में डाल दिया गया। राष्ट्रीय सभा को जब इस प्रहार की सूचना मिली तो वह ग़ुस्से से आग-बबूला हो गयी। उसने न केवल तत्काल मोगेन की रिहाई का हुक्म जारी किया बल्कि उसी शाम को अपने क्लर्क को भेजकर उसे क्लीशी[111] से बलपूर्वक बाहर निकलवाया। किंतु व्यक्तिगत स्वामित्व की पावनता के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के लिये तथा दिमाग़ में यह ख़याल रखते हुए कि पर्वत दल वालों के लिये, जो अधिक क्लेशदायी हो गये थे, जरूरत पड़ने पर एक ऋणी गृह खोलना पड़ सकता है, उसने घोषणा की कि पहले से उसकी सहमति लेकर ऋणी जन-प्रतिनिधियों को जेल भेजा जा सकता है। यह आदेश देना वह भूल गयी कि क़र्ज़दारी के लिये राष्ट्रपति को भी जेल में डाला जा सकता है। स्वयं उसके सदस्य जिस अनतिक्रम्यता से वेष्टित थे, उसके अंतिम अवशेषों को भी उसने नष्ट कर दिया।

पाठकों को याद होगा कि आले नामक एक आदमी से सूचना पाकर पुलिस कमिश्नर योन ने दिसम्बरपंथियों के एक दल पर दुपिन और शांगार्निये की हत्या करने का कुचक्र रचने का आरोप लगाया था। इस प्रसंग में, पहली ही बैठक में राजस्वपालों ने यह प्रस्ताव किया कि संसद अपना एक अलग पुलिस दल क़ायम

करे जिसका ख़र्च राष्ट्रीय सभा के निजी बजट से पूरा किया जाये और जो पुलिस-प्रीफ़ेक्ट से बिल्कुल स्वतंत्र हो। गृह-मंत्री बारोश ने अपने अधिकार क्षेत्र के इस अतिक्रमण का विरोध किया। इस मामले में एक दयनीय समझौता हुआ; इस समझौते के अनुसार यह तय पाया गया कि राष्ट्रीय सभा के पुलिस कमिश्नर को वेतन सभा के निजी बजट से ही मिलेगा और सभा के राजस्वपाल ही उसकी नियुक्ति और बर्ख़ास्तगी करेंगे, पर ऐसा वे गृह-मंत्री की पूर्वसहमति के बाद ही करेंगे। इधर सरकार ने आले पर मुक़दमा चला दिया था, और इस मुक़दमे में यह ज़ाहिर करना था कि उसकी दी हुई सूचना झूठी है तथा सरकारी वकील के मुंह से दुपिन, शांगार्निये, योन और समूची राष्ट्रीय सभा का मज़ाक़ उड़वाना बायें हाथ का खेल था। इसके बाद, २९ दिसम्बर को मंत्री बारोश ने दुपिन को एक ख़त लिखा जिसमें उसने योन को बर्ख़ास्त करने की मांग की। राष्ट्रीय सभा के ब्यूरो ने योन को अपने पद पर बहाल रखने का फ़ैसला किया, पर राष्ट्रीय सभा ने, जो मोगेन के मामले में अपनी ज़बरदस्ती से घबरायी हुई थी और कार्यकारी सत्ता पर अपने एक प्रहार के बदले दो प्रहार प्राप्त करने की अभ्यस्त हो गयी थी, इस निर्णय को मंजूरी नहीं दी। योन ने सरकारी काम में जो उत्साह प्रदर्शित किया था, उसके पुरस्कार में सभा ने उसे बर्ख़ास्त कर दिया और इस प्रकार अपने को एक ऐसे संसदीय परमाधिकार से वंचित कर लिया जो उसके लिये एक ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अपरिहार्य रूप से आवश्यक था, जो रात में फ़ैसला करके दिन में उसे कार्यान्वित नहीं करता, वरन् दिन में फ़ैसला करके रात में उसे कार्यान्वित करता है।

हमने देखा कि किस प्रकार नवम्बर और दिसम्बर के महीनों में बड़े-बड़े तथा निर्णायक मौक़ों पर राष्ट्रीय सभा कार्यकारी सत्ता के साथ संघर्ष से कतरा गई या उस संघर्ष को तिलांजलि दे बैठी। अब हम देखते हैं कि वह मामूली से मामूली मौक़े पर संघर्ष करने को विवश होती है। मोगेन के मामले में उसने क़र्ज़दारी के लिये जन-प्रतिनिधियों को जेल में डालने के सिद्धान्त की परिपुष्टि की, पर यह अधिकार अपने हाथ में रखा कि केवल उन प्रतिनिधियों के विरुद्ध इसे लागू करे, जिन्हें वह नहीं चाहती थी; और इस शर्मनाक विशेषाधिकार के लिये न्याय-मंत्री के साथ उलझती रही। कथित हत्या-षड्यंत्र से लाभ उठाकर १० दिसम्बर समाज की जांच का हुक्म जारी करने और पेरिस के लंपट-सर्वहारा के सरदार के उसके असली रूप में बोनापार्त को फ़्रांस और यूरोप के सामने अंतिम रूप से बेनक़ाब करने के बदले उसने संघर्ष को इस निम्नस्तर तक

उतर जाने दिया जहां उसके और गृह-मंत्री के बीच विवाद का एकमात्र विषय यह रह गया कि किसी पुलिस कमिश्नर को नियुक्त और बर्खास्त करने का अधिकार उन दोनों में से किसका है। अतः इस पूरे काल में हम अमन की पार्टी को अपनी द्विधायुक्त स्थिति से विवश होकर कार्यकारी सत्ता के साथ अपने संघर्ष को अधिकारक्षेत्र सम्बन्धी तुच्छ झगड़ों, बिल्कुल मामूली-मामूली बातों पर बहसों, क़ानूनी ढंग से बाल की खाल निकालने, परिसीमन विषयक विवादों में बर्बाद और विघटित करते हुए तथा निरे रस्म से सम्बन्धित बिल्कुल हास्यास्पद सवालों पर अपनी सारी सरगर्मी सर्फ़ करते हुए पाते हैं। वह यह साहस नहीं दिखाती कि ऐसे क्षण में टक्कर ले जब उस टक्कर का सिद्धान्त की दृष्टि से महत्त्व हो, जब कार्यकारी सत्ता ने सचमुच अपने को बदनाम कर लिया हो और जब राष्ट्रीय सभा का ध्येय राष्ट्र का ध्येय बन जा सकता हो। ऐसा करके वह राष्ट्र को अग्रसर होने का आदेश देती, और इससे अधिक भय की बात उसके लिये अन्य नहीं हो सकती कि राष्ट्र गतिशील हो जाये। अतएव ऐसे अवसरों पर उसने पर्वत दल के प्रस्तावों को ठुकरा दिया और कार्यसूची की अगली मद को लिया। चूंकि इस प्रकार अमन की पार्टी विवादास्पद प्रश्न के ज्यादा अहम पहलुओं को छोड़ देती है, इसलिये कार्यकारी सत्ता चुपचाप उस अवसर की प्रतीक्षा करती है जब वह उसी प्रश्न को किसी तुच्छ और महत्त्वहीन अवसर पर, ऐसे अवसर पर जब उसका केवल स्थानिक संसदीय महत्त्व हो, उठा सके। ऐसा होने पर अमन की पार्टी का दबा हुआ क्रोध उभड़ पड़ता है, वह पार्श्वभूमि के पर्दों को फाड़ डालती है, राष्ट्रपति को बेनक़ाब करती है, जनतंत्र को संकटापन्न घोषित करती है, लेकिन उस समय उसका जोशोख़रोश बेतुका मालूम होता है और संघर्ष का अवसर एक कपटपूर्ण बहाना मात्र ज्ञात होता है या इस क़ाबिल नहीं लगता कि उसके लिये लड़ा जाये। संसद में उठा तूफ़ान चाय की प्याली का तूफ़ान बन जाता है, संघर्ष षड्यन्त्र में परिणत हो जाता है, झगड़ा एक बदनामी बन जाता है। क्रांतिकारी वर्ग राष्ट्रीय सभा की इस बेइज़्ज़ती पर द्वेषपूर्ण उल्लास से चटखारे लेते हैं, क्योंकि संसद के परमाधिकारों के लिये उन्हें उतनी ही परवाह है जितनी राष्ट्रीय सभा को सार्वजनिक स्वातन्त्र्य के लिये है; दूसरी ओर, संसद के बाहर के पूंजीपतियों को यह नहीं समझ में आता कि संसद के भीतर के पूंजीपति क्यों ऐसे ओछे झगड़ों में समय बर्बाद करते हैं और क्यों राष्ट्रपति के साथ ऐसी ओछी लागडांट में फंसकर शान्ति को ख़तरे में डालते हैं। ऐसी रणनीति उन्हें उलझन में डाल देती है जो ऐसे समय जब सारी दुनिया

सोचती है कि युद्ध होगा, सुलह कर लेती है, और ऐसे समय प्रहार करती है जब सारी दुनिया यह सोचती है कि सुलह हो गयी है।

२० दिसम्बर को पास्काल दुप्रा ने राष्ट्रीय सभा में गृह-मंत्री से सोने की ईंटों की लाटरी के सम्बन्ध में प्रश्न किया। यह लाटरी "एलीजियम की पुत्री"[112] थी। बोनापार्त और उसके वफ़ादार अनुयायी इस लाटरी के जन्मदाता थे, और पुलिस-प्रीफ़ेक्ट कार्लिये ने उसे शासकीय संरक्षण प्रदान किया था, यद्यपि फ़्रांस के क़ानून के अनुसार ख़ैराती लाटरी को छोड़कर किसी प्रकार की लाटरी निषिद्ध है। इस लाटरी में एक-एक फ़्रैंक के ७० लाख टिकट थे और इसकी आमदनी ज़ाहिरा पेरिस के लाख़ैरों को कैलिफ़ोर्निया भेजने के लिये इस्तेमाल की जानेवाली थी। इसके द्वारा एक ओर तो पेरिस के सर्वहाराओं को उनके समाजवाद के सपनों की जगह स्वर्ण प्राप्ति का सब्ज़बाग़ दिखाया गया था; काम पाने के सैद्धान्तिक अधिकार की जगह प्रथम पुरस्कार पाने का लुभावना आकर्षण उनके सामने पेश किया गया था। स्वभावतः, पेरिस के मज़दूरों ने कैलिफ़ोर्नियाई सोने की ईंटों की दमक में उन तुच्छ फ़्रैंकों को नहीं देखा जो फुसलाकर उनकी जेब से निकलवा लिये गये थे। दरअसल यह सारा मामला सरासर ठगी का हथकण्डा था। पेरिस छोड़ने की तकलीफ़ गवारा किये बिना ही कैलिफ़ोर्निया की खानें खोलना चाहनेवाले लाख़ैरे ख़ुद बोनापार्त और उसका ऋण-ग्रस्त दरबार थे। राष्ट्रीय सभा से मिले तीस लाख धूमधाम और ऐश में फूंक दिये गये थे; अब किसी न किसी तदबीर से ख़ज़ाने को भरना ज़रूरी था। बोनापार्त ने तथाकथित cités ouvrières* बनवाने के लिये एक राष्ट्रीय कोष स्थापित किया था जिसमें चंदा देनेवालों की सूची में एक मोटी रक़म के साथ उसने अपना नाम सबसे पहले दर्ज किया था। पर यह तदबीर बेकार हुई थी। संगदिल पूंजीपति अविश्वासपूर्वक यह प्रतीक्षा करते रहे कि वह अपने हिस्से की रक़म पहले अदा करे, पर चूंकि जैसा कि प्रत्याशित ही था, ऐसा नहीं किया गया, इसलिये समाजवादी हवाई क़िलों की सट्टेबाज़ी फ़ेल हो गयी। पर सोने की ईंटें ज़्यादा कारगर साबित हुईं। बोनापार्त एण्ड कम्पनी ने ७० लाख की रक़म में से – यह रक़म पुरस्कार रूप में दी जानेवाली ईंटों की क़ीमत देने पर बच रहती थी – फ़ाज़िल एक भाग को हस्तगत करके ही संतोष नहीं किया, उन्होंने लाटरी के नक़ली टिकट बनाये और एक ही नम्बर के दस, पन्द्रह और यहां तक कि बीस-बीस टिकट जारी किये। यह सारा माली

---

*मज़दूर बस्तियां। – सं०

कारबार १० दिसम्बर समाज की फ़ितरत के सर्वथा अनुरूप था। यहां राष्ट्रीय सभा के सामने जनतंत्र का निराकार राष्ट्रपति नहीं, बल्कि हाड़-मांस का बना प्रत्यक्ष बोनापार्त खड़ा था। यहां वह उसे संविधान की अवहेलना करते हुए नहीं, वरन् Code pénal* का अतिक्रमण करते हुए रंगे हाथों पकड़ सकती थी। पर यदि दुआ के प्रश्न पर उसने मामले को वहीं का वहीं छोड़ दिया तो इसका कारण केवल यह न था कि जिरादिंन के इस प्रस्ताव ने कि सभा अपने को "संतुष्ट" घोषित करे, अमन की पार्टी को उस भ्रष्टाचार की याद दिलायी थी जिसमें वह स्वयं बाक़ायदा लिप्त थी। पूंजीपति, और सर्वाधिक वह पूंजीपति जिसे फुलाकर राजनीतिज्ञ बना दिया जाता है, अपनी व्यावहारिक कृपणता की पूर्ति सैद्धान्तिक मुक्तहस्तता से करता है। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से, वह, उस राज्य शक्ति की तरह, जिसके साथ उसका सामना होता है, एक उच्चतर हस्ती बन जाता है जिसके साथ एक उच्चतर, प्रतिष्ठित पद्धति से ही लड़ा जा सकता है।

बोनापार्त को, जो ठीक इस कारण धूर्त्त पूंजीपतियों से बीच पड़ता था कि वह la bohéme का एक पुत्र, एक शाही लंपट-सर्वहारा था और कमीनेपन के साथ लड़ाई लड़ सकता था, जब राष्ट्रीय सभा ने ख़ुद उंगली पकड़कर उसे फ़ौजी दावतों, रिव्युओं, १० दिसम्बर समाज और अंत में Code pénal के दलदलों से पार करा दिया, तो उसने देख लिया कि अब समय आ गया है जब दिखावटी बचाव के बदले हमले की नीति अपनायी जा सकती है। इस बीच न्याय-मंत्री, युद्ध-मंत्री, नौसेना-मंत्री तथा वित्त-मंत्री को जो मामूली हारें खानी पड़ी थीं, वे हारें जिनके ज़रिये राष्ट्रीय सभा ने अपनी गुर्राहट भरी नाराज़गी ज़ाहिर की थी, उनसे उसे कोई परेशानी नहीं थी। उसने न केवल मंत्रियों को इस्तीफ़ा देने और इस प्रकार कार्यकारी सत्ता पर संसद के सार्वभौम अधिकार को मान्यता देने से रोका, वरन् अब वह उस कार्य को भी सम्पन्न कर सकता था जो उसने राष्ट्रीय सभा की तातील के समय आरम्भ किया था, अर्थात् सैनिक सत्ता को संसद से अलग करने, **शांगार्नियें को अपदस्थ करने का कार्य।**

एक एलिज़े पत्र ने एक सैनिक आदेश छापा जो उसके कथनानुसार मई मास में प्रथम सैनिक डिवीजन को भेजा गया था, अर्थात् शांगार्नियें द्वारा भेजा गया था, और जिसमें अफ़सरों से कहा गया था कि अगर विप्लव हो तो वे

---

*दंड संहिता। – सं०

अपनी पांतों के अंदर ग़द्दारों के साथ कोई रू-रियायत न करें और, उन्हें फ़ौरन गोली मार दें, तथा यदि राष्ट्रीय सभा सैनिकों की मांग करे तो फ़ौज भेजने से इनकार कर दें। ३ जनवरी १८५१ को सभा में मंत्रिमण्डल से इस सैनिक आदेश के बारे में पूछताछ की गई। मंत्रिमण्डल ने इस मामले की जांच-पड़ताल करने के लिये पहले तीन महीने की, फिर एक हफ़्ते की और अंत में केवल २४ घंटों की मुहलत मांगी। सभा ने आग्रह किया कि फ़ौरन इसकी कैफ़ियत मिलनी चाहिये। शांगार्निये ने उठकर कहा कि ऐसा कोई सैनिक आदेश कभी नहीं जारी किया गया। इसके अतिरिक्त उसने कहा कि वह राष्ट्रीय सभा की मांग फ़ौरन पूरी करने को सदा तत्पर रहेगा और कोई टक्कर होने पर राष्ट्रीय सभा उसपर भरोसा कर सकती है। उसकी यह घोषणा तालियों की अवर्णनीय गड़गड़ाहट के साथ सुनी गयी और उसके प्रति विश्वास का एक प्रस्ताव पास किया गया। ऐसा करके राष्ट्रीय सभा ने अपनी सत्ता का स्वयं परित्याग किया, एक जनरल के वैयक्तिक संरक्षण में अपने को डालकर, अपनी अशक्तता तथा सेना की सर्वशक्तिमत्ता घोषित की। किंतु जनरल महोदय ने ख़ुद अपने को धोखे में डाला जब उन्होंने राष्ट्रीय सभा की सेवा में, बोनापार्त के विरुद्ध, एक ऐसी शक्ति अर्पित की जो उन्हें उसी बोनापार्त से मंसब के रूप में प्राप्त थी, और जब बदले में उन्होंने उस संसद से संरक्षण प्राप्त करने की आशा की जो स्वयं उसके संरक्षण की मुहताज थी। किन्तु शांगार्निये को चमत्कार की उस रहस्यमय शक्ति पर विश्वास था जो पूंजीपतियों ने उसे २९ जनवरी १८४९ से ही दे रखी थी। वह अपने को अन्य दो राज्यीय सत्ताओं के साथ साथ एक तीसरी सत्ता समझता था। उसकी वही दुर्गति होनी थी जो इस युग के अन्य सभी सूरमाओं बल्कि कहना चाहिये संतों की हुई थी, जिन्हें इनकी पार्टी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये ढोल पीट-पीट कर महान् बनाती है, पर ज्यों ही परिस्थितियां इन्हें अपने चमत्कार दिखाने को कहती हैं, इनकी क़लई खुल जाती है। श्रद्धा का अभाव साधारणतः इन नामी नायकों और असली संतों का जानी दुश्मन है। इसी लिये रसिकों और उपहासकर्त्ताओं की आस्थाहीनता पर ये लोग बड़ी शान से अपना नैतिक आक्रोश प्रगट करते हैं।

उसी संध्या को मंत्रिगण एलिज़े प्रासाद बुलाये गये। बोनापार्त ने शांगार्निये की बर्ख़ास्तगी का आग्रह किया। पांच मंत्रियों ने आदेश पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। «*Moniteur*» पत्र ने मंत्रिमण्डल में संकट का समाचार प्रकाशित किया और अमन की पार्टी के अख़बारों ने शांगार्निये की कमान में एक संसदीय

सेना स्थापित करने की धमकी दी। अमन की पार्टी को ऐसा क़दम उठाने का वैधानिक अधिकार प्राप्त था। उसे बस शांगार्निये को राष्ट्रीय सभा का अध्यक्ष नियुक्त कर देना था, इसके बाद चाहे जितनी सेना वह अपनी रक्षा के लिये मंगवा सकती थी। यह काम वह और भी अधिक निरापद रूप से इसलिये कर सकती थी कि शांगार्निये अभी भी वास्तव में सेना और पेरिस के राष्ट्रीय गार्ड का अध्यक्ष था तथा सेना समेत बुलवाये जाने की प्रतीक्षा ही कर रहा था। बोनापार्ती अखबार सेना को सीधे बुलवा सकने के राष्ट्रीय सभा के अधिकार के बारे में आपत्ति करने की अभी तक हिम्मत भी नहीं कर सके थे। वह एक ऐसी क़ानूनी आपत्ति होती, जिससे तत्कालीन परिस्थितियों में कोई फल मिलने की आशा न थी। यह देखते हुए कि बोनापार्त को पूरे आठ दिनों तक समूचा पेरिस छानने के बाद ही कहीं जाकर दो जनरल – बारागे द'इलिए और सेंत-जान द'अंजेली – ऐसे मिले जो शांगार्निये की बर्ख़ास्तगी के आदेश पर हस्ताक्षरित करने को तैयार हुए, यह सम्भाव्य था कि सेना ने राष्ट्रीय सभा के आदेश का पालन किया होता। किंतु इसमें बहुत अधिक संदेह है कि अमन की पार्टी को इस आशय के प्रस्ताव के लिये स्वयं अपनी पांतों में और संसद में वोटों की अपेक्षित संख्या प्राप्त होती, क्योंकि हम देखते हैं कि आठ ही दिनों बाद पार्टी के २८६ वोट उससे पृथक् हो गये और दिसम्बर १८५१ में जब निर्णय की अंतिम घड़ी आई, पर्वत दल अब भी इस प्रकार के प्रस्ताव के विरुद्ध था। फिर भी बुर्गग्राफ़ शायद अब भी अपनी पार्टी के आम सदस्यों को एक ऐसे वीरत्वपूर्ण कार्य के लिये प्रेरित कर सकने में सफल हो सकते थे जिसमें उन्हें केवल संगीनों के एक व्यूह के अन्दर बैठकर अपने को सुरक्षित बोध करना तथा एक ऐसी सेना की सेवा स्वीकार करना था जो दूसरे पक्ष को छोड़कर उनके शिविर में चली आयी हो। पर ऐसा करने के बदले बुर्गग्राफ़ बोनापार्त को राजनीतिज्ञतापूर्ण शब्दावली से प्रभावित करने तथा राज्य के हितों के नाम पर यह समझाने के लिये कि शांगार्निये को बर्ख़ास्त न किया जाये, ६ जनवरी को एलिज़े तशरीफ़ ले गये। यदि आप किसी को किसी काम के लिये समझाने-बुझाने जायें तो लाज़िमी है कि आप उसे ही परिस्थिति का स्वामी मान लेते हैं। बुर्गग्राफ़ों के इस पग से आश्वस्त होकर १२ जनवरी को बोनापार्त ने नया मंत्रिमण्डल नियुक्त किया जिसमें पुराने मंत्रिमण्डल के नेता, फ़ूल्द और बारोश क़ायम रहते हैं। सेंत-जान द'अंजेली युद्ध-मंत्री बना दिया जाता है, «*Moniteur*» शांगार्निये की बर्ख़ास्तगी का फ़रमान छापता है, और उसकी कमान बारोगे द'इलिए और पेरो में बांट दी जाती है। द'इलिए को

प्रथम सेना डिवीजन की और पेरो को राष्ट्रीय गार्ड की कमान सौंप दी जाती है। समाज का "रक्षा दुर्ग" निकाल बाहर किया गया है और इससे एक खपरैल तक खिसकना तो दूर रहा, उल्टे शेयर बाज़ार के निर्ख़ बढ़ जाते हैं।

सेना को दुतकार कर, जिसने शांगार्नियं की मार्फ़त अपने को अमन की पार्टी के हाथों में समर्पित किया था, और इस प्रकार उसे सदा के लिये राष्ट्रपति के हवाले कर, अमन की पार्टी ने यह सिद्ध कर दिया कि पूंजीपति वर्ग की शासन करने की योग्यता समाप्त हो गयी है। संसदीय मंत्रिमण्डल का अब अस्तित्व नहीं रहा। दरअसल, सेना और राष्ट्रीय गार्ड को अपने हाथों से जाने देने के बाद अमन की पार्टी के पास कौनसा बलयुक्त साधन रह गया है जिससे वह जनता के ऊपर संसद की बलापहारी सत्ता को और राष्ट्रपति के विरुद्ध उसकी वैधानिक सत्ता को एकसाथ बरक़रार रख सकती है? कोई भी नहीं। अब वह केवल बलशून्य सिद्धान्तों की दुहाई भर दे सकती है, ऐसे सिद्धांतों की दुहाई भर दे सकती है जिनकी व्याख्या उसने स्वयं सदा ऐसे आम नियमों के रूप में की है जिनका औरों को इसलिये उपदेश दिया जाता है कि वह स्वयं और अधिक स्वच्छंदता बरत सके। शांगार्नियें की बर्ख़ास्तगी और सैन्य शक्ति के बोनापार्त के हाथ में आ जाने के साथ हमारे विवेच्य काल का, अमन की पार्टी और कार्यकारी सत्ता के संघर्ष के काल का, प्रथम चरण समाप्त हो जाता है। दोनों पक्षों में अब जंग का खुला एलान हो गया है, और खुली तौर से जंग होने लगी है, पर यह तब हुआ है जब अमन की पार्टी हथियार और फ़ौज दोनों गंवा चुकी है। न उसका अपना मंत्रिमण्डल है, न सेना है, न जनता है, न जनमत है, और ३१ मई के उसके चुनाव क़ानून के बाद वह सार्वभौम राष्ट्र का प्रतिनिधि भी नहीं रही है, यानी चक्षु, कर्ण, दंत एवं सब कुछ विहीन यह राष्ट्रीय सभा शनैः-शनैः एक **प्राचीनकालीन फ़्रांसीसी पार्लमेंट**[113] में रूपांतरित हो गयी है जिसे कार्य सरकार के हाथों में छोड़कर post festum* क्रोधपूर्ण आपत्तियां करके ही संतोष कर लेना पड़ता है।

अमन की पार्टी में नये मंत्रिमण्डल की नियुक्ति से भयंकर रोष भड़क पड़ता है। जनरल बीदो ने इस बात की याद दिलायी कि तातील के दौरान स्थायी आयोग ने बहुत नरमी दिखायी थी और अपने कार्य विवरण को न प्रकाशित कर ज़रूरत से ज़्यादा रियायत से काम लिया था। गृह-मंत्री अब स्वयं इस विवरण के प्रकाशन पर ज़ोर देता है, जिसकी ताज़गी स्वभावतः उसी तरह ग़ायब हो गयी है जैसे

*जब कार्य सम्पन्न कर लिया गया। -सं०

जोहड़ के काई लगे पानी की होती है, जिससे किसी नये तथ्य का उद्घाटन नहीं होता और ऊबी हुई जनता पर जिसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। रेमुज़ा के प्रस्ताव पर राष्ट्रीय सभा अपने ब्यूरो का अधिवेशन करती है और "असाधारण कार्रवाइयों के लिये एक कमेटी" नियुक्त करती है। पर पेरिस अपने दैनिक कार्यक्रम की लीक से इसलिये और भी टस से मस नहीं होता कि इस समय व्यापार में तेज़ी है, कारख़ाने जमकर काम कर रहे हैं, ग़ल्ला सस्ता है, खाद्य पदार्थों की प्रचुरता है और बचत बैंकों में रोज़ नयी रक़में जमा की जा रही हैं। संसद द्वारा जिन "असाधारण कार्रवाइयों" की इतने धूमधाम से घोषणा की गयी, वे १८ जनवरी को मंत्रिमण्डल के विरुद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव के रूप में, जिसमें जनरल शांगार्निये का नाम तक नहीं लिया गया था, ढोल की पोल निकलीं। अमन की पार्टी अपने प्रस्ताव का ऐसा मसविदा बनाने को इसलिये बाध्य हुई थी कि उसे जनतंत्रवादियों के वोट प्राप्त करने थे, और मंत्रिमण्डल की सभी कार्रवाइयों में एक शांगार्निये की बर्ख़ास्तगी ही थी जिसका जनतंत्रवादी अनुमोदन करते थे। दूसरी ओर अमन की पार्टी इस स्थिति में नहीं थी कि मंत्रिमण्डल के अन्य कामों की, जिन्हें उसने स्वयं प्रेरित किया था, निन्दा कर सकती।

१८ जनवरी का अविश्वास प्रस्ताव २८६ के विरुद्ध ४१५ वोटों से पास हुआ। अर्थात् वह चरम लेजिटिमिस्टों और आर्लियानिस्टों का विशुद्ध जनतंत्रवादियों तथा पर्वत दल के साथ **गठबंधन** होने से ही पास हो सका। इससे यह सिद्ध हो गया कि बोनापार्त के साथ अपने झगड़े में अमन की पार्टी ने केवल मंत्रिमण्डल और सेना से ही हाथ नहीं धोया था, बल्कि अपना स्वतंत्र संसदीय बहुमत भी गंवा दिया था, कि प्रतिनिधियों के एक दस्ते ने, मेल-मिलाप के अंधे जोश में, संघर्ष के डर से, काहिली के कारण, राज्य से मिलनेवाले वेतन की प्यारी रक़म के प्रति परिवार की आदरभावना के वशीभूत होकर, मंत्रियों की ख़ाली जगहों की पूर्ति सम्बन्धी अटकलबाज़ियों से लोभ में पड़कर (ओदिलां बारो), कोरी स्वार्थपरता से, जिसके कारण साधारण पूंजीपति वैयक्तिक प्रेरणा में पड़कर अपने वर्ग के सामान्य हितों का बलिदान करने को तैयार रहता है, उसके शिविर का परित्याग किया था। बोनापार्ती सदस्य शुरू से ही अमन की पार्टी का केवल क्रान्ति के साथ संघर्ष में ही साथ दे रहे थे। कैथोलिक पार्टी के नेता मोन्तालम्बेर ने उसी समय बोनापार्त का पलड़ा भारी करना चाहा, क्योंकि संसदीय पार्टी के जीवन के सम्बन्ध में उसे कोई आशा नहीं रह गयी थी। अंतिम बात यह कि इस पार्टी के नेता थियेर और बेरिये, आर्लियानिस्ट और लेजिटिमिस्ट, अपने को खुलेआम

जनतंत्रवादी घोषित करने को बाध्य हुए थे, यह क़बूल करने को मजबूर हुए थे कि उनका दिल राजतंत्रवादी, पर दिमाग़ जनतंत्रवादी है, कि सम्पूर्ण पूंजीपति वर्ग के शासन का एकमात्र सम्भव रूप संसदीय जनतंत्र है। इस प्रकार स्वयं पूंजीपति वर्ग के सामने उन्हें उन पुनःस्थापना योजनाओं की निन्दा करनी पड़ी थी, जिन्हें एक ऐसे षड्यन्त्र के रूप में रचने में वे संसद की पीठ पीछे अब भी अथक रूप से लगे हुए थे जो जितना ख़तरनाक था उतना ही मूर्खतापूर्ण भी था।

१८ जनवरी के अविश्वास प्रस्ताव से मंत्रियों पर आंच आती थी, राष्ट्रपति पर नहीं। किन्तु शांगार्नियें को मंत्रिमण्डल ने नहीं, वरन् राष्ट्रपति ने बर्ख़ास्त किया था। तो क्या अमन की पार्टी स्वयं बोनापार्त के विरुद्ध महाभियोग लाये? इसलिये कि वह पुनःस्थापना की इच्छा रखता था? लेकिन यह इच्छा तो स्वयं उसकी अपनी इच्छाओं का पूरक मात्र थी। तो क्या इसलिये कि उसने सैनिक रिव्युओं के तथा १० दिसम्बर समाज के सिलसिले में साज़िशें की थीं? पर इन मामलों को तो वह संसद की साधारण दैनंदिन की कार्रवाइयों के बीच कब का भुला चुकी थी। या फिर २९ जनवरी और १३ जून के वीर की बर्ख़ास्तगी के लिये, उस आदमी की बर्ख़ास्तगी के लिये जिसने मई १८५० में कहा था कि अगर बग़ावत हुई तो हम समूचे पेरिस को जलाकर ख़ाक कर देंगे? पर उसके मित्र पर्वत दल तथा कैवेन्याक ने हमदर्दी का बाक़ायदा इज़हार करके भी "समाज" के धराशायी "रक्षा दुर्ग" को फिर से खड़ा करने तक की इजाज़त न दी। वह स्वयं भी इस बात से इनकार नहीं कर सकती थी कि राष्ट्रपति को एक जनरल को बर्ख़ास्त करने का वैधानिक अधिकार है। वह केवल इसलिये गरज रही थी कि उसने अपने वैधानिक अधिकार का असंसदीय उपयोग किया था। पर क्या उसने स्वयं अपने संसदीय परमाधिकार का निरंतर, और ख़ासकर सर्व-मताधिकार का अंत करने के मामले में, अवैधानिक उपयोग नहीं किया था? अतः वह सख़्ती से संसदीय सीमाओं के अंदर चलने को विवश थी। जिस अमन की पार्टी ने संसदीय सत्ता की सभी अवस्थाएं अपने हाथों से नष्ट कर डाली थीं और जो अन्य वर्गों के साथ अपने संघर्ष में इन्हें नष्ट कर देने के लिये विवश था, उसके लिये अपनी संसदीय विजयों को अभी भी विजय मानना और मंत्रियों पर प्रहार करके यह सोचना कि उसने राष्ट्रपति पर प्रहार किया है, इसलिये सम्भव हुआ कि यह पार्टी **संसदीय जड़वामनता – क्रेटिनिज़्म** – नामक विचित्र रोग की शिकार थी जो १८४८ के बाद से समूचे यूरोपीय महाद्वीप में महामारी की तरह फैल गया था और जो अपने रोगियों को एक काल्पनिक जगत् में डाल देता है और उनकी समस्त बुद्धि, स्मरण शक्ति

तथा बाह्य जगत् का अवबोध हर लेता है। उसने राष्ट्रपति को राष्ट्र की आंखों के सामने एक बार फिर राष्ट्रीय सभा को अपमानित करने का अवसर मात्र प्रदान किया। २० जनवरी को *«Moniteur»* ने सूचना प्रकाशित की कि पूरे मंत्रिमण्डल का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया है। बोनापार्त ने इस बहाने को लेकर कि किसी संसदीय पार्टी को अब बहुमत प्राप्त नहीं है, जैसा कि १८ जनवरी के वोटों ने – पर्वत दल तथा राजतंत्रवादियों के गठबन्धन के परिणाम ने – सिद्ध किया था तथा नया बहुमत तैयार होने तक, एक तथाकथित संक्रमणकालीन मंत्रिमण्डल नियुक्त किया जिसका एक भी सदस्य संसद का सदस्य न था और जिसके सभी के सभी सदस्य सर्वथा अज्ञात और महत्त्वहीन लोग थे। यह किरानियों और नक़लनवीसों का मंत्रिमण्डल था। अब खेले अमन की पार्टी इन कठपुतलों के साथ और खेलते-खेलते अपने को थका ले; जहां तक कार्यकारी सत्ता का सम्बन्ध था, वह राष्ट्रीय सभा में अपना गम्भीर प्रतिनिधित्व अनावश्यक समझती थी। उसके मंत्रिगण जितने ही ज़्यादा काठ के पुतले होंगे उतने ही प्रगट रूप में बोनापार्त अपने हाथ में समस्त कार्यकारी सत्ता केन्द्रित कर सकता था, और उतनी ही अधिक उसका अपने मतलब के लिये इस्तेमाल करने की उसे गुंजाइश थी।

अमन की पार्टी ने, पर्वत दल के साथ मिलकर इसका बदला १८ लाख फ़्रैंक का वह अनुदान देने से इनकार करके लिया जो १० दिसम्बर समाज के सरदार ने अपने मंत्री-रूपी किरानियों को प्रस्तावित करने को विवश किया था। इस बार केवल १०२ वोटों के बहुमत से यह फ़ैसला हुआ, अर्थात् १८ जनवरी के बाद २७ वोट और निकल गये थे। अमन की पार्टी का विघटन बढ़ रहा था। साथ ही पर्वत दल के साथ अपने गठबन्धन के अर्थ के विषय में एक क्षण के लिये भी कोई संदेह न रहने देने के लिये अमन की पार्टी ने पर्वत दल के १८९ सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित राजनीतिक अपराधियों की आम रिहाई के प्रस्ताव पर विचार करने से भी तिरस्कारपूर्वक इनकार कर दिया। उसके ऐसा करने के लिये गृह-मंत्री वैस का यह कहना पर्याप्त था कि देश में इस समय जो शान्ति है, वह केवल ऊपर से दिखायी देती है, कि भीतर-भीतर ज़ोरदार आंदोलन चल रहा है, कि गुप्त रूप से सर्वत्रव्यापी समितियां संगठित की जा रही हैं, जनवादी अख़बारों को फिर निकालने की तैयारियां हो रही हैं, ज़िलों से आशंकाजनक रिपोर्टें आ रही हैं, जेनेवा के शरणार्थी एक षड्यंत्र का निर्देशन कर रहे हैं जो लियां के रास्ते समूचे दक्षिणी फ़्रांस में फैल रहा है, कि फ़्रांस एक औद्योगिक और व्यापारिक संकट के कगार पर है, कि रूबे के कारख़ानेदारों ने काम के घंटे घटा दिये हैं और बेल-ईल[114]

के बंदियों ने बग़ावत कर दी है। वैसे जैसे एक नाचीज़ शख़्स द्वारा उपरोक्त लाल हौआ खड़ा करना ही अमन की पार्टी के लिये एक ऐसे प्रस्ताव को बिना बहस के ही ठुकरा देने को पर्याप्त था जिससे राष्ट्रीय सभा को निश्चित रूप में अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई होती और बोनापार्त फिर उसकी शरण में आ जाता। कार्यकारी सत्ता द्वारा नये उपद्रवों की सम्भावना का भय दिखाये जाने से डर जाने के बदले, उसे वर्ग-संघर्ष को थोड़ा उभरने का मौक़ा देना चाहिये था ताकि कार्यकारी सत्ता उसपर आश्रित बनी रहती। पर आग के साथ यह खेल खेलने की सामर्थ्य उसने अपने में नहीं पाई।

इस बीच तथाकथित संक्रमणकालीन मंत्रिमण्डल अप्रैल के मध्य तक चलता रहा। बोनापार्त मंत्रिमण्डल में लगातार हेर-फेरकर राष्ट्रीय सभा को थकाता और छकाता रहा। कभी ऐसा लगता कि वह लामार्तीन और बियो का जनतंत्रवादी मंत्रिमण्डल बनाना चाहता है, कभी संसदीय मंत्रिमण्डल बनाता जिसमें ओदिलों बारो अवश्य होता जिसका किसी भोंदू की आवश्यकता पड़ने पर नाम कभी छूट नहीं सकता है, फिर वातिमेस्निल और बेनुवा द 'आज़ी का लेजिटिमिस्ट मंत्रिमण्डल बनाता, और कभी मालेवील को लेकर आर्लियानिस्ट मंत्रिमण्डल की रचना करता। इस प्रकार, उसने एक ओर अमन की पार्टी के अलग-अलग गुटों में एक दूसरे के खिलाफ़ तनातनी बनाये रखी और सबों को जनतंत्रवादी मंत्रिमण्डल के आ जाने की, तथा इसके परिणामस्वरूप सर्व-मताधिकार के अनिवार्य रूप से फिर लागू हो जाने की सम्भावना दिखाकर आतंकित किये रखा और दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग में यह विश्वास पैदा किया कि वह ईमानदारी से संसदीय मंत्रिमण्डल बनाने की कोशिश कर रहा है लेकिन उसकी कोशिशें राजतंत्रवादी गुटों के दुराग्रह के कारण विफल हो रही हैं। उधर पूंजीपति और भी ज़ोर से "दृढ़ सरकार" की मांग कर रहे थे; जितना ही एक आम व्यापारिक संकट निकटतर आता ज्ञात हो रहा था और नगरों में नये-नये लोगों को उसी प्रकार समाजवाद का हामी बना रहा था; जिस प्रकार ग़ल्ले की विनाशकारी सस्ती देहात में नये-नये लोगों को समाजवाद के पक्ष में ला रही थी, उतना ही पूंजीपति फ्रांस को "शासनहीन" छोड़ देना अधिक अक्षम्य समझ रहे थे। व्यापार में दिनोंदिन मंदी आ रही थी, बेरोज़गारों की संख्या में प्रत्यक्षत: वृद्धि हो रही थी, पेरिस में कम से कम १० हज़ार मज़दूरों के पास खाने को रोटी न थी, रूआं, मलहाउस, लियां, रूबे, तूरक्वेन, सेंट-एत्येन, एलबोफ़ आदि में अनगिनत कारखाने बेकार पड़े थे। इस परिस्थिति में ११ अप्रैल को बोनापार्त १६ जनवरी के मंत्रिमण्डल को फिर से पदासीन करने

का साहस कर सका, अर्थात् उसने रूए, फ़ूल्द, बारोश आदि को फिर नियुक्त किया। इनके साथ वह लियों फ़ोशे को भी ले आया जिसका अपने अंतिम दिनों में संविधान सभा ने झूठे तार भेजने के अपराध में अविश्वास प्रस्ताव एकमत से—केवल मंत्रियों के पांच वोटों को छोड़कर—पास करके मुंह काला किया था। इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रीय सभा ने १८ जनवरी को मंत्रिमण्डल पर केवल इसलिये विजय प्राप्त की थी और तीन महीने तक बोनापार्त के साथ इसलिये संघर्ष किया था कि ११ अप्रैल को फ़ूल्द और बारोश कट्टर फ़ोशे को अपने मंत्रिमण्डलीय गठबंधन में एक तीसरे पक्ष के रूप में दाखिल कर सकें।

नवम्बर १८४९ में बोनापार्त ने एक **असंसदीय** मंत्रिमण्डल से संतोष किया था, जनवरी १८५१ में उसने एक **संसदेतर** मंत्रिमण्डल से संतोष किया, पर ११ अप्रैल को उसने अपने को इतना मज़बूत पाया कि एक **संसद विरोधी** मंत्रिमण्डल नियुक्त कर सके जिसके अंदर दोनों सभाओं—संविधान सभा और विधान सभा, जनतंत्रवादी सभा और राजतंत्रवादी सभा—के अविश्वास प्रस्तावों का सुन्दर संयोग हुआ था। मंत्रिमण्डलों की यह दर्जाबंदी वह थर्मामीटर थी जिससे संसद अपने जीवन ताप के ह्रास की माप कर सकता था। अप्रैल के अन्त तक उसका जीवन ताप इतना नीचे आ गया था कि पेर्सिनी ने एक वैयक्तिक भेंट में शांगार्नियें को राष्ट्रपति के पक्ष में चले जाने को कहा। उसने उसे समझाया कि बोनापार्त के ख़याल से राष्ट्रीय सभा का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो चुका है और वह घोषणा अभी से तैयार कर रखी गयी है जो coup d'état को सम्पन्न करने के बाद—जो कि लक्ष्य के रूप में निरंतर सामने रखा जा रहा था और केवल संयोगवश ही फिर स्थगित कर दिया गया था—प्रकाशित की जायेगी। शांगार्नियें ने अमन की पार्टी के नेताओं को इस मृत्यु घोषणा की ख़बर दे दी, पर ऐसा कौन है जो यह विश्वास करे कि खटमल के काटने से कोई मर सकता है? और संसद, जो क्षत-विक्षत, विघटित तथा मरणासन्न थी, अपने को यह यक़ीन न दिला सकी कि १० दिसम्बर समाज के बेढंगे सरदार के साथ उसका द्वंद्व युद्ध महज़ खटमल से लड़ाई न थी। पर बोनापार्त ने अमन की पार्टी को वही जवाब दिया जो अगेसिलौस ने राजा ऐगिस को दिया था:

"मैं तुम्हें चींटा जान पड़ता हूं, पर एक दिन मैं बाघ बन जाऊंगा।"

६

अमन की पार्टी ने सैन्य शक्ति को अपने क़ब्ज़े में रखने और कार्यकारी सत्ता को फिर अपनी मुट्ठी में लाने की व्यर्थ चेष्टा में पर्वत दल और विशुद्ध जनतंत्रवादियों के साथ जिस गठबंधन में बंधा रहने को अपने को विवश पाया था, उसने निर्विवाद रूप से यह प्रमाणित कर दिया कि वह अपना स्वतंत्र **संसदीय बहुमत** खो चुकी है। २८ मई को मात्र कैलेंडर की घड़ी की घंटे की सूई की शक्ति ने उसके पूर्ण विघटन की सूचना दी। कारण, २८ मई को राष्ट्रीय सभा के जीवन का अंतिम वर्ष आरम्भ हो गया। उसे अब यह तय करना था कि संविधान को जैसे का तैसा रहने दिया जाये या उसे संशोधित किया जाये। किन्तु संविधान के संशोधन को केवल यही नहीं बताना था कि पूंजीपति वर्ग का शासन हो या निम्नपूंजीवादी जनवाद स्थापित हो, जनवाद स्थापित हो या सर्वहारा का अराजकतावाद हो, संसदीय जनतंत्र रहे या बोनापार्त रहे, अपितु उसे यह भी बताना था कि आर्लियां का राज होगा या बूर्बों का! इस प्रकार संसद के अन्दर कलह का वह विष वृक्ष रोपा गया जिससे अमन की पार्टी को विरोधी गुटों में विभक्त कर रखनेवाले हितों के झगड़े की आग का खुले रूप में भड़क उठना लाज़िमी था। अमन की पार्टी बेमेल सामाजिक जुज़ों का एक जोड़ थी। संशोधन के प्रश्न से एक ऐसा राजनीतिक तापमान उत्पन्न हुआ जिसमें इस संयोग द्वारा तैयार वस्तु अपने मूल संघटक तत्त्वों में फिर विघटित हो गई।

संशोधन में बोनापार्तपंथियों का स्वार्थ बिल्कुल सीधा-सादा था। उनके लिये यह प्रश्न, सर्वोपरि, धारा ४५ को समाप्त करने का प्रश्न था जिसके द्वारा बोनापार्त का पुनर्निर्वाचन तथा उसकी सत्ता की अवधि का बढ़ना निषिद्ध था। जनतंत्रवादियों की स्थिति भी इस मामले में उतनी ही सीधी सादी थी। वे बिना शर्त किसी प्रकार के संशोधन का विरोध करते थे: उन्हें इसमें जनतंत्र के विरुद्ध एक सार्वत्रिक षड्यंत्र दिखायी पड़ता था। चूंकि राष्ट्रीय सभा के **एक चौथाई से अधिक वोट** उनके पास थे और संविधान के अनुसार संशोधन सम्बन्धी किसी प्रकार के प्रस्ताव के क़ानूनन जायज़ होने के लिये तथा संशोधनकारी सभा को बुलाने के लिये तीन चौथाई वोटों की ज़रूरत थी, इसलिये उनके अपने वोटों की संख्या ही विजय का निश्चय कराने के लिये काफ़ी थी। और उन्हें अपनी विजय के बारे में पूर्ण निश्चय था।

इन लोगों की स्पष्ट स्थिति के विपरीत अमन की पार्टी अपने को ऐसे अंतर्विरोधों में फंसा पा रही थी जिनसे निकलना असम्भव था। यदि वह संशोधन करने से इनकार करती है तो यथास्थिति ख़तरे में पड़ जायेगी, क्योंकि तब बोनापार्त के सामने एक ही रास्ता रह जायेगा, बल प्रयोग का रास्ता, और क्योंकि मई १८५२ के दूसरे रविवार को, निर्णायक घड़ी में, वह फ़्रांस को क्रांतिकारी अराजकता के हाथों में छोड़ देगी, जिसमें राष्ट्रपति होगा जिसकी सत्ता समाप्त हो चुकी रहेगी, संसद होगी जिसके हाथ में सत्ता एक लम्बे अर्से से रही ही नहीं है और जनता होगी जो सत्ता फिर अपने हाथों में करने पर तुली हुई है। यदि वह संविधान के संशोधन के पक्ष में वोट देती है, तो वह जानती है कि उसका वोट देना व्यर्थ होगा और जनतंत्रवादियों के निषेध के कारण उसे विधानतः विफल ही होना पड़ेगा। यदि उसने अवैधानिक रूप से साधारण बहुमत को ही बाध्यतामूलक घोषित किया, तो वह क्रांति पर प्रभुत्व प्राप्त करने की तभी आशा कर सकती है जब वह कार्यकारी सत्ता की सार्वभौमता की बिना शर्त मातहती क़बूल करे, तो वह बोनापार्त को संविधान का, उसके संशोधन का और स्वयं अपना स्वामी बना देगी। यदि वह संविधान का केवल आंशिक संशोधन करती है जिससे राष्ट्रपति की सत्तावधि बढ़ा दी जाये, तो इससे बोनापार्त द्वारा राज्य-सत्ता के अपहरण का मार्ग प्रशस्त होगा। और यदि वह संविधान का आम संशोधन करती है जिससे जनतंत्र की जीवनावधि अल्प हो जायेगी, तो राजवंशीय दावे अनिवार्यतः एक दूसरे से टकरायेंगे, क्योंकि बूर्बों राज के पुनःस्थापन की शर्तें आर्लियानिस्ट राज के पुनःस्थापन की शर्तों से केवल भिन्न ही न थीं, अपितु वे परस्पर अपवर्जी भी थीं।

संसदीय जनतन्त्र केवल वह तटस्थ प्रदेश ही न था जिसपर फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग के दोनों गुट – लेजिटिमिस्ट और आर्लियानिस्ट, बड़ी भू-सम्पत्ति और उद्योग – समान अधिकारों का उपभोग करते हुए साथ-साथ रह सकते थे। यह उनके **सम्मिलित** शासन की अनिवार्य शर्त था, राज्य का वह एकमात्र रूप था जिसमें उनका सामान्य वर्ग हित उनके अलग-अलग गुटों के दावों और समाज के शेष सभी वर्गों के हितों, दोनों को अपने अधीनस्थ करके रखता था। किंतु राजतंत्रवादियों की हैसियत से वे अपने पुराने झगड़े में, भू-सम्पत्ति का बोलबाला हो या पैसे का, इस झगड़े में पड़ जाते थे जिसकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति, जिसका साकार रूप उनके राजा थे, उनके अलग-अलग राजघराने थे। इसीलिये अमन की पार्टी **बूर्बों के वापस** बुलाये जाने का विरोध करती थी।

आर्लियानिस्ट और जन-प्रतिनिधि क्षेत्रों ने नियमित रूप से १८४६, १८५० और १८५१ में यह प्रस्ताव पेश किया था कि राज परिवारों के निर्वासन की आज्ञा रद्द कर दी जाये। और हर बार संसद ने ऐसे राजतंत्रवादियों की एक सभा का नाटकीय दृश्य उपस्थित किया जो कठोर हृदय होकर उस द्वार को बंद किये खड़े थे जिससे उनके निर्वासित राजा घर लौट सकते थे। रिचार्ड तृतीय ने हेनरी षष्ठम की हत्या यह कहते हुए की थी कि उस जैसा नेक आदमी इस धरती के लिये नहीं बना है, कि उसकी जगह स्वर्ग में है। राजतंत्रवादियों का कहना था कि फ्रांस जैसा बुरा देश फिर से राजा प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है। परिस्थितियों में फंसकर वे जनतंत्रवादी बन गये थे, और अपने राजाओं को फ्रांस से निर्वासित करने के जन निर्णय पर उन्होंने बारम्बार मंजूरी की मुहर लगाई।

संविधान का संशोधन—और परिस्थितियां संशोधन के विषय में सोचने को विवश कर रही थीं—जनतंत्र के साथ, दोनों पूंजीवादी गुटों के सम्मिलित शासन पर भी प्रश्नसूचक चिह्न लगा देता था; राजतंत्र की सम्भावना उत्पन्न करके वह उन हितों की प्रतिद्वंद्विता को, जिनका उसने बारी-बारी से प्रबल प्रतिनिधित्व किया था, एक गुट द्वारा दूसरे पर प्राधान्य स्थापित करने के संघर्ष को पुनर्जीवित करता था। अमन की पार्टी के कूटनीतिज्ञों का विचार था कि वे दोनों राजघरानों को मिलाकर, राजतंत्रवादी पार्टियों और उनके राजघरानों का तथाकथित **विलय** कराकर संघर्ष को निपटा सकते हैं। पुनःस्थापन और जुलाई राजतंत्र का वास्तविक विलय तो संसदीय जनतंत्र था, जिसमें आर्लियानिस्ट और लेजिटिमिस्ट मिट जाते थे और पूंजीपतियों की अलग-अलग प्रजातियां मानो एक पूंजीवादी जाति में मिलकर एकाकार हो जाती थीं। किन्तु अब आर्लियानिस्ट को लेजिटिमिस्ट और लेजिटिमिस्ट को आर्लियानिस्ट बनना था; राजतंत्र को, जिसमें उनका विग्रह मूर्त्त था, उनकी एकता का साकार रूप बनना था; परस्पर अपवर्जी गुट हितों की अभिव्यक्ति को उनके सम्मिलित वर्ग हित की अभिव्यक्ति बनना था; राजतंत्र से वह कार्य सम्पन्न कराना था जो दोनों राजतंत्रों का उन्मूलन, अर्थात् जनतंत्र ही कर सकता था, और करता रहा था। ऐसा कर सकनेवाले पारस पत्थर को पैदा करने के लिये अमन की पार्टी के पण्डितगण जोरों से मग़ज़पच्ची कर रहे थे। वे भूल गये कि वैधतावादी राजतंत्र कभी औद्योगिक पूंजीपतियों का राजतंत्र नहीं बन सकता, अथवा पूंजीवादी राजतंत्र कभी मौरूसी भू-स्वामी कुलीनों का राजतंत्र नहीं बन सकता। वे भूल गये कि भू-सम्पत्ति और उद्योग का **एक** राजमुकुट के तहत भाईचारा नहीं चल सकता, क्योंकि राजमुकुट दो में से किसी एक

सिर पर ही रहेगा – बड़े भाई के सिर पर या छोटे भाई के सिर पर। वे भूल गये कि उद्योग का भू-सम्पत्ति के साथ तब तक कभी मेल नहीं हो सकता जब तक भू-सम्पत्ति स्वयं ही औद्योगिक बन जाने का निर्णय न कर ले। यदि आंरी पंचम की कल मृत्यु हो जाये तो पेरिस का काउंट इस मृत्यु के कारण लेजिटिमिस्टों का राजा नहीं बन जायेगा, जब तक कि वह आर्लियानिस्टों का राजा होने से बाज़ न आये। पर विलय के सिद्धांतवादी, जो संशोधन के प्रश्न के अधिकाधिक आगे आने के साथ उसी अनुपात में अधिकाधिक मुखर होते जा रहे थे, जिन्होंने «*Assemblée nationale*»[115] नामक अपना आधिकारिक दैनिक समाचारपत्र भी स्थापित कर लिया था और जो इस घड़ी भी (फ़रवरी १८५२) फिर क्रियाशील हैं, समझते थे कि सारी कठिनाई इसलिये है कि दोनों राजघरानों में विग्रह और प्रतिद्वंद्विता है। आर्लियां परिवार का आंरी पंचम के साथ मेल कराने की चेष्टाएं लूई फ़िलिप की मृत्यु के समय से ही आरम्भ हुई थी, पर जैसा कि राजवंशीय मन्त्रणाओं के साथ आम तौर से होता है, यह खेल अभी तक केवल राष्ट्रीय सभा की तातीलों के समय ही, यवनिकाओं के बीच, रंगमंच के पार्श्व में, खेला जाता था। वह कोई गंभीर व्यापार न था, वरन् वह पुराने अंधविश्वासों के साथ एक भावुकतापूर्ण खिलवाड़ था। अब इस खेल ने भव्य राज्यीय अभिनय का रूप ले लिया था जिसे अमन की पार्टी कुछ शौक़ीनों की वैयक्तिक रंगशाला में न खेलकर, जैसा कि उसने अभी तक किया था, सार्वजनिक रंगमंच पर उपस्थित कर रही थी। दूतगण पेरिस से वेनिस,[116] वेनिस से क्लेरमां, क्लेरमां से पेरिस के बीच दौड़-भाग रहे थे। काउंट शाम्बोर ने एक घोषणापत्र प्रकाशित किया जिसमें "अपने परिवार के सभी सदस्यों की सहायता से" उसने अपनी व्यक्तिगत पुनःस्थापना की नहीं, अपितु "राष्ट्रीय" पुनःस्थापना की घोषणा की। आर्लियानिस्ट साल्वांदी जाकर आंरी पंचम के पैरों पर गिर पड़ा। लेजिटिमिस्टों के सरदार बेरिये, बेनुवा द'आज़ी और सेंत-प्रीस्त आर्लियां गिरोह को समझाने के लिये क्लेरमां गये, पर उनकी यात्रा विफल हुई। विलयवादियों को बहुत देर बाद यह समझ आयी कि दो पूंजीवादी गुटों के हित पारिवारिक हितों के, दो राजघरानों के हितों का रूप धारण कर अपनी परस्पर अपवर्जिता नहीं खोते, न ही लचकदार बन जाते हैं, अपितु वे और भी पैने हो जाते हैं। आंरी पंचम के पेरिस के काउंट को अपना उत्तराधिकारी मान लेने से – विलय से अधिक से अधिक यही एकमात्र सफलता प्राप्त हो सकती थी – आर्लियां राजवंश ऐसा कोई अधिकार नहीं प्राप्त करेगा, जो आंरी पंचम के निस्संतान होने के कारण उसे अभी ही न प्राप्त हो, अलबत्ता

वह उन सभी अधिकारों से हाथ धो बैठेगा जो उसने जुलाई क्रांति के ज़रिये प्राप्त किये थे। वह अपने मूल दावों को, उन सभी अधिकारों को, जो उसने बूर्बों वंश की अधिक पुरानी शाखा से प्रायः सौ वर्षों के संघर्ष द्वारा प्राप्त किये थे, परित्याग करेगा; वह अपना ऐतिहासिक परमाधिकार, आधुनिक राजतंत्र का परमाधिकार, अपने वंश-वृक्ष के परमाधिकार के बदले में बेच डालेगा। अतः विलय आर्लियां वंश द्वारा स्वेच्छापूर्वक सिंहासन त्याग, लेजिटिमिस्टों के आगे घुटने टेकना, प्रोटेस्टेंट राजकीय चर्च को पश्चात्तापपूर्वक छोड़कर कैथोलिक चर्च में जाना, यही होगा और कुछ नहीं। इतना ही नहीं, इस पसपाई से उसे खोया हुआ सिंहासन भी प्राप्त न होगा, वरन् इससे वह सिंहासन की सीढ़ियों तक ही, जहां उसका जन्म हुआ था, पहुंचेगा। पुराने आर्लियानिस्ट मंत्री, गीज़ो, दुशातेल आदि, जो दूसरों की तरह विलय कराने के लिये दौड़े-दौड़े क्लेरमां गये, वस्तुतः केवल जुलाई क्रांति के बाद की ख़ुमारी भावना का, पूंजीवादी राजतंत्र और पूंजीपतियों के राजतंत्र के प्रति निराशा का, इस अंधविश्वासपूर्ण विचार का कि राजकुल वैधता अराजकता का अंतिम मंत्रोपचार है, प्रतिनिधित्व करते थे। वे अपने को आर्लियां और बूर्बों के बीच मध्यस्थता करनेवाले समझते थे, पर दरअसल वे आर्लियानिस्ट पक्ष के ग़द्दार थे, और प्रिंस ऑफ़ ज्वानवील ने उनका इसी रूप में स्वागत किया। दूसरी ओर आर्लियानिस्टों के उस भाग ने, जो जीवनक्षम एवं लड़ने को प्रवृत्त था, अर्थात् थियेर, बाज़ आदि ने लूई फ़िलिप के परिवार को और भी आसानी से यह विश्वास दिला दिया कि यदि प्रत्यक्ष राजतंत्रीय पुनःस्थापन में यह पूर्वमान्य हो कि दोनों राजवंशों का विलय होना चाहिये और यदि ऐसे विलय के लिये यह पूर्वमान्य हो कि आर्लियां परिवार सिंहासन का दावा छोड़ देगा, तो यह उनके पूर्वजों की परम्परा के सर्वथा अनुरूप होगा कि वे अस्थायी रूप से जनतंत्र को मान्यता देकर उस समय की प्रतीक्षा करें जब घटनाक्रम राष्ट्रपति की कुर्सी को राजसिंहासन में परिवर्तित करने की अनुमति प्रदान करेगा। यह अफ़वाह फैलाई गई कि ज्वानवील राष्ट्रपति के लिये खड़ा होनेवाला है, सार्वजनिक कुतूहल जगा दिया गया, और कुछ महीने बाद, अर्थात् सितम्बर में संशोधन के अस्वीकृत हो जाने के बाद उसकी उम्मीदवारी की सार्वजनिक घोषणा कर दी गई।

अतएव आर्लियानिस्ट और लेजिटिमिस्ट राजघरानों के विलय की चेष्टा असफल ही नहीं हुई, बल्कि उसने उनके **संसदीय विलय**, उनके संयुक्त जनतंत्रवादी रूप को नष्ट कर दिया और अमन की पार्टी को अपने मूल संघटक तत्त्वों में बांट दिया। पर क्लेरमां और वेनिस का विलगाव जितना ही अधिक बढ़ रहा था, जितनी ही

अधिक उनकी समझौता वार्त्ता विफल होती जा रही थी तथा ज्वानवील सम्बन्धी प्रचार ज़ोर पकड़ता जा रहा था, उतने ही अधिक ज़ोर और सरगर्मी के साथ बोनापार्त के मन्त्री फ़ोशे एवं लेजिटिमिस्टों में वार्त्ता चलने लगी थी।

अमन की पार्टी का विघटन उसके मूल तत्त्वों में विभक्त हो जाने तक ही सीमित न रहा। दोनों गुटों के अन्दर भी नये सिरे से विघटन आरम्भ हो गया। ऐसा लगा कि इन दो मण्डलों—लेजिटिमिस्टों और आर्लियानिस्टों—के अन्दर हलके विभेद की पुरानी छायाएं जो पहले कभी आपस में रेलपेल किया करती थीं, अब इस प्रकार फिर स्पन्दनशील हो गयी हैं जिस प्रकार जल के सम्पर्क में आने पर सूखी इन्फ़ूसोरिया स्पन्दनशील हो उठती है, कि मानो उनमें नये सिरे से इतनी पर्याप्त जीवन स्फूर्ति आ गयी है कि वे अपने अलग गुट बना सकती एवं स्वतंत्र रूप से विग्रह का सूत्रपात कर सकती हैं। लेजिटिमिस्ट यह कल्पना करने लगे कि वे तुलरी और पैंविलियन मार्सां के, विलेल और पोलिन्याक[117] के पुराने विवादों के दिनों में फिर पहुंच गये हैं। आर्लियानिस्ट मानस जगत् में गीज़ो, मोले, ब्रोल्यी, थियेर और ओदिलां बारो की क्रीड़ा प्रतियोगिताओं के स्वर्णिम युग में फिर रहने लगे।

अमन की पार्टी के उस हिस्से ने, जो संशोधन के लिये उत्सुक था, पर संशोधन की सीमा क्या हो, इस विषय पर विभक्त था—इसमें एक भाग वह था जिसमें एक ओर बेरिये और फ़ालू के नेतृत्व में चलनेवाले और दूसरी ओर लारोशजाकलिन के नेतृत्व में चलनेवाले लेजिटिमिस्ट थे तथा दूसरा भाग मोले, ब्रोल्यी, मोन्तालम्बेर एवं ओदिलां बारो के नेतृत्व में चलनेवाले, झगड़े से ऊबे आर्लियानिस्टों का था—बोनापार्ती सदस्यों के साथ इस बात पर समझौता किया कि निम्नलिखित अनिश्चित और व्यापक प्रारूप वाला प्रस्ताव उपस्थित किया जाये:

> "राष्ट्र सार्वभौमता के अपने अधिकार का फिर से पूर्णतया प्रयोग करे, इस उद्देश्य से, निम्न हस्ताक्षरित सदस्य यह प्रस्ताव करते हैं कि संविधान संशोधित किया जाये।"

पर साथ ही उन्होंने एकमत से अपने रिपोर्टर तोकवील की मार्फ़त यह भी घोषित किया कि राष्ट्रीय सभा को **जनतन्त्र की समाप्ति** का प्रस्ताव लाने का अधिकार नहीं है, यह अधिकार सोलहों आना संशोधनकारी सदन को है। हां, संविधान "**वैध विधि से** ही संशोधित किया जा सकता है, अर्थात् जैसा कि संविधान में लिखा है, संशोधन के पक्ष में कुल वोटों का तीन-चौथाई आने पर ही ऐसा किया जा सकता है। १९ जुलाई को, ६ दिनों की तूफ़ानी बहस के बाद, संशोधन

की बात, जैसा कि प्रत्याशित ही था, अस्वीकृत हो गयी। संशोधन के पक्ष में ४४६ और विपक्ष में २७८ वोट आये। चरम आर्लियानिस्ट, थियेर, शांगार्निये आदि ने जनतंत्रवादियों और पर्वत दल के साथ वोट दिया।

इस प्रकार संसद के बहुमत ने संविधान के विपक्ष में वोट दिया, पर स्वयं संविधान ने अपने को अल्पमत के पक्ष में घोषित किया और यह कहा कि उसका वोट बाध्यकारी है। पर अमन की पार्टी क्या संविधान को ३१ मई १८५० तथा १३ जून १८४९ को संसदीय बहुमत के अधीनस्थ नहीं बना चुकी थी? अब तक क्या उसकी पूरी नीति ही संविधान की धाराओं को संसदीय बहुमत के निर्णयों के अधीनस्थ रखने पर आधारित न थी? अब तक क्या क़ानून के शब्दों में प्राचीन, गतव्यवहार अन्धविश्वास उसने जनवादियों के लिये ही नहीं छोड़ रखा था, और इसके लिये उन्हें आड़े हाथों न लिया था? किंतु इस समय संविधान के संशोधन का एकमात्र अर्थ राष्ट्रपति की सत्ता को जारी रखना था, जिस प्रकार संविधान को जारी रखने का एकमात्र अर्थ बोनापार्त का सत्ताच्युत होना था। संसद ने बोनापार्त के पक्ष में वोट दिया था, पर संविधान संसद के विपक्ष में था। अतः बोनापार्त ने जब संविधान को फाड़ फेंका तो उसने संसद की भावना के अनुसार काम किया और जब उसने संसद को भंग कर दिया तो संविधान की भावना के अनुसार कार्य किया।

संसद ने संविधान को, और संविधान के साथ स्वयं अपने शासन को "बहुमत के परे" घोषित किया था। अपने वोट द्वारा उसने संविधान का उन्मूलन और राष्ट्रपति की सत्ता का अवधि विस्तार किया था, जबकि साथ ही उसने यह भी घोषित किया था कि जब तक वह जीवित है न संविधान मर सकता है और न राष्ट्रपति की सत्ता जीवित रह सकती है। उसे दफ़न करनेवाले दरवाज़े पर खड़े थे। जब वह संशोधन पर बहस कर रही थी, तभी बोनापार्त ने जनरल बारागे द'इलिए को, जो डांवांडोल तबीयत का साबित हुआ था, प्रथम सेना डिवीजन की कमान से हटा दिया। उसकी जगह पर उसने लियां के विजेता और दिसम्बर के दिनों के वीर नायक जनरल मान्यान को नियुक्त किया। जनरल मान्यान उन लोगों में था जिन्हें ख़ुद बोनापार्त ने बनाया था और जो लूई फ़िलिप के ज़माने में ही बूलोन के अभियान के अवसर पर न्यूनाधिक बोनापार्तपंथी होने के लिये बदनाम हो चुका था।

संशोधन सम्बन्धी अपने निर्णय द्वारा अमन की पार्टी ने यह साबित कर दिया कि वह न शासन करना जानती थी न सेवा करना; न वह जीना जानती थी

न मरना ; न जनतंत्र को बर्दाश्त करना जानती थी, न उसका उन्मूलन करना ; न संविधान की रक्षा करना जानती थी, न उसे फाड़ फेंकना ; वह न यह जानती थी कि राष्ट्रपति के साथ सहयोग कैसे किया जाये, न यह कि उसके साथ सम्बन्ध विच्छेद कैसे किया जाये। तब सभी विरोधाभासों के समाधान के लिये वह किसका मुंह जोहती थी? कैलेंडर का, घटनाक्रम का। उसने घटनाओं पर क़ाबू रखने का गुमान छोड़ दिया। अतः उसने घटनाओं को चुनौती दी कि वे उसे क़ाबू में कर लें और ऐसा करके उस शक्ति को चुनौती दी जिसे अपने जन-विरोधी संघर्ष में वह एक-एक करके सत्ता की सभी विशेषतायें सौंपती गयी थीं, यहां तक कि अब वह स्वयं उस शक्ति के आगे बेबस खड़ी थी। कार्यकारी सत्ता का प्रधान और भी अधिक निर्बाध होकर उसके विरुद्ध अपनी युद्ध योजना तैयार कर सके, आक्रमण के अपने साधनों को और सुदृढ़ कर सके, अपने औज़ार चुन सके तथा अपनी क़िलाबन्दी कर सके, इसलिए ऐन इसी नाज़ुक मौक़े पर उसने रंगमंच से हट जाने का, अर्थात् अपना अधिवेशन १० अगस्त से ४ नवम्बर तक स्थगित कर देने का फ़ैसला किया।

संसदीय पार्टी न केवल अपने संघटक दो बड़े गुटों में विघटित हो गयी थी, न केवल इन दोनों गुटों के अंदर ख़ुद फूट पड़ गयी थी, संसद के अंदर अमन की पार्टी का संसद के बाहर अमन की पार्टी से भी बिगाड़ हो गया था। पूंजीपति वर्ग के प्रवक्ता और लेखक, उसके भाषणकर्त्ता और उसके अख़बार, संक्षेप में पूंजीपति वर्ग के सिद्धांतकार तथा पूंजीपति वर्ग स्वयं–प्रतिनिधि और वे जिनका प्रतिनिधित्व होता था–ये दोनों ही बेगाने बन गये, एक दूसरे को नहीं समझ पाते थे।

प्रांतों में लेजिटिमिस्ट, जिनका दृष्टिपात सीमित और उत्साह असीम था, अपने संसदीय नेता बेरिये और फ़ालू पर आंरी पंचम को छोड़कर बोनापार्तपंथियों की ओर जा मिलने का दोषारोपण कर रहे थे। उनके शाही फरहरे वाले दिमाग़ में यह बात समाती थी कि मनुष्य का पतन होता है, पर यह नहीं आती थी कि कूटनीति भी कोई चीज़ होती है।

वाणिज्यिक पूंजीपतियों और उनके राजनीतिज्ञों का विलगाव इससे कहीं अधिक सांघातिक और निर्णायक सिद्ध हुआ। लेजिटिमिस्टों ने अपने राजनीतिज्ञों पर यह आरोप लगाया था कि उन्होंने अपने सिद्धान्तों का परित्याग किया है, वाणिज्यिक पूंजीपतियों ने अपने राजनीतिज्ञों पर यह आरोप लगाया कि वे ऐसे सिद्धान्तों से चिपके हुए हैं जो बेकार हो गये हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि फ़ूल्द के मंत्रिमण्डल में आने के बाद से वाणिज्यिक पूंजीपतियों का वह हिस्सा, जो लूई फ़िलिप के ज़माने में सत्ता के सर्वाधिक भाग का उपभोग करता था, अर्थात् **वित्तीय महाप्रभुओं** का हिस्सा, बोनापार्तपंथी हो गया था। फ़ूल्द शेयर बाज़ार में बोनापार्त के हितों का प्रतिनिधित्व ही नहीं करता था, वह साथ ही बोनापार्त के सामने शेयर बाज़ार के हितों का प्रतिनिधित्व भी करता था। वित्तीय नवाब क्या चाहते थे यह उनके यूरोपीय मुखपत्र, लन्दन के «*Economist*»[118] के एक लेखांश में बड़ी स्पष्टता से अंकित है। उसके १ फ़रवरी १८५१ के अंक में पेरिस के उसके सम्वाददाता ने लिखा है:

> "अनेकानेक क्षेत्रों में यह बात कही गई है कि फ़्रांस सर्वोपरि शान्ति चाहता है। राष्ट्रपति ने यह बात विधान सभा को अपने संदेश में कही है; सभामंच से यही बात प्रतिध्वनित हुई है; अख़बारों में यही बात ज़ोर देकर कही जा रही है; पादरियों द्वारा इसी की घोषणा की जा रही है; **यह इस बात से भी प्रत्यक्ष हो जाती है कि उपद्रव की तनिक भी आशंका होने पर सरकारी ऋणपत्रों के निर्ख डांवांडोल हो जाते हैं और यह प्रगट होते ही कि कार्यकारी सत्ता विजयी हुई है, उनमें स्थायित्व आ जाता है।**"

२६ नवम्बर १८५१ के अपने अंक में «*Economist*» ने सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा:

> "**राष्ट्रपति अमन का संरक्षक है, और यूरोप के सभी शेयर बाज़ार आज उसे इसी रूप में मानते हैं।**"

तात्पर्य यह कि वित्तीय नवाब कार्यकारी सत्ता के साथ अमन की पार्टी के संसदीय संघर्ष को **अमन पर आघात** समझते थे और उनके ऊपर जो कहने को उनके प्रतिनिधि थे, राष्ट्रपति की प्रत्येक विजय को **अमन की जीत** मानकर ख़ुश होते थे। यहां हम जब वित्तीय नवाबों की बात करते हैं तो तात्पर्य केवल उन लोगों से नहीं है जो सरकारी ऋणपत्रों को बिकवाते और उनकी सट्टेबाज़ी करते हैं और जिनके सम्बन्ध में यह सहज स्पष्ट है कि उनके हित राज्य-सत्ता के हितों से मेल खाते हैं। पूरा का पूरा आधुनिक वित्त, बैंकों का समूचा कारबार, सरकारी साख़ के साथ घनिष्ठतम रूप में जुड़ा हुआ है। बैंकों की पूंजी का एक हिस्सा अनिवार्यतः शीघ्रतापूर्वक परिवर्तनीय सरकारी ऋण-पत्रों में निवेशित किया जाता और सूद पर उठा दिया जाता है। इन बैंकों में जमा रक़में, उनके पास रखी पूंजी, जिसे वे व्यापारियों और उद्योगपतियों के बीच वितरित करते हैं, अंशतः सरकारी ऋणपत्रों के

धारकों के लाभांशों से प्राप्त होती है। राज्य-सत्ता की स्थिरता पूरे मुद्रा बाज़ार के लिए और इस मुद्रा बाज़ार के पण्डों के लिए जब सभी युगों में पूजनीय रही है, तो आज वह ऐसा और भी अधिक क्यों न हो जब हर जल-प्रलय पुराने राज्यों को, और पुराने राज्यों के साथ राजकीय ऋणों को बहा ले जाने का ख़तरा पैदा कर देता है?

औद्योगिक पूंजीपति भी अमन के प्रति अपने अन्धे जोश में कार्यकारी सत्ता के साथ अमन की संसदीय पार्टी के झगड़ों से बहुत नाराज़ हो रहे थे। १८ जनवरी को शांगार्नियें की बर्ख़ास्तगी के मौक़े पर अपने वोट देने के बाद थियेर, आंग्ले, सेंत-बेव आदि को ठीक औद्योगिक क्षेत्रों के ही अपने निर्वाचकों से खुले-बाज़ार फटकारें सुनने को मिलीं, जिनमें पर्वत दल के साथ उनके गठबन्धन को अमन के प्रति ग़द्दारी कहकर उसकी ख़ास तौर पर निन्दा की गयी थी। यदि, जैसा हम देख चुके हैं, राष्ट्रपति के साथ संघर्ष में अमन की पार्टी की दम्भपूर्ण कटूक्तियां और ओछी दुरभिसन्धियां ऐसे ही स्वागत के योग्य थीं, तो ऐसी पूंजीवादी पार्टी, जिसने अपने प्रतिनिधियों से यह मांग की हो कि वे बिना लड़े ही सैनिक सत्ता को अपनी संसद के हाथों से एक जोखोंबाज दावेदार के हाथों में चले जाने दें, इस योग्य भी न थी कि उसके लिए ये दुरभिसन्धियां की जायें! इससे तो यही सिद्ध होता था कि वह अपने **सार्वजनिक** हितों, अपने ही **वर्ग हितों**, अपनी **राजनीतिक सत्ता** को बरक़रार रखने के लिये किये जानेवाले संघर्ष से परेशानी और दिक़्क़त महसूस करती थी, क्योंकि उससे उसके वैयक्तिक कारबार में व्याघात उपस्थित होता था।

बोनापार्त के दौरों में ज़िलों के नगरों के पूंजीवादी ओहदेदार, नगरपालिकाओं के अधिकारी, वाणिज्यिक अदालतों के जज आदि, सभी ने बिना अपवाद के, दुम हिलाकर उसका स्वागत किया, उस वक़्त भी किया जब उसने बेलगाम होकर राष्ट्रीय सभा की, और ख़ासकर अमन की पार्टी की आलोचना की, जैसा कि उसने दिजों नगर में किया।

जब व्यापार की हालत अच्छी थी, जैसा कि १८५१ के आरम्भ तक था, तो वाणिज्यिक पूंजीपति किसी भी संसदीय संघर्ष से इसलिए झल्लाते थे कि कहीं उससे व्यापार की सुस्थिरता न जाती रहे। और जब व्यापार की हालत बुरी हुई, जैसा कि फ़रवरी १८५१ के अंत में लगातार हुआ, तो वाणिज्यिक पूंजीपतियों ने आरोप लगाया कि संसदीय संघर्ष ही मन्दी का कारण है और गुहार मचाने लगे कि इसे बन्द करो ताकि व्यापार फिर उभर सके। संविधान में संशोधन सम्बन्धी

बहसें ठीक इसी बुरे वक़्त में हुईं। चूंकि इस प्रसंग में सवाल यह था कि राज्य का विद्यमान रूप रहे या न रहे, इसलिये पूंजीपति अपने प्रतिनिधियों से यह मांग करना और भी अधिक उचित समझते थे कि इस बेतरह पेंचदार आरज़ी बन्दोबस्त का ख़ात्मा किया जाये और साथ ही यथास्थिति क़ायम रखी जाये। इसमें कोई विरोधाभास न था। आरज़ी बन्दोबस्त के ख़ात्मे से उनका तात्पर्य उसके जारी रहने ही से था, निर्णय करने की घड़ी को दूर भविष्य तक टालने से था। यथास्थिति दो ही तरीक़ों से क़ायम रखी जा सकती थी: या तो बोनापार्त की सत्तावधि बढ़ा दी जाती, या वह विधानतः अवकाश ग्रहण करता और कैवेन्याक चुना जाता। पूंजीपतियों का एक भाग बाद वाले तरीक़े को पसन्द करता था, पर अपने प्रतिनिधियों को वह बस यही सलाह दे सकता था कि वे चुप रह जायें और उस विवादास्पद सवाल को न उठायें। उनका विचार यह था कि यदि उनके प्रतिनिधिगण चुप रहें, तो बोनापार्त कुछ नहीं करेगा। वे शुतुरमुर्ग़ जैसी संसद चाहते थे जो अदृश्य होने के लिए अपना सिर गाड़ ले। पूंजीपतियों का एक और हिस्सा था जो चाहता था कि बोनापार्त चूंकि राष्ट्रपति की कुर्सी पर ही है, इसलिए उसे वहीं रहने दिया जाये ताकि सब कुछ पुरानी लीक पर क़ायम रहे। वे इसलिए झुंझलाये हुए थे कि उनकी संसद ने खुलेआम संविधान की अवहेलना नहीं की और चुपचाप सत्ता का त्याग नहीं किया।

ज़िलों की जनरल कौंसिलों ने—बड़े पूंजीपतियों की इन प्रादेशिक प्रतिनिधि संस्थाओं ने जिनके अधिवेशन राष्ट्रीय सभा की तातील में, २५ अगस्त से आरम्भ हुए—प्रायः एकमत से संशोधन के पक्ष में, और इस प्रकार संसद के प्रतिकूल और बोनापार्त के अनुकूल मत व्यक्त किया।

पूंजीपतियों ने जितने असन्दिग्ध रूप से अपने **संसदीय प्रतिनिधियों** से बिगाड़ की, उससे भी अधिक असंदिग्ध रूप से वे अपने साहित्यिक प्रतिनिधियों, अपने अख़बारों से नाराज़ हुए। सत्ता का बलात् अपहरण करने की बोनापार्त की इच्छाओं की आलोचना करने के लिए पूंजीवादी पत्रकारों पर, कार्यकारी सत्ता के विरुद्ध पूंजीपति वर्ग के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा की प्रत्येक चेष्टा के लिए अख़बारों पर, पूंजीवादी जूरियों के फ़ैसलों पर, जो कमर तोड़ देनेवाले जुर्माने ठोंके गये और क़ैद की शर्मनाक सज़ाएं दी गयीं, उनसे फ़्रांस ही नहीं, समूचा यूरोप स्तब्ध रह गया।

अमन की संसदीय पार्टी जब, जैसा कि हम दिखा चुके हैं, शान्ति के लिए हल्ला मचाकर अपने हाथ बांध रही थी, जब समाज के अन्य वर्गों के साथ अपने

संघर्ष में अपने शासन की, संसदीय शासन की सभी अवस्थाओं का अपने हाथों से ख़ात्मा करके पूंजीपति वर्ग के राजनीतिक शासन को पूंजीपति वर्ग की सुरक्षा एवं अस्तित्व के साथ बेमेल घोषित कर रही थी, तभी **पूंजीपतियों का संसदेतर जनसमुदाय** राष्ट्रपति के आगे दुम हिला करके, संसद के विरुद्ध कुत्सा-प्रचार करके, अपने ही अख़बारों के साथ नृशंसतापूर्ण व्यवहार करके, बोनापार्त को न्योता दे रहा था कि वह उसके बोलने और लिखनेवाले अंग को, उसके राजनीतिज्ञों और लेखकों को, उसके भाषणकर्त्ताओं एवं समाचारपत्रों को कुचल डाले, जिससे कि वह एक शक्तिशाली और निरंकुश सरकार की छत्रछाया में पूरे इतमीनान के साथ अपना निजी कारबार चला सके। उसने स्पष्ट घोषणा की कि वह अपने ही राजनीतिक शासन से मुक्ति पाने को लालायित है ताकि वह शासन करने के झगड़े-टंटे और ख़तरे से बरी हो जाये।

और ये ही संसदेतर पूंजीपति जिन्होंने अपने ही वर्ग के शासन के लिए चलनेवाले विशुद्ध संसदीय और प्रचार संघर्ष के विरुद्ध विद्रोह किया था तथा इस संघर्ष के नेताओं के साथ ग़द्दारी की थी, अब, दुष्काण्ड हो जाने के बाद, सर्वहारा वर्ग पर यह दोषारोपण करते हैं कि उसने रक्त-रंजित संघर्ष नहीं छेड़ा, कि वह उनकी ओर से जीवन-मृत्यु के संघर्ष में नहीं पिल पड़ा! जिन पूंजीपतियों ने हमेशा ओछे से ओछे वैयक्तिक हितों की वेदी पर अपने सामान्य वर्ग हितों की, यानी अपने राजनीतिक हितों की बलि दी तथा अपने प्रतिनिधियों से भी ऐसा ही करने की मांग की, वे ही अब यह रोना रो रहे हैं कि सर्वहारा ने उनके (यानी पूंजीपतियों के) आदर्श राजनीतिक हितों को अपने भौतिक हितों की वेदी पर बलि चढ़ाया है। वे ऐसी सुन्दरी बन रहे हैं जिसे ग़लत समझा गया और जिसका सर्वहारा वर्ग द्वारा समाजवादियों के बहकावे में आकर निर्णायक घड़ी में परित्याग किया गया। और पूंजीवादी जगत् उनके इस स्वर में स्वर मिला रहा है। स्वभावतः हमारा तात्पर्य यहां जर्मनी के पेशेवर बेईमान राजनीतिज्ञों और उन जैसे नत्थूखैरों से नहीं है। हमारा तात्पर्य *«Economist»* जैसे पत्रों से है जिसका ऊपर हवाला दिया जा चुका है और जिसने २६ नवम्बर १८५१ को, यानी राज्य-पर्युत्क्षेपण के चार ही दिन पहले बोनापार्त को "अमन का संरक्षक" और थियेर, बेरिये प्रभृति लोगों को "अराजकतावादी" घोषित किया था और जो आज, २७ दिसम्बर १८५१ को जब बोनापार्त ने इन "अराजकतावादियों" का मुंह बन्द कर दिया है, छाती पीटने लगा है कि "अज्ञानी, अप्रशिक्षित और बुद्धिहीन सर्वहारा ने मध्यम और ऊपरी तबक़ों की दक्षता, ज्ञान,

अनुशासन, मानसिक प्रभाव, बौद्धिक साधन और नैतिक गरिमा" के प्रति विश्वासघात किया है। वस्तुतः, बुद्धिहीन, अज्ञानी और गंवार अवाम स्वयं पूंजीवादी जन-समुदाय था।

यह सच है कि १८५१ में फ़ांस एक मामूली व्यापारिक संकट से होकर गुज़रा था। फ़रवरी के अन्त में पता चला कि १८५० की तुलना में निर्यात में अवनति हुई है; मार्च में व्यापार को धक्का लगा और कारख़ाने बन्द होने लगे, अप्रैल में औद्योगिक ज़िलों की स्थिति वैसी ही घोर निराशाजनक ज्ञात हुई जैसी फ़रवरी काण्ड के बाद हुई थी; मई में व्यवसाय अभी तक मन्दा ही था; २८ जून तक बैंक ऑफ़ फ़ांस की धनराशियों ने निक्षेपों की अत्यधिक वृद्धि तथा हुंडियों की पेशगियों में उतने ही अत्यधिक ह्रास द्वारा यह दिखाया कि उत्पादन गतिरोध की स्थिति में है; और अक्तूबर के मध्य में आकर ही वाणिज्य की अवस्था में धीरे-धीरे क्रमिक सुधार होना आरम्भ हुआ। फ़ांसीसी पूंजीपति इस व्यापारिक गतिरोध के लिए राजनीतिक कारणों को, संसद और कार्यकारी सत्ता के संघर्ष, आरज़ी हुकूमत की अनिश्चितता, और १८५२ की मई के दूसरे रविवार सम्बन्धी भयावह आशंकाओं को सोलहों आना उत्तरदायी समझते थे। मैं यह अस्वीकार न करूंगा कि इन सारी परिस्थितियों ने पेरिस तथा ज़िलों में उद्योग की कतिपय शाखाओं में मन्दी का असर पैदा किया था। लेकिन बहरसूरत राजनीतिक अवस्थाओं का यह प्रभाव केवल स्थानिक और नगण्य था। इस कथन की पुष्टि में इससे अधिक कुछ क़हने की आवश्यकता नहीं है कि व्यापार में अक्तूबर के मध्य से, यानी ठीक ऐसे समय सुधार होने लगा जबकि राजनीतिक स्थिति बदतर हो रही थी, राजनीतिक आसमान में बादल छा रहे थे और एलिज़े प्रासाद से किसी भी क्षण वज्रपात होने की प्रत्याशा की जा रही थी। जहां तक दूसरी चीज़ों का सवाल है, फ़ांसीसी पूंजीपति, जिनकी "दक्षता, ज्ञान, आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और बौद्धिक साधन" वस्तुतः उनकी नाक की नोक से आगे नहीं जाते, यदि आंख खोलकर देखते तो अपने व्यावसायिक दुःख का कारण लन्दन की औद्योगिक प्रदर्शनी[119] के दौरान अपनी नाक के ठीक नीचे पा सकते थे। जब फ़ांस में कारख़ाने बन्द हो रहे थे तो इंगलैंड में व्यापारी दिवालिया हो रहे थे। जब फ़ांस में अप्रैल और मई में औद्योगिक हौल अपनी चरम सीमा पर पहुंचा हुआ था तो इन्हीं महीनों में इंगलैंड में व्यापारिक हौल अपनी चरमावस्था में था। जिस तरह फ़ांस का ऊन उद्योग मन्दी का शिकार था, उसी तरह इंगलैंड का ऊन उद्योग भी मन्दी का शिकार था। जिस प्रकार फ़ांस के रेशम उद्योग को नुक़सान हो रहा था, उसी

तरह इंगलैंड के रेशम उद्योग को भी नुक़सान हो रहा था। इंगलैंड की सूती मिलें अवश्य अब भी काम कर रही थीं, पर उन्हें अब वही मुनाफ़ा नहीं हो रहा था जो १८४९ और १८५० में हुआ था। अन्तर केवल इतना था कि फ़ांस का संकट उद्योग से सम्बन्धित था और इंगलैंड का संकट वाणिज्य से; कि जहां फ़्रांस में कारख़ाने बेकार हो रहे थे, वहां इंगलैंड के कारख़ाने अपना कारबार फैला रहे थे, पर पिछले वर्षों की तुलना में कम अनुकूल अवस्थाओं के अन्तर्गत; कि जहां फ़्रांस में सबसे ज़्यादा धक्का निर्यात को लगा था, वहां इंगलैंड में सबसे ज़्यादा धक्का आयात हो लगा था। दोनों का समान कारण, जो स्वभावत: फ़्रांस के राजनीतिक आकाश की सीमाओं के अन्दर नहीं पाया जा सकता, स्पष्ट था। १८४९ और १८५० के वर्ष सर्वाधिक भौतिक समृद्धि के और अति-उत्पादन के वर्ष थे, जो १८५१ में ही पहचाना जा सका। इस वर्ष के आरम्भ में इस अति-उत्पादन को आगामी औद्योगिक प्रदर्शनी के कारण एक और विशेष बल प्राप्त हुआ था। इसके अलावा निम्नलिखित विशेष परिस्थितियां भी थीं: पहले १८५० और १८५१ में कपास की फ़सल का अंशत: मारा जाना, और फिर आशातीत बड़ी फ़सल की प्राप्ति का निश्चय हो जाना; पहले कपास की क़ीमत का उठना, फिर अकस्मात् गिर जाना, अर्थात् कपास की क़ीमतों का चढ़ाव-उतार। कच्चे रेशम की फ़सल, कम से कम फ़्रांस में, औसत से भी कम हुई थी। और अंतिम बात यह कि १८४८ के बाद से ऊन के कारख़ानों का काम इतना अधिक बढ़ गया था कि ऊन की पैदावार उसके साथ क़दम मिलाकर नहीं चल सकती थी और कच्चे ऊन की क़ीमत कारख़ाने में तैयार ऊनी माल की क़ीमत से अनुपातत: बहुत अधिक हो गयी थी। इस प्रकार विश्व बाज़ार के तीन उद्योगों के कच्चे मालों में हम व्यापारिक गतिरोध के तीन मसाले पाते हैं। इन विशेष परिस्थितियों के अलावा, १८५१ का प्रतीयमान संकट केवल एक ठहराव था, जो अति-उत्पादन और अत्यधिक सट्टेबाज़ी औद्योगिक चक्र पूरा करने के दौरान लाते हैं, क़ब्ल इसके कि वे इस चक्र के आख़िरी दौर को अपनी समूची शक्ति लगा दौड़कर पार करके फिर अपने प्रस्थान-बिन्दु, **आम व्यापारिक संकट** पर लौट आयें। व्यापार के इतिहास की इन अवधियों में इंगलैंड में व्यापारिक दिवालियेपन की बीमारी फैल जाती है, और फ़्रांस में स्वयं उद्योग ठप हो जाता है, क्योंकि उसे सभी बाज़ारों में इंगलैंड की प्रतियोगिता के कारण, जो इस समय असह्य हो जाती है, अंशत: पीछे हटने को विवश होना पड़ता है, और अंशत: एक विलास उद्योग की हैसियत से प्रत्येक व्यापारिक गतिरोध का ख़ास तौर पर सारा धक्का सहना पड़ता है।

अतः आम संकट के अलावा फ़्रांस को अपने राष्ट्रीय व्यापारिक संकटों से भी गुज़रना पड़ता है जो यद्यपि राष्ट्रीय हैं, तथापि राष्ट्रीय प्रभावों से अधिक विश्व बाज़ार की आम हालत से निर्धारित और निर्दिष्ट होते हैं। यहां अंग्रेज पूंजीपतियों की समझदारी की फ़्रांसीसी पूंजीपतियों के पूर्वाग्रह से तुलना करना अरोचक न होगा। १८५१ की अपनी वार्षिक व्यापारिक रिपोर्ट में लिवरपूल की एक सबसे बड़ी कोठी ने लिखा है:

> "अभी समाप्त हुए वर्ष ने उसके आरम्भ के समय की गयी आशाओं को जैसा पूर्णतः ग़लत साबित किया है, वैसा बहुत कम हुआ है। जहां सभी प्रायः एकमत से इस वर्ष बड़ी समृद्धि की आशा कर रहे थे, वहां ऐसी पस्तहिम्मती हाथ लगी है जिसकी पिछली चौथाई शताब्दी के अन्दर मिसाल नहीं। बेशक उपरोक्त बात व्यापारिक वर्गों पर लागू है, औद्योगिक पर नहीं। तो भी वर्ष के आरम्भ में इस विपर्यय की प्रत्याशा करने का पर्याप्त आधार विद्यमान था – उपज के स्टॉक साधारण थे, पूंजी की प्रचुरता थी, अनाज सस्ता था, ख़ूब अच्छी फ़सल सुनिश्चित हो चुकी थी, यूरोपीय महाद्वीप में अटूट शान्ति थी और देश के अन्दर कोई राजनीतिक या माली उथल-पुथल न थी; वस्तुतः वाणिज्य के पंख कभी इतने अधिक स्वच्छन्द न थे... प्रश्न उठता है कि इस विनाशकारी परिणाम का स्रोत क्या हो सकता है? हमारा विश्वास है कि इसका स्रोत आयात और निर्यात दोनों में **अति-व्यापार का होना है।** यदि हमारे व्यापारी अपनी कार्य स्वतंत्रता पर अधिक सख़्ती से रोक नहीं लगायेंगे, तो हर तीन साल में संकट का आगमन ही हमारे ऊपर अंकुश लगायेगा।"

अब ज़रा फ़्रांसीसी पूंजीपतियों की तसवीर देखिये। व्यापार की धुन में पागल का दिमाग़ व्यापारिक संकट के इस चक्कर में पड़कर यंत्रणात्रस्त हो रहा है; राज्य-पर्युत्क्षेपण और सर्व-मताधिकार की पुनःस्थापना की अफ़वाहों, संसद और कार्यकारी सत्ता के संघर्षों, आर्लियानिस्टों और लेजिटिमिस्टों के फ़्रोन्द युद्ध, फ़्रांस के दक्षिण में कम्युनिस्ट षड्यंत्रों, निएव्र और शेरा ज़िलों में तथाकथित जाकेरी[120], राष्ट्रपति पद के विभिन्न उम्मीदवारों के इश्तिहारों, अख़बारों के बाज़ारू नारों, जनतंत्रवादियों के शस्त्रबल से संविधान और सर्व-मताधिकार की रक्षा करने की धमकियों और देश के बाहर in partibus निर्वासित नायकों के धर्मोपदेशों से, जो घोषणा कर रहे थे कि मई १८५२ के दूसरे रविवार को दुनिया का अन्त हो जायेगा – इन सब से उनका सिर चकरा रहा है और दिमाग़ काम नहीं कर रहा है। इस चित्र को देखिये और तब आपकी समझ में आ जायेगा कि विलयन,

संशोधन, स्थगन, संविधान, षड्यन्त्र, गठबन्धन, निर्वासन, सत्ता-अपहरण और क्रान्ति के इस अकथनीय एवं कानों के पर्दे फाड़ देनेवाले हंगामे के बीच पूंजीपति क्यों पागल होकर अपने संसदीय जनतंत्र पर बरस पड़ता है: "**अनन्त आतंक की अपेक्षा आतंक के साथ अंत ही अच्छा है!**"

बोनापार्त ने इस पुकार का अर्थ समझा। उसकी अवबोधशक्ति ऋणदाताओं के बढ़ते हुए तक़ाज़ों के कारण विशेष तीव्र हो गयी थी। ऋणदाताओं को यह लगता था कि प्रत्येक सूर्यास्त के साथ, जो राष्ट्रपतित्व के अन्तिम दिन, मई १८५२ के दूसरे रविवार को समीप ला रहा था, आकाशीय ग्रहों की गति उनकी पार्थिव हुंडियों को अस्वीकृत कर रही थी। वे पूरे ज्योतिषी बने हुए थे। राष्ट्रीय सभा ने बोनापार्त की इस आशा पर पानी फेर दिया था कि उसकी सत्तावधि वैधानिक रूप से बढ़ा दी जायेगी; और प्रिंस ऑफ़ ज्वानवील की उम्मीदवारी ने अधिक आगा-पीछा करने का रास्ता रोक दिया था।

यदि आगामी घटनाओं की प्रतिच्छाया पहले ही दिखायी देने लगती है तो बोनापार्त के राज्य-पर्युत्क्षेपण की प्रतिच्छाया काफ़ी पहले से ही दिखायी देने लगी थी। २९ जनवरी १८४९ को ही, अर्थात् उस समय जब उसके निर्वाचन को मुश्किल से महीना भर बीता था, उसने शांगार्नियें के सामने इस सम्बन्ध में सुझाव रखा था। १८४९ की गर्मियों में उसके अपने प्रधानमंत्री ओदिलां बारो ने राज्य-पर्युत्क्षेपण की नीति की छद्म रूप में और १८५० की शीतऋतु में थियेर ने खुले रूप में बात की थी। मई १८५१ में पेर्सिनी ने एक बार फिर राज्य-पर्युत्क्षेपण के लिए शांगार्नियें को फोड़ने की कोशश की। «*Messager de l'Assemblée*»[121] ने इन वार्त्ताओं की ख़बर छापी थी। संसद में जब भी तूफ़ान उठता, बोनापार्ती अख़बार राज्य-पर्युत्क्षेपण की धमकियां देते थे, और ज्यों-ज्यों संकट समीप आता जाता था त्यों-त्यों उनकी आवाज़ तेज़ होती जाती थी। बोनापार्त "छबीली भीड़" के मर्द-औरतों को लेकर हर रात अपने यहां जो रंगरलियां आयोजित करता था, उनमें आधी रात होते ही, जब शराब की घूंट पर घूंट चढ़ा चुकने के बाद जबानों पर से लगाम हट जाती और कल्पना उद्दीप्त हो जाती थी तो अगले ही दिन राज्य-पर्युत्क्षेपण करने की योजनाएं तय की जाती थीं। म्यानों से तलवारें निकल पड़तीं, गिलास खनकाये जाते, राष्ट्रीय सभा के सदस्य खिड़की से बाहर उछाल दिये जाते और बोनापार्त के कन्धों पर शाही चोग़ा आ जाता था। अगले दिन भूत उतर जाता था, और आश्चर्यचकित पेरिस को मौन रखना न जाननेवाली दरबार की

देवियों और नादान मुसाहिबों से यह पता लगता था कि वह एक बहुत बड़े ख़तरे से फिर बचा है। सितम्बर और अक्तूबर के महीनों में coup d'état की अफ़वाहें, एक के बाद एक, लगातार फैल रही थीं। इसके साथ ही छाया में रंग भरता जा रहा था, जैसे कोई रंगबिरंगा डेगरोटाइप हो। यूरोपीय दैनिक पत्रों की सितम्बर और अक्तूबर की प्रतियां उठा लीजिये, आपको वहां शब्दशः निम्नांकित सूचना जैसी सूचनाएं मिलेंगी : "पेरिस में अफ़वाह गर्म है कि राज्य-पर्युत्क्षेपण होनेवाला है। राजधानी रातोंरात फ़ौजों से पाट दी जायेगी, और अगले दिन सुबह फ़रमान जारी हो जायेंगे जिनके द्वारा राष्ट्रीय सभा भंग कर दी जायेगी, सेन ज़िले में घेरे की हालत घोषित की जायेगी, सर्व-मताधिकार फिर लागू किया जायेगा और जनता से अपील की जायेगी। कहा जाता है कि बोनापार्त ऐसे मंत्रियों की तलाश कर रहा है जो इन ग़ैरक़ानूनी आज्ञप्तियों की तामील करेंगे।" ऐसी सूचनाओं के अंत में सदा ये महत्त्वपूर्ण शब्द टंके होते थे: "**स्थगित हो गया।**" राज्य-पर्युत्क्षेपण की बात शुरू से ही बोनापार्त के दिमाग़ में जमी हुई थी। इस धारणा को लेकर ही वह फ़्रांस वापस आया था। यह उसके दिमाग़ पर इस क़दर हावी थी कि उसकी बात बारम्बार धोखे से उसके मुंह से निकल जाती थी। साथ ही वह इतना कमज़ोर था कि उसी तरह बारम्बार इस धारणा का त्याग भी करता जाता था। राज्य-पर्युत्क्षेपण की छाया पेरिस वालों के लिए एक हौवे के रूप में इतनी परिचित बन गयी थी कि जब वह साकार रूप धारण करके उनके सम्मुख उपस्थित हुई तो वे इस पर यक़ीन करने को ही तैयार न थे। अतः राज्य-पर्युत्क्षेपण को जिस चीज़ ने सफल बनने दिया, वह १० दिसम्बर समाज के सरदार की मौन साधना न थी, और न ही वह राष्ट्रीय सभा की ग़फ़लत थी। वह **बोनापार्त के** अविवेक के बावजूद और **राष्ट्रीय सभा की** पूर्वजानकारी के साथ सफल हुआ; वह अपने पहले के घटनाक्रम का आवश्यक, अनिवार्य परिणाम था।

१० अक्तूबर को बोनापार्त ने सर्व-मताधिकार फिर लागू करने का अपना निर्णय अपने मंत्रियों को सूचित किया; १६ अक्तूबर को उन्होंने अपने त्यागपत्र उसके हवाले किये; २६ तारीख़ को पेरिस को तोरिनी मंत्रिमण्डल की स्थापना का समाचार मिला। साथ ही साथ पुलिस-प्रीफ़ेक्ट कार्लिये को हटाकर मोपा इस पद पर नियुक्त किया गया। प्रथम सैनिक डिवीजन के अध्यक्ष मान्यान ने सबसे विश्वस्त रेजीमेंटें पेरिस में लाकर एकत्रित कीं। ४ नवम्बर को राष्ट्रीय सभा ने फिर अपना अधिवेशन आरम्भ किया। उसने बस इतना ही किया कि जिस प्रक्रम

से वह गुज़र चुकी थी उसकी संक्षिप्त एवं सारांश रूप में आवृत्ति की और यह सिद्ध कर दिया कि वह मरने के बाद ही दफ़नायी गयी है।

कार्यकारी सत्ता के साथ संघर्ष में पहला पद जो उसने अपने हाथ से निकल जाने दिया, वह मंत्रिमण्डल था। तोरिनी मंत्रिमण्डल को, जो एक छाया मंत्रिमण्डल मात्र था, सर्वस्व रूप में स्वीकार करके उसे अपनी यह क्षति संजीदगी के साथ स्वीकार करनी पड़ी। जब जिरो ने नये मंत्रियों के नाम पर अपने को स्थायी आयोग के समक्ष उपस्थित किया था तो आयोग ने हंसी से उसका अभिनन्दन किया था। ऐसा दुर्बल मंत्रिमण्डल और सर्व-मताधिकार को फिर लागू करने जैसा बलिष्ठ पग! पर उसका तो उद्देश्य ही यह था कि संसद द्वारा कुछ न कराया जाये, संसद के विरुद्ध सब कुछ कराया जाये।

राष्ट्रीय सभा को अपने नये अधिवेशन के पहले ही दिन बोनापार्त का सन्देश प्राप्त हुआ जिसमें उसने सर्व-मताधिकार की पुनःस्थापना और ३१ मई १८५० के क़ानून को रद्द करने की मांग की थी। उसी दिन उसके मंत्रियों ने इस आशय की एक आज्ञप्ति पेश की। राष्ट्रीय सभा ने मंत्रिमण्डल के फ़रमान का यह प्रस्ताव कि आज्ञप्ति को अत्यन्त आवश्यक समझकर उस पर विचार किया जाये तत्काल अस्वीकृत कर दिया और १३ नवम्बर को स्वयं क़ानून को भी ३४८ के विरुद्ध ३५५ वोटों से नामंजूर कर दिया। इस प्रकार उसने एक बार फिर जनता से मिले आदेशपत्र को फाड़ फेंका; उसने एक बार फिर इस बात की पुष्टि की कि उसने अपने को जनता के स्वतंत्र रूप में निर्वाचित प्रतिनिधि के बदले एक वर्ग की बलापहारी संसद बना लिया है; उसने एक बार फिर स्वीकार किया कि संसद-रूपी मस्तक को राष्ट्र-रूपी शरीर से जोड़नेवाले पुट्ठों को उसने अपने हाथ से काटकर दो टुकड़े कर दिये हैं।

यदि कार्यकारी सत्ता ने सर्व-मताधिकार पुनःस्थापित करने के अपने प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रीय सभा की ओर से जनता से अपील की थी तो विधिकारी सत्ता ने अपने केस्टर्स बिल द्वारा जनता की ओर से फ़ौज से अपील की। केस्टर्स बिल का उद्देश्य सेना को सीधे-सीधे बुलाने का संसद का अधिकार पक्का करना, एक संसदीय फ़ौज क़ायम करना था। जहां इस विधेयक के द्वारा उसने सेना को अपने और जनता के बीच, अपने और बोनापार्त के बीच एक पंच का दर्जा दिया, जबकि सेना को निर्णायक राज्य-शक्ति माना, वहीं दूसरी ओर उसे इस तथ्य की भी पुष्टि करनी पड़ी कि इस शक्ति पर प्रभुत्व का दावा वह एक लम्बे अर्से से छोड़ चुकी है। सेना को सीधे-सीधे बुला भेजने के बदले सेना

को बुलाने के अपने अधिकार पर बहस करके उसने स्वयं अपने अधिकार के सम्बन्ध में अपना संशय प्रगट कर दिया। केस्टर्स बिल को नामंजूर करके उसने अपनी अशक्तता सार्वजनिक रूप में स्वीकार की। यह विधेयक गिर गया क्योंकि समर्थकों के पास बहुमत के लिए १०८ वोट कम थे। इस प्रकार पर्वत दल ने ही इस प्रश्न का निर्णय किया। उसने अपने को बुरिडान के गधे की स्थिति में पाया, अन्तर केवल यह था कि बुरिडान का गधा घास के दो गट्ठों के बीच खड़ा था और उसे यह तय करना था कि कौन गट्ठा ज़्यादा मज़ेदार है, जबकि पर्वत दल लप्पड़ों-थप्पड़ों की दो बौछारों के बीच खड़ा था और उसे यह तय करना था कि कौन बौछार अधिक सख़्त होगी। एक ओर शांगार्निये का भय था, दूसरी ओर बोनापार्त का। मानना होगा कि स्थिति किसी उदात्त नायक के उपयुक्त न थी।

१८ नवम्बर को म्युनिसिमल चुनाव सम्बन्धी क़ानून में अमन की पार्टी द्वारा इस आशय का एक संशोधन प्रस्तावित किया गया कि म्युनिसिपल मतदाताओं के लिए तीन वर्षों के बदले एक वर्ष का अधिवास पर्याप्त होगा। संशोधन केवल एक वोट से गिर गया, किंतु यह एक वोट तत्काल एक भूल साबित हुआ। अपने विरोधी गुटों में विभक्त होकर अमन की पार्टी बहुत पहले ही अपना स्वतंत्र संसदीय बहुमत गंवा चुकी थी। अब पता चला कि संसद में कोई बहुमत है ही नहीं। राष्ट्रीय सभा **काम कर सकने में अक्षम हो गयी है**। उसके परमाणु-रूपी संघटकों को जोड़कर रखनेवाली कोई ताक़त नहीं रह गयी है; उसका दम निकल चुका है; वह मर चुकी थी।

अन्ततः क़हर टूटने के कुछ ही दिन पूर्व पूंजीपतियों के ससंदेतर समुदाय ने संसद के अन्दर के पूंजीपतियों के संग अपनी फूट की बड़ी संजीदगी के साथ एक बार फिर पुष्टि की। थियेर ने, जो संसद का एक वीर नायक होने के नाते संसदीय जड़वामनता नामक असाध्य रोग से अन्यों की अपेक्षा अधिक आक्रान्त था, संसद के निधन के बाद, राज्य परिषद् के साथ मिलकर उत्तरदायित्व क़ानून के रूप में एक नया, संसदीय कुचक्र रचा था जिस के द्वारा राष्ट्रपति को संविधान की सीमाओं में मजबूती से जकड़ दिया जाता। जिस प्रकार बोनापार्त ने १५ सितम्बर को पेरिस के नये मार्केट भवन का शिलान्यास करते समय, भवन की देवियों, अर्थात् मछुवारिनों को—यह सच है कि जहां तक वास्तविक शक्ति का प्रश्न है, एक मछुवारिन सत्रह बुर्गग्राफ़ों से बढ़-चढ़ कर है—किसी नये माज़ानिएलो की भांति, मंत्रमुग्ध कर दिया था; और जिस प्रकार उसने केस्टर्स बिल पेश होने के बाद एलिज़े प्रासाद में आमन्त्रित लेफ़्टिनेंटों का मन मोह लिया था,

उसी प्रकार उसने २५ नवम्बर को सर्कस मैदान में लन्दन की औद्योगिक प्रदर्शनी में जीते पुरस्कार पदकों के वितरण के अवसर पर औद्योगिक पूंजीपतियों का मन बिल्कुल जीत लिया। *«Journal des Débats»* द्वारा प्रकाशित उसके इस अवसर के भाषण की रिपोर्ट के महत्त्वपूर्ण अंश को मैं यहां उद्धृत कर रहा हूं:

> "ऐसी अप्रत्याशित सफलताएं प्राप्त करने के बाद मेरा यह कहना उचित होगा कि हमारा फ़्रांसीसी जनतंत्र यदि एक ओर बाज़ारू लीडरों की लफ़्फ़ाज़ी और दूसरी ओर राजतंत्रवादियों के मतिविभ्रम द्वारा बार-बार विचलित होने के बजाय शान्तिपूर्वक अपने सच्चे हितों का अनुसरण तथा अपनी संस्थाओं का पुनर्गठन कर पाये तो वह कितना महान् हो सकता है! (चारों ओर के हर से बार-बार ज़ोरदार, तूफ़ानी तालियां।) राजतंत्रवादी भ्रान्तियों से समस्त प्रगति और उद्योग की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शाखा में विघ्न पड़ रहा है। प्रगति के बदले हर ओर संघर्ष ही संघर्ष है। हम देखते हैं कि जो लोग पहले राजतंत्रवादी सत्ता और परमाधिकार के अत्यधिक उत्साही समर्थक थे, वे ही आज कन्वेंशन की हिमायत केवल इसलिए करने लगे हैं कि सर्व-मताधिकार से उद्भूत सत्ता को कमजोर कर दिया जाये। (तालियों की लगातार गड़गड़ाहट।) हम देखते हैं कि जिन लोगों को क्रान्ति से सबसे अधिक क्षति उठानी पड़ी, जिन्होंने क्रान्ति पर सबसे अधिक दुःख प्रगट किया, वे ही एक नयी क्रान्ति भड़काने का प्रयत्न कर रहे हैं, और केवल इसलिए कि राष्ट्र की इच्छाशक्ति को बेड़ियों में जकड़ सकें ... मैं आपको भविष्य में शान्ति का वचन देता हूं" आदि, आदि। ("शाबाश, शाबाश", शाबाशियों का तूफ़ान।)

इस प्रकार औद्योगिक पूंजीपतियों ने ख़ुशामदी टट्टुओं की तरह २ दिसम्बर के राज्य-पर्युत्क्षेपण का, संसद के हनन् का, ख़ुद अपनी हुकूमत के पतन का, बोनापार्त के एकाधिपत्य का तालियां पीटकर अभिनन्दन किया। २५ नवम्बर की तालियों की गड़गड़ाहट का जवाब ४ दिसम्बर की तोपों की गड़गड़ाहट से मिला, और सबसे अधिक तालियां पीटनेवाले श्री सालान्द्रूज़ के मकान पर सबसे ज़्यादा गोले दागे गये।

जब क्रॉमवेल ने दीर्घ पार्लमेंट[122] को भंग किया था तो इस प्रकार कि वह अकेला ही सदन में गया और अपनी घड़ी निकालकर देखता रहा कि पार्लमेंट उसके द्वारा निश्चित अवधि से एक मिनट भी ज़्यादा चलने न पाये, और पार्लमेंट के हर मेम्बर का ज़ोर-ज़ोर से मखौल उड़ाते हुए उसे सदन से बाहर निकाला था।

नेपोलियन जो क्रॉमवेल का ही एक लघु-रूपी अवतार था, कम से कम १८वीं ब्रूमेर को स्वयं विधान सभा में गया और उसे उसके मृत्युदण्ड का फ़ैसला पढ़कर — यद्यपि पढ़ते समय उसकी आवाज़ लड़खड़ा रही थी — सुनाया था। पर दूसरे बोनापार्त ने, जिसके साथ एक अतिरिक्त बात यह थी कि वह एक ऐसी कार्यकारी सत्ता का स्वामी था जो क्रॉमवेल अथवा नेपोलियन की कार्यकारी सत्ता से बहुत भिन्न थी, अपना आदर्श विश्व इतिहास के पृष्ठों से न प्राप्त कर १० दिसम्बर समाज की परम्परा से, फ़ौजी अदालत की परम्परा से प्राप्त किया। उसने बैंक ऑफ़ फ़्रांस से ढाई करोड़ फ़्रैंक लूटे, दस लाख देकर जनरल मान्यान को ख़रीदा, हर सिपाही को १५ फ़्रैंक देकर और शराब पिलाकर ख़रीदा, अपने हवालियों-मवालियों के साथ रात में चोरों की तरह दबे पांव आया, संसद के सबसे ख़तरनाक नेताओं के घरों पर छापा मरवाया, कैवेन्याक, लामारिसियेर, लेफ़्लो, शांगार्नियें, शार्रा, थियेर, बाज़ आदि को अपने शयनागारों से घसीट मंगाया, पेरिस के मुख्य चौकों और संसद भवन पर फ़ौज बैठा दी और तड़के ही शहर की दीवारों पर बाज़ारू ढंग के इश्तहार लगवा दिये जिनमें राष्ट्रीय सभा और राज्य परिषद् के भंग किये जाने, सर्व-मताधिकार के फिर लागू किये जाने और सेन ज़िले में घेरे की हालत की घोषणा थी। इसी प्रकार, कुछ दिनों बाद उसने *«Moniteur»* में एक झूठी दस्तावेज़ छपवायी जिसमें कहा गया था कि प्रभावशाली संसद सदस्यों ने उसके गिर्द एकजुट होकर एक राजकीय परामर्शदात्री परिषद बनायी है।

अवशिष्ट संसद ने, जिसमें मुख्यतः लेजिटिमिस्ट और आर्लियानिस्ट थे, दसवें ज़िले के मेयर भवन में बैठी, "जनतंत्र ज़िन्दाबाद!" के नारों के बीच बोनापार्त को पदच्युत करने का प्रस्ताव पास किया, सदन के सामने भौचक खड़ी भीड़ को भाषणों द्वारा ललकारा, पर सब व्यर्थ। अन्त में अपनी निशानेबाज़ी के लिए मशहूर अफ़्रीकी सिपाहियों ने उन्हें गिरफ़्तार कर पहले द'ओर्से की बारिकों में और उसके बाद क़ैदी गाड़ियों में बन्द कर माज़ा, हाम और वीन्सेन के जेलख़ानों में पहुंचा दिया। इस प्रकार अमन की पार्टी, विधान सभा और फ़रवरी क्रान्ति का अन्त हुआ।

इस कहानी को समाप्त करने से पहले, आइये, हम फ़रवरी क्रान्ति के इतिहास का संक्षेप में सिंहावलोकन करें:

१. प्रथम काल। २४ फ़रवरी से ४ मई १८४८। फ़रवरी काल। प्रस्तावना। सार्वत्रिक बन्धुत्व का झूठा ढिंढोरा।

२. द्वितीय काल। जनतंत्र के और राष्ट्रीय संविधान सभा के गठन का काल।

१) ४ मई से २५ जून १८४८। सभी वर्गों का सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध संघर्ष। जून के दिनों में सर्वहारा वर्ग की पराजय।

२) २५ जून से १० दिसम्बर १८४८। विशुद्ध पूंजीवादी जनतंत्रवादियों का एकाधिपत्य। संविधान का प्रारूप तैयार किया जाना। पेरिस में घेरे की स्थिति का एलान। १० दिसम्बर को बोनापार्त के राष्ट्रपति निर्वाचित किये जाने के साथ पूंजीवादी एकाधिपत्य का रद्द किया जाना।

३) २० दिसम्बर १८४८ से २८ मई १८४९। संविधान सभा का बोनापार्त के साथ और उसके साथ संश्रित अमन की पार्टी के साथ संघर्ष। संविधान सभा की समाप्ति। जनतंत्रवादी पूंजीपतियों का पतन।

३. तृतीय काल। वैधानिक जनतंत्र का और राष्ट्रीय विधान सभा का काल।

१) २८ मई १८४९ से १३ जून १८४९। निम्नपूंजीपतियों का पूंजीपतियों के और बोनापार्त के साथ संघर्ष। निम्नपूंजीवादी जनवाद की पराजय।

२) १३ जून १८४९ से ३१ मई १८५०। अमन की पार्टी का संसदीय एकाधिपत्य। अमन की पार्टी ने सर्व-मताधिकार को समाप्त कर अपना शासन पूर्ण कर लिया, पर संसदीय मंत्रिमण्डल से हाथ धो बैठी।

३) ३१ मई १८५० से २ दिसम्बर १८५१। संसदीय पूंजीपतियों और बोनापार्त में संघर्ष।

क) ३१ मई १८५० से १२ जनवरी १८५१। सेना की सर्वोच्च कमान संसद के हाथ से निकल गयी।

ख) १२ जनवरी से ११ अप्रैल १८५१। प्रशासकीय सत्ता फिर अपने हाथ में करने के प्रयास में संसद ने मुंह की खायी। अमन की पार्टी ने अपना स्वतंत्र संसदीय बहुमत गंवा दिया। जनतंत्रवादियों और पर्वत दल के साथ उसका गठबन्धन।

ग) ११ अप्रैल से ९ अक्तूबर १८५१। संशोधन, विलयन और स्थगन की चेष्टाएं। अमन की पार्टी अपने अलग-अलग संघटक तत्त्वों में बिखर गयी। पूंजीवादी संसद और अख़बारों तथा अन्य पूंजीपतियों के बीच दरार का पड़ जाना स्पष्ट हो गया।

घ) ९ अक्तूबर से २ दिसम्बर १८५१। संसद और कार्यकारी सत्ता के बीच खुली दरार। संसद अपनी मरण-पूर्व की क्रिया सम्पन्न करके काल-कवलित होती है—अपने वर्ग, सेना तथा अन्य सभी वर्गों द्वारा परित्यक्त होकर। संसदीय राज और पूंजीवादी शासन का निधन। बोनापार्त की विजय। साम्राज्य की पुनःस्थापना का हास्यास्पद स्वांग।

७

फ़रवरी क्रान्ति की देहरी पर **सामाजिक जनतन्त्र** एक नारे के रूप में, एक भविष्यवाणी के रूप में प्रगट हुआ। १८४८ के जून के दिनों में वह **पेरिस के सर्वहारा** के ख़ून में डुबा दिया गया; पर नाटक के आगे के अंकों में वह छाया की तरह निरंतर मंडराता रहा। इसके बाद **जनवादी जनतन्त्र** ने अपने आगमन की सूचना दी। १३ जून १८४९ को अपने **निम्नपूंजीपतियों** के साथ, जो मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए थे, वह भी तीन तेरह हो गया, पर भागते हुए वह दुगुने जोश के साथ गाल बजाता रहा। इस बार **संसदीय जनतन्त्र** ने पूंजीपतियों के साथ पूरे रंगमंच पर क़ब्जा जमाया। उसने अपने जीवन का पूर्ण आनंद उठाया; पर २ दिसम्बर १८५१ ने संश्रयी राजतंत्रवादियों की "जनतंत्र ज़िन्दाबाद!" की करुण चीख-पुकार के बीच उसे भी दफ़ना दिया।

फ़्रांसीसी पूंजीपति श्रमशील सर्वहारा के प्रभुत्व से भड़कते थे; उन्होंने लंपट-सर्वहारा का प्रभुत्व क़ायम कराया, जिसका सरताज १० दिसम्बर समाज का सरदार था। पूंजीपति लाल अराजकता के भयंकर आतंक का भावी ख़तरा दिखाकर समूचे फ़्रांस को भयभीत किये हुए थे; बोनापार्त ने उनके लिए इस भविष्य का मूल्य बहुत कम कर दिया जब उसने ४ दिसम्बर को बूलवार्ड मोंमार्त्र और बूलवार्ड द'इतालिएं के प्रमुख पूंजीपतियों को अपने घरों की खिड़कियों में ही मद्य प्रेरित अमन की फ़ौज द्वारा गोलियों का शिकार बनवाया। उन्होंने तलवार को पुण्य पद प्रदान किया था तलवार आज उनके ऊपर शासन कर रही है। उन्होंने क्रान्तिकारी अख़बारों का गला घोंटा; उनके अख़बारों का गला घोंट दिया गया है। उन्होंने जन-सभाओं पर पुलिस की निगरानी क़ायम की; उनके बैठकख़ानों पर पुलिस की निगरानी क़ायम है। उन्होंने जनवादी राष्ट्रीय गार्ड को विघटित किया; उनका अपना राष्ट्रीय गार्ड विघटित कर दिया गया है। उन्होंने घेरे की स्थिति का एलान किया था; अब उन्हीं पर घेरा डाल दिया गया है। उन्होंने जूरियों की जगह सैनिक आयोग स्थापित किये थे; उनके अपने जूरियों की जगह भी सैनिक आयोग क़ायम हैं। उन्होंने जन-शिक्षा को पादरियों के अधीनस्थ बनाया था; पादरियों ने उन्हें अपनी शिक्षा के अधीनस्थ बनाया है। उन्होंने बिना मुक़दमा चलाये लोगों को कालापानी भेजा था; उन्हें बिना मुक़दमा चलाये कालापानी भेजा जा रहा है। उन्होंने समाज की हर हलचल का राज-दण्ड से दमन किया था; उनके समाज की हर हलचल का राज-दण्ड द्वारा दमन किया जा रहा है।

अपनी तिजोरियों को सुरक्षित रखने के जोश में उन्होंने अपने राजनीतिज्ञों और लेखकों के विरुद्ध विद्रोह किया था ; उनके राजनीतिज्ञ और लेखक बरतरफ़ कर दिये गये हैं, पर अब, जबकि उनका मुंह बन्द हो चुका और क़लम टूट चुकी है तो उनकी तिजोरियां लूटी जा रही हैं। पूंजीपति क्रांति को लक्ष्य कर वे शब्द कहा करते थे जो सन्त आर्सीनियस ने ईसाइयों से कहे थे : « Fuge, tace, quiesce! भागो, चुप रहो, शान्त रहो!" बोनापार्त भी पूंजीपतियों से कह रहा है : «Fuge, tace, quiesce! भागो, चुप रहो, शान्त रहो!"

नेपोलियन ने कहा था :«Dans cinquante ans, l'Europe sera républicaine ou cosaque»।* फ़ांस के पूंजीपतियों ने बहुत पहले ही नेपोलियन की इस विकल्पात्मक समस्या का हल ढूंढ़ निकाला था। यह हल था «république cosaque»।** ऐसी बात नहीं कि पूंजीवादी जनतंत्र नामक कलाकृति को किसी सिर्सेया ने तिलस्मी जादू के ज़ोर से पैशाचिक आकार दे दिया हो। सिवा सम्भ्रान्तता के आवरण के इस जनतंत्र ने कुछ भी नहीं गंवाया है। वर्तमान फ़्रांस*** का आकार संसदीय जनतंत्र में निहित था। केवल संगीन के एक वार की ज़रूरत थी, बुलबुला फूट गया और भीतर छिपा दानव सब की नज़रों के सामने प्रगट हो गया।

२ दिसम्बर के बाद पेरिस के सर्वहारा ने बग़ावत क्यों नहीं की?

पूंजीपतियों का तख़्ता उलटने का अभी आदेश ही जारी हुआ था, आदेश क्रियान्वित नहीं हुआ था। यदि इस समय सर्वहारा का कोई भी गंभीर विद्रोह हुआ होता तो पूंजीपतियों में नयी जान आ जाती, सेना के साथ उनका मेल हो जाता और मज़दूरों के लिए जून की पराजय की पुनरावृत्ति निश्चित हो जाती।

४ दिसम्बर को पूंजीपतियों और दूकानदारों ने सर्वहारा को लड़ने के लिए उकसाया। उस रोज़ शाम को राष्ट्रीय गार्ड के कई लशकरों ने अपनी वर्दियों में हथियारों से लैस होकर रणक्षेत्र में उतरने का वादा किया था। बात यह हुई थी कि पूंजीपतियों और दूकानदारों को इस बात का सुराग़ लग गया था कि बोनापार्त ने २ दिसम्बर की अपनी एक आज्ञप्ति में गुप्त मतदान रद्द कर दिया है और उनसे कहा गया है कि सरकारी रजिस्टर में अपने नाम के आगे "हां" या "नहीं"

---

* "पचास वर्षों में यूरोप या तो जनतांत्रिक हो जायेगा, या कज़्ज़ाक"। – सं०

** "कज़्ज़ाक जनतन्त्र"। – सं०

*** १८५१ के राज्य-पर्युत्क्षेपण के बाद। – सं०

लिखकर मतदान करें। ४ दिसम्बर के प्रतिरोध से बोनापार्त डर गया। रात को उसने पेरिस के सभी नुक्कड़ों पर इश्तहार लगवा दिये जिनमें गुप्त मतदान की फिर से बहाली की घोषणा की गयी थी। पूंजीपतियों और दूकानदारों को विश्वास हो गया कि उनका काम बन गया है। अगले दिन सुबह पूंजीपतियों और दूकानदारों का कहीं पता न था।

१-२ दिसम्बर की रात को बोनापार्त ने आकस्मिक आक्रमण करके पेरिस के सर्वहाराओं को उनके नेताओं, बैरीकेड कमांडरों से वंचित कर दिया था। सर्वहाराओं ने जो बिना नायकों की फ़ौज थे और जून १८४८ और १८४९ तथा मई १८५० की स्मृतियों के कारण पर्वत दल के झण्डे के तले लड़ना पसन्द नहीं करते थे, पेरिस के उस विप्लवकारी सम्मान की रक्षा का भार अपने हरावल दस्तों-गुप्त समितियों-पर छोड़ दिया जिसे पूंजीपतियों ने बिना किसी प्रतिरोधकारी चेष्टा के फ़ौजियों को इस तरह समर्पित कर दिया था कि बोनापार्त ने राष्ट्रीय गार्ड को निरस्त्र करने की दलील ताना मारते हुए यह दी कि हमें आशंका थी कि कहीं उसके हथियार अराजकतावादियों द्वारा स्वयं उसी के ख़िलाफ़ न इस्तेमाल किये जायें!

«C'est le triomphe complet et définitif du socialisme!»* गीज़ो ने इन शब्दों में २ दिसम्बर का चरित्रांकन किया। पर संसदीय जनतंत्र के पर्युत्क्षेपण में सर्वहारा क्रांति की विजय के बीज के छिपे होते हुए भी उसका तात्कालिक और प्रत्यक्ष परिणाम **संसद पर बोनापार्त की, विधिकारी सत्ता पर कार्यकारी सत्ता की, शब्दरहित शक्ति की शब्द की शक्ति पर विजय थी।** संसद में राष्ट्र ने अपनी सामान्य इच्छा को क़ानून का रूप दिया, यानी शासक वर्ग के क़ानून को अपनी सामान्य इच्छा का रूप दिया। कार्यकारी सत्ता के सामने वह अपनी प्रत्येक इच्छा का परित्याग करता है और एक विजातीय प्रकार की इच्छा के उच्चतर आदेश के अधिकार के सम्मुख समर्पण कर देता है। विधिकारी सत्ता के विपरीत कार्यकारी सत्ता राष्ट्र की स्वायत्तता के विपरीत उसकी परायत्तता अभिव्यक्त करती हैं। अतः फ़्रांस मानो एक वर्ग की स्वेच्छाचारिता से छूटकर एक व्यक्ति की स्वेच्छाचारिता के अधीन आ पड़ा है, और इतना ही नहीं, वह एक ऐसे व्यक्ति के अख़्तियार में आ पड़ा है जिसे कोई अख़्तियार नहीं है। संघर्ष का समाधान मानो इस ढंग से हुआ है कि सभी वर्गों ने जो समान रूप से

* "यह समाजवाद की पूर्ण और निर्णायक विजय है!" -सं०

अशक्त और समान रूप से मूक हैं, बन्दूक़ के कुन्दों के आगे घुटने टेक दिये हों।

किन्तु क्रान्ति अपना प्रक्रम पूरा करती है। वह अभी पापमुक्ति की मंज़िल से ही गुज़र रही है। वह अपना काम पूरी तरतीब से करती है। २ दिसम्बर १८५१ तक उसने तैयारी के अपने काम का आधा ख़त्म किया था; अब वह दूसरे आधे को ख़त्म कर रही है। पहले उसने संसदीय सत्ता को सर्वांगपूर्ण बनाया, इसलिए कि उसे उलट सके। अब, जब कि वह इस काम को पूरा कर चुकी है तो **कार्यकारी सत्ता** को सर्वांगपूर्ण बना रही है, उसे उसकी विशुद्धतम अभिव्यक्ति दे रही है, उसे पृथक् कर रही है और उसे अपना एकमात्र निशाना बनाकर खड़ा कर रही है ताकि विनाश की अपनी समग्र शक्ति लेकर उस पर टूट सके। जिस दिन वह अपने इस आरम्भिक कार्य का दूसरा अर्धांश पूरा करेगी, यूरोप कुर्सी से उछल पड़ेगा और कहेगा: शाबाश, बूढ़ी छछूंदर, तू ने कमाल किया!*

यह कार्यकारी सत्ता जिसका अपना विराट नौकरशाहाना और फ़ौजी संगठन है, बड़ी सूझ-बूझ से बनाया हुआ अपना राज्य-यंत्र है, जिसके दायरे में समाज के अनेक स्तर आते हैं, और जिसके ५ लाख अमले हैं तथा ५ ही लाख के क़रीब सैनिक हैं, जो एक डरावना परजीवी निकाय है जिसने फ़्रांसीसी समाज के शरीर को एक ऐसे जाल में बांध रखा है कि उसका एक-एक रोमकूप बन्द है, निरंकुश राजतंत्र के दिनों में उत्पन्न हुई थी जब सामंती समाज व्यवस्था विगलित हो रही थी, और जिसके विगलन की क्रिया को तेज़ करने में उसने मदद की थी। भू-स्वामियों एवं नगरों के सामंती विशेषाधिकार राज्य-सत्ता की विशेषताओं में रूपांतरित हो गये, सामंती ओहदेदार वेतन भोगी सरकारी अफ़सर बन गये और विग्रहयुक्त मध्ययुगीन पूर्ण सत्ताओं का विविधतापूर्ण ढांचा राज्यीय सत्ता के एक सुयोजित ढांचे में रूपांतरित हो गया जिसका काम इस तरह विभाजित एवं केंद्रित है जैसा किसी कारख़ाने में होता है। प्रथम फ़्रांसीसी क्रान्ति के लिए, जिसके ज़िम्मे सभी स्थानीय, क्षेत्रीय, शहरी और प्रांतीय पृथक् सत्ताओं को समाप्त कर राष्ट्र की नागरिक एकता की सृष्टि करने का काम था, यह लाज़िमी था कि वह निरंकुश राजतंत्र द्वारा आरम्भ किये हुए कार्य को विकसित करती, अर्थात् केन्द्रीकरण का, किन्तु उसके साथ ही सरकारी सत्ता की परिधि, विशेषताओं और अभिकर्त्ताओं का भी विकास करती। नेपोलियन ने इस राज्य-यंत्र को सर्वांगपूर्ण बनाया। लेजिटिमिस्ट राजतंत्र और जुलाई राजतन्त्र ने और भी अधिक श्रम विभाजन के सिवा इसमें कुछ नहीं जोड़ा,

---

* शेक्सपियर, 'हेम्लेट'। –सं०

और यह विभाजन उसी मात्रा में बढ़ा था जिस मात्रा में पूंजीवादी समाज के भीतर का श्रम विभाजन नये स्वार्थ समूह और इसलिए राज्य प्रशासन के लिए नया विषय पैदा कर रहा था। प्रत्येक **समान** हित तत्काल समाज से काटकर अलग कर लिया जाता, उसके मुक़ाबले में एक उच्चतर, **सामान्य** हित के रूप में खड़ा किया जाता, समाज के सदस्यों के कार्यकलाप के क्षेत्र से छीनकर सरकार के कार्य-कलाप का विषय बना दिया जाता। कोई पुल, किसी स्कूल की इमारत और किसी ग्राम समुदाय की सम्मिलित सम्पत्ति से लेकर यह फ़्रांस के रेलों, राष्ट्रीय सम्पदा और राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों तक के लिए लागू था। अन्तिम बात यह कि क्रान्ति के विरुद्ध अपने संघर्ष में संसदीय जनतंत्र ने दमनकारी कार्रवाइयों के अलावा सरकारी सत्ता के साधनों एवं केन्द्रीकरण को भी सुदृढ़ करने के लिए अपने को मजबूर पाया था। सभी क्रांतियों ने इस यंत्र को चकनाचूर करने के बदले इसे सर्वांगपूर्ण बनाया। बारी-बारी से प्रभुत्व के लिए होड़ करनेवाली पार्टियां इस विशालकाय राज्यीय ढांचे का स्वामित्व प्राप्त करना विजय का प्रधान पुरस्कार समझती थीं।

किन्तु निरंकुश राजतंत्र के अंतर्गत, प्रथम क्रान्ति के काल में, नेपोलियन के अधीन, नौकरशाही केवल पूंजीपतियों के वर्ग शासन के लिए ज़मीन तैयार करने का साधन की। पुन:स्थापना काल में, लूई फ़िलिप के तहत संसदीय जनतंत्र के अन्तर्गत, स्वयं अपनी शक्ति के लिए बहुत जोर मारने के बावजूद, वह शासक वर्ग का औज़ार ही बनी रही।

दूसरे बोनापार्त के काल में ही ऐसा ज्ञात हो रहा है कि राज्य ने अपने को पूर्णतया स्वतंत्र बना लिया है। नागरिक समाज के मुक़ाबले में राज्य-यंत्र ने अपनी स्थिति इतने सम्यक् रूप में सुदृढ़ कर ली है कि उसका अध्यक्ष होने के लिए १० दिसम्बर समाज का सरदार ही—वह जोखोंबाज ही—काफ़ी है, जिसे आंधी विदेश से बहा लायी, जिसे उन पियक्कड़ सिपाहियों ने गद्दी पर बैठाया है, जिन्हें उसने शराब और सॉसेज खिलाकर ख़रीदा और जिन्हें बराबर सॉसेज खिलाते रहना उसके लिए ज़रूरी है। यही कारण है कि फ़्रांस की भूमि आज इतनी हताश है, उसकी छाती भयानक अपमान और मान भंग की भावना से जल रही है, वह भावावेश से कांप रही है। वह ऐसा अनुभव कर रही है जैसे किसी ने उसे बेआबरू कर दिया हो।

तो भी राज्य-सत्ता अधर में लटकी हुई नहीं है। बोनापार्त एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, वह ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो संख्या में

फ़्रांसीसी समाज का सबसे बड़ा वर्ग है—**छोटी जोत वाले** (Parzellen) **किसानों के वर्ग का।**

जिस प्रकार बूर्बों राजवंश बड़े भूस्वामियों का राजवंश था और आर्लियां राजवंश पैसेवालों का राजवंश था, उसी प्रकार बोनापार्त घराना किसानों का, अर्थात् फ़्रांसीसी जन-समुदाय का घराना है। किसानों का वरेण्य वह बोनापार्त नहीं है जो पूंजीवादी संसद के सम्मुख नतमस्तक था अपितु वह बोनापार्त है जिसने पूंजीवादी संसद को भंग किया। तीन वर्षों से शहरों ने १० दिसम्बर के निर्वाचन के सच्चे अर्थ पर सफलतापूर्वक लीपा-पोती कर रखी थी और किसानों को साम्राज्य की पुनःस्थापना से वंचित कर रखा था। १० दिसम्बर १८४८ के निर्वाचन को अपनी पूर्णता २ दिसम्बर १८५१ के राज्य-पर्युत्क्षेपण द्वारा ही प्राप्त हुई।

छोटी जोत वाले किसानों का समुदाय विराट है। ये एक तरह की अवस्थाओं में रहते हैं, किन्तु एक दूसरे के साथ उनके तरह-तरह के सम्बन्ध नहीं बनते। उनकी उत्पादन प्रणाली उन्हें परस्पर सम्पर्क में लाने के बदले उन्हें एक दूसरे से अलग रखती है। उनका यह अलगाव फ़्रांस में संचार के साधनों की दुरवस्था तथा किसानों की ग़रीबी के कारण और बढ़ जाता है। उनके उत्पादन क्षेत्र, उनकी छोटी जोत में कृषि करने में न श्रम विभाजन की और न विज्ञान के समावेश की गुंजाइश रहती है, अतः यहां विकास की विविधता नहीं, बुद्धिकौशल की विविधता नहीं, सामाजिक सम्बन्धों की सम्पन्नता नहीं। प्रत्येक किसान परिवार प्रायः स्वावलम्बी होता है; वह अपने उपभोग की अधिकांश वस्तुएं स्वयं ही उत्पादित करता है, और इस प्रकार अपनी जीविका के साधन सामाजिक संसर्ग से उतना नहीं, जितना प्रकृति के साथ आदान-प्रदान से प्राप्त करता है। एक छोटी-सी जोत, एक किसान और उसका परिवार; उसकी बग़ल में फिर दूसरी छोटी-सी जोत, दूसरा किसान और दूसरा परिवार। ऐसी कई बीसियों से एक गांव बनता है, और कई कोड़ी गांवों को मिलाकर एक ज़िला बनता है। इस तरह फ़्रांसीसी राष्ट्र का विराट जन-समुदाय तुल्य परिमाणों के साधारण जोड़ से बना हुआ है... बहुत कुछ उस तरह जिस तरह बोरे में जमा आलुओं से एक बोरा आलू बनता है। जिस हद तक कि लाखों परिवार ऐसी आर्थिक अवस्था में रहते हैं जो उनकी जीवन विधि, उनके हितों और उनकी संस्कृति को अन्य वर्गों की जीवन विधि, हितों और संस्कृति से पृथक करती है, और अन्य वर्गों के विरोध में उन्हें खड़ा करती है, उस हद तक वे एक वर्ग गठित करते हैं। जिस हद तक इन छोटी जोत वाले किसानों में केवल स्थानीय पैमाने पर अंतःसम्बन्ध रहता

है, और उनके हितों की एकरूपता से वे एक समुदाय के रूप में गठित नहीं होते, उनमें किसी राष्ट्रीय संबंध सूत्र और किसी राजनीतिक संगठन का उद्भव नहीं होता, उस हद तक वे वर्ग नहीं हैं। फलस्वरूप उनमें अपने नाम से अपने वर्ग हित की, संसद या कन्वेंशन के ज़रिये, पूर्त्ति करने की क्षमता नहीं है। वे अपना प्रतिनिधित्व आप नहीं कर सकते, कोई और ही उनका प्रतिनिधित्व कर सकता है। साथ ही उनका प्रतिनिधि वही हो सकता है जो उनका स्वामी, उनके ऊपर प्रभुता रखनेवाला अधिकारी, निरंकुश शासन सत्ता जैसा प्रतीत होता हो, जो उन्हें अन्य वर्गों से बचाता हो और आसमान से उन्हें धूप और बरसात भेजता हो। इसी लिये छोटी जोत वाले किसानों के राजनीतिक प्रभाव की अन्तिम अभिव्यक्ति यह है कि कार्यकारी सत्ता समाज को अपने अधीन कर ले।

ऐतिहासिक परम्परा द्वारा फ़्रांसीसी किसानों की इस चमत्कार में आस्था उत्पन्न हुई कि नेपोलियन नामक एक व्यक्ति उनका समूचा प्राचीन गौरव उनके लिये लौटा लायेगा। और एक आदमी सामने आया जिसने अपने को वह व्यक्ति बताया क्योंकि उसका नाम – Code Napoléon: «La recherche de la paternité est interdite» * धारा के अनुसार, – नेपोलियन है। बीस सालों की आवारागर्दी और अनेक विचित्र दैवयोगों के बाद, आख़िर वह पुराना विश्वास पूरा हुआ और वह आदमी फ़्रांस का सम्राट बन गया। भतीजे की स्थिर मनोकांक्षा साकार हुई क्योंकि यही फ़्रांसीसी जनता के सबसे बहुसंख्यक वर्ग की अटल मनोकांक्षा भी थी।

लेकिन यहां आपत्ति की जा सकती है: फिर आधे फ़्रांस में किसान विद्रोह, सेना द्वारा किसानों पर छापे, बड़े पैमाने पर किसानों की जेलबन्दी और निर्वासन क्यों हुए?

लूई चौदहवें के बाद से "वाक्छलपूर्ण राजनीतिक हरकतों के कारण" किसानों का ऐसा दमन कभी नहीं हुआ था।

लेकिन ग़लतफ़हमी दूर हो जानी चाहिए। बोनापार्त घराना क्रान्तिकारी किसानों का प्रतिनिधि नहीं है, वह रूढ़िवादी किसानों का प्रतिनिधि है; वह उस किसान का प्रतिनिधि नहीं है जो अपने सामाजिक अस्तित्व की अवस्था – छोटी जोत – से बाहर निकलने के लिये हाथ-पांव मारता है, अपितु उस किसान का प्रतिनिधि है जो इस जोत को क़ायम करना चाहता है; वह उन ग्रामीण जनों का प्रतिनिधि

* "वल्दीयत की खोजबीन नहीं की जा सकती"। – सं०

नहीं है जो नगर के साथ जुड़कर पुरानी व्यवस्था को खु़द अपने ज़ोर से उलटना चाहते हैं, अपितु उन ग्रामीण जनों का प्रतिनिधि है जो इस पुरानी व्यवस्था की चहारदीवारी में जड़वत् बन्द हैं और जो अपने और अपनी छोटी जोत के लिये साम्राज्य के प्रेत का संरक्षण और वरद् हस्त चाहते हैं। वह किसानों की ज्ञानोद्दीप्ति का प्रतिनिधि नहीं, अपितु उनके अन्धविश्वास का प्रतिनिधि है, उनके विवेक का प्रतिनिधि नहीं, अपितु पूर्वाग्रह का प्रतिनिधि है; उनके भविष्य का प्रतिनिधि नहीं, अपितु उनके अतीत का प्रतिनिधि है, उनके आधुनिक सेवेन का प्रतिनिधि नहीं, अपितु उनके आधुनिक वांदेय[123] का प्रतिनिधि है।

संसदीय जनतन्त्र के तीन वर्षों के कठोर शासन ने फ़्रांसीसी किसानों के एक भाग को नेपोलियनी भ्रमों से मुक्त किया और उनका क्रान्तिकारीकरण किया था, चाहे ऐसा केवल सतही तौर पर ही हुआ हो। किन्तु ये किसान जब-जब गतिमान हुए, पूंजीपतियों ने उनका हिंसापूर्वक दमन किया। संसदीय जनतन्त्र के ज़माने में फ़्रांसीसी किसान की आधुनिक चेतना एवं परम्परागत चेतना में इस बात के लिये होड़ चलती रही कि कौन उसके मन पर हावी होती है। इस प्रगति ने स्कूलों के शिक्षकों एवं पादरियों के बीच निरन्तर संघर्ष का रूप धारण किया। पूंजीपतियों ने स्कूल-मास्टरों पर प्रहार कर उन्हें गिरा दिया। पहले-पहल ऐसा हुआ कि किसानों ने सरकार के कार्यकलाप के समक्ष स्वतन्त्र आचरण की चेष्टा की। यह मेयरों और प्रीफ़ेक्टों में लगातार चलनेवाले संघर्ष में प्रगट हुआ। पूंजीपतियों ने मेयरों को पदच्युत कर दिया। अन्तिम बात यह कि संसदीय जनतन्त्र के ज़माने में विभिन्न इलाक़ों के किसानों ने अपनी ही सन्तान, अर्थात् सेना के विरुद्ध विद्रोह किया। पूंजीपतियों ने घेरे की स्थिति जारी कर और ताज़ीरी दस्ते भेजकर उन्हें दण्डित किया। वे ही पूंजीपति आज चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि आम जनता मूढ़ है, कि vile multitude* ने हमें धोखा देकर बोनापार्त के हवाले किया है। उन्होंने स्वयं किसान वर्ग की साम्राज्य भावना को बलपूर्वक सुदृढ़ किया, उन्होंने उन अवस्थाओं को सुरक्षित रखा जिनसे किसानों का यह मज़हब उद्भूत होता है। बेशक, जब तक आम जनता रूढ़िवादी बनी रहती है पूंजीपति अनिवार्यतः उसकी मूढ़ता से घबराता है और जैसे ही वह क्रांतिकारी बन जाती है वह उसकी प्रबुद्धता से भयभीत होता है।

---

*कमीना अवाम। – सं०

Coup d'état के बाद होनेवाले विप्लवों में फ़ांसीसी किसानों के एक भाग ने हाथों में हथियार लेकर १० दिसम्बर १८४८ के ख़ुद अपने मतदान का प्रतिवाद किया। १८४८ के बाद से वे जिस शिक्षालय में से होकर गुज़रे, उसने उनकी बुद्धि को तीक्ष्ण कर दिया था। परन्तु उन्होंने अपने को इतिहास के अधमलोक के अधीन किया था; इतिहास ने उन्हें अपने वचन से हटने न दिया और अधिकांश अब भी ऐसे पूर्वाग्रहों में जकड़े थे कि ठीक उन ज़िलों में, जो सबसे ज़्यादा क्रांतिकारी थे, किसान जनसंख्या ने खुलेआम बोनापार्त के लिये वोट दिया। उनकी दृष्टि में राष्ट्रीय सभा ने बोनापार्त को आगे बढ़ने से रोका था। बोनापार्त ने अब केवल उन बेड़ियों को काट डाला था जिनमें नगर ने देहात की मर्ज़ी को जकड़ रखा था। कुछ जगहों में तो किसानों ने नेपोलियन के साथ-साथ कन्वेंशन जैसी बेतुकी धारणा तक को ग्रहण किया।

प्रथम क्रान्ति द्वारा किसानों के अर्ध-भूदास से कृषक भू-स्वामी बना दिये जाने के बाद नेपोलियन ने उन शर्तों की पुष्टि और नियमन किया था जिनपर वे फ़ांस की भूमि का, जो अभी-अभी उनके हाथ में आयी थी, बिना किसी की दख़लन्दाज़ी के भोग कर सकते थे और मिलकियत की अपनी नौजवान वासना पूरी कर सकते थे। किन्तु आज जो चीज़ फ़ांस के किसानों की बर्बादी का कारण बनी हुई है, वह यही छोटी जोत, ज़मीन का टुकड़ों में बंटा होना, मिलकियत का यही रूप है जिसे नेपोलियन ने फ़ांस में सुदृढ़ किया था। भौतिक अवस्थाओं ने ही सामन्ती किसान को छोटी जोत वाला किसान और नेपोलियन को सम्राट बनाया था। इसके अवश्यम्भावी परिणाम, अर्थात् कृषि के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए क्षय और कृषकों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता को प्रगट करने के लिये दो पीढ़ियां पर्याप्त सिद्ध हुई हैं। मिलकियत का "नेपोलियनी" रूप जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ़ांस की ग्रामीण जनता की मुक्ति एवं सम्पन्नता की शर्त था, वही इस शताब्दी के दौरान उनके दासत्व और दरिद्रता का नियम बन गया है। और यह नियम ही «idées napoléoniennes»* में से वह प्रथम धारणा है जिसे दूसरे बोनापार्त को बहाल रखना है। यदि वह, किसानों के साथ, अब भी इस भ्रम में है कि उनकी बर्बादी का मूल इस छोटी जोत में नहीं, वरन् इसके बाहर, गौण परिस्थितियों के प्रभाव में है, तो उसके प्रयोग उत्पादन सम्बन्धों के सम्पर्क में आने पर पानी के बुलबुले साबित होंगे।

---

*नेपोलियनाई धारणा। –सं०

छोटी जोत वाली मिलकियत के आर्थिक विकास ने समाज के अन्य वर्गों के साथ किसानों के सम्बन्ध को आमूल परिवर्तित कर दिया है। नेपोलियन के शासन में देहात में भूमि का जो विखण्डन हुआ, उसने मुक्त प्रतियोगिता और नगरों में बड़े उद्योग के आरम्भ के पूरक का काम किया। किसान वर्ग भू-स्वामी कुलीनतन्त्र के प्रति, जिसका तख़्ता अभी-अभी उलटा गया था, सर्वविद्यमान प्रतिवाद था। छोटी जोत वाली सम्पत्ति ने फ़्रांस की मिट्टी में जो जड़ें जमायीं, उनसे सामन्त-वाद पोषक-तत्त्व से सर्वथा वंचित हो गया। उसकी मेंडों ने पूंजीपतियों के लिये उन्हें अपने भूतपूर्व महाप्रभुओं के किसी अचानक हल्ले से बचानेवाले स्वाभाविक रक्षा दुर्ग का काम किया। किन्तु उन्नीसवीं सदी के दौरान सामन्ती प्रभुओं की जगह शहरी सूदख़ोरों ने ले ली; भूमि के साथ जुड़े सामन्ती दायित्वों की जगह बन्धकों ने ले ली; कुलीनतंत्री भू-सम्पत्ति का स्थान पूंजीपतियों की पूंजी ने ग्रहण कर लिया। किसान की छोटी जोत अब एक हीला मात्र है जिसकी आड़ में पूंजी-पति धरती से अपना मुनाफ़ा, सूद और लगान निकालता है और जोतनेवाले को अपने भाग्य पर छोड़ देता है कि वह उस धरती से अपनी मजूरी निकाल सके तो निकाल ले। फ़्रांस की कृषि भूमि पर बन्धक-रूपी ऋण किसानों के ऊपर सूद की अदायगी का जो भार डाल देता है, उसकी कुल रक़म ब्रिटेन के पूरे राष्ट्रीय ऋण के वार्षिक सूद के बराबर है। छोटी जोत-रूपी मिलकियत ने, जिसके विकास के साथ अनिवार्य रूप से पूंजी की गुलामी का तौक गले पड़ता जाता है, फ़्रांसीसी राष्ट्र के आम जन-समुदाय को गुफ़ानिवासी प्राणी बना दिया है। एक करोड़ साठ लाख किसान (इनमें स्त्रियां और बच्चे भी सम्मिलित हैं) ऐसे गन्दे झोंपड़ों में रहते हैं जिनमें अधिकांश में केवल एक ही खिड़की होती है, कुछ में केवल दो खिड़कियां तथा जो सबसे अच्छे हैं, उनमें बस तीन खिड़कियां होती हैं, जबकि मकान के लिए खिड़कियों का वही स्थान है जो मस्तिष्क के लिये पंच इन्द्रियों का है। पूंजीवादी व्यवस्था जिसने शताब्दी के प्रारम्भ में राज्य को नवोदित छोटी जोत का प्रहरी बनाया था और उसे सरफ़राज़ी बख़्शी थी, आज एक रक्तपायी पिशाचिनी बन गयी है जो उसका ख़ून और भेजा, दोनों को चूसकर उसे पूंजी की कीमियागीरी के कड़ाहे में डाल देती है। Code Napoléon क़ुर्क़ियों, जबरी बिक्री और नीलामियों की किताब मात्र बन गया है। फ़्रांस के उन चालीस लाख (बच्चों आदि समेत) कंगालों, आवारागर्दों, मुजरिमों और रण्डियों के साथ जिनका अस्तित्व सरकारी तौर पर स्वीकार किया गया है, पचास लाख ऐसे लोगों को भी शुमार किया जाना चाहिए जो जीवन के कगार पर खड़े

हैं और या तो देहातों में गुज़र-बसर करते हैं, या वे अपने चिथड़ों और अपने बच्चों समेत लगातार देहात छोड़कर शहर और शहर छोड़कर देहात आते-जाते रहते हैं। अतः किसानों के हित पूंजीपतियों के और पूंजी के हितों के अनुरूप अब नहीं रह गये हैं जैसा कि वे नेपोलियन के समय में थे, वरन् उसके विरोधी हो गये हैं। इसलिये किसान **शहरी सर्वहारा** को जिसका काम पूंजीवादी व्यवस्था को उलटना है, अपना स्वाभाविक मित्र और नेता पाते हैं। पर **प्रबल तथा निरंकुश शासन** पर – यह दूसरी «idée napoléonienne» है जिसे दूसरे नेपोलियन को क्रियान्वित करना है – इसी "भौतिक" व्यवस्था की बलपूर्वक रक्षा करने का भार आ पड़ा है। यही «ordre matériel»* बाग़ी किसानों के विरुद्ध बोनापार्त की सभी घोषणाओं में नारे का भी काम करता है।

पूंजी द्वारा बंधक में जकड़े जाने के अलावा, छोटी जोत को करों का भार भी वहन करना पड़ता है। कर नौकरशाही, सेना, पण्डेपुरोहितों और दरबार, यानी कार्यकारी सत्ता के समस्त उपकरणों का जीवन स्रोत है। प्रबल शासन और भारी कर, दोनों अभिन्न हैं। छोटी जोत-रूपी मिलकियत की प्रकृति ही ऐसी है कि वह एक सर्वशक्तिमान और विशाल संख्यावाली नौकरशाही के लिये उपयुक्त आधार का काम देती है। वह देश भर में एक ही स्तर के सम्बन्धों और व्यक्तियों को स्थापित करती है। अतएव वह इस समरूप समुदाय के प्रत्येक बिन्दु पर एक सर्वोच्च केन्द्र की समरूपी क्रिया को सम्भव बनाती है। वह आम जनता एवं राज्य-सत्ता के बीच के आभिजात्य दर्म्यानी दर्जों को ख़त्म कर देती है। अतः वह हर ओर से इस राज्य-सत्ता के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का एवं राज्य-सत्ता के निकटतम निकायों के बीच-बिचाव का आह्वान करती है। अन्तिम बात यह कि वह एक बेरोज़गार फ़ाज़िल आबादी पैदा करती है जिसके लिये न खेती में जगह है न नगरों में, और जो इस वजह से एक प्रकार की मानयुक्त भिक्षा के रूप में सरकारी नौकरियों के लिये हाथ फैलाती है, और नये राज्यीय पदों को पैदा करने की प्रेरणा प्रदान करती है। नेपोलियन ने संगीन के ज़ोर से नयी मण्डियों के द्वार खोलकर, यूरोपीय महाद्वीप को लूटकर, अनिवार्य करों का मय सूद के भुगतान किया। ये कर किसानों को उद्यम करने की प्रेरणा प्रदान करते थे, जबकि वे ही अब उसके उद्यम को अपने साधन के अन्तिम अंश से वंचित करते हैं, और कंगाल होते जाने की प्रक्रिया का प्रतिरोध करने की उसकी क्षमता को

*भौतिक व्यवस्था। – सं०

पूरा कर लेते हैं। और दूसरे बोनापार्त के लिये अच्छा ओढ़ने-पहननेवाली, अच्छा खाने-पीनेवाली एक विशाल नौकरशाही की धारणा «idée napoléonienne» में से सबसे सुखकर धारणा है। यह देखते हुए कि उन वर्गों के अलावा जो समाज में सचमुच मौजूद हैं, वह एक ऐसी कृत्रिम बिरादरी खड़ी करने को मजबूर है जिसके लिये उसके राज को बरक़रार रखना उसकी रोटी-रोज़ी का सवाल बन जाता है अन्यथा हो भी कैसे सकता था? अतः उसने जो पहले वित्तीय काम किये, उनमें से एक था अमलों के वेतनों को बढ़ाकर फिर पुराने स्तर पर ले आना और नयी दायित्वहीन नौकरियां क़ायम करना।

एक और «idée napoléonienne» है शासन सत्ता के एक अस्त्र के रूप में **पादरियों** का बोलबाला होना। किन्तु जहां नवजात छोटी जोत समाज के साथ सामंजस्यपूर्ण, प्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर और अपने संरक्षी शासन के वश्य होने के कारण स्वभावतया धार्मिक होती है, वहां ऋण से बर्बाद, समाज और शासन दोनों के विरुद्ध, और अपनी चहारदीवारी से बाहर निष्कासित छोटी जोत स्वभावतया धर्म विमुख हो जाती है। नव प्राप्त भूमि के छोटे-से टुकड़े के साथ भगवान की प्राप्ति भी हो जाना सुखद है, ख़ासकर इसलिये भी कि भगवान ही वर्षा देता है। किन्तु छोटी जोत छीनकर उसके बदले में भगवान का दिया जाना अपमान की कड़वी घूंट है। ऐसे समय पादरी पार्थिव पुलिस का – जो एक और «idées napoléoniennes» है – धर्म प्रतिष्ठित शिकारी कुत्ता मात्र दिखने लगता है। अगली बार रोम विरोधी अभियान ख़ुद फ़्रांस की सरज़मीन पर संगठित होगा, किन्तु श्री दे'मोंन्तालम्बेर के अर्थों में नहीं, वरन् उसके उल्टे अर्थ में।

अन्तिम बात यह कि **सेना** के प्राधान्य की धारणा «idées napoléoniennes» का चरम बिन्दु है। सेना छोटी जोत वाले किसानों की point d'honneur* थी, उनका अपना वीर रूप थी, बाहरी दुनिया से उनकी नवप्राप्त मिलकियत की हिफ़ाज़त करनेवाली, उनकी नवप्राप्त राष्ट्रीयता को गौरवान्वित करनेवाली, दुनिया को लूटने और क्रान्तिकारी बनानेवाली। फ़ौजी वर्दी उनकी अपनी राजकीय पोशाक थी; युद्ध उनका काव्य था; छोटी जोत, कल्पना पटल पर विस्तृत एवं पूर्ण बनकर, उनकी पितृभूमि थी, और देशभक्ति – सम्पत्ति भावना का आदर्श रूप थी। किन्तु फ़्रांसीसी किसान को अब जिन शत्रुओं से अपनी सम्पत्ति की रक्षा करनी पड़ रही

---

*शान की बात। – सं०

है, वे कज़्ज़ाक लोग नहीं हैं, वे हैं कुर्क-अमीन और कर वसूलनेवाले अमले। छोटी जोत का अस्तित्व अब तथाकथित पितृभूमि में नहीं, वरन् बंधकों की महाजनी बही में है। सेना भी अब बेहतरीन किसान नौजवानों की सेना नहीं रही, वह भ्रष्ट, कुत्सित किसान लंपट-सर्वहारा की सेना बन जाती है। वह अधिकतर एवज़ियों की, स्थानापन्नों की फ़ौज है, जिस प्रकार दूसरा बोनापार्त स्वयं एक एवज़ी है, नेपोलियन का स्थानापन्न मात्र है। उसका शौर्य अब किसानों का पीछा करने में प्रगट होता है, पुलिसमैनी करने में प्रगट होता है। और यदि इस व्यवस्था के अंतर्विरोध चाबुक मारकर १० दिसम्बर समाज के सरदार को फ़ांस के बाहर जाने को मजबूर करें तो उसकी सेना लूट-खसोट के चन्द कारनामों के बाद यश नहीं, वरन् ख़ूब अच्छी पिटाई प्राप्त करेगी।

अतः हम देखते हैं कि **सभी** «idées napoléoniennes» **तरुणाई की ताज़गी वाली अविकसित छोटी जोत की धारणाएं हैं**; किन्तु उस छोटी जोत के लिये, जिसका समय बीत चुका है, वे सर्वथा असंगत हैं। वे उसके मरण संघर्ष के मतिभ्रम मात्र हैं, ऐसे शब्द हैं जो लफ़्फ़ाज़ी में तबदील हो गये हैं, ऐसी आत्माएं हैं जो प्रेत बन चुकी हैं। किन्तु साम्राज्य का यह स्वांग फ़्रांसीसी राष्ट्र के जन-समुदाय को परम्परा के भार से मुक्त करने एवं राज्य-सत्ता और समाज के विरोध को विशुद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिये आवश्यक था। छोटी जोत के उत्तरोत्तर विनष्ट होने के साथ, उसके ऊपर आधारित राज्य का ढांचा भहरा पड़ता है। आधुनिक समाज के लिये अपेक्षित राज्य का केन्द्रीकरण सामन्तवाद के विरुद्ध संघर्ष में गढ़ी गयी फ़ौजी-नौकरशाही सरकारी मशीन के ध्वंसावशेषों पर ही उदित होता है।*

फ़्रांसीसी किसान की दशा हमें **२० और २१ दिसम्बर के आम चुनावों** की पहेली का उत्तर प्रदान करती है जिन्होंने दूसरे बोनापार्त को सिनाई पर्वत के

---

*१८५२ के संस्करण में इस पैराग्राफ़ का अन्त निम्नलिखित पंक्तियों के साथ हुआ था, जिन्हें मार्क्स ने १८६९ के संस्करण में निकाल दिया: "राज्य-यंत्र के नष्ट किये जाने से केन्द्रीकरण के लिये ख़तरा नहीं पैदा होगा। नौकरशाही एक ऐसे केन्द्रीकरण का निम्न और पाशविक रूप मात्र है जो अपने प्रतिलोमी, यानी सामन्तवाद से अब भी आक्रान्त है। जब फ़्रांसीसी किसान नेपोलियनी पुनःस्थापना से निराश हो जायेगा, तो अपनी छोटी जोत के प्रति भी उसकी आस्था भंग हो जायेगी; इस छोटी जोत के ऊपर खड़ी राज्य की पूरी इमारत भहराकर गिर पड़ेगी और **सर्वहारा क्रान्ति वह समवेत स्वर प्राप्त करेगी जिसके बिना उसका एकल गीत सभी कृषक देशों में उसका मृत्युपूर्व का अन्तिम गीत बन जाता है।**" –सं०

शिखर पर, उच्चादेश प्राप्त कर्त्ता के रूप में नहीं, वरन् उच्चादेश प्रणेता के रूप में पहुंचाया।

प्रगट है कि पूंजीपतियों के लिये अब बोनापार्त को चुनने के अलावा और कोई चारा न था। कोन्स्टैन्स की चर्च परिषद्[124] में जब विशुद्धतावादी मसीहियों ने यह शिकायत की कि पोप लोग दुराचारपूर्ण जीवन बिता रहे हैं और नैतिक सुधार की मांग की, तो कार्डिनल पियेर द'आई ने उन्हें डांटकर कहा था: "अब केवल शैतान ही खुद आकर कैथोलिक चर्च को बचा सकता है, और आप हैं कि फ़रिश्तों की मांग कर रहे हैं!" इसी तरह राज्य-पर्युत्क्षेपण के बाद पूंजीपतियों ने कहा: केवल १० दिसम्बर समाज का सरदार ही अब भी पूंजीवादी समाज को बचा सकता है! चोर ही माल की, बेईमानी ही ईमान की, व्यभिचार ही परिवार की, अव्यवस्था ही व्यवस्था की हिफ़ाज़त कर सकती है!

अपने को स्वतंत्र सत्ता का रूप देनेवाली कार्यकारी सत्ता की हैसियत से बोनापार्त अनुभव करता है कि "पूंजीवादी व्यवस्था" की रक्षा करना उसका मिशन है। किन्तु इस पूंजीवादी व्यवस्था की शक्ति मध्यम वर्ग में अन्तर्निहित है। अतः बोनापार्त मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में अपने को देखता है, और इसी अर्थ में अपनी आज्ञप्तियां जारी करता है। पर यदि वह कुछ है तो सोलहों आना इस वजह से कि उसने इस मध्यम वर्ग की राजनीतिक शक्ति को तोड़ा है और हर रोज़ नये सिरे से उसे तोड़ रहा है। फलस्वरूप वह अपने को मध्यम वर्ग की राजनीतिक एवं प्रचार शक्ति के बैरी के रूप में देखता है। किन्तु इस वर्ग की भौतिक शक्ति का संरक्षण करके वह नये सिरे से उसकी राजनीतिक शक्ति पैदा करता है। कारण की रक्षा करो, परन्तु कार्य को, जहां भी वह प्रगट हो, नष्ट कर दो। किन्तु ऐसा करने पर कार्य और कारण में कुछ न कुछ भ्रम हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि दोनों ही अपनी अन्योन्यक्रिया के सिलसिले में अपनी-अपनी विशिष्टता खो देते हैं। अतः नयी आज्ञप्तियां निकलती हैं जो सीमारेखा को मिटा देती हैं। पूंजीपतियों के मुक़ाबले में, बोनापार्त अपने को किसानों के और आम जनता के एक ऐसे प्रतिनिधि के रूप में देखता है जो पूंजीवादी समाज के चौखटे के अन्दर जनता के निम्नतर वर्गों को सुखी बनाना चाहता है। अतः नयी आज्ञप्तियां निकलती हैं जो राजकौशल में "सच्चे समाजवादियों"[125] को पेशगी मात दे देती हैं। किन्तु बोनापार्त सर्वोपरि अपने को १० दिसम्बर समाज का सरदार, लंपट-सर्वहारा के प्रतिनिधि के रूप में देखता है जिनके वह, उसके दरबारी, उसकी सरकार और उसकी सेना अंग हैं और जिनका सबसे बड़ा उद्देश्य अपने को लाभान्वित

करना तथा राज्य कोष से कैलिफ़ोर्निया लाटरी के इनाम प्राप्त करना है। और १० दिसम्बर समाज के सरदार के रूप में अपनी स्थिति का निर्वाह वह आज्ञप्तियों के द्वारा, आज्ञप्तियों के बिना और आज्ञप्तियों के बावजूद पूरा कर रहा है।

चूंकि इस आदमी के सम्मुख ऐसे परस्पर विरोधी कार्यभार हैं इसलिये उसके शासन में परस्परविरोधिता है, वह अंधेरे में उद्भ्रान्त रूप से टटोलता हुआ चलता है, कभी एक वर्ग का समर्थन पाना चाहता है और दूसरे को अपमानित करता है, कभी दूसरे को अपनी ओर लाना चाहता है और तीसरे को अपमानित करता है, एवं इस तरह सभी को समान रूप से अपना बैरी बनाता है; व्यवहार क्षेत्र में उसका ढुलमुलपन उसकी सरकारी आज्ञप्तियों की दृप्त और निश्चयात्मक शैली के मुक़ाबले में, जो उसके चाचा की शैली की हूबहू नक़ल है, अत्यन्त हास्यास्पद लगता है।

दृढ़ शासन के अधीन उद्योग और व्यापार – यानी मध्यम वर्ग के रोज़गार – की बेहद वृद्धि हो जाती है। रेलों के निर्माण के अनेक अधिकारपत्र प्रदान किये जाते हैं। पर बोनापार्ती लंपट-सर्वहारा को भी मालामाल होना है। वे लोग, जिन्हें राज्य के भेद पहले से बता दिये जाते हैं, इन अधिकारपत्रों को लेकर शेयर बाज़ार में हथकण्डेबाज़ी करते हैं। लेकिन रेलों के निर्माण के लिये कोई पूंजी सामने नहीं आती। रेलवे शेयरों पर पेशगी देने का दायित्व बैंक पर है। किन्तु साथ ही ज़ाती फ़ायदे के लिये बैंक से नाजायज़ फ़ायदा भी उठाना है, इसलिये उसे पुचकारना भी ज़रूरी है। अतः उसे अपनी रिपोर्ट प्रति सप्ताह प्रकाशित करने की जिम्मेदारी से बरी किया जाता है। बैंक और सरकार का खाऊ-पचाऊ समझौता हो जाता है। जनता को रोज़ी देनी चाहिये। इसलिये सार्वजनिक निर्माण कार्य आरम्भ किया जाता है। किन्तु यह कार्य आरम्भ करने से जनता पर करों का भार बढ़ जाता है। इसलिये लाभांशजीवियों पर प्रहार करके, पांच प्रतिशत के बाण्डों को साढ़े चार प्रतिशत में परिवर्तित करके करों में कमी की जाती है। पर मध्यम वर्ग को फिर कुछ निवाले मिलने चाहिये। इसलिये उन लोगों के लिये जो शराब en détail* ख़रीदते हैं, मद्य कर दुगुना कर दिया जाता है और मध्यम वर्ग के लिये जो शराब en gros** पीता है, मद्य कर आधा कर दिया जाता है।

---

*खुदरा। – सं०

**थोक रूप में। – सं०

मज़दूरों के अंजुमनों को, जो मौजूद हैं, तोड़ दिया जाता है, पर भविष्य में अंजुमनों के सम्बन्ध में जादू के करिश्मे दिखाने के वादे किये जाते हैं। किसानों की मदद करनी है। अतः बन्धक बैंक क़ायम किये जाते हैं, जिनसे किसानों का क़र्ज़ों में डूबना आसान हो जाता है और सम्पत्ति के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। पर इन बैंकों का इस्तेमाल आर्लियां राजघराने की ज़ब्त ज़मींदारियों से पैसा पैदा करने के लिये करना है। कोई भी पूंजीपति इस शर्त के लिये राज़ी नहीं होना चाहता, जो आज्ञप्ति में नहीं है, अतः बन्धक बैंक की आज्ञप्ति धरी रह जाती है। और इसी तरह विरोधों का यह क्रम चलता है।

बोनापार्त चाहता है कि सभी वर्ग उसे अपना पितृतुल्य हितैषी समझें। पर एक वर्ग से लिये बिना वह दूसरे को दे नहीं सकता। जिस प्रकार फ़्रोन्द के समय में ड्यूक ऑफ़ गीज़ के विषय में यह कहा जाता था कि वह फ़्रांस का सबसे अनुग्रहवान् व्यक्ति है क्योंकि उसने अपनी सभी जागीरों को अपने प्रति अपने अनुयायियों की सेवाओं में परिवर्तित कर दिया था, उसी प्रकार बोनापार्त भी बड़ी ख़ुशी से फ़्रांस का सबसे अनुग्रहवान् व्यक्ति होना और फ़्रांस की समूची सम्पदा और समूचे श्रम को अपने प्रति वैयक्तिक सेवा में परिवर्तित कर देना चाहता है। उसकी इच्छा है कि समूचे फ़्रांस को चुरा ले ताकि उसे उपहार के रूप में फ़्रांस को भेंट कर सके, या, दूसरे शब्दों में, फ़्रांस के पैसे से ही फ़्रांस को नये सिरे से ख़रीदे, क्योंकि १० दिसम्बर समाज के सरदार के रूप में जो चीज़ उसकी होनी चाहिये उसे भी धन देकर मोल लेना उसकी वृत्ति का अंग है। और सभी राज्य संस्थाएं: सीनेट, राज्य परिषद, विधिकारी निकाय, लीजन ऑफ़ ऑनर का पदक, सैनिकों के पदक, धोबीख़ाने, सार्वजनिक निर्माण कार्य, रेलें, आम सिपाहियों को छोड़कर राष्ट्रीय गार्ड का जनरल स्टाफ़ तथा आर्लियां घराने की ज़ब्त की गयी जागीरें – ये सभी धन देकर ख़रीदारी करने के व्यापार का अंग हो गयीं। सेना और शासन यंत्र के सभी पद लोगों को ख़रीदने के साधन बन गये। किन्तु इस प्रक्रिया की, जिसमें फ़्रांस इसलिये लिया जाता है कि वह अपने आपको दिया जाये, सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेन-देन के इस सौदे के दौरान कुछ प्रतिशत १० दिसम्बर समाज के सरदार और उसके सदस्यों की जेब में पहुंच जाते हैं। श्री दे मोर्नी की प्रेमिका काउन्टेस एल० ने ड्यूक ऑफ़ आर्लियां की जागीरों की ज़ब्ती के सम्बन्ध में जो श्लेषात्मक वाक्य कहा था – «C'est le premier vol* de l'aigle» ("यह

*vol का अर्थ है उड़ान और चोरी।

उक़ाब की पहली उड़ान है") – वह उस **उक़ाब** की, जो दरअसल **डोमकौवे** से अधिक मिलता-जुलता है, हर उड़ान पर लागू है। वह स्वयं और उसके अनुयायी एक दूसरे को हर रोज़ उस इटली के कार्थेसियन सम्प्रदाय के उस भिक्षु की तरह चेताते हैं जिसने वर्षों जीवन यापन के लिये पर्याप्त अपनी धनराशि को दम्भ-पूर्ण प्रदर्शन के भाव से गिननेवाले एक मक्खीचूस से कहा था – «Tu fai conto sopra i beni, bisogna prima far il conto sopragli anni»*। साल गिनने में कहीं ग़लती न हो जाये, इसलिये वे मिनट गिनते हैं। निगोड़ों की जमात दरबारों में, मंत्रालयों में और प्रशासन तथा सेना के प्रमुख स्थानों में घुस जाती है। इस जमात के सर्वोत्कृष्ट सदस्यों के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि उनका उद्भव अज्ञात है। यह आवाराहाल लोगों की एक ऊधमी, ज़लील और लुटेरू जमात है जिसने सूलूक के ऊंचे ओहदेदारों की तरह हास्यास्पद संजीदगी के साथ सरकारी पदों की वर्दियां धारण की हैं। १० दिसम्बर समाज के ऊपरी स्तर की तस्वीर इस बात से साफ़ हो जाती है कि **वेरों-क्रेवेल**** उसका धर्मोपदेशक और **ग्रानिए द'कासान्याक** उसका विचारक है। गीज़ों ने जब अपने मंत्रिमण्डल के समय राजवंशीय विरोध पक्ष के विरुद्ध एक ख़ुफ़िया अख़बार में इस ग्रानिए का उपयोग किया था, तो वह उसके बारे में हंसी में कहा करता था: «C'est le roi des drôles» – "यह भांडों का सरताज है।" – लूई बोनापार्त के दरबार और उसकी मण्डली के सम्बन्ध में रीजेंसी[126] अथवा लूई पन्द्रहवें के काल का हवाला देना ग़लत होगा। क्योंकि "फ़्रांस रखेल औरतों के शासन का कई बार अनुभव कर चुका है, पर रखेल मर्दों की सरकार उसके लिये बिलकुल नयी चीज़ है।"***

इस परिस्थिति की परस्परविरोधी मांगों से प्रेरित होकर और साथ ही रोज़ नये-नये शिगूफ़े छोड़कर अपने को बाज़ीगर की तरह जनता की दृष्टि में नेपोलियन के स्थानापन्न के रूप में निरन्तर सामने रखने की आवश्यकता के वशीभूत होकर, या यों कहें कि हर रोज़ राज्य-पर्युत्क्षेपण की छोटी-मोटी फुलझड़ियां छोड़ने की

---

* "तू अपनी दौलत गिन रहा है, पर तुझे पहले अपनी ज़िन्दगी के साल गिनने चाहिये।"

** बाल्ज़ाक ने अपने उपन्यास 'कज़िन बेटे' के पात्र क्रेवेल का चरित्र-चित्रण «*Constitutionnel*» अख़बार के मालिक डॉ० वेरों के अनुरूप किया है, जो पेरिस का घोर कामुक कूपमंडूक था।

*** उद्धृत शब्द मादम जिरार्दिन के हैं।

आवश्यकता के वशीभूत होकर, बोनापार्त समूचे पूंजीवादी अर्थतंत्र को अस्तव्यस्त कर रहा है, वह हर उस चीज़ का अतिक्रमण कर रहा है जो १८४८ की क्रान्ति को अनतिक्रमणीय ज्ञात हुई थी, और ऐसा करके कुछ को क्रान्ति के प्रति सहिष्णु और कुछ को क्रान्ति का इच्छुक बना रहा है तथा अमन के नाम पर वस्तुत: अराजकता उत्पन्न कर रहा है। यह करने के साथ ही वह सम्पूर्ण राज्य-यंत्र की गरिमा धूल में मिला रहा है, उसे भ्रष्ट कर रहा है तथा एकसाथ घृणास्पद एवं हास्यास्पद बना रहा है। वह त्रियेर के पवित्र परिधान[127] की पूजा की नक़ल पेरिस में शाही चोग़े की पूजा के रूप में उतार रहा है। किन्तु जब शाही चोग़ा लूई बोनापार्त के कन्धों पर अन्तिम रूप से आ जायेगा तो नेपोलियन की कांस्य मूर्त्ति वान्दोम स्तम्भ से भहराकर नीचे गिर पड़ेगी।

मार्क्स द्वारा
दिसम्बर १८५१ से
मार्च १८५२ तक
लिखित।
न्यूयार्क की
«*Die Revolution*»
नामक पत्रिका में
१८५२ में प्रकाशित।

अंग्रेजी से अनूदित।

हस्ताक्षर: **कार्ल मार्क्स**

कार्ल मार्क्स

भारत में ब्रिटिश राज

...हिन्दुस्तान एशियाई विस्तार का इटली है। आल्प पर्वत के स्थान पर वहां हिमालय, लोम्बार्डी के मैदानों के स्थान पर बंगाल के मैदान हैं, एपीनाइन्स के स्थान पर दक्खिन है और सिसिली के द्वीप के स्थान पर लंका है। भूमि की उपज में भी वैसी ही सम्पन्नता तथा विविधता है, राजनीतिक विन्यास में भी वैसी ही विच्छिन्नता। इटली में समय-समय पर विजेताओं की तलवार के नीचे ही भिन्न-भिन्न जातीय जन-समूह एकत्रित होते रहे; इसी प्रकार हम देखते हैं कि जब हिन्दुस्तान पर मुसलमानों, या मुग़लों, या अंग्रेज़ों का दबाव न होता तो वह भी उतने ही स्वतन्त्र, परस्परविरोधी राज्यों में बंट जाता रहा, जितने कि उसमें नगर, यहां तक कि गांव थे। पर सामाजिक दृष्टि से हिन्दुस्तान इटली नहीं, बल्कि पूर्व का आयर्लैण्ड है। इटली और आयर्लैण्ड की स्थितियों के विचित्र मिश्रण का – विलासिता के संसार और क्लेश के संसार के इस अनोखे मेल का पूर्वाभास हमें हिन्दुस्तान की प्राचीन धार्मिक परम्पराओं से ही मिल जाता है। यह धर्म एकसाथ ही अत्यधिक ऐन्द्रियता और आत्मपीड़क तपस्या का धर्म है। उसमें लिंगम भी है और जगन्नाथ भी, साधु भी है और देव दासी भी।

मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं जो हिन्दुस्तान के किसी स्वर्णयुग में विश्वास रखते हैं, लेकिन अपने मत के समर्थन में मैं सर चार्ल्स वुड की तरह कुली ख़ां के समय का हवाला भी नहीं दूंगा। परन्तु, मिसाल के तौर पर, आप औरंगज़ेब के ज़माने को या उस ज़माने को लीजिये जब मुग़ल उत्तर में और पुर्तगाली दक्षिण में आये थे; या आप उस काल को लीजिये जब मुसलमानों के हमले हो रहे थे और दक्षिण भारत में हैप्टार्की[128] क़ायम थी; या यदि आप चाहें तो उससे भी पुराने ज़माने की कल्पना कीजिये और स्वयं ब्राह्मणों के पौराणिक

काल-क्रम को लीजिये, जिसमें हिन्दुस्तान में दु:ख-दैन्य का आरम्भ ईसाइयों के मतानुसार जगत्-सृष्टि के आरम्भ से भी बहुत पहले का बताया गया है।

परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तान पर जो मुसीबत अंग्रेज़ों ने ढायी है, वह उन सब मुसीबतों से बुनियादी तौर पर भिन्न और अधिक तीव्र है, जो हिन्दुस्तान ने पहले उठायी थीं। यहां मेरा इशारा यूरोपीय तानाशाही की ओर नहीं है, जिसे ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने एशियाई तानाशाही के ऊपर स्थापित किया और जिसने एशियाई तानाशाही के साथ मिलकर ऐसा भयानक दैत्य पैदा किया जो सालसेट के मन्दिर में स्थित अलौकिक राक्षसों की मूर्त्तियों से भी अधिक भयानक था। तानाशाहियों को मिलाना ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता का कोई अनूठा गुण नहीं, बल्कि केवल हालैण्ड की पद्धति की नक़ल है। यहां तक कि ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काम का वर्णन करने के लिए जावा के अंग्रेज गवर्नर सर स्टैम्फ़र्ड रैफ़्लस के शब्दों को ज्यों का त्यों दोहरा देना काफ़ी होगा, जो उन्होंने हालैण्ड की पुरानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बारे में लिखे थे:

> "हालैण्ड की कम्पनी, केवल लाभ की भावना से प्रेरित, अपनी प्रजा का उतना भी ध्यान नहीं रखती थी, जितना कि पहले कोई वेस्ट इण्डियन बाग़ान-मालिक अपनी भूमि पर काम करनेवाले दासों का रखता था, क्योंकि बाग़ान के मालिक को कम से कम मानव शरीर ख़रीदने के लिए पैसे देने पड़े थे, जो कम्पनी को नहीं देने पड़े थे। इस तरह यह कम्पनी तानाशाही के तमाम साधनों द्वारा लोगों से उनकी आख़िरी कौड़ी तक वसूल लेती थी, उनकी श्रम शक्ति की अन्तिम बूंद तक चूस लेती थी; और इस प्रकार एक स्वेच्छाचारी और अर्द्ध-बर्बर सरकार को राजनीतिज्ञों की सारी सधी हुई चालाकियों और व्यापारियों की समस्त सर्वग्रासी स्वार्थलिप्सा के साथ जोड़कर उसने देश को पहुंचायी गयी बुराइयों को और भी बढ़ाया।"

हिन्दुस्तान में हुए सभी गृहयुद्ध, उसपर हुए सारे आक्रमण, वहां घटित सारे राज-परिवर्तन, उसकी अनेक अभिजितियां, समस्त दुर्भिक्ष – एक के बाद एक – चाहे कितने ही जटिल, वेगवान और विनाशकारी क्यों न जान पड़ते हों, उनके प्रभाव गहरे न होकर मात्र सतही रहे। परन्तु इंगलैंड ने तो भारतीय समाज का सारे का सारा ढांचा तोड़ डाला, और उसके नवनिर्माण के कोई लक्षण अभी तक नज़र नहीं आते। इस भांति एक तरफ़ तो भारतीय जनता की पुरानी दुनिया खो गई है और दूसरी तरफ़ नयी दुनिया मिली नहीं है, जिससे उसकी वर्तमान दु:खपूर्ण

स्थिति और भी करुण हो जाती है और ब्रिटिश शासन के नीचे भारत अपनी सभी प्राचीन परम्पराओ, अपने समूचे पिछले इतिहास से कट जाता है।

सामान्यतया एशिया में अतिप्राचीन काल से शासन के केवल तीन विभाग रहे हैं: वित्त विभाग, अर्थात् अंदरूनी लूट-पाट विभाग; युद्ध विभाग, अर्थात् बाहरी लूट-पाट विभाग; और, अन्त में, सार्वजनिक निर्माण विभाग। जलवायु तथा भूमि की विशेषता के कारण, विशेष तौर से बड़े-बड़े रेगिस्तानों के कारण, जो सहारा से लेकर अरब, फ़ारस, हिन्दुस्तान और तार्तार होते हुए एशिया के ऊंचे से ऊंचे पहाड़ी प्रदेशों तक फैले हुए हैं, एशिया में कृषि का आधार सिंचाई के कृत्रिम साधन—नहरें, जलघर आदि—रहे हैं। मिस्र और हिन्दुस्तान की तरह, मेसोपोटामिया और फ़ारस इत्यादि में भी धरती को उपजाऊ बनाने के लिए बाढ़ के पानी का उपयोग किया जाता है और पानी के ऊंचे स्तर का लाभ उठाकर सिंचाई करनेवाली नहरें भर ली जाती हैं। कमखर्ची के साथ मिल-जुलकर पानी का उपयोग करने की इस मूलभूत आवश्यकता ने पश्चिम में निजी उद्यमों को स्वैच्छिक साहचर्य के लिए विवश किया जैसा कि फ़्लांडर्स तथा इटली में हुआ। परन्तु पूरब में एक तो सभ्यता का स्तर नीचा था और दूसरे भूमि का विस्तार बड़ा था। इसलिए वहां स्वैच्छिक साहचर्य अत्यन्त कठिन था, जिससे सरकार की केन्द्रीयताकारी शक्ति का हस्तक्षेप ज़रूरी हो गया। फलतः एशिया की सभी सरकारों पर सार्वजनिक निर्माण के प्रबन्ध का आर्थिक काम आ पड़ा। इस तरह जब ज़मीन को उपजाऊ बनाने के कृत्रिम साधन केन्द्रीय सरकार पर निर्भर हो गये, तो जब कभी सरकारें सिंचाई तथा पानी की निकासी की ओर ध्यान न दे पातीं, तो फ़ौरन ज़मीनें ऊसर होने लगतीं। यही कारण है कि हमें यह विचित्र स्थिति दिखाई देती है कि बड़े-बड़े प्रदेश, जहां किसी ज़माने में शानदार खेती होती थी, आज बंजर और अनुर्वर नज़र आते हैं, जैसे पाल्मीरा, पैट्रा, यमन के खण्डहर और मिस्र, फ़ारस तथा हिन्दुस्तान के विस्तृत इलाक़े। और यही कारण है कि एक भी विनाशकारी युद्ध के होने से सारा देश सदियों के लिए निर्जन हो जाता है और उसकी सारी सभ्यता लुप्त हो जाती है।

अब अंग्रेज़ों ने ईस्ट इण्डिया में अपने पूर्वाधिकारियों से वित्त विभाग तथा युद्ध विभाग तो ले लिये, परन्तु सार्वजनिक निर्माण विभाग की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि वह कृषि, जो अंग्रेज़ों के स्वतन्त्र होड़ के

सिद्धान्त – laissez faire, laissez aller* के सिद्धान्त – के मुताबिक़ नहीं चल सकती थी, बर्बाद हो गयी। पर एशियाई देशों में हम यह बात देखने के बिल्कुल अभ्यस्त हैं कि खेती किसी एक शासन में बर्बाद होती है तो किसी दूसरे शासन काल में फिर पनपने लगती है। यहां फ़सल का दारोमदार सरकार के अच्छे या बुरे होने पर होता है, जैसे कि यूरोप में उसका दारोमदार अच्छे या बुरे मौसम पर। अतः अंग्रेज़ विजेताओं द्वारा कृषि की उपेक्षा और उस पर चोट जघन्य होते हुए भी भारतीय समाज पर घातक प्रहार नहीं समझी जा सकती थी, यदि इसके साथ ही एक ऐसी अधिक महत्त्वपूर्ण बात न हो गयी होती जो अपना अलग महत्त्व रखती है और सारे एशिया के इतिहास में अनोखी है। हिन्दुस्तान के अतीत का राजनीतिक पहलू कितना ही परिवर्तनशील क्यों न रहा हो, उसकी सामाजिक स्थिति अतिप्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी की पहली दशाब्दी तक स्थायी रही। करघा और चरखा इस सामाजिक ढांचे की धुरी थे, जिनसे निरन्तर असंख्य बुनकर तथा सूत कातनेवाले पैदा होते रहते थे। पुरातन काल से यूरोप हिन्दुस्तानी बुनकरों के तैयार किये हुए बेहतरीन कपड़े मंगवाता रहा और बदले में अपनी मूल्यवान धातुएं भेजता रहा, जो सुनार के पास पहुंचती रहीं। सुनार भारतीय समाज का नितान्त आवश्यक अंग होता है, क्योंकि वह समाज अलंकार-आभूषण का ऐसा महान प्रेमी है कि निम्नतम वर्ग के लोग भी, जो प्रायः नंगे घूमते हैं, सोने की बालियां या गले में कोई सोने का ज़ेवर पहने रहते हैं। हाथों और पांवों की उंगलियों पर अंगूठियां पहनने का आम रिवाज है। स्त्रियां और बच्चे भी अक्सर सोने और चांदी के मोटे-मोटे कंगन और पायज़ेब पहनते थे और उनके घरों में सोने और चांदी की बनी देवताओं की छोटी-छोटी मूर्त्तियां रखी मिलती थीं। अंग्रेज़ विजेता ने आकर हिन्दुस्तान के करघे को तोड़ा और चरख़े को तबाह किया। इंगलैंड ने पहले हिन्दुस्तान के बने सूती कपड़े को यूरोप के बाज़ार से बाहर निकाला, फिर हिन्दुस्तान में अपना सूत भेजा और अन्त में सूती कपड़ों की उस जन्मभूमि को अपने सूती कपड़ों से पाट दिया। १८१८ और १८३६ के बीच ग्रेट ब्रिटेन से हिन्दुस्तान भेजे जानेवाले सूत का परिमाण ५,२०० गुना बढ़ गया। १८२४ में अंग्रेज़ी मलमल का हिन्दुस्तान को निर्यात ज़्यादा से

* "अहस्तक्षेप, बेरोक आज़ादी" – पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों का नारा, जो उन्मुक्त व्यापार में तथा इस बात में विश्वास करते थे कि आर्थिक मामलों में राज्य की ओर से कोई हस्तक्षेप न किया जाये। – सं०

ज़्यादा दस लाख गज़ रहा होगा, पर १८३७ में वह बढ़कर ६ करोड़ ४० लाख गज़ से भी ज़्यादा हो गया। साथ ही ढाका की आबादी १,५०,००० से कम होकर २०,००० रह **गयी**। पर ब्रिटिश शासन का सबसे बुरा परिणाम यही नहीं था कि हिन्दुस्तान के ऐसे नगर, जो कपड़े के उद्योग के लिए प्रसिद्ध थे, तबाह हो गये। ब्रिटिश भाप और ब्रिटिश विज्ञान ने हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कृषि उत्पादन तथा हस्त उद्योग के समागम को जड़ से उखाड़ फेंका।

एक तरफ़ हिन्दुस्तानियों ने सभी पूर्वीय लोगों की तरह बड़े-बड़े सार्वजनिक निर्माण कार्य, जिनपर उनकी कृषि और व्यापार मुख्यतया निर्भर थे, केन्द्रीय सरकार की देख-रेख में छोड़ रखे थे, और दूसरी तरफ़ वे सारे देश में बिखरे हुए, कृषि और हस्त उद्योग की घरेलू एकता के कारण छोटे-छोटे केन्द्रों में समुदायबद्ध थे। इन दो परिस्थितियों के कारण एक विशेष सामाजिक ढांचा, जिसे हम **ग्राम व्यवस्था** कह सकते हैं, अतिप्राचीन काल से चला आ रहा था। यह व्यवस्था प्रत्येक एकताबद्ध समुदाय को स्वतंत्र संगठन तथा विशिष्ट जीवन प्रदान करती थी। इस पद्धति की विशेषता का परिचय हमें निम्नलिखित वर्णन से मिल सकता है जो भारत के मामलों पर ब्रिटिश हाउस ऑफ़ कामन्स की एक पुरानी सरकारी रिपोर्ट में पाया जाता है:

"भौगोलिक दृष्टि से गांव ज़मीन का एक टुकड़ा है, जिसमें कुछ सौ या हज़ार एकड़ कृषियोग्य और बंजर भूमि शामिल होती है; राजनीतिक दृष्टि से वह कार्पोरेशन या नगर समुदाय से मिलता-जुलता है। नियमत: उसका प्रबन्ध निम्नलिखित अधिकारी तथा सेवक करते हैं: **पटेल** या मुखिया, जो सामान्यतया गांव के मामलों की देख-रेख करता है, गांववालों के झगड़ों का निबटारा करता है, पुलिस का काम करता है और गांव के अन्दर मालगुज़ारी वसूल करता है; इस काम के लिए वह अपने निजी प्रभाव के कारण तथा स्थिति की व लोगों के मामलों की गहरी जानकारी रखने के कारण सबसे उपयुक्त होता है; **कर्णम**, जो खेतीबारी का हिसाब-किताब रखता है और खेती सम्बन्धी सारी बातें अपने काग़ज़ों में दर्ज करता है; **तलयारी** और **तोटी** में से पहला जुर्मों तथा अपराधों की ख़बरें हासिल करता है, एक गांव से दूसरे गांव जानेवाले लोगों के साथ जाता है और उनकी हिफ़ाज़त करता है; दूसरे का काम गांव के अन्दर अधिक रहता है, अन्य कामों के साथ उसका एक काम फ़सल की हिफ़ाज़त करना तथा उसकी पैमाइश करने में मदद देना होता है। **हद्दबन्दी करनेवाला** गांव की सीमाओं का ख़्याल रखता है और झगड़े के वक़्त उनके बारे में बयान देता है। तालाबों तथा

जलस्रोतों का निरीक्षक खेती के लिए पानी बांट कर देता है। पुजारी ब्राह्मण गांव में पूजा-पाठ करवाता है। पाठशाला का पंडित गांव में बच्चों को रेत पर पढ़ना और लिखना सिखाता है। जन्त्रीवाला ब्राह्मण या ज्योतिषी इत्यादि हैं। सामान्यतया गांव का प्रबन्ध इन अधिकारियों तथा सेवकों के हाथ में रहता है। पर देश के कुछ हिस्सों में ये सारे अधिकारी तथा सेवक नहीं होते और ऊपर लिखे कामों तथा ज़िम्मेदारियों में से कई एक को एक ही आदमी निभाता है। और कई स्थानों में उनकी संख्या अधिक भी होती है। इस तरह की साधारण स्थानीय शासन व्यवस्था के अधीन देश के निवासी अतिप्राचीन काल से रहते चले आ रहे हैं। गांवों की सीमाओं में बहुत ही कम बार तबदीली हुई है। यद्यपि गांवों को कभी-कभी लड़ाइयों, दुर्भिक्षों तथा महामारियों से हानि पहुंचती रही है, यहां तक कि वे उजड़े भी हैं, फिर भी सदियों से वे ही नाम, वे ही सीमाएं, वे ही हित, यहां तक कि वे ही परिवार चलते आ रहे हैं। राज्यों के विघटन तथा विभाजन से गांववासियों को कोई चिन्ता नहीं होती। जब तक गांव वैसे का वैसा बना रहे, उन्हें कोई परवाह नहीं कि वह किस शक्ति के हाथ में चला जाये या किस राजा के सुपुर्द हो, क्योंकि गांव की आन्तरिक अर्थव्यवस्था में कोई तबदीली नहीं आती थी। पटेल अभी भी मुखिया बना हुआ है। वह अभी भी छोटे-छोटे मुक़द्दमों के फ़ैसले करता है और गांव की मालगुज़ारी वसूल करता है या लगान लेता है।"

सामाजिक व्यवस्था के ये छोटे-छोटे एक जैसे रूप अब बहुत हद तक मिट चुके हैं और उनका लोप हो रहा है। ऐसा ब्रिटिश कराधिकारियों तथा ब्रिटिश सैनिकों के क्रूर हस्तक्षेप के कारण उतना नहीं हो रहा है, जितना कि ब्रिटिश भाप मशीनों के कारण और ब्रिटिश स्वतन्त्र व्यापार के कारण। उन कुटुम्ब समुदायों का आधार था घरेलू उद्योग—हाथ की बुनाई, हाथ की कताई तथा हाथ की जुताई वाली खेती का विचित्र सम्मिलन—जिससे उन्हें अपने पांवों पर खड़े रहने की शक्ति मिलती थी। अंग्रेज़ों की दस्तन्दाज़ी ने सूत कातनेवाले को लंकाशायर में और बुनकर को बंगाल में बैठाकर, या भारतीय बुनकर और भारतीय सूत कातनेवाले दोनों का सफ़ाया करके उन छोटे-छोटे अर्द्ध-बर्बर तथा अर्द्ध-सभ्य समुदायों को, उनका आर्थिक आधार तोड़कर, मिटा दिया और इस प्रकार एशिया में सबसे बड़ी और सच कहें तो एकमात्र सामाजिक क्रान्ति पैदा कर दी।

अब यह बात मानव भावना के लिए क्लेशकर अवश्य है कि इन असंख्य उद्योगशील, पितृसत्तात्मक तथा निरीह सामाजिक संगठनों को तोड़ा गया और उनकी

इकाइयों में उनका विघटन किया गया, उन्हें दुःख के अथाह सागर में डाल दिया गया और उनका हर सदस्य अपनी प्राचीन सभ्यता तथा अपनी परम्परागत जीविका के साधनों को खो बैठा। फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऊपर से सुन्दर और निरीह दिखनेवाले ये ग्राम समुदाय सदैव प्राच्य तानाशाही के दृढ़ आधार रहे हैं। उन्होंने मानव मस्तिष्क को तंग से तंग दायरे में सीमित रखा, जिससे कि अपनी सारी महानता तथा ऐतिहासिक ओज से वंचित, वह केवल अन्धविश्वासों का मूक वाहक और परम्परा के नियमों का दास मात्र रह गया। हमें इस समुदाय की बर्बर स्वार्थपरता को भी हरगिज़ नहीं भूलना चाहिए—वह भूमि के एक तुच्छ टुकड़े के साथ चिपटा हुआ, चुपचाप साम्राज्यों की तबाही देखता रहा, अकथनीय जुल्म होते देखता रहा, बड़े-बड़े नगरों की सारी आबादी का क़त्लेआम भी देखता रहा, इस तरह जैसे प्राकृतिक घटनाएं देख रहा हो, और जो स्वयं इतना लाचार था कि जिस किसी आक्रमणकारी की नजर में वह पड़ गया उसका निःसहाय भाव से शिकार हो गया। हमें यह भी हरगिज़ नहीं भूलना चाहिए कि दूसरी ओर, इसके विपरीत, इसी गौरवहीन, गतिहीन, एकरस जीवन ने, इसी निष्क्रिय अस्तित्व ने, विनाश की विवेकहीन, लक्ष्यहीन और उच्छृंखल शक्तियों को जगाया, यहां तक कि मनुष्य की हत्या को भी हिन्दुस्तान में धार्मिक कृत्य बना दिया। हमें यह हरगिज़ न भूलना चाहिए कि इन छोटे-छोटे समुदायों को जात-पांत के भेदभाव तथा दासता ने दूषित कर दिया था। उन्होंने मनुष्य को परिस्थितियों का स्वामी बनाने के बजाय बाहरी परिस्थितियों का दास बना दिया था, स्वतः विकासमान सामाजिक अवस्था को कभी न बदलनेवाली प्राकृतिक नियति में परिणत कर दिया था और इस तरह पशुवृत्ति पोषक प्रकृति-पूजा शुरू करवा दी थी, जिसका पतित स्वरूप इतने से ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति का स्वामी मनुष्य घुटने टेककर बन्दर (हनुमान) और गाय (शबला) की पूजा करने लगा।

यह सत्य है कि हिन्दुस्तान में सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करने में इंगलैंड निकृष्टतम स्वार्थों से प्रेरित हुआ था और जिस ढंग से उसने उन स्वार्थों की सिद्धि की थी वह मूर्खतापूर्ण था। पर सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि क्या मानवजाति एशिया की सामाजिक व्यवस्था में मौलिक क्रान्ति हुए बिना अपने प्रारब्ध की पूर्त्ति कर सकती है? यदि नहीं, तो इंगलैंड ने जो भी अपराध किये हों, इस क्रान्ति को लाने में वह अनजाने ही इतिहास का हथियार बन गया। तब, एक प्राचीन संसार के लड़खड़ाकर गिरने का दृश्य हमारी निजी भावनाओं के

लिए चाहे जितना भी कटु क्यों न हो, इतिहास की दृष्टि से गेटे के शब्दों में हमें यह कहने का अधिकार है :

«Sollte diese Qual uns quälen
Da sie unsre Lust vermehrt,
Hat nicht Myriaden Seelen
Timur's Herrschaft aufgezehrt?»*

१० जून १८५३ को लिखित।
«New-York Daily Tribune» में
प्रकाशित।

हस्ताक्षर: **कार्ल मार्क्स**

अंग्रेजी से अनूदित।

*"तो क्या हम इस ज़ुल्म से दुःखी हों जबकि यह हमारे लिए नयी ख़ुशियां ला रहा है? क्या तैमूर के शासन में अनगिनत प्राणी मौत के घाट नहीं उतारे गये थे?" ('पश्चिम-पूर्वी दीवान' कविता-माला की 'ज़ुलैख़ा के नाम' कविता से उद्धृत।) —सं०

भारत में ब्रिटिश राज के भावी परिणाम

लन्दन, शुक्रवार, २२ जुलाई १८५३

मैं भारत के बारे में अपने विचार प्रकट करने का कार्य इस पत्र के साथ समाप्त कर रहा हूं।

भारत में ब्रिटिश आधिपत्य क्योंकर क़ायम हुआ? मुग़ल महान की सर्वोच्च सत्ता को मुग़ल सूबेदारों ने तोड़ा, सूबेदारों की ताक़त को मराठों ने तोड़ा, मराठों की ताक़त को अफ़ग़ानों ने; और जिस समय सब एक दूसरे के अविरुद्ध संघर्ष कर रहे थे, उस समय अंग्रेज घुस आये और उन सब पर अधिकार क़ायम करने में सफल हो गये। देश न केवल हिन्दुओं और मुसलमानों में, बल्कि क़बीलों और जातों में भी बंटा हुआ था। इस समाज का ढांचा एक ऐसे सन्तुलन पर टिका हुआ था जो इसके सभी सदस्यों के परस्पर विकर्षण तथा स्वभावगत पृथक्ता से पैदा हुआ था। ऐसे देश और ऐसे समाज का किसी दूसरे विजेता का शिकार हो जाना क्या अवश्यम्भावी नहीं था? यदि हमें हिन्दुस्तान का पिछला इतिहास कुछ भी न मालूम हो, तो भी क्या यह निर्विवाद सत्य हमारे लिए काफ़ी नहीं है कि आज भी, इस वक़्त भी, अंग्रेज भारत को भारतीय फ़ौज द्वारा ग़ुलाम बनाये हुए हैं, जिसका ख़र्चा भारत देता है? इस तरह, भारत विजित होने की भवितव्यता से नहीं बच सकता था, और उसका पिछला सारा इतिहास यदि कुछ बताता है तो यही कि उसपर किस तरह एक के बाद दूसरे विजेता ने अपना आधिपत्य जमाया। भारतीय समाज का कोई इतिहास नहीं, कम से कम कोई जाना हुआ इतिहास नहीं। जिसे हम उसका इतिहास कहते हैं, वह वास्तव में उन विजेताओं का इतिहास है, जिन्होंने एक के बाद एक उस अपरिवर्तनशील और प्रतिकारशून्य समाज की निष्क्रियता के आधार पर अपने साम्राज्य खड़े किये।

इसलिए सवाल यह नहीं है कि अंग्रेज़ों को भारत पर प्रभुत्व क़ायम करने का अधिकार था या नहीं ; सवाल यह है कि हम भारत पर किसके प्रभुत्व को तरजीह देंगे – तुर्क के, फ़ारसी के, रूसी के या अंग्रेज़ के।

इंगलैंड को भारत में दोहरे ध्येय की पूर्त्ति करनी है : एक विनाशकारी, दूसरा सृजनात्मक – पुराने एशियाई समाज को तोड़ना और पश्चिमी समाज के भौतिक आधार को एशिया में स्थापित करना।

अरब, तुर्क, तातार और मुग़ल, जो एक के बाद एक भारत पर अपना आधिपत्य जमाते रहे, शीघ्र ही **भारतीय बन गये**। इतिहास के शाश्वत नियम के अनुसार, बर्बर विजेताओं पर उनकी प्रजा की उच्चतर सभ्यता विजय प्राप्त करती रही। अंग्रेज़ पहले विजेता थे, जिनकी सभ्यता अधिक ऊंची थी, इसलिए वे भारतीय सभ्यता की पकड़ से बाहर थे। उन्होंने देशी समुदायों को छिन्न-भिन्न करके, देशी उद्योग को जड़ से उखाड़कर और वहां के समाज में जो कुछ भी उन्नत तथा श्रेष्ठ था उसे नष्ट करके भारतीय सभ्यता का नाश किया। भारत में अंग्रेज़ों के राज का इतिहास केवल नाश की ही कहानी है ; खण्डहरों के ढेर में से उनका रचनात्मक काम शायद ही दिखाई पड़ता है। फिर भी इस काम का आरम्भ हो चुका है।

भारत की राजनीतिक एकता, जो महान मुग़लों के ज़माने में कभी भी इतनी दृढ़ या विस्तृत न थी, भारत के पुनरुद्धार की पहली शर्त थी। इस एकता को, जिसे अंग्रेज़ों ने अपनी तलवार के ज़ोर से क़ायम किया, अब बिजली का तार और भी अधिक दृढ़ करेगा तथा स्थायित्व प्रदान करेगा। अंग्रेज़ ड्रिल-सार्जेंट द्वारा संगठित तथा प्रशिक्षित भारतीय सेना भारत के अपने प्रयत्नों से मुक्ति प्राप्त करने और फिर कभी किसी हमलावर का शिकार न बनने की sine qua non* थी। भारतीय समाज के पुनर्निर्माण का एक नया और सशक्त साधन आज़ाद अख़बार हैं, जिनसे एशियाई समाज पहली बार परिचित हो पाया है और जिनका संचालन मुख्यतया भारतीयों और यूरोपियनों के समान वंशज कर रहे हैं। ज़मींदारी और रैयतवारी की पद्धतियां, घृणित होते हुए भी, निजी भू-स्वामित्व के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं, और एशियाई समाज में इसी निजी भू-स्वामित्व की कमी है। उन भारतीयों में से, जिन्हें कलकत्ते में अंग्रेज़ों के निरीक्षण में अनिच्छापूर्वक और कम से कम संख्या में शिक्षा दी जा रही है, एक नया वर्ग सामने आ रहा है,

* conditio sine qua non – अनिवार्य शर्त। – सं०

जो शासनयोग्यता रखता है और यूरोप के विज्ञान से प्रभावित है। भाप द्वारा भारत तथा यूरोप के बीच नियमित और द्रुत यातायात होने लगा है, भारत के मुख्य बन्दरगाहों का दक्षिण और पूर्व के सागरों के तमाम बन्दरगाहों के साथ सम्बन्ध स्थापित हो गया है और इस तरह भारत की पृथक्ता, जो उसकी गतिहीनता का मुख्य कारण थी, ख़त्म हो गई है। वह दिन दूर नहीं, जब रेलों और भाप से चलनेवाले जहाज़ों के सम्मिलित साधन से इंगलैंड और भारत के बीच की दूरी समय के लिहाज़ से कम होकर आठ दिन की रह जायेगी और जब यह देश, जो कभी पुराण-कथाओं का विचित्र देश सा लगता था, सचमुच पश्चिमी संसार से जा मिलेगा।

भारत की उन्नति में ग्रेट ब्रिटेन के शासक वर्गों की दिलचस्पी अभी तक केवल सांयोगिक, क्षणजीवी तथा अपवादस्वरूप रही है। अभिजात वर्ग भारत को जीतना चाहता था, थैलीशाह उसे लूटना चाहते थे और उद्योगपति अपने सस्ते माल से उसके बाज़ारों को पाट देना चाहते थे। पर अब स्थिति एकदम उलट गयी है। उद्योगपतियों को अब पता चल गया है कि भारत को उत्पादक देश में परिवर्तित करना उनके लिए अत्यावश्यक है और इसके लिए सबसे ज़रूरी यह है कि देश में सिंचाई तथा यातायात के साधनों की व्यवस्था की जाये। अब उनका इरादा भारत भर में रेलों का जाल बिछा देने का है। वे ऐसा करेंगे भी, जिसके परिणाम अवश्य ही बहुमूल्य होंगे।

यह ज्ञात है कि भारत की उत्पादक शक्तियां इसलिए नितान्त अवरुद्ध हैं कि उसकी विभिन्न उपजों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने और उसकी अदला-बदली करने के लिए यातायात साधनों का पूर्ण रूप से अभाव है। विनिमय के साधनों के अभाव के कारण प्रकृति की अपार देन होते हुए भी जितना सामाजिक दारिद्र्य भारत में है, उतना और कहीं भी नहीं है। १८४८ में ब्रिटिश हाउस ऑफ़ कामन्स की समिति में यह प्रमाणित किया गया कि

> "जब खानदेश में अनाज ६ से ८ शिलिंग तक फ़ी क्वार्टर बिक रहा था, तब उसका भाव पूना में ६४ से ७० शिलिंग तक फ़ी क्वार्टर था। वहां लोग दुर्भिक्ष के कारण सड़कों पर मर रहे थे, और खानदेश से अनाज को लाना असम्भव था क्योंकि कच्ची सड़कें अगम्य थीं।"

रेलों से कृषि को भी आसानी से सहायता पहुंचायी जा सकती है: जहां रेल बांध बनाने के लिए मिट्टी खोदने की ज़रूरत हो वहां तालाब बनाये जा सकते

हैं, और पानी रेल के किनारे-किनारे अलग-अलग स्थानों तक ले जाया जा सकता है। इस तरह सिंचाई को, जो पूर्वी देशों में खेती की sine qua non है, अधिक विस्तृत किया जा सकता है और स्थानीय दुर्भिक्ष, जो पानी न मिलने से बार-बार होते हैं, रोके जा सकते हैं। इस विषय में रेलों का व्यापक महत्त्व और भी स्पष्ट हो जायेगा, जब हम देखेंगे कि घाटों के निकटवर्त्ती ज़िलों में भी सिंचाई वाली ज़मीनों से उन ज़मीनों की तुलना में, जहां सिंचाई नहीं है, तीन गुना अधिक कर प्राप्त होता है, दस या बारह गुना अधिक रोज़गार निकलता है और बारह या पन्द्रह गुना अधिक मुनाफ़ा होता है।

रेलों से फ़ौजी छावनियों की संख्या को और उनके ख़र्चे को कम करने का साधन प्राप्त हो जायेगा। फ़ोर्ट सेंट-विलियम के टाउन-मेजर कर्नल वारेन ने हाउस ऑफ़ कामन्स की विशेष समिति के सामने बयान दिया कि

> "देश के दूरवर्त्ती इलाक़ों से सूचनाएं पहुंचने में आजकल जितने दिन या हफ़्ते लग जाते हैं, भविष्य में उतने ही घण्टों में समाचार मिल सकने तथा निर्देश, सैनिक तथा सामान भी उतनी ही जल्दी भेज सकने की सम्भावना बहुमूल्य है। फ़ौजों को दूर-दूर तथा अधिक स्वस्थ स्थानों पर रखा जा सकेगा, और इस तरह बहुत-से आदमियों को, जो अब बीमारी के कारण मर जाते हैं, बचाया जा सकेगा। अलग-अलग गोदामों में इतनी अधिक रसद रखने की भी ज़रूरत न रहेगी और इस तरह जो नुक़सान चीज़ों के सड़-गल जाने या आबोहवा के कारण होता है, वह बन्द हो जायेगा। फ़ौजें जिस अनुपात में अधिक कारगर हो जायेंगी उसी अनुपात में उनकी संख्या को भी कम किया जा सकेगा।"

हम जानते हैं कि ग्राम समुदायों के स्वशासन संगठन और आर्थिक आधार तोड़ दिये गये हैं। पर उनका सबसे निकृष्ट पहलू—समाज का अनेक असम्बद्ध, छोटी-छोटी, एक-सी इकाइयों में बिखरे रहना—आज भी, जब उनकी प्राणशक्ति नष्ट हो गयी है, क़ायम है। भारत में चूंकि गांवों का आपस में सम्बन्ध न था, इसलिए सड़कें न थीं, और चूंकि सड़कें न थीं, इसलिए यह अलगाव स्थायी हो गया। इन परिस्थितियों में एक ग्राम समुदाय सुविधाओं के एक निश्चित निम्न स्तर पर जीता था, दूसरे गांवों के साथ उसका सम्पर्क नहीं के बराबर होता था और उसमें उन इच्छाओं तथा प्रयासों का निपट अभाव था, जो सामाजिक उन्नति के लिए अनिवार्य होते हैं। अब, जब अंग्रेज़ों ने ग्राम समुदायों का इस आत्मनिर्भर गतिहीनता

को नष्ट कर दिया है, रेलें संचार तथा संसर्ग के अभाव की पूर्त्ति करेंगी। इसके अलावा

> "रेल व्यवस्था का एक परिणाम यह भी होगा कि जो गांव रेलों के प्रभाव क्षेत्र में आयेगा, वहां के लोगों को अन्य देशों के ऐसे आविष्कारों तथा मशीनों की भी जानकारी होगी और उन्हें प्राप्त करने के ऐसे साधन भी समझ में आयेंगे जिनसे सबसे पहले भारत के पुश्तैनी और वृत्ति-भोगी ग्रामीण दस्तकारों की योग्यता परखी जायेगी और उसके बाद उनकी त्रुटियों को दूर करने का रास्ता मालूम होगा।" (**चैपमैन**, 'भारतीय कपास तथा व्यापार')।

मैं जानता हूं कि अंग्रेज़ उद्योगपति केवल इसलिए भारत में रेलें बिछाना चाहते हैं कि वे रूई और अन्य कच्चा माल अपने कारख़ानों के लिए कम ख़र्च पर प्राप्त कर सकें। मगर जिस देश में लोहा और कोयला पाये जाते हों, उसके यातायात के साधनों में जब आप एक बार मशीनों को ले आयेंगे तो उसे ख़ुद मशीनें बनाने से आप नहीं रोक सकेंगे। यह नहीं हो सकता कि आप एक विशाल देश में रेलों का जाल बिछाये रहें और उन औद्योगिक प्रक्रियाओं को वहां शुरू न होने दें, जिनके बिना रेलों की तात्कालिक ज़रूरतों को पूरा नहीं किया जा सकता और जिनके परिणामस्वरूप मशीनों का प्रयोग उन उद्योगों में भी शुरू हो जायेगा जिनका रेलों के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। इसलिए रेल व्यवस्था भारत में आधुनिक उद्योग की जननी बनेगी। यह इसलिए और भी निश्चित है कि अंग्रेज़ अधिकारी स्वयं मानते हैं कि भारतीयों में अपने को बिल्कुल नए ढंग के काम के अनुकूल ढाल लेने और मशीनों को चलाने के लिए आवश्यक जानकारी हासिल कर लेने की विशेष योग्यता होती है। इसका अच्छा-ख़ासा सबूत इसी बात से मिल जाता है कि कलकत्ते की टकसाल में काम करनेवाले भारतीय मैकेनिक, जो वहां बरसों से भाप की मशीनों पर काम कर रहे हैं, अपने काम में दक्ष और चतुर हैं। इसी तरह वे भारतीय भी हैं, जो हरिद्वार के कोयले के इलाक़ों में भाप के इंजनों पर काम कर रहे हैं। ऐसे ही अन्य कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पूर्वाग्रहों से अत्यन्त प्रभावित होते हुए भी मिस्टर कैम्पबेल[129] स्वयं यह मानने को मजबूर हैं कि

> "भारत की अधिकांश जनता में महान **औद्योगिक शक्ति** है, पूंजी इकट्ठा करने की क्षमता है, गणित के लिए उसका मस्तिष्क विलक्षण रूप से साफ़

है और सांख्यिकी तथा तथ्य विज्ञानों के लिए उसमें मेधा है।" कैम्पबेल आगे कहते हैं, "उनकी बुद्धि बहुत अच्छी है।"

रेल व्यवस्था से उत्पन्न होकर आधुनिक उद्योग पुश्तैनी श्रम विभाजन को ख़त्म कर देगा, जिसपर भारत की जात-पांत व्यवस्था खड़ी है और जो भारत की उन्नति तथा शक्ति के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट है।

अंग्रेज़ पूंजीपति वर्ग वहां चाहे जो कुछ भी करने पर मजबूर हो, उससे वहां की आम जनता को न तो आज़ादी मिल पायेगी, न उसकी सामाजिक स्थिति में वास्तविक सुधार होगा क्योंकि यह सब न केवल उत्पादक शक्तियों के विकास पर, बल्कि उनके जनता के हाथ में आ जाने पर भी निर्भर करता है। परंतु यह वर्ग इन दोनों बातों को पूरा करने के लिए भौतिक आधार प्रस्तुत किये बिना नहीं रह सकता। क्या कभी भी पूंजीपति वर्ग ने इससे अधिक कुछ किया है? क्या कभी उसने व्यक्तियों और जातियों को ख़ून और गन्दगी, मुसीबत और ज़िल्लत के बीच से घसीटे बिना प्रगति सम्पन्न की है?

भारत के लोग समाज के उन नये तत्त्वों से, जिन्हें ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग ने उनके बीच बिखेरा है, तब तक कोई लाभ नहीं उठा सकेंगे, जब तक कि ख़ुद ब्रिटेन में औद्योगिक सर्वहारा आज के शासक वर्ग की जगह न ले ले, या जब तक कि भारतीय लोग स्वयं इतने मज़बूत न हो जायें कि अंग्रेज़ों के जुए को बिल्कुल उतार फेंकें। कुछ भी हो, हम आश्वस्त भाव से यह आशा कर सकते हैं कि भविष्य में, कुछ कम या ज़्यादा लंबे अरसे के बाद, उस महान और दिलचस्प देश का पुनरुत्थान होगा, जिस देश के सुशील लोग, प्रिन्स साल्तिकोव के शब्दों में, सबसे निचले वर्गों में भी «sont plus fins et plus adroits que les italiens»* होते हैं, जिनकी पराधीनता में भी एक विशेष शान्त औदार्य है और जो अपनी स्वाभाविक सुस्ती के बावजूद अंग्रेज़ अफ़सरों को अपनी बहादुरी से चकित कर चुके हैं, जिनका देश हमारी भाषाओं और हमारे धर्मों का स्रोत रहा है और जिसके जाट प्राचीन जर्मनों के प्रतिरूप जान पड़ते हैं, और ब्राह्मण प्राचीन यूनानियों के।

भारत के विषय पर लिखना समाप्त करने से पहले मैं अन्त में कुछ और बातें कहे बिना नहीं रह सकता।

---

* "वे इतालवियों से भी ज़्यादा पैनी बुद्धि वाले और कुशल हैं।"[130] – सं०

हमारी आंखों के सामने पूंजीवादी सभ्यता का वह घोर पाखण्ड और स्वभावगत बर्बरता निरावरण होकर आ गयी है, जो अपने देश में भद्रता की चादर ओढ़े रहती है और उपनिवेशों में नंगी घूमती है। अंग्रेज़ पूंजीपति निजी स्वामित्व के रक्षक हैं, पर क्या किसी क्रान्तिकारी पार्टी द्वारा कभी ऐसी भूमि सम्बन्धी क्रान्तियों का उद्‌भव हुआ है जैसी कि हम बंगाल, मद्रास और बम्बई में देखते हैं? क्या यह सच नहीं है कि जब साधारण भ्रष्टाचार से उनकी स्वार्थ लिप्सा संतुष्ट न हुई, तब उन्होंने भारत में, स्वयं उस कुख्यात लुटेरे लार्ड क्लाइव के शब्दों में, बड़ी क्रूरता के साथ लूट-खसोट शुरू कर दी? जहां यूरोप में वे राष्ट्रीय ऋण की पवित्रता का ढोल पीटते थे, वहां क्या वे भारत में उन राजाओं के लाभांशों को ज़ब्त नहीं करते रहे जिन्होंने अपनी निजी बचत का रुपया स्वयं कम्पनी के शेयरों में लगाया था? जहां उन्होंने फ़्रांस की क्रान्ति का विरोध "अपने पवित्र धर्म" की रक्षा के बहाने किया, वहां क्या उन्होंने उसी समय भारत में ईसाइयत के प्रचार की मनाही नहीं कर दी? और क्या उन्होंने उन यात्रियों से, जो उड़ीसा और बंगाल के मन्दिरों में जाते थे, पैसा ऐंठने की ख़ातिर उसी हत्या और वेश्यावृत्ति के व्यापार को नहीं अपनाया जो जगन्नाथ के मन्दिर में चल रहा था? ये लोग हैं जो अपने आपको "सम्पत्ति, व्यवस्था, परिवार तथा धर्म" के रक्षक बतलाते हैं!

भारत में, जो यूरोप जैसा विशाल है और जिसमें १५ करोड़ एकड़ भूमि है, ब्रिटिश उद्योग के जो विनाशकारी परिणाम हुए हैं, वे स्पष्ट और भयानक हैं। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि वे वर्तमान उत्पादन पद्धति के मात्र स्वाभाविक परिणाम हैं। यह उत्पादन पद्धति पूंजी की सर्वोच्च सत्ता पर आधारित है। पूंजी के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए पूंजी का केन्द्रीकरण लाज़िमी है। इस केन्द्रीकरण का जो विनाशकारी प्रभाव दुनिया के बाज़ारों पर पड़ा है, उससे राजनीतिक अर्थशास्त्र के उन अन्तर्भूत, भीतरी नियमों का भीमाकार रूप नज़र आता है, जो आजकल हर सभ्य शहर में काम कर रहे हैं। इतिहास के पूंजीवादी युग को नयी दुनिया का भौतिक आधार तैयार करना है। इसके लिए उसे एक ओर तो मानवजाति की पारस्परिक निर्भरता के आधार पर संसारव्यापी संसर्ग और उसके साधन स्थापित करने हैं, और दूसरी ओर इनसान की उत्पादक शक्तियों को बढ़ाना और भौतिक उत्पादन को प्राकृतिक शक्तियों पर विज्ञान के अधिकार में रूपान्तरित करना है। पूंजीवादी उद्योग तथा व्यापार नयी दुनिया की इन भौतिक परिस्थितियों को उसी तरह तैयार करते हैं जिस तरह भूतत्त्वीय क्रान्तियों ने पृथ्वी की सतह को तयार

किया है। जब एक महान सामाजिक क्रान्ति पूंजीवादी युग के परिणामों पर, विश्व बाजार और उत्पादन की आधुनिक शक्तियों पर अपना अधिकार जमा लेगी और उन्हें सबसे अधिक उन्नत राष्ट्रों के सम्मिलित नियंत्रण के अधीन कर लेगी, केवल उसी समय मानव प्रगति का रूप प्राचीन मूर्त्तिपूजकों की उस भयानक देव-मूर्त्ति के रूप जैसा नहीं होगा जो बलि चढ़े मनुष्यों की खोपड़ियों से ही अमृत पीता था।

२२ जुलाई १८५३ को लिखित।

«New-York Daily Tribune»
अंक ३८४० में ८ अगस्त
१८५३ को प्रकाशित।
हस्ताक्षर : **कार्ल मार्क्स**

अंग्रेज़ी से अनूदित।

«PEOPLE'S PAPER» की जयन्ती पर भाषण

लन्दन, १४ अप्रैल १८५६[131]

१८४८ की कथित क्रान्तियां मामूली घटनाओं के अलावा कुछ नहीं थीं, वे यूरोपीय समाज की सूखी परत में छोटी-छोटी दरारों और कटावों के अलावा और कुछ नहीं थीं। परन्तु उन्होंने गहरे गर्त्तों को उजागर किया। बाहर से ठोस दिखायी देनेवाली सतह के नीचे उन्होंने तरल पदार्थ के सागर के सागर उजागर कर दिये, जिन्हें कठोर चट्टानों के बने महाद्वीपों को खण्ड-खण्ड करने के लिए केवल हिलाने की आवश्यकता थी। शोर-शराबे के साथ और भ्रान्तिमूलक ढंग से उन्होंने सर्वहारा की मुक्ति की – १९ वीं शताब्दी के रहस्य तथा उस शताब्दी की क्रान्ति के रहस्य की – उद्घोषणा की।

यह सच है कि वह सामाजिक क्रान्ति १८४८ का कोई आविष्कार नहीं थी। भाप, बिजली और कताई यंत्र बार्बेस, रास्पायल और ब्लांकी जैसे नागरिकों तक से एक तरह ज़्यादा ख़तरनाक स्वरूप के क्रान्तिकारी थे। लेकिन जिस वायुमण्डल में हम रहते हैं, उसका हम सब पर २०,००० पौंड भार होते हुए भी क्या हम उसे महसूस करते हैं? वह उससे ज़्यादा नहीं है जितना १८४८ से पहले यूरोपीय समाज पर चारों ओर से दबाव डालनेवाले क्रान्तिकारी वायुमण्डल का भार था।

एक महान तथ्य विद्यमान है जो हमारी इस उन्नीसवीं शताब्दी की लाक्षणिकता है, और जिसका प्रतिवाद करने की कोई पार्टी हिम्मत नहीं कर सकती। एक ओर ऐसी औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शक्तियां उत्पन्न हुईं जिनकी मानव इतिहास के किसी भी पूर्ववर्ती युग में कल्पना तक नहीं की गयी थी। दूसरी ओर ह्रास के ऐसे चिह्न विद्यमान हैं जो रोमन साम्राज्य के परवर्ती काल की ज्ञात विभीषिकाओं को बुरी तरह मात देते हैं।

हमारे युग में हर वस्तु अपने गर्भ में अपना विपरीत गुण धारण किये हुए प्रतीत होती है। हम देख रहे हैं कि मानव श्रम को कम करने और उसे फलदायी

बनाने की अद्भुत शक्ति से सम्पन्न मशीनें लोगों को भूखा मार रही हैं, उन्हें थकाकर चूर कर रही हैं। दौलत के नूतन स्रोतों को किसी अजीब टोना-जादू के ज़रिए अभाव के स्रोतों में परिणत किया जा रहा है। तकनीक की विजयें चरित्र के पतन से ख़रीदी जाती लगती हैं। मानवजाति जिस रफ़्तार से प्रकृति पर अपना प्रभुत्व क़ायम करती जा रही है, मनुष्य दूसरे लोगों का अथवा अपनी ही नीचता का दास बनता लगता है। विज्ञान का शुद्ध प्रकाश तक अज्ञान की अंधेरी पार्श्वभूमि के अलावा और कहीं आलोकित होने में असमर्थ प्रतीत होता है। हमारे सारे आविष्कार तथा प्रगति का यही फल निकलता प्रतीत होता है कि भौतिक शक्तियों को बौद्धिक जीवन प्रदान किया जा रहा है तथा मानव जीवन को प्रभावहीन बनाकर भौतिक शक्ति बनाया जा रहा है। एक ओर आधुनिक उद्योग तथा विज्ञान के बीच तथा दूसरी ओर आधुनिक कंगाली तथा अधःपतन के बीच यह वैरविरोध; हमारे युग की उत्पादक शक्तियों तथा सामाजिक सम्बन्धों के बीच यह वैरविरोध स्पृश्य दुर्दमनीय तथा अकाट्य तथ्य है। कुछ पार्टियां इस पर विलाप कर सकती हैं; कुछ आधुनिक संघर्षों से छुटकारा पा सकने के लिए आधुनिक तकनीकों से छुटकारा पाने की दुआएं मांग सकती हैं। या वे यह कल्पना कर सकती हैं कि उद्योग में इतनी विशिष्ट उन्नति राजनीति में उतनी ही विशिष्ट अवनति से पूर्ण होनी चाहिए। अपनी ओर से हम उस चतुर शैतान की प्रकृति को पहचानने में भूल नहीं करते जो इन तमाम अन्तर्विरोधों में निरन्तर प्रकट होता रहा है। हम जानते हैं कि समाज की नूतन शक्तियों को ठीक तरह से काम करने के लिए जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह है उन्हें नूतन लोगों द्वारा वश में लाया जाना – और ये हैं मेहनतकश लोग। वे मशीनों की ही तरह आधुनिक काल के भी आविष्कार हैं। मध्यम वर्ग, अभिजातों और अवनति के अभागे पैग़म्बरों को हक्का-बक्का करनेवाले संकेतों में हम अपने बहादुर दोस्त राबिन गुडफ़ेलो को, बूढ़े छछूंदर को निश्चय ही पहचानते हैं जो मिट्टी को इतनी तेज़ी से खोदता है, वह अग्रदूत है – क्रान्ति। अंग्रेज मज़दूर आधुनिक उद्योग के प्रथम पुत्र हैं। वे यक़ीनन उस उद्योग द्वारा पैदा की गयी सामाजिक क्रान्ति को, उस क्रान्ति को सहायता देनेवाले, आख़िरी लोग नहीं होंगे जिसका अर्थ विश्व भर में अपने वर्ग की मुक्ति है और जो पूंजी के शासन तथा उजरती श्रम की दासता जितना ही सार्वत्रिक है। पिछली शताब्दी के मध्य से अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग जिन वीरतापूर्ण संघर्षों के बीच से गुज़रा है, उन्हें मैं जानता हूं – ये संघर्ष कम गौरवमय रहे हैं क्योंकि मध्यम वर्गीय इतिहासकारों ने उन्हें धुंधलेपन के आवरण में लिपटाकर और दबाकर रखा है। जर्मनी

में मध्य युग के दौरान सत्तारूढ़ वर्ग से उनकी काली करतूतों का बदला लेने के लिए «Vehmgericht» नामक एक गुप्त अदालत हुआ करती थी। यदि किसी मकान पर रेड क्रॉस का निशान दिखायी देता तो लोग समझ जाते थे कि उसके मालिक को «Vehm» ने दण्ड देने के लिए चुन लिया है। अब रहस्यमय रेड क्रॉस का निशान यूरोप के सारे मकानों पर लग गया है। इतिहास न्यायाधीश है तथा फांसी देनेवाला है सर्वहारा वर्ग।

«The People's Paper» में
१९ अप्रैल १८५६ को प्रकाशित।

अंग्रेजी से अनूदित।

राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास[132]

भूमिका

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली पर मैं निम्नलिखित क्रम से विचार करूंगा: **पूंजी, भू-सम्पत्ति, उजरती श्रम, राज्य, वैदेशिक व्यापार, विश्व बाज़ार।** पहले तीन शीर्षकों के अंतर्गत मैं उन तीन बड़े वर्गों के जीवन की आर्थिक अवस्थाओं की छानबीन करूंगा, जिनमें आधुनिक पूंजीवादी समाज विभक्त है। बाक़ी तीन शीर्षकों का अन्तर्सम्बन्ध एक निगाह डालने से ही स्पष्ट हो जाता है। पहली पुस्तक में पूंजी का विवेचन किया गया है और उसके पहले भाग में निम्नलिखित अध्याय हैं: १) माल; २) मुद्रा अथवा साधारण परिचलन; ३) सामान्य रूप में पूंजी। प्रथम दो अध्याय इस भाग के अन्तर्य हैं। कुल सामग्री मेरे सामने अलग-अलग विषयों पर निबन्धों के रूप में पड़ी है, जो काफ़ी समय के अन्तर से, प्रकाशन के लिए नहीं, अपनी दिमाग़ी सफ़ाई के लिए लिखे गये थे, और जिनका प्रस्तावित योजना के अनुसार सामंजस्यपूर्ण विशदीकरण बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर होगा।

मैंने एक सामान्य भूमिका[133] लिखी थी जिसे मैं नहीं दे रहा हूं, क्योंकि अधिक ध्यान से सोचने पर ऐसे नतीजों को पहले से पेश करना जो अभी साबित होने को हैं, मुझे इत्मीनान का बायस नहीं मालूम होता और जो पाठक समग्र रूप में मेरा अनुसरण करना चाहते हैं, उन्हें ख़ास से आम पर पहुंचने के लिए कृतसंकल्प होना पड़ेगा। दूसरी ओर मेरे अपने राजनीतिक-आर्थिक अध्ययन के क्रम पर थोड़ा प्रकाश डालना यहां प्रासंगिक होगा।

मैं क़ानून पढ़ रहा था, पर मैं दर्शन और इतिहास के साथ, उसका केवल एक गौण विषय के रूप में अध्ययन कर रहा था। १८४२–१८४३ में मैंने पहले पहल «*Rheinische Zeitung*» के सम्पादक की हैसियत से तथाकथित माली हितों पर हुई बहस में उलझन महसूस की। लकड़ी की चोरियों तथा भू-सम्पत्ति के विभाजन के सम्बन्ध में राइनी विधान सभा की कार्यवाही, राइन प्रान्त के तत्कालीन

ओबेरप्रेसिडेंट हर फ़ॉन शापर द्वारा मोज़ेल के किसानों की अवस्था के बारे में «*Rheinische Zeitung*» के साथ सरकारी तौर पर छेड़ा गया विवाद और अन्ततः मुक्त व्यापार और संरक्षण टैरिफ़ सम्बन्धी बहसों ने मुझे आर्थिक प्रश्नों का अध्ययन करने के प्रथम अवसर प्रदान किये। दूसरी ओर, उस समय, जबकि "और आगे बढ़ने की" सदिच्छा विषय ज्ञान से कहीं अधिक बलवती थी, फ़्रांसीसी समाजवाद और कम्युनिज़्म की एक क्षीण दार्शनिक गूंज «*Rheinische Zeitung*» में मुखरित हो उठी। मैंने इस तरह के नौसिखुएपन का विरोध किया, पर साथ ही आग्सबर्गी «*Allgemeine Zeitung*»[134] के साथ विवाद में मैंने साफ़-साफ़ क़बूल किया कि अब तक का मेरा अध्ययन ऐसा नहीं है कि मैं फ़्रांसीसी प्रवृत्तियों के अन्तर्य के सम्बन्ध में कोई निर्णय देने का साहस कर सकूं। इसके बजाय «*Rheinische Zeitung*» के व्यवस्थापकों के इस भ्रम को कि क्षीण दृष्टिकोण अपनाकर अख़बार को दी गई मौत की सज़ा की मंसूख़ी हासिल की जा सकती है, आतुरतापूर्वक ग्रहण कर मैं सार्वजनिक मंच से हट अध्ययन में तल्लीन हो गया।

अपने को आक्रान्त करनेवाली शंकाओं के समाधान के लिए मैंने जो प्रथम कृति हाथ में ली, वह थी हेगेल के न्याय-दर्शन की आलोचनात्मक समीक्षा*, जिसकी भूमिका** पेरिस में प्रकाशित «*Deutsch-Franzosische Jahrbücher*»[135] १८४४ में छपी थी। अपने अन्वेषणों से मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि क़ानूनी सम्बन्धों एवं राज्य के रूपों को स्वयं उनसे अथवा तथाकथित मानव मस्तिष्क के सामान्य विकास से नहीं समझा जा सकता, बल्कि उनका मूल जीवन की भौतिक अवस्थाओं में है, जिनके समाहार को हेगेल ने १८ वीं शताब्दी के फ़्रांसीसियों और अंग्रेज़ों की मिसाल पर चलते हुए "नागरिक समाज" का नाम दिया था, लेकिन अगर इस नागरिक समाज के ढांचे का पता लगाना है तो उसकी राजनीतिक अर्थव्यवस्था को देखना होगा। इस बादवाले विषय के अन्वेषण का कार्य, जिसे मैंने पेरिस में आरम्भ किया था, मैंने ब्रसेल्स में जारी रखा, जहां मैं गीज़ो महोदय की निष्कासन-आज्ञा के फलस्वरूप चला गया था। जिस सामान्य निष्कर्ष पर मैं पहुंचा और जो एक बार प्राप्त होने के बाद मेरे अध्ययन का पथ-प्रदर्शक सूत्र बन गया, उसे संक्षेपतः निम्नांकित शब्दों में लिपिबद्ध किया जा सकता

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के न्याय-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'। –सं०

** का० मार्क्स, 'हेगेल के न्याय-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास। भूमिका।' –सं०

है।6 अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्धों में बंधते हैं जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंज़िल के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन सम्बन्धों का पूर्ण समाहार ही समाज का आर्थिक ढांचा है—वह असली बुनियाद है, जिस पर क़ानून और राजनीति का ऊपरी ढांचा खड़ा हो जाता है और जिसके अनुकूल ही सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन प्रणाली जीवन की आम सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उलटे उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है। अपने विकास की एक ख़ास मंज़िल पर पहुंचकर समाज की भौतिक उत्पादन शक्तियां तत्कालीन उत्पादन सम्बन्धों से, या—उसी चीज़ को क़ानूनी शब्दावली में यों कहा जा सकता है—उन सम्पत्ति सम्बन्धों से टकराती हैं, जिनके अंतर्गत वे उस समय तक काम करती होती हैं। ये सम्बन्ध उत्पादन शक्तियों के विकास के अनुरूप न रहकर उनके लिए बेड़ियां बन जाते हैं। तब सामाजिक क्रान्ति का युग शुरू होता है। आर्थिक बुनियाद के बदलने के साथ समस्त वृहदाकार ऊपरी ढांचा भी कमोबेश तेज़ी से बदल जाता है। ऐसे रूपान्तरणों पर विचार करते हुए, एक भेद हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। एक ओर तो उत्पादन की आर्थिक परिस्थितियों का भौतिक रूपान्तरण है, जो प्रकृति विज्ञान की अचूकता के साथ निर्धारित किया जा सकता है। दूसरी ओर वे क़ानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौंदर्यबोधी या दार्शनिक, संक्षेप में, विचारधारात्मक रूप हैं, जिनके दायरे में मनुष्य इस टक्कर के प्रति सचेत होते हैं और उसे निपटते हैं। जैसे किसी व्यक्ति के बारे में हमारी राय इस बात पर नहीं निर्भर होती कि वह अपने बारे में क्या सोचता है, उसी तरह हम ऐसे रूपान्तरण के युग के बारे में स्वयं उस युग की चेतना के आधार पर निर्णय नहीं कर सकते। इसके विपरीत, भौतिक जीवन के अंतर्विरोधों के आधार पर ही, समाज की उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों की मौजूदा टक्कर के आधार पर ही इस चेतना की व्याख्या की जानी चाहिए। कोई भी समाज व्यवस्था तब तक ख़त्म नहीं होती, जब तक उसके अन्दर तमाम उत्पादन शक्तियां, जिनके लिए उसमें जगह है, विकसित नहीं हो जातीं और नये, उच्चतर उत्पादन सम्बन्धों का आविर्भाव तब तक नहीं होता जब तक कि उनके अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियां पुराने समाज के गर्भ में ही पुष्ट नहीं हो चुकतीं। इसलिए मानवजाति अपने

लिए हमेशा केवल ऐसे ही कार्यभार निर्धारित करती है, जिन्हें वह सम्पन्न कर सकती है। कारण यह कि मामले को ग़ौर से देखने पर हमेशा हम यही पायेंगे कि स्वयं कार्यभार केवल तभी उपस्थित होता है, जब उसे सम्पन्न करने के लिए ज़रूरी भौतिक परिस्थितियां पहले से तैयार होती हैं, या कम से कम तैयार हो रही होती हैं। मोटे तौर से एशियाई, प्राचीन, सामन्ती एवं आधुनिक, पूंजीवादी उत्पादन प्रणालियां समाज की आर्थिक संरचना के अनुक्रमिक युग कही जा सकती हैं। पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के अन्तिम विरोधी रूप हैं – व्यक्तिगत विरोध के अर्थ में नहीं, वरन् व्यक्तियों के जीवन की सामाजिक अवस्थाओं से उद्भूत विरोध के अर्थ में विरोधी हैं। साथ ही, पूंजीवादी समाज के गर्भ में विकसित होती हुई उत्पादन शक्तियां इस विरोध के हल की भौतिक अवस्थाएं उत्पन्न करती हैं। अतः इस सामाजिक संरचना के साथ मानव समाज के विकास का प्रागैतिहासिक अध्याय समाप्त हो जाता है।

फ़्रेडरिक एंगेल्स भी, जिनके साथ आर्थिक प्रवर्गों की आलोचना संबंधी उनके प्रखर प्रतिभापूर्ण निबन्ध के प्रकाशन* (*«Deutsch-Französische Jahrbücher»* में) के बाद से, पत्र-व्यवहार द्वारा मैंने निरन्तर विचार-विनिमय जारी रखा था, दूसरे रास्ते से (देखें उनकी कृति 'इंगलैंड के मज़दूर वर्ग की अवस्था') उसी नतीजे पर पहुंचे थे जिस पर मैं पहुंचा था, और जब १८४५ के वसन्त में वह भी ब्रसेल्स में आ बसे, हम लोगों ने जर्मन दर्शन के सैद्धांतिक दृष्टिकोण के विरोध में मिलकर अपना दृष्टिकोण निरूपित करने का, अर्थात् अपनी पूर्वकालिक दार्शनिक अन्तश्चेतना के साथ हिसाब चुकता करने का निश्चय किया। हम लोगों ने अपना यह संकल्प हेगेलोत्तर दर्शन की समालोचना करके पूरा किया।** इस रचना की पाण्डुलिपि, जो अठ-पेजी आकार की दो बड़ी-बड़ी पोथियों में थी, वेस्टफ़ेलिया में अपने प्रकाशन स्थान पर बहुत पहले ही पहुंच चुकी थी, जब हम लोगों को यह समाचार मिला कि बदली हुई परिस्थितियों के कारण उसे छापा नहीं जा सकता। पाण्डुलिपि को हमने और भी अधिक ख़ुशी से चूहों की कुतरनी "आलोचना" के लिए इसलिए छोड़ दिया कि हमारा मुख्य उद्देश्य – विचारों का स्वतः स्पष्टीकरण – पूरा हो चुका था। उस समय जिन बिखरी हुई कृतियों में हमने अपने विचार जनता के समक्ष, कभी इस और कभी उस पहलू से, उपस्थित किये थे, उनमें मैं केवल 'कम्युनिस्ट पार्टी

*फ़े० एंगेल्स, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा की रूपरेखा'। – सं०

**का० मार्क्स और फ़े० एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा'। – सं०

का घोषणापत्र' का, जिसे एंगेल्स ने और मैंने मिलकर लिखा था, और 'मुक्त व्यापार की विवेचना' का, जिसे मैंने प्रकाशित किया था, उल्लेख करूंगा। हमारे दृष्टिकोण के निर्णायक सूत्र १८४७ में प्रकाशित और प्रूदों के खिलाफ़ निर्देशित मेरी कृति 'दर्शन की दरिद्रता' में ही सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूप से, भले ही विवादीय रूप से, अभिव्यक्त किये गये। 'मज़दूरी और पूंजी' पर जर्मन भाषा में लिखे एक प्रबन्ध ग्रन्थ का, जिसमें मैंने ब्रसेल्स के जर्मन मज़दूर समाज[136] में इस विषय पर दिये अपने व्याख्यान संग्रहीत किये थे, प्रकाशन फ़रवरी क्रान्ति और उसके फलस्वरूप बेल्जियम से मेरे बलपूर्वक निष्कासित किये जाने के कारण बीच में ही रह गया।

१८४८ और १८४९ में «*Neue Rheinische Zeitung*» के सम्पादन कार्य एवं बाद की घटनाओं से मेरे आर्थिक अध्ययन में व्याघात पड़ गया, जिसे कहीं १८५० में जाकर लन्दन में फिर आरम्भ किया जा सका। ब्रिटिश म्यूज़ियम में जमा राजनीतिक अर्थशास्त्र के इतिहास से संबंधित विपुल सामग्री, पूंजीवादी समाज के पर्यवेक्षण के लिए लन्दन की सुविधाजनक स्थिति और अन्ततः कैलिफ़ोर्निया एवं आस्ट्रेलिया में सोने की खानों का पता चलने से पूंजीवादी समाज का प्रगटतः विकास की नयी मंज़िल में प्रवेश – इन सब से प्रेरित होकर मैंने अपना काम नये सिरे से शुरू करने और इस नयी सामग्री की आलोचनात्मक दृष्टि से छानबीन करने का निश्चय किया। इस अध्ययन ने अंशतः अपने आप ही मुझे ऐसे विषयों की ओर प्रवृत्त किया जो प्रगटतः दूर-दराज़ के लगते थे और जिन पर मुझे न्यूनाधिक समय के लिए ध्यान केन्द्रित करना पड़ा। पर जीविकोपार्जन की अनिवार्य आवश्यकता ने विशेष रूप से मेरे समय को संक्षिप्त किया। अब तक आठ साल के दौरान प्रथम अंग्रेज़ी-अमरीकी समाचारपत्र «*New-York Daily Tribune*» के लिए लेखन कार्य ने मुझे अपने अध्ययन को असाधारण रूप से विकीर्ण करने के लिए बाध्य किया, क्योंकि असल में संवाददाता का काम मैं अपवादस्वरूप ही करता हूं। पर इंगलैंड और यूरोप की महत्वपूर्ण आर्थिक घटनाओं पर लेख लिखना मेरे इस लेखन कार्य का इतना बड़ा अंश रहा है कि मुझे ऐसी व्यावहारिक तफ़सीलों की जानकारी हासिल करने को बाध्य होना पड़ा, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के वास्तविक विज्ञान की परिधि से बाहर हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अपने अध्ययन के क्रम का उपरोक्त ख़ाका पेश करने का मेरा एकमात्र उद्देश्य यह बताना है कि मेरे विचार, चाहे उनके बारे में जो भी राय क़ायम की जाये और चाहे वे शासक वर्गों के स्वार्थपरक

पूर्वाग्रहों से जितना भी कम मेल खाते हों, वर्षों के मनोयोगपूर्ण अनुसन्धान के परिणाम हैं। किन्तु विज्ञान के प्रवेशद्वार पर, नरक के प्रवेशद्वार की ही भांति, यह आदेश टंगा हुआ होना चाहिए :

«Qui si convien lasciare ogni sospetto;
Ogni viltà convien che qui sia morta».*

कार्ल मार्क्स

लन्दन, जनवरी १८५९

पहली बार मार्क्स की
पुस्तक «*Zur Kritik
der politischen Oekonomie
von Karl Marx*».
Erstes Heft, Berlin, 1859,
में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

---

* "समस्त अविश्वास को यहां तिलांजलि देना होगा ;
प्रत्येक कातर चिन्ता को यहां दफ़न करना होगा।" (दांते, 'दिव्य कामेडी')। —सं०

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कार्ल मार्क्स। राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास

प्रथम भाग, बर्लिन, फ़्रांज डुंकेर, १८५९[137]

१

जर्मन विज्ञान के समस्त क्षेत्रों में शेष सभ्य राष्ट्रों के साथ अपनी बराबरी तथा उनमें से अधिकांश में अपनी श्रेष्ठता बहुत पहले ही सिद्ध कर चुके हैं। केवल एक विज्ञान में, अर्थात् राजनीतिक अर्थशास्त्र में अग्रणी मेधावियों में एक भी जर्मन शामिल नहीं किया जा सकता। कारण स्पष्ट है। राजनीतिक अर्थशास्त्र आधुनिक पूंजीवादी समाज का सैद्धान्तिक विश्लेषण है और इसलिए वह विकसित पूंजीवादी अवस्थाओं की, उन अवस्थाओं की पूर्वापेक्षा करता है जो जर्मनी में धर्म-सुधार युद्धों और किसान युद्धों[138], विशेष रूप से तीस वर्षीय युद्ध[139] के बाद सदियों तक पैदा ही नहीं हो सकती थीं। हालैंड के साम्राज्य से पृथक्ककरण[140] ने जर्मनी को विश्व व्यापार से बाहर धकेल दिया और उसके औद्योगिक उत्पादन को शुरू से ही नगण्यतम स्तर पर पहुंचा दिया ; और जहां जर्मन गृहयुद्धों की तबाही से बहुत धीरे-धीरे और बड़ी कठिनाई से छुटकारा पा रहे थे, जहां वे अपनी सारी नागरिक शक्ति, जो कभी भी बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान नहीं रही, सीमा-शुल्क अवरोधों और मूर्खतापूर्ण व्यापार क़ानूनों के ख़िलाफ़, जिन्हें हर तुच्छ राजा-रजवाड़ा और शाही बैरन अपने प्रजाजनों के उद्योग पर थोपे हुए थे, निरर्थक संघर्ष में इस्तेमाल कर रहे थे, जहां शाही नगर अपने क्षुद्र शिल्प-संघों और कुलीन-तंत्र के साथ सड़ते-गलते जा रहे थे, वहां हालैंड, इंगलैंड तथा फ़्रांस विश्व व्यापार में अग्रणी स्थान हथिया रहे थे, एक के बाद दूसरा उपनिवेश क़ायम करते जा रहे थे तथा उद्योग को समृद्धि के उच्चतम बिन्दु पर पहुंचा रहे थे, और तब अन्ततः इंगलैंड ने भाप-शक्ति के बल पर, जिसने उसके कोयले और लोहे के खनिज भंडारों को मूल्यवान बनाना शुरू ही किया था, आधुनिक पूंजीवादी विकास में सबसे अग्रणी स्थान प्राप्त कर लिया। परन्तु जब तक मध्य युग के उपहासास्पद पुराने अवशेषों

के विरुद्ध, जो १८३० तक जर्मनी के भौतिक पूंजीवादी विकास के पांवों में बेड़ियां डाले हुए थे, संघर्ष करना आवश्यक था, तब तक किसी भी तरह के जर्मन राजनीतिक अर्थशास्त्र का होना सम्भव नहीं था। केवल सीमा-शुल्क संघ की स्थापना के साथ ही जर्मन ऐसी स्थिति हासिल कर सके जहां वे राजनीतिक अर्थशास्त्र को कम से कम समझ सकते थे। वस्तुतः इसी समय से जर्मन पूंजीपति वर्ग के उपयोग के हेतु ब्रिटिश और फ्रांसीसी राजनीतिक अर्थशास्त्रों का प्रवेश आरम्भ हुआ। विद्वज्जनों की बिरादरी और नौकरशाही ने आयातित सामग्री अपना ली और उन्होंने उसे इस ढग से बिगाड़ा किया जो "जर्मन भावना" के लिए बहुत गौरवमयी वस्तु नहीं थी। लेखन कार्य में हाथ आज़मानेवाले इन मंजे हुए धोखेबाजों, तिजारतियों, स्कूल-मास्टरों और नौकरशाहों की इस पंचमेली मंडली ने एक ऐसे जर्मन आर्थिक साहित्य को जन्म दिया जिसकी तुलना नीरसता, छिछलेपन, चिन्तन के अभाव, लफ़्फ़ाज़ी तथा साहित्यिक चोरी की दृष्टि से केवल जर्मन उपन्यास से ही की जा सकती थी। व्यावहारिक बुद्धि वाले लोगों में से सबसे पहले उद्योगपतियों के संरक्षणवादी पंथ ने अपने को स्थापित किया और उसका मान्य पंडित लिस्ट जर्मन पूंजीवादी आर्थिक साहित्य द्वारा आज तक पैदा किये गये लोगों में सर्वोत्तम है हालांकि उसकी समूची गौरवमयी कृति महाद्वीपीय प्रणाली के सैद्धान्तिक जन्मदाता फ्रांसीसी फ़ेरिये की कृति की नक़ल है। इस प्रवृत्ति के मुक़ाबले पांचवें दशक में बाल्टिक प्रान्तों में व्यापारियों के मुक्त व्यापार पंथ का जन्म हुआ जो बचकाना परन्तु स्वार्थपूर्ण आस्था के साथ ब्रिटिश फ़्रीट्रेडरों के तर्कों को प्रतिध्वनित करता था। अन्ततः स्कूल-मास्टरों तथा नौकरशाहों में, जिन्हें विषय के सैद्धान्तिक पहलू से निपटना था, श्री राउ जैसे निर्जीव, अनालोचनात्मक तथ्य सामग्री के संग्रहकर्त्ता, विदेशी तर्क-वाक्यों का दुर्बोध हेगेलीय भाषा में अनुवाद करनेवाले श्री स्टेइन जैसे दार्शनिक लाल बुझक्कड़ अथवा "संस्कृति के इतिहास" के क्षेत्र में श्री रील जैसे साहित्यिक जूठन संग्रहकर्ता थे। इसका अन्तिम परिणाम था cameralistics[141], ऐसी पंचमेली खिचड़ी जिसमें ऐसी सर्वसंग्रहवादी-आर्थिक चटनी का कुछ पुट था जो राजकीय बोर्ड की अन्तिम परीक्षा के लिए तैयारी करनेवाले सरकारी क़ानून विद्यालय के छात्र के लिए उपयोगी ज्ञान होती।

जहां जर्मनी में पूंजीपति वर्ग, स्कूल-मास्टर तथा नौकरशाह आंग्ल-फ्रांसीसी अर्थशास्त्र के प्रथम तत्वों को अप्रतिवादनीय मत के रूप में कण्ठस्थ करने और उनके बारे में कुछ स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए अभी परिश्रम कर ही रहे थे, वहां जर्मन सर्वहारा पार्टी रंगमंच पर प्रकट हो गयी। उसका पूरा सैद्धान्तिक

अस्तित्व राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन पर आधारित था। विज्ञानसम्मत, स्वतंत्र **जर्मन अर्थशास्त्र** का आरम्भ ठीक उसके प्रकट होने के साथ ही होता है। यह जर्मन अर्थशास्त्र मूलतः **इतिहास के भौतिकवादी संप्रत्ययन** पर आधारित है, जिसके मूल लक्षण उपरोक्त कृति की भूमिका में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।* इस भूमिका के मुख्य मुद्दे «*Das Volk*»[142] में पहले ही प्रकाशित किये जा चुके हैं, जिस कारण हम उनकी यहां चर्चा कर रहे हैं। अर्थशास्त्र ही नहीं, वरन् सारे इतिहासशास्त्रों के लिए भी (और वे सारे शास्त्र, जो प्रकृतिशास्त्र नहीं हैं, इतिहासशास्त्र हैं) इस प्रस्थापना से क्रान्तिकारी प्रभाव पैदा करनेवाला यह आविष्कार किया गया कि "सामान्य रूप में सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन प्रक्रिया भौतिक जीवन के उत्पादन की विधि पर निर्भर करती है", कि सारे सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों, धर्म तथा क़ानून सम्बन्धी सारी प्रणालियों, इतिहास में पैदा होनेवाले सारे सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों का तभी बोध हो सकता है जब प्रत्येक सम्बन्धित युग के जीवन की भौतिक परिस्थितियों को समझ लिया जाता है और जब पूर्वोक्त वस्तुएं भौतिक परिस्थितियों से प्राप्त की जाती हैं। "मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उलटे–उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है।" यह प्रस्थापना इतनी सरल है कि कोई भी व्यक्ति, जो भाववादी भ्रान्तियों से हतप्रभ न हो उसे समझ सकता है। परन्तु वह सिद्धान्त के ही नहीं, वरन् व्यवहार के मामले में भी अत्यन्त क्रान्तिकारी परिणामों से भरा पड़ा है। "अपने विकास की एक ख़ास मंज़िल पर पहुंचकर समाज की भौतिक उत्पादन शक्तियां तत्कालीन उत्पादन सम्बन्धों से, या–उसी चीज़ को क़ानूनी शब्दावली में यों कहा जा सकता है–उन सम्पत्ति सम्बन्धों से टकराती हैं, जिनके अंतर्गत वे उस समय तक काम करती होती हैं। ये सम्बन्ध उत्पादन शक्तियों के विकास के अनुरूप न रहकर, उनके लिए बेड़ियां बन जाते हैं। तब **सामाजिक क्रांति** का युग शुरू होता है। आर्थिक बुनियाद के बदलने के साथ समस्त बृहदाकार ऊपरी ढांचा भी कमोबेश तेज़ी से बदल जाता है... पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के अन्तिम विरोधी रूप हैं–व्यक्तिगत विरोध के अर्थ में नहीं, वरन् व्यक्तियों के जीवन की सामाजिक अवस्थाओं से उद्भूत विरोध के अर्थ में। साथ ही, पूंजीवादी समाज के गर्भ में विकसित होती हुई उत्पादन शक्तियां इस विरोध के हल की भौतिक

---

* देखें प्रस्तुत खण्ड पृष्ठ २६५–२७०।–सं०

अवस्थाएं उत्पन्न करती हैं।"* हम अपनी भौतिकवादी प्रस्थापना को ज्यों-ज्यों आगे विकसित करते हैं और उसे वर्तमान पर लागू करते हैं, एक ज़बर्दस्त, वस्तुतः तमाम युगों की सबसे ज़बर्दस्त क्रान्ति का परिप्रेक्ष्य हमारे समक्ष तत्काल अनावृत्त होता जाता है।

परन्तु अधिक ध्यानपूर्वक विचार करने पर यह चीज़ तत्काल स्पष्ट हो जाती है कि सरल प्रतीत होनेवाली यह प्रस्थापना कि मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व पर निर्भर करती है, मनुष्यों का अस्तित्व उनकी चेतना पर निर्भर नहीं करती, तुरन्त तथा अपने प्रथम परिणामों में समस्त भाववाद के, प्रच्छन्न भाववाद तक के बिल्कुल ख़िलाफ़ जाती है। हर ऐतिहासिक वस्तु के विषय में सारे परम्परागत तथा प्रथागत दृष्टिकोणों का वह निषेध कर देती है। राजनीतिक तर्कना की सारी परम्परागत पद्धति धराशायी हो जाती है; देशभक्तिपूर्ण उदात्त भाव इस सिद्धान्तहीन विचार के विरुद्ध रोषपूर्वक संघर्ष करता है। इसलिए नया दृष्टिकोण पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों से ही नहीं, वरन् फ़्रांसीसी समाजवादियों के व्यापक भाग से भी टकराया जो liberté, égalité, fraternité** के जादुई सूत्र के माध्यम से दुनिया को जड़ से हिला देने के लिए उत्सुक थे। परन्तु सर्वोपरि उसने जर्मन बाज़ारू जनवादी कोलाहलकारियों में बहुत रोष पैदा किया। कुछ भी हो, उन्होंने नये विचारों को साहित्यिक चोरी के साथ परन्तु विरल ग़लत समझदारी के साथ इस्तेमाल करने का यत्न किया है।

मात्र एक ऐतिहासिक दृष्टान्त तक के मामले में भौतिक संप्रत्ययन का विकास एक ऐसा वैज्ञानिक कार्य था जो वर्षों तक शान्त अध्ययन का तकाज़ा करता क्योंकि यह स्पष्ट है कि इस मामले में मात्र शब्दावली से कुछ नहीं किया जा सकता, कि आलोचनात्मक ढंग से आज़मायी हुई, ऐतिहासिक सामग्री की, जिसमें पूर्ण पारंगति प्राप्त की गयी हो, प्रचुरता ही यह कार्य सम्पन्न करने में समर्थ बना सकती है। फ़रवरी क्रान्ति ने हमारी पार्टी को आगे धकेलकर राजनीतिक रंगमंच पर खड़ा कर दिया और इस तरह उसके लिए विशुद्ध वैज्ञानिक उद्देश्यों की ही पूर्त्ति में लगे रहना असम्भव बना दिया। कुछ भी हो, मौलिक दृष्टिकोण पार्टी के समस्त साहित्यिक सृजनों के बीच एक लाल डोरी की भांति फैला हुआ प्रतीत होता है। उन सब में एक-एक ख़ास मामले में यह प्रदर्शित किया

---

* देखें प्रस्तुत खण्ड पृष्ठ २६७ – २६८। – सं०

** स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व। – सं०

गया है कि कैसे हर बार राजनीतिक कार्रवाई अपने से संलग्न वाक्यों से नहीं, वरन् सीधे भौतिक आवेगों से पैदा हुई, कैसे इसके विपरीत राजनीतिक तथा क़ानूनी वाक्यों को राजनीतिक कार्रवाई तथा उसके परिणामों की ही तरह भौतिक आवेगों ने जन्म दिया।

१८४८-१८४६ की क्रान्ति की पराजय के बाद एक ऐसा दौर आया जब जर्मनी को बाहर से प्रभावित करना अधिकाधिक असम्भव हो गया; तब हमारी पार्टी ने उत्प्रवास सम्बन्धी झगड़ों का क्षेत्र बाज़ारू जनवाद के लिए छोड़ दिया, क्योंकि यही एकमात्र कार्रवाई सम्भव रह गयी थी। बाज़ारू जनवाद ने जहां जी भरकर झगड़े किये और आज इसलिए कलह किया ताकि कल सुलह कर सकें और परसों वह फिर सब की नजरों के सामने आपस में "तू-तू-मैं-मैं" करने लगा, जहां बाज़ारू जनवाद हाथ फैलाये पूरे अमरीका में धन मांगता रहा और मांगने के तुरन्त बाद बटोरे गये चन्द सिक्कों को लेकर नये घोटाले पैदा करता रहा, वहां हमारी पार्टी को फिर से अध्ययन करने के लिए कुछ फ़ुर्सत मिलने से प्रसन्नता हुई। उसे यह सुविधा प्राप्त थी कि उसे अपने सैद्धान्तिक आधार के रूप में एक नया वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्राप्त हो गया था जिसे तैयार करने के कार्य ने उसे पूर्णतया व्यस्त रखा। अकेले इसी कारण उसका कभी उस हद तक पतन नहीं हो सकता था जिस हद तक उत्प्रवासियों के "महापुरुषों" का हुआ था।

इन अध्ययनों का प्रथम परिणाम प्रस्तुत पुस्तक है।

२

हमारे समक्ष जिस प्रकार की रचना है, उसमें अर्थशास्त्र के विभिन्न अध्यायों की मात्र असम्बद्ध आलोचना करने, इस या उस विवादास्पद आर्थिक प्रश्न का अलग-थलग विवेचन करने का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसके विपरीत यह कार्य शुरू से ही इस तरह किया गया है कि वह अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण समुच्चय का विधिवत समेकन बने, वह पूंजीवादी उत्पादन और पूंजीवादी विनिमय के नियमों का परस्पर सम्बद्ध ढंग से विवरण हो। अर्थशास्त्री चूंकि इन नियमों के भाष्यकारों और वकीलों के अलावा और कुछ नहीं हैं, इसलिए यह विवरण साथ ही पूरे आर्थिक साहित्य की समीक्षा भी है।

हेगेल के देहावसान के उपरान्त अपने आन्तरिक परस्पर सम्बन्ध के साथ किसी विज्ञान का विकास करने का शायद ही कोई प्रयास किया गया हो। आधिकारिक

हेगेलीय पंथ ने अपने गुरु के द्वन्द्ववाद से केवल सबसे अधिक सरल बाज़ीगरी ही ग्रहण की जिसे उन्होंने किसी भी चीज़ और हर चीज पर तथा कभी-कभी तो उपहासास्पद, भोंडे ढंग से लागू किया। उसके लिए हेगेल की सारी धरोहर एक सांचे मात्र तक, जिसकी मदद से हर विषय तैयार किया जाता था तथा ऐसे शब्द-संग्रह तथा अर्थ कौशल तक सीमित थी जिसका इसके अलावा और कोई उद्देश्य नहीं था कि वह ठीक मौक़े पर उपयोग के लिए उपलब्ध रहे जब चिन्तन तथा सकारात्मक ज्ञान के अभाव का सामना करना पड़े। इस तरह, जैसा कि बोन के एक प्रोफ़ेसर ने कहा, हुआ यह कि ये हेगेलपंथी किसी भी चीज़ के बारे में कुछ नहीं समझते थे परन्तु हर चीज के बारे में लिख सकते थे। और निस्सन्देह ऐसा ही हुआ भी। इस बीच ये सज्जन अपने सारे आत्माभिमान के बावजूद अपनी कमज़ोरी के बारे में इतने सचेत थे कि वे बड़ी समस्याओं को ज़्यादा से ज़्यादा टालते गये; पुराना लीकबद्ध विज्ञान सकारात्मक ज्ञान में अपनी श्रेष्ठता के बल पर हावी रहा। हेगेलपंथी तभी धीरे-धीरे निद्राग्रस्त हुए जब फ़ायरबाख़ ने परिकल्पनात्मक संप्रत्ययनों को निराधार घोषित कर दिया; तब ऐसे लगा मानों अपने स्थिर प्रवर्गों सहित पुराने अधिभूतवाद का राज नये सिरे से आरम्भ होने लगा है।

इसका अपना स्वाभाविक कारण भी था। हेगेलीय डियाडोचियों[143] के प्रभुत्व के बाद, जिसका खोखली लफ़्फ़ाज़ी के साथ अन्त हो गया था, स्वभावतया एक ऐसे युग का आगमन हुआ जिसमें विज्ञान की सकारात्मक अन्तर्वस्तु का पलड़ा उसके औपचारिक पक्ष की तुलना में फिर भारी हो गया। उस समय जर्मनी प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में असाधारण स्फूर्ति के साथ कूद गया जो १८४८ के बाद के सशक्त पूंजीवादी विकास के सदृश था। ये विज्ञान, जिनमें परिकल्पनात्मक प्रवृत्ति ने कभी किसी भी तरह का महत्व प्राप्त नहीं किया था, फ़ैशनेबुल बनते गये, वोल्फ़ की घोर नीरस उक्तियों समेत चिन्तन का पुराना अधिभूतवादी ढर्रा फिर लौट आया। हेगेल को भुला दिया गया और इस तरह नया प्राकृतिक-वैज्ञानिक भौतिकवाद विकसित हुआ, जिसका सैद्धान्तिक दृष्टि से १८ वीं शताब्दी के भौतिकवाद के बीच प्रायः भेद नहीं किया जा सकता और उसे मुख्यतया केवल यही लाभ प्राप्त है कि उसे अधिक उन्नत प्राकृतिक-वैज्ञानिक सामग्री—विशेष रूप से रसायन शास्त्र तथा शरीर क्रिया विज्ञान के क्षेत्र में—उपलब्ध है। कांट से पहले के समय के चिन्तन की संकीर्ण, कूपमण्डूकतावादी चिन्तन-पद्धति को हम बुख़नर तथा फ़ोग्ट की कृतियों में सर्वथा क्षुद्र ढंग से उद्धृत किया हुआ पाते हैं; मोलेशात तक, जो

फ़ायरबाख़ की दुहाई देता है, सरलतम प्रवर्गों तक में निरन्तर बहुत ही हास्यप्रद ढंग से फंस जाते हैं। सामान्य पूंजीवादी समझदारी के तांगे का मरियल टट्टू सारतत्व को प्रतीति से, कारण को कार्य से पृथक करनेवाली खाई के सामने पहुंचते ही स्वभावतया घबराकर बिल्कुल रुक जाता है। लेकिन अगर अमूर्त चिन्तन की उबड़-खाबड़ भूमि पर मज़े के साथ शिकार के लिए निकलना है तो फिर तांगे की सवारी नहीं करनी चाहिए।

इसलिए यहां एक और समस्या हल करनी थी जिसका वैसे राजनीतिक अर्थशास्त्र से कोई सरोकार नहीं था। विज्ञान के अनुसंधान के लिए किस तरह की विधि की तलाश की जाती? एक ओर हेगेलीय द्वन्द्ववाद उस सर्वथा अमूर्त, "परिकल्पनात्मक" रूप में था जिसे हेगेल विरासत के रूप में सौंप गये थे; दूसरी ओर साधारण, मूलतया वोल्फ़ीय अधिभूतवादी विधि थी जो फिर बहुप्रचलित हो गयी थी तथा जिसके अनुसार पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने भी अपनी भारी-भरकम, असम्बद्ध पुस्तकें लिख डाली थीं। इस दूसरी विधि को कांट तथा विशेष रूप से हेगेल ने सैद्धान्तिक दृष्टि से इस बुरी तरह रौंद डाला था कि केवल शिथिलता और किसी सरल विधि का अभाव ही व्यवहार में उसके अस्तित्व को सम्भव बना सकता था। दूसरी ओर, हेगेलीय विधि अपने उपलब्ध रूप में सर्वथा अनुपयोगी थी। वह मूलतया भाववादी थी और यहां समस्या एक ऐसे विश्वदृष्टिकोण को विकसित करने की थी जो किसी भी पूर्व विश्वदृष्टिकोण से अधिक भौतिकवादी हो। उस विधि ने शुद्ध चिन्तन को अपना समारम्भ-बिन्दु बनाया और इस मामले में सबसे अटल तथ्यों से काम आरम्भ किया जाना चाहिए था। ऐसी विधि, जो उसकी अपनी स्वीकारोक्ति के अनुसार "शून्य के माध्यम से शून्य से शुरू होकर शून्य में पहुंची"[144], यहां इस रूप में कदापि उपयुक्त नहीं थी। फिर भी सारी उपलब्ध तार्किक सामग्री में से केवल वही ऐसी थी जिसे कम से कम समारम्भ-बिन्दु के रूप में उपयोग में लाया जा सकता था। इसकी समीक्षा नहीं हुई थी; उसका खण्डन नहीं हुआ था; महान द्वन्द्ववादी का एक भी विरोधी इसके गौरवपूर्ण ढांचे में दरार नहीं डाल सका था। वह विस्मृति के गर्त्त में पहुंची क्योंकि हेगेलीय पंथ को लेशमात्र ज्ञान नहीं था कि इसका क्या किया जाये। इसलिए सबसे पहले हेगेलीय विधि को आमूल समीक्षा का विषय बनाना आवश्यक था।

हेगेल की चिन्तन की विधि को समस्त अन्य दार्शनिकों की चिन्तन विधियों की तुलना में विशिष्टता प्रदान करनेवाली वस्तु ऐतिहासिकता का वह जबर्दस्त अवबोध था जिसपर वह आधारित थी। वह रूप में अमूर्त तथा भाववादी अवश्य

थी, फिर भी हेगेल के विचारों का विकास सदैव विश्व इतिहास के विकास के साथ साथ होता रहा तथा विश्व इतिहास को वस्तुतः विचारों की केवल कसौटी बनना चाहिए। यदि वास्तविक सम्बन्ध उलटा हो गया और सिर के बल खड़ा भी हो गया, तब भी वास्तविक अन्तर्वस्तु सर्वत्र दर्शन के अन्दर प्रविष्ट हो गयी थी; यह चीज़ इसलिए और भी ज्यादा हुई क्योंकि हेगेल ने–अपने शिष्यों के विपरीत–अपने अज्ञान का प्रदर्शन नहीं किया, वह तो समस्त युगों के सर्वोत्तम मेधावी लोगों में से थे। वह इतिहास में विकास, आन्तरिक सम्बद्धता प्रदर्शित करने का प्रयत्न करनेवाले पहले व्यक्ति थे। आज इतिहास के उनके दर्शन में हमें कई बातें अजीब लग सकती हैं, इसके बावजूद उनके मौलिक दृष्टिकोण की भव्यता आज तक प्रशंसनीय बनी हुई है भले ही कोई उसकी तुलना उनके पूर्ववर्तियों से अथवा ठीक-ठीक कहा जाये तो किसी भी ऐसे व्यक्ति तक से करे जिसने इतिहास के सम्बन्ध में सामान्य चिन्तन में हाथ डालने का साहस किया हो। सर्वत्र इतिहास का यह भव्य संप्रत्ययन उनके «*Phenomenology*», «*Esthetics*», «*History of Philosophy*» पर हावी है और हर जगह सामग्री पर ऐतिहासिक ढंग से विचार किया जाता है, उसपर इतिहास के साथ एक निश्चित–भले ही अमूर्त ढंग से विकृत रूप में–अन्तःसम्बन्ध स्थापित करते हुए विचार किया जाता है।

इतिहास का यह युगान्तरकारी संप्रत्ययन नये भौतिकवादी दृष्टिकोण के लिए प्रत्यक्ष सैद्धान्तिक पूर्वाधार था। अकेले इसी ने तार्किक विधि के लिए भी प्रस्थान-बिन्दु प्रस्तुत किया। चूंकि "शुद्ध चिन्तन" की दृष्टि से भी इस विस्मृत द्वन्द्ववाद से ऐसे फल निकले थे और चूंकि इसके अलावा उसने सारे पूर्ववर्ती तर्कशास्त्र तथा अधिभूतवाद के साथ इतनी आसानी के साथ हिसाब-किताब चुकता कर दिया था, इसलिए उसमें कूटतर्क से ज्यादा और बहुत कुछ रहा होगा। परन्तु इस विधि की समीक्षा, जिससे सारे आधिकारिक दर्शन कतराते रहे हैं और अब भी कतराते हैं, कोई मामूली बात न थी।

मार्क्स एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे और हैं जो हेगेलीय तर्कशास्त्र से वह सारतत्व निकालने का बीड़ा उठा सकते थे जिसने इस क्षेत्र में हेगेल के आविष्कारों का रूप ग्रहण किया है, जो भाववादी खोलों से मुक्त की जानेवाली द्वन्द्वात्मक विधि की पुनर्स्थापना कर उसे एक ऐसा सरल रूप देने का बीड़ा उठा सकते थे जिसमें वह चिन्तन के विकास का एकमात्र सच्चा रूप बन जाता है। ऐसी विधि तैयार किये जाने के कार्य को, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र की मार्क्स द्वारा समीक्षा की

आधारशिला है, हम स्वयं मूल भौतिकवादी दृष्टिकोण से जरा भी कम महत्वपूर्ण नहीं मानते।

हासिल की गयी विधि तक के अनुसार राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा दो तरीकों से की जा सकती थी—ऐतिहासिक रूप से अथवा तार्किक रूप से। चूंकि साहित्यिक प्रतिबिम्ब की ही तरह इतिहास का विकास समग्र रूप से सबसे सरल सम्बन्धों से अधिक जटिल सम्बन्धों की ओर अग्रसर होता है, इसलिए राजनीतिक अर्थशास्त्र के साहित्य के ऐतिहासिक विकास ने वह प्राकृतिक निर्देशनकारी कड़ी मुहैया की जिससे समीक्षा सूत्रबद्ध हो सकती थी; तथा आर्थिक प्रवर्ग समग्र रूप में तार्किक विकास की ही तरह उसी क्रम में प्रकट हो सकते थे। पहली दृष्टि में यह दिखायी देता है कि इस रूप को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट होने का लाभ प्राप्त है क्योंकि **वास्तविक** विकास को ही ध्यान में रखा जाता, परन्तु वस्तुतः उससे तो वह हद से हद अधिक बोधगम्य ही बन सकता था। इतिहास तो अक्सर छलांगें लगाते हुए और टेढ़े-मेढ़े चलता है। और उसका सर्वत्र इस तरह अनुसरण करना होगा जिसकी वजह से मामूली महत्व की बहुत सारी सामग्री शामिल ही नहीं करनी होगी अपितु चिन्तन-शृंखला में बहुत व्यवधान भी पैदा होगा। इसके अलावा राजनीतिक अर्थशास्त्र का इतिहास तो पूंजीवादी समाज के इतिहास के बिना नहीं लिखा जा सकेगा और यह चीज़ काम को अनन्त बना देगा क्योंकि सारे आरम्भिक कार्यों का अभाव है। इसलिए तार्किक विधि का अपनाया जाना एकमात्र उपयुक्त तरीक़ा था। परन्तु यह वस्तुतः ऐतिहासिक विधि के अलावा और कुछ नहीं है, उससे केवल उसका ऐतिहासिक रूप तथा विघ्नकारी संयोग पृथक कर दिये जाते हैं। चिन्तन-शृंखला को उसी चीज़ से शुरू होना चाहिए जिससे इतिहास शुरू होता है। उसका भावी विकास अमूर्त तथा सैद्धान्तिक रूप से सुसंगत ऐतिहासिक प्रक्रिया के प्रतिबिम्ब के अलावा और कुछ नहीं होगा; यह सही किया हुआ प्रतिबिम्ब, परन्तु स्वयं इतिहास की वास्तविक प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत नियमों के अनुसार सही किया हुआ प्रतिबिम्ब है, साथ ही हर तथ्य पर उसके विकास के उस बिन्दु पर विचार किया जा सकता है जहां यह पूर्ण परिपक्वता तथा अपना क्लासिकीय रूप प्राप्त करता है।

इस विधि में हम प्रथम तथा सरलतम सम्बन्ध को अपनाकर आगे बढ़ते हैं जो ऐतिहासिक रूप में तथा वास्तविक रूप में हमारे सामने आ खड़ा होता है। इसलिए इस मामले में यह सामने आनेवाला प्रथम आर्थिक सम्बन्ध होता है जिसे अपनाकर हम आगे बढ़ते हैं। हम इस सम्बन्ध का विश्लेषण करते हैं। ठीक इस

तथ्य के कारण कि यह **सम्बन्ध** होता है, इसका अर्थ यह है कि इसके दो पहलू **हैं जो एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।** हम इनमें से हर पहलू पर अलग-अलग विचार करते हैं जिससे हमें पता चल जाता है कि वे एक दूसरे से किस तरह पेश आते हैं, उनकी क्या पारस्परिक क्रिया होती है। इसके फलस्वरूप अन्तर्विरोध पैदा होंगे जो समाधान का तकाज़ा करते हैं। परन्तु हम यहां केवल अपने दिमाग़ में चल रही अमूर्त चिन्तन-प्रक्रिया पर नहीं, वरन् किसी समय विशेष पर हो चुकी या अब भी चल रही वास्तविक प्रक्रिया पर ग़ौर कर रहे हैं, इसलिए ये अन्तर्विरोध भी व्यवहार में विकसित हो चुके होंगे और सम्भवतया उनके समाधान भी हासिल हो चुके होंगे। जब हम इस समाधान के स्वरूप का पता लगायेंगे तो हमें मालूम हो जायेगा कि इसे नये सम्बन्ध की स्थापना ने जन्म दिया है जिसके दो विरोधी पक्षों का अब हमें विकास करना होगा आदि।

राजनीतिक अर्थशास्त्र **माल** से आरम्भ होता है, उस क्षण से आरम्भ होता है जब उत्पादों का एक दूसरे के साथ विनिमय होता है—चाहे उनका विनिमय अलग-अलग व्यक्ति करे अथवा आदिम समुदाय। विनिमय में आनेवाली उत्पादित वस्तु को माल कहते हैं। परन्तु वह मात्र इस कारण माल होती है कि दो व्यक्तियों अथवा समुदायों के बीच **सम्बन्ध** उस **वस्तु** में, उत्पाद में उत्पादक और उपभोक्ता का सम्बन्ध जोड़ता है, जो अब एक ही व्यक्ति में संयुक्त नहीं हैं। यहां हमारे सामने तत्काल एक विचित्र तथ्य का दृष्टान्त प्रस्तुत हो जाता है जो पूरे अर्थशास्त्र में विद्यमान होता है और जिसने पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के दिमाग़ में घोर भ्रान्तियां पैदा की हैं.—अर्थशास्त्र वस्तुओं से नहीं, वरन् मनुष्यों के बीच और अन्ततः वर्गों के बीच सम्बन्धों पर विचार करता है, परन्तु ये सम्बन्ध सदैव **वस्तुओं से जुड़े हुए होते हैं और वस्तुओं के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।** इस सम्बन्ध को, जिसे इक्के-दुक्के मामलों में ही इस या उस अर्थशास्त्री ने पहचाना था, सबसे पहले मार्क्स ने समस्त अर्थशास्त्र के लिए प्रचलित अन्तःसम्बन्ध के रूप में ढूंढ़ा था, इसके बल पर उन्होंने सबसे कठिन प्रश्नों को इतना सरल तथा स्पष्ट कर दिया कि अब पूंजीवादी अर्थशास्त्री तक उन्हें समझ सकेंगे।

अब हम यदि मालों पर—मालों पर उनके पूर्ण विकास के रूप में, उस रूप में नहीं जिस रूप में वे दो आदिम समुदायों के बीच आदिम वस्तु विनिमय के रूप में बड़ी कठिनाई से विकसित हुए थे—उनके विभिन्न पहलुओं से विचार करें तो वे हमारे सामने अपने को दो दृष्टिकोणों से, उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य के दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं। और यहां हम तत्काल आर्थिक विवाद के क्षेत्र में

प्रवेश करते हैं। जो कोई इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण चाहता है कि जर्मन द्वन्द्वात्मक विधि विकास की अपनी वर्तमान स्थिति के मामले में पुरानी, संकुचित, वाचाल अधिभूतवादी विधि से कम से कम उतनी श्रेष्ठ अवश्य है जितनी श्रेष्ठ रेलें मध्य युग के परिवहन साधनों से हैं, उसे ऐडम स्मिथ अथवा किसी भी अन्य जाने-माने आधिकारिक अर्थशास्त्री की रचनाओं को पढ़कर मालूम हो जायेगा कि उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य इन सज्जनों के लिए कितना यन्त्रणादायी था, उनके लिए उन्हें अलग-अलग रखना तथा हरेक को उसकी अनोखी निश्चितता के साथ समझना कितना कठिन था। तब उसे इसकी तुलना मार्क्स की कृतियों में प्रस्तुत प्रश्नों के सुस्पष्ट तथा सरल विवेचन से करनी चाहिए।

उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य पर प्रकाश डाले जा चुकने के बाद मालों को दोनों की एकता के रूप में, उस रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिस रूप में वे **विनिमय की प्रक्रिया में** प्रवेश करते हैं। यहां जो अन्तर्विरोध उत्पन्न होते हैं, उन्हें आगे चलकर पृष्ठ २० और २१* में पढ़ा जा सकता है। हम यहां केवल इतनी टिप्पणी करना चाहते हैं कि ये अन्तर्विरोध मात्र सैद्धान्तिक, अमूर्त दिलचस्पी के नहीं हैं, वे तो साथ ही साथ प्रत्यक्ष विनिमय सम्बन्धों के, सीधे-सादे वस्तु विनिमय के रूप से पैदा होनेवाली कठिनाइयों को प्रतिबिम्बित करते हैं, उन असम्भवताओं को प्रतिबिम्बित करते हैं जिनसे विनिमय का यह पहला अपरिष्कृत रूप अनिवार्यतः टकराता है। इन असम्भवताओं का समाधान इस तथ्य में मिलता है कि तमाम अन्य मालों के विनिमय मूल्य का प्रतिनिधित्व करनेवाला गुण एक विशेष माल में – **मुद्रा में** – स्थानान्तरित हो जाता है। मुद्रा अथवा सरल प्रचलन पर दूसरे अध्याय में प्रकाश डाला गया है, अर्थात् १) **मूल्य के माप** के रूप में मुद्रा जिसमें मुद्रा में मापे गये मूल्य – **क़ीमत** – की सटीक परिभाषा की गयी है; २) **प्रचलन के माध्यम** के रूप में और ३) दोनों परिभाषाओं की एकता के रूप में, **वास्तविक मुद्रा** के रूप में, समग्र भौतिक पूंजीवादी सम्पदा के रूप में। यहां प्रथम भाग का विवेचन समाप्त किया जा रहा है, मुद्रा पूंजी कैसे बनती है, इस विषय पर दूसरे भाग में विचार किया जायेगा।

हम देख चुके हैं कि इस विधि के होते हुए तार्किक विकास विशुद्ध अमूर्त क्षेत्र तक सीमित रहने के लिए कदापि विवश नहीं होता। इसके विपरीत वह

---

* देखें मार्क्स की कृति, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास'। – **सं०**

ऐतिहासिक दृष्टान्त की, यथार्थ से सतत सम्पर्क की अपेक्षा करता है। ऐसे दृष्टान्त तदनुसार बहुत बड़ी विविधता के साथ पेश किये जाते हैं, अर्थात् सामाजिक विकास की भिन्न-भिन्न मंज़िलों में इतिहास के वास्तविक विकासक्रम के तथा साथ ही साथ आर्थिक साहित्य के, जिसमें आर्थिक सम्बन्धों की परिभाषाएं शुरू से ही बहुत स्पष्ट रूप में तैयार की जाती हैं, संदर्भ पेश किये जाते हैं। संप्रत्ययन के विशेष, कमोबेश इकतरफ़ा अथवा भ्रान्तिमूलक माध्यमों की समीक्षा इस तरह स्वयं सारत: तार्किक विकास में प्रस्तुत की जा चुकी है तथा उसका संक्षिप्त रूप में निरूपण किया जा सकता है।

तीसरे लेख में हम स्वयं पुस्तक की आर्थिक अन्तर्वस्तु पर प्रकाश डालेंगे।*

एंगेल्स द्वारा ३–१५
अगस्त १८५९ को लिखित।
«*Das Volk*»,
अंक १४ और १६ में
६ तथा २० अगस्त
१८५९ को प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

*तीसरे लेख की पांडुलिपि कहीं मिली नहीं है। – सं०

कार्ल मार्क्स

चिट्ठी-पत्री

पा० वा० आन्नेनकोव के नाम

पेरिस में

ब्रसेल्स, २८ दिसम्बर [१८४६]

प्रिय श्री आन्नेनकोव,

आपको बहुत पहले ही अपने १ नवम्बर के पत्र का जवाब मिल जाता, पर बात यह हुई कि हमारे किताब वाले ने पिछले हफ़्ते ही श्री प्रूदों की पुस्तक 'दरिद्रता का दर्शन' मुझे भेजी। मैंने दो ही दिनों में इस किताब को पढ़ डाला जिससे कि अपनी सम्मति फ़ौरन आपको लिख सकूं। चूंकि मैंने बड़ी जल्दी में किताब पढ़ी है, इसलिए तफ़सील में नहीं जा सकता। मैं केवल उसके आम असर के बारे में बतला सकता हूं जो मेरे ऊपर पड़ा है। अगर आप चाहें तो मैं एक और ख़त में ब्यौरे से लिख सकता हूं।

मुझे स्पष्टतः स्वीकार करना पड़ रहा है कि किताब मुझे पूरे तौर पर बुरी, बहुत ही बुरी लगी। श्री प्रूदों ने अपनी इस आकृतिहीन तथा महत्त्वपूर्ण होने का दम भरनेवाली कृति में "जर्मन दर्शन की चिप्पी-चकती" का शान के साथ जो दिखावा किया है, उसका आपने ख़ुद भी अपने ख़त में मज़ाक़ उड़ाया है, पर आप यह मान बैठते हैं कि आर्थिक तर्क पर दार्शनिक विष का प्रभाव नहीं है। मैं तो ख़ैर आर्थिक तर्क के दोषों का दायित्व प्रूदों महाशय के दर्शन पर डालने की बात भी नहीं सोचता। श्री प्रूदों राजनीतिक अर्थशास्त्र की झूठी समीक्षा इसलिए नहीं पेश करते कि उनके पास एक बेतुका दर्शन है, बल्कि वह बेतुका दर्शन इसलिए पेश करते हैं कि वह आज की सामाजिक परिस्थिति को उसके लड़ी में पिरोये रूप में, [engrènement] में (यह शब्द उन्होंने अन्य बहुत सारी चीज़ों की भांति फ़ूरिये से उधार लिया है), नहीं देखते।

श्री प्रूदों क्यों ईश्वर के बारे में, सार्विक बुद्धि के बारे में, मानवजाति की अवैयक्तिक बुद्धि के बारे में जो कभी चूक नहीं करती, जो सभी युगों में सर्वदा अपने जोड़ की रही है और जिसकी सही धारणा रखना ही किसी के सही होने के लिए पर्याप्त है, बातें करते हैं? वह प्रकाण्ड विचारक के रूप में प्रगट होने के लिए एक सतही हेगेलवाद क्यों पेश करते हैं?

इस पहेली के उत्तर का वह स्वयं संकेत कर देते हैं। श्री प्रूदों को इतिहास में सामाजिक घटनाक्रम का एक निश्चित सिलसिला दिखायी देता है। वह प्रगति को इतिहास में चरितार्थ पाते हैं। और अन्तिम बात यह कि वह पाते हैं कि मनुष्य अलग अलग व्यक्ति की हैसियत से नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है और ख़ुद अपनी गतिविधि के बारे में भ्रम में रहता है, अर्थात् उसका सामाजिक विकास प्रथम दृष्टि में उसके व्यक्तिगत विकास से पृथक्, विशिष्ट और स्वतंत्र ज्ञात होता है। इन तथ्यों की वह व्याख्या नहीं कर सकते और सार्विक बुद्धि की अभिव्यक्ति का प्रमेय गढ़ लेते हैं। रहस्यवादी कारण, अर्थात् साधारण बुद्धि से शून्य शब्दावलियां गढ़ लेने से आसान और कुछ नहीं है।

पर जब श्री प्रूदों स्वीकार करते हैं कि वह मानवजाति के ऐतिहासिक विकास की कुछ समझ नहीं रखते (यह वह सार्विक बुद्धि, ईश्वर, आदि आडंबरपूर्ण शब्दों का इस्तेमाल करके स्वीकार करते हैं), तो क्या वह अप्रगट, पर अनिवार्य रूप से यह स्वीकार नहीं करते कि वह **आर्थिक विकास** को भी समझने में अक्षम हैं?

समाज – उसका रूप चाहे जो भी हो – क्या है? वह मानवों की अन्योन्यक्रिया का फल है। क्या मनुष्य को समाज का जो भी रूप चाहे चुन लेने की स्वतंत्रता प्राप्त है? कदापि नहीं। मानव की उत्पादक शक्तियों के विकास की कोई ख़ास अवस्था ले लीजिये, उसके अनुरूप ही आपको वाणिज्य [commerce] और उपभोग का रूप मिलेगा। उत्पादन, वाणिज्य और उपभोग के विकास की कोई ख़ास अवस्था ले लीजिये, तो आपको उसके अनुरूप ही सामाजिक गठन का रूप, परिवार का, सामाजिक श्रेणियों या वर्गों का संगठन भी, या एक शब्द में कहें तो नागरिक समाज भी मिलेगा। किसी ख़ास नागरिक समाज को ले लीजिये तो आपको ख़ास राजनीतिक व्यवस्था भी मिलेगी, जो नागरिक समाज की आधिकारिक अभिव्यक्ति मात्र है। श्री प्रूदों इस चीज़ को कभी नहीं समझेंगे क्योंकि उनका ख़याल है कि वह नागरिक समाज को राज्य से पृथक् और ऊपर मानकर, यानी समाज के आधिकारिक सार को आधिकारिक समाज से पृथक् और ऊपर मानकर कोई महान कार्य कर रहे हैं।

कहने की जरूरत नहीं कि मानव अपनी **उत्पादक शक्तियों** का – जो उसके पूरे इतिहास का आधार हैं – स्वाधीन विधाता नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक उत्पादक शक्ति अर्जित शक्ति होती है, भूतपूर्व कार्यकलाप की उपज होती है। अतः उत्पादक शक्तियां व्यावहारिक मानव ऊर्जा का परिणाम होती हैं, पर यह मानव ऊर्जा स्वयं उन अवस्थाओं से परिसीमित होती है जिनमें मनुष्य अपने को पाता है। वह पहले से अर्जित उत्पादक शक्तियों द्वारा, इन मानवों से पहले से अस्तित्वमान् सामाजिक रूप के द्वारा जिसका वे सृजन नहीं करते, जोकि पहले की पीढ़ी की उपज होता है, परिसीमित होती है। इस सरल से तथ्य के कारण कि आनेवाली प्रत्येक पीढ़ी अपने से पहले की पीढ़ी द्वारा अर्जित उत्पादक शक्तियों का अपने को अधिकारी पाती है जो उसके लिए नये उत्पादन के कच्चे माल का काम करती हैं, मानव इतिहास में एक तारतम्यता पैदा होती है, मानवजाति के इतिहास का सृजन होता है, जो इसलिए और भी अधिक मानवजाति का इतिहास होता है कि मानव की उत्पादक शक्तियां और इस कारण उसके सामाजिक सम्बन्ध अधिक विकसित हुए हैं। अतः अनिवार्यतः यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव का सामाजिक इतिहास उसके व्यक्तिगत विकास के इतिहास के अलावा और कुछ भी नहीं है – भले ही उसको इसकी चेतना हो या न हो। मानवों के भौतिक सम्बन्ध उनके समूचे सम्बन्धों के आधार हैं ये भौतिक सम्बन्ध वे आवश्यक रूप मात्र हैं जिनमें उनके भौतिक और व्यक्तिगत कार्यकलाप चरितार्थ होते हैं।

श्री प्रूदों विचारों और वस्तुओं को गड्डमड्ड कर देते हैं। मनुष्य जो उपार्जित करता है उसे फिर कभी छोड़ता नहीं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह उस सामाजिक रूप का कभी परित्याग नहीं करता जिसमें उसने किन्हीं उत्पादक शक्तियों को प्राप्त किया है। इसके विपरीत, प्राप्त परिणाम से वंचित न होने, और सभ्यता के फलों को न गंवाने के लिए, मनुष्य उस क्षण से ही अपने सारे परम्परागत सामाजिक रूपों को बदलने को बाध्य होता है जब से उसके वाणिज्य [Commerce] के रूप का अर्जित उत्पादक शक्तियों के साथ सामंजस्य नहीं रह जाता। «Commerce» शब्द का प्रयोग यहां मैं उसके व्यापकतम अर्थ में करता हूं जैसा कि जर्मन में हम «Verkehr» शब्द का उपयोग करते हैं। उदाहरणार्थ : विशेषाधिकार, शिल्प-संघ और निगम जैसी संस्थाएं, मध्य युग की विनियामक शासन – ये ही एकमात्र ऐसे सामाजिक सम्बन्ध थे जो उस उपार्जित उत्पादक शक्तियों से और सामाजिक व्यवस्थाओं से मेल खाते थे जो पहले से विद्यमान थी और जिससे ही

इन संस्थाओं का उद्भव हुआ था। निगमों और विनियमों के शासन की छत्रछाया में पूंजी संचित की गयी, वैदेशिक व्यापार विकसित किया गया, उपनिवेशों की स्थापना की गयी। किन्तु इनके फलों से लोग हाथ धो बैठते यदि वे उन रूपों को क़ायम रखने की कोशिश करते जिनकी छांह में ये फल पके थे। इसीलिए दो विद्युत् विस्फोट हुए – १६४० और १६८८ की क्रान्तियां हुईं। इंगलैंड में सभी पुराने आर्थिक रूप, उनसे मेल खानेवाले सामाजिक सम्बन्ध, राजनीतिक प्रणाली जो पुराने नागरिक समाज की आधिकारिक अभिव्यक्ति थी – ये सभी नष्ट हो गये। इस प्रकार वे आर्थिक रूप जिनमें मनुष्य उत्पादन, उपभोग एवं विनिमय करते हैं, **अनित्य और ऐतिहासिक** हैं। नयी उत्पादक शक्तियां प्राप्त करने के साथ मनुष्य अपनी उत्पादन पद्धति बदल डालते हैं और उत्पादन पद्धति के साथ वे उन सारे आर्थिक सम्बन्धों को बदल डालते हैं जो उस ख़ास उत्पादन पद्धति के आवश्यक सम्बन्ध मात्र थे।

इस चीज़ को श्री प्रूदों ने नहीं समझा है, इसे दिखलाने की बात तो दूर रही। इतिहास की वास्तविक गति को समझने में असमर्थ श्री प्रूदों एक मायाजाल की सृष्टि करते हैं जिसका धृष्टतापूर्ण दावा यह है कि वह द्वन्द्वात्मक मायाजाल है। उन्हें सत्रहवीं, अठारहवीं या उन्नीसवीं शताब्दी का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं महसूस होती, क्योंकि उनका इतिहास कुहासाच्छन्न कल्पनालोक में चलता है, वह काल और देश से परे है। संक्षेप में, यह इतिहास नहीं, बल्कि पुराना हेगेलीय कबाड़ख़ाना है। यह पार्थिव इतिहास – मनुष्यों का इतिहास – नहीं, बल्कि पावन इतिहास – विचारों का इतिहास – है। उनके दृष्टिकोण से मनुष्य केवल वह करण है जिसका विचार अथवा नित्य बुद्धि अपने प्रगटीकरण के लिए इस्तेमाल करती है। श्री प्रूदों जिन **उद्विकासों** की बात करते हैं, उनके सम्बन्ध में समझ यह है कि वे परम विचार के रहस्यमय गर्भ में सम्पन्न होनेवाले उद्विकास हैं। इस रहस्यवादी भाषा का आवरण हटा दीजिये तो प्रगट हो जाता है कि श्री प्रूदों आपके सामने जिस चीज़ को प्रस्तुत कर रहे हैं वह केवल वह शृंखला है जिसमें उनके अपने मस्तिष्क के भीतर आर्थिक प्रवर्ग विन्यस्त होते हैं। आपके समक्ष यह सिद्ध करने में मुझे अधिक मेहनत न करनी पड़ेगी कि यह शृंखला एक बहुत ही विशृंखल मस्तिष्क की उपज है।

श्री प्रूदों अपनी पुस्तक को **मूल्य** की एक लम्बी प्रवचनात्मक व्याख्या के साथ आरम्भ करते हैं, जो उनका प्रिय विषय है। आज मैं इस व्याख्या की समीक्षा नहीं करूंगा।

नित्य बुद्धि के आर्थिक उद्विकासों की माला **श्रम विभाजन** के साथ आरम्भ होती है। श्रम विभाजन श्री प्रूदों के लिए बड़ी सरल-सी चीज़ है। लेकिन जात-पांत व्यवस्था क्या एक श्रम विभाजन नहीं थी? शिल्प-संघों का शासन भी क्या एक और श्रम विभाजन न था? और क्या मैनुफ़ैक्चर व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम विभाजन भी, जिसका इंगलैंड में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में सूत्रपात हुआ और अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में अन्त हुआ, बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग के अन्तर्गत श्रम विभाजन से सर्वथा भिन्न न था?

श्री प्रूदों सत्य से इतने दूर हैं कि वह उस चीज़ की भी उपेक्षा कर देते हैं जिस पर सांसारिक अर्थशास्त्री तक ध्यान देते हैं। श्रम विभाजन की बात करते समय वह **विश्व बाज़ार** शब्द का नाम लेने की ज़रूरत नहीं महसूस करते। पर क्या चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी का श्रम विभाजन जब उपनिवेश नहीं थे, जब यूरोप के लिए अमरीका का अस्तित्व न था, और जब पूर्वी एशिया उसके लिए केवल कुस्तुनतुनिया के माध्यम से ही विद्यमान था, सत्रहवीं शताब्दी के श्रम विभाजन से, जब उपनिवेशों का विकास हो चुका था, मौलिक रूप में भिन्न न रहा होगा?

इतना ही नहीं। राष्ट्रों का पूरा आन्तरिक संगठन, उनके सारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों समेत, क्या एक ख़ास श्रम विभाजन की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त भी कुछ है? और क्या श्रम विभाजन में परिवर्तन होने पर इस संगठन में भी परिवर्तन होना अनिवार्य नहीं है?

श्री प्रूदों ने श्रम विभाजन की समस्या को इतना कम समझा है कि वह नगर और देहात के बिलगाव की (उदाहरणार्थ, जर्मनी में ६वीं से १२वीं शताब्दी के बीच ऐसा बिलगाव हुआ था) चर्चा तक नहीं करते। अतः यह बिलगाव श्री प्रूदों के लिए, जो उसकी उत्पत्ति और विकास दोनों ही से नावाक़िफ़ हैं, नित्य नियम है। अपनी पूरी किताब में ही वह यूं लिखते हैं मानो एक ख़ास उत्पादन पद्धति की यह उपज अनंत काल तक रहेगी। श्रम विभाजन के सम्बन्ध में श्री प्रूदों का वक्तव्य उनके पहले ऐडम स्मिथ और हज़ारों अन्य लोगों के तद्विषयक वक्तव्य का निचोड़ मात्र है। पर यह निचोड़ भी अत्यन्त उथला एवं अपूर्ण है।

दूसरा उद्विकास है **मशीनरी**। श्रम विभाजन और मशीनरी का सम्बन्ध श्री प्रूदों के लिए एकदम रहस्यपूर्ण है। प्रत्येक प्रकार के श्रम विभाजन के अपने अलग-अलग उत्पादन के औज़ार थे। उदाहरणार्थ, सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक लोग सब कुछ हाथ से नहीं बनाते थे। उस समय मशीनें थीं और बहुत जटिल मशीनें थीं, जैसे करघा, जहाज़, लीवर आदि।

इसलिए इससे अधिक बेतुकी बात और कोई नहीं हो सकती कि मशीनरी को सामान्यत: श्रम विभाजन से व्युत्पन्न माना जाये।

चलते हुए यह भी कह दूं कि मशीनरी की ऐतिहासिक उत्पत्ति को न समझनेवाले श्री प्रूदों ने उसके विकास को और भी कम समझा है। कह सकते हैं कि १८२५ तक, अर्थात् पहले आम आर्थिक संकट के वर्ष तक, उपभोग की मांगें सामान्यत: उत्पादन से अधिक तेज़ी से बढ़ रही थीं, और मशीनरी का विकास बाज़ार की आवश्यकताओं का अनिवार्य परिणाम था। १८२५ के बाद से मशीनरी का आविष्कार और प्रयोग केवल मालिकों और मज़दूरों के युद्ध का परिणाम रहे हैं। यह बात केवल इंगलैंड पर लागू होती है। जहां तक यूरोपीय राष्ट्रों का सवाल है, वे इंगलैंड की होड़ के कारण (जिसका सामना उन्हें घरेलू बाज़ार में और विश्व बाज़ार में भी करना पड़ा था) मशीनरी अपनाने को मजबूर हुए। अंत में उत्तर अमरीका में मशीनें अन्य देशों के साथ होड़ और आदमियों की कमी, इन दोनों ही के कारण, अर्थात् उत्तर अमरीका की जनसंख्या और उसकी औद्योगिक आवश्यकताओं के वैषम्य के कारण अपनायी गयीं। इन तथ्यों से आप देख सकते हैं कि होड़ को तीसरे उद्विकास के, मशीनरी के प्रतिवाद के रूप में एक हौवा बनाकर पेश करते हुए श्री प्रूदों कैसी बुद्धिमत्ता का परिचय देते हैं!

अन्तिम और आम बात यह है कि **मशीनरी** को श्रम विभाजन, होड़ और साख आदि के सदृश एक आर्थिक प्रवर्ग बनाकर पेश करना बेतुकेपन की हद है।

जिस तरह हल जोतनेवाला बैल आर्थिक प्रवर्ग नहीं है, उसी तरह मशीनरी भी नहीं है। आज के ज़माने में मशीनरी का **प्रयोग** हमारी मौजूदा आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्धों में से एक है, पर मशीनरी के इस्तेमाल का ढंग स्वयं मशीनरी से बिलकुल ही भिन्न चीज़ है। बारूद से आदमी पर घाव करने का काम लिया जाये या घाव की मरहम पट्टी करने का, बारूद बारूद ही रहेगी।

श्री प्रूदों उस समय अपनी बुद्धिमत्ता की चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं जब वह होड़, इजारेदारी, कर या पुलिस, व्यापार संतुलन, साख तथा सम्पत्ति को उस क्रम से, जिसमें मैंने इनका उल्लेख किया है, अपने मस्तिष्क के अन्दर विकसित होने देते हैं। साख सम्बन्धी सभी संस्थाएं इंगलैंड में १८वीं शताब्दी के आरम्भ तक, यानी मशीनरी की खोज से पहले ही विकसित की जा चुकी थीं। सार्वजनिक साख कर बढ़ाने और पूंजीपति वर्ग के सत्तारूढ़ होने से पैदा हुए नये तक़ाज़ों की पूर्त्ति का एक नया तरीक़ा मात्र था।

श्री प्रूदों की पद्धति में अन्तिम प्रवर्ग **सम्पत्ति** है। पर वास्तविक जगत् में श्रम विभाजन और श्री प्रूदों के अन्य सारे प्रवर्ग सामाजिक सम्बन्ध हैं जिनसे समग्र रूप में वह चीज़ बनती है जिसे आज **सम्पत्ति** कहते हैं। इन सम्बन्धों से बाहर, पूंजीवादी सम्पत्ति अधिभूतवादी अथवा क़ानूनी भ्रम मात्र है। एक अन्य युग की सम्पत्ति, सामन्ती सम्पत्ति, बिल्कुल ही भिन्न सामाजिक सम्बन्धों की माला में विकसित होती है। सम्पत्ति को एक स्वाधीन सम्बन्ध के रूप में स्थापित कर श्री प्रूदों केवल विधि सम्बन्धी भूल ही नहीं करते, बल्कि वह यह स्पष्टतः सिद्ध कर देते हैं कि उन्होंने **पूंजीवादी** उत्पादन के सभी रूपों को जोड़नेवाले सूत्र को ही नहीं पकड़ा है, कि उन्होंने किसी युग के उत्पादन के रूपों के **ऐतिहासिक और अनित्य** स्वरूप को ही नहीं समझा है। हमारी सामाजिक संस्थाओं को इतिहास की उपज न माननेवाले, न उनकी उत्पत्ति को और न ही उनके विकास को समझनेवाले श्री प्रूदों उनकी जड़सूत्रवादी समीक्षा ही प्रस्तुत कर सकते हैं।

अतः श्री प्रूदों विकास की व्याख्या करने के लिए **कपोल-कल्पना** का सहारा लेने को बाध्य होते हैं। वह कल्पना करते हैं कि श्रम विभाजन, साख, मशीनरी आदि उनके स्थिर विचार, समानता के विचार के सेवार्थ आविष्कृत हुए थे। उनकी व्याख्या उदात्त, लोकोत्तर मासूमियत से भरी हुई है। ये चीज़ें समानता के हित में आविष्कृत हुईं, पर दुर्भाग्यवश वे समानता के विरुद्ध चली गयीं। यही उनका सारा तर्क है। दूसरे शब्दों में, वह एक निराधार कल्पना करते हैं और तब चूंकि वस्तुगत विकास उनकी कपोल-कल्पना का हर पग पर खण्डन करने लगता है, इसलिए वह यह निष्कर्ष निकालते हैं कि विरोध और वैपरीत्य विद्यमान हैं। वह इस चीज़ को छिपाते हैं कि विरोध केवल उनके स्थिर विचारों और वास्तविक गतिविधि के बीच है।

अतः श्री प्रूदों ने प्रधानतः ऐतिहासिक ज्ञान के अभाव के कारण, यह नहीं देखा है कि मनुष्य अपनी उत्पादक शक्तियों का विकास करने के साथ, अर्थात् अपने जीवन-यापन के सिलसिले में एक दूसरे के साथ कुछ सम्बन्ध पैदा कर लेते हैं और इन सम्बन्धों का स्वरूप उत्पादक शक्तियों के परिवर्तन और विकास के साथ लाज़िमी तौर पर बदल जाता है। उन्होंने यह नहीं देखा है कि **आर्थिक प्रवर्ग** इन वास्तविक सम्बन्धों की **विविक्तियां** भर हैं और तभी तक सत्य हैं जब तक ये सम्बन्ध विद्यमान रहते हैं। इसलिए वह पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों वाली ग़लती कर बैठते हैं, जो इन आर्थिक प्रवर्गों को शाश्वत नियम समझते हैं और जो इन्हें ऐसे ऐतिहासिक नियम नहीं समझते जो एक ख़ास ऐतिहासिक

विकास के, उत्पादक शक्तियों के एक निश्चित प्रकार के विकास के लिए ही होते हैं। अतः राजनीतिक-आर्थिक प्रवर्गों को वास्तविक, अनित्य, ऐतिहासिक सामाजिक सम्बन्धों की विविक्तियां मानने के बदले, रहस्यवादी विचार विपर्यय के कारण श्री प्रूदों वास्तविक सम्बन्धों को इन विविक्तियों का साकार रूप समझते हैं। ये विविक्तियां परमेश्वर के हृदय में, सृष्टि के आरम्भ से ही अवस्थित सूत्र हैं।

पर यहां यह सज्जन भयानक बौद्धिक व्यतिक्रमों का शिकार हो जाते हैं। यदि ये सारे आर्थिक प्रवर्ग परमेश्वर के हृदय स्थल से उद्भूत हैं, यदि ये मनुष्य का आवृत्त और नित्य जीवन हैं, तो यह कैसे हुआ कि विकास जैसी चीज विद्यमान है? दूसरे यह क्योंकर हुआ कि श्री प्रूदों रूढ़िवादी नहीं हैं? इन स्पष्ट विरोधों की व्याख्या वह विग्रह की एक पूरी पद्धति पेश करके करते हैं।

विग्रह की इस पद्धति पर प्रकाश डालने के लिए एक उदाहरण ले लें।

इजारेदारी अच्छी चीज है, क्योंकि वह एक आर्थिक प्रवर्ग है और इसलिए परमेश्वर से उद्भूत है। होड़ अच्छी चीज है, क्योंकि वह भी एक आर्थिक प्रवर्ग है। पर इजारेदारी की वास्तविकता और होड़ की वास्तविकता अच्छी नहीं है। इससे भी बुरी बात यह है कि इजारेदारी और होड़ एक दूसरे के भक्षक हैं। तो क्या करें? चूंकि परमेश्वर के ये दो नित्य विचार एक दूसरे का खण्डन करते हैं, इसलिए श्री प्रूदों को ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि परमेश्वर के हृदय में इन दोनों का कोई समन्वय भी विद्यमान होगा, जिसमें इजारेदारी की बुराइयों के पलड़े को होड़ बराबर करती है और होड़ की बुराइयों के पलड़े को इजारेदारी। इन दोनों विचारों के संघर्ष के फलस्वरूप उनका अच्छा पक्ष ही दृष्टिगत होगा। इस गुप्त विचार को हमें परमेश्वर से आकर्षित करना चाहिए और फिर उसका प्रयोग करना चाहिए। तब सब कुछ बिल्कुल ठीक ठीक रहेगा। हमें मनुष्य की अवैयक्तिक बुद्धि के अंधेरे में छिपे समन्वय सूत्र को प्रकाश में ले आना चाहिए। इन्हें प्रकाश में लानेवाले पैग़म्बर के रूप में अपने को पेश करने में श्री प्रूदों ने ज़रा भी झिझक नहीं महसूस की है।

लेकिन ज़रा वास्तविक जीवन पर एक क्षण के लिए दृष्टि डालिये। आज के आर्थिक जीवन में आपको होड़ और इजारेदारी ही नहीं, बल्कि इनका समन्वय भी मिलता है, जो **सूत्र** नहीं, बल्कि **गति** है। इजारेदारी होड़ को जन्म देती है। होड़ इजारेदारी को। किन्तु इस समीकरण से वर्तमान स्थिति की कठिनाइयों का पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों की कल्पना के अनुसार मिट जाना तो दूर रहा, उससे एक

और भी कठिन तथा उलझी हुई स्थिति पैदा होती है। इसलिए यदि उस आधार को बदल दिया जाये जिस पर आज के आर्थिक सम्बन्ध खड़े हैं, यदि वर्तमान उत्पादन **पद्धति** को नष्ट कर दिया जाये, तो होड़, इजारेदारी और इनका विग्रह ही नहीं नष्ट हो जायेंगे, बल्कि इनकी एकता, इनका समन्वय भी नष्ट हो जायेगा। वह गति भी नष्ट हो जायेगी जो होड़ और इजारेदारी की सच्ची साम्यावस्था है।

अब मैं आपको श्री प्रूदों के द्वन्द्ववाद का एक नमूना दिखलाऊंगा।

स्वाधीनता और दासता विग्रहशील हैं। स्वाधीनता के अच्छे और बुरे पहलुओं की चर्चा करने की ज़रूरत नहीं है, और न ही दासता की चर्चा करते समय उसके बुरे पक्ष की विवेचना करने की आवश्यकता है। व्याख्या केवल उसके अच्छे पहलू की करनी है। हमारा तात्पर्य अप्रत्यक्ष दासता से, सर्वहारा की दासता से नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष दासता से है, उस दासता से है जिसका सुरीनाम, ब्राज़िल और उत्तर अमरीका के दक्षिणी राज्यों की काली जातियां शिकार हैं।

प्रत्यक्ष दासता हमारे वर्तमान उद्योग के लिए वैसे ही एक चूल का काम करती है जैसे मशीनें, साख आदि करती हैं। बिना दासता के कपास नहीं, बिना कपास के आधुनिक उद्योग नहीं। दासता ने उपनिवेशों को मूल्यवान बनाया। उपनिवेशों ने विश्व व्यापार का सृजन किया और विश्व व्यापार बड़े पैमाने के मशीन उद्योग की आवश्यक शर्त है। नीग्रो लोगों की ख़रीद-बिक्री आरम्भ होने से पहले उपनिवेशों से पुरानी दुनिया को बहुत ही कम पैदावार प्राप्त होती थी और दुनिया के चेहरे पर इनसे कोई दिखायी देने लायक़ परिवर्तन नहीं हुआ था। इसलिए दासता उच्चतम महत्त्व का आर्थिक प्रवर्ग है। दासता न हो तो सबसे प्रगतिशील देश उत्तर अमरीका पितृसत्तात्मक देश में परिवर्तित हो जायेगा। उत्तर अमरीका को राष्ट्रों के नक़्शे से मिटा दीजिये, तो अराजकता ही हाथ लगेगी, व्यापार की और आधुनिक सभ्यता की पूर्ण अवनति ही हाथ लगेगी। पर दासता को मिट जाने देना उत्तर अमरीका को राष्ट्रों के नक़्शे से मिटा देना है। इस कारण से ही, दासता के एक आर्थिक प्रवर्ग होने के कारण से ही, हम देखते हैं कि सृष्टि के आरम्भ से ही सभी राष्ट्रों में वह विद्यमान है। आधुनिक राष्ट्रों ने केवल अपने देश के अन्दर दासता को छद्मावरण में ढंकना जाना है, नयी दुनिया में तो उन्होंने उसका खुलेआम आयात किया। दासता सम्बन्धी इन बातों के बाद, हमारे लायक़ दोस्त श्री प्रूदों क्या करेंगे? वह स्वाधीनता और दासता के समन्वय की, स्वाधीनता और दासता के बीच "स्वर्णिम मध्यमान" अथवा सन्तुलन की तलाश करने लगेंगे।

श्री प्रूदों ने इस तथ्य को बख़ूबी समझा है कि मनुष्य कपड़ा, सन, रेशम आदि चीज़ें पैंदा करता है और इस स्वल्प सी बात को समझ जाने के लिए उन्हें शाबाशी मिलनी चाहिए! पर जो चीज़ उन्होंने नहीं समझी, वह यह है कि ये मनुष्य, अपनी-अपनी उत्पादक शक्तियों के अनुसार, **सामाजिक सम्बन्ध** भी पैंदा करते हैं और इन सम्बन्धों के मध्य ही वे कपड़े और सन का उत्पादन करते हैं। इससे भी कम वह इस चीज़ को समझे कि अपने भौतिक उत्पादन के अनुसार अपने सामाजिक सम्बन्ध पैंदा करनेवाला मनुष्य **विचार** और **प्रवर्ग** भी उत्पन्न करता है, अर्थात् इन्हीं सामाजिक सम्बन्धों की विविक्त अभिव्यक्तियां भी उत्पन्न करता है। अतः जिस प्रकार ये सम्बन्ध नित्य नहीं हैं, वैसे ही इन्हें अभिव्यक्त करनेवाले प्रवर्ग भी नित्य नहीं हैं। ये ऐतिहासिक और अनित्य उपज हैं। पर श्री प्रूदों के लिए बात उलटी ही है। उनके लिए विविक्ति, प्रवर्ग आदिकारण हैं। उनके मतानुसार, ये ही इतिहास रचते हैं, मनुष्य इतिहास नहीं रचते। **विविक्ति, प्रवर्ग अपने ही रूप में**, यानी मनुष्यों और उनके भौतिक कार्यकलाप से भिन्न रूप में बेशक अमर, अपरिवर्तनशील, अविचल है। वह विशुद्ध बुद्धि का एक सत्व मात्र है। यह घुमाकर इस बात को कहना हुआ कि विविक्ति अपने रूप में विविक्त है। कैसी अद्भुत **पुनरुक्ति** है यह!

अतः, प्रवर्ग के रूप में माने जानेवाले आर्थिक सम्बन्ध श्री प्रूदों के लिए नित्य सूत्र हैं जिनका न जन्म हुआ है, और न प्रगति होती है।

इसे दूसरे ढंग से पेश करें। श्री प्रूदों सीधे-सीधे नहीं कहते कि वह **पूंजीवादी जीवन को शाश्वत सत्य** मानते हैं। यह काम वह घुमा-फिराकर पूंजीवादी सम्बन्धों को विचार के रूप में अभिव्यक्त करनेवाले प्रवर्गों को पुण्य प्रतिष्ठा प्रदान करके करते हैं। वह पूंजीवादी समाज की पैंदावारों को स्वतःस्फूर्त्त सत्ता मानते हैं, जिनका स्वतंत्र जीवन है और जो उनके मस्तिष्क में प्रवर्गों के विचारों के रूप में अपने को पेश करते ही नित्य बन जाते हैं। इस प्रकार वह पूंजीवादी दायरे के बाहर नहीं निकलते। पूंजीवादी विचारों को, जिनकी शाश्वत सत्यता वह पूर्वमान्य कर लेते हैं, लेकर ही कार्य करने के कारण वह इन्हीं विचारों का समन्वय और इनका ही सन्तुलन ढूंढ़ते हैं और यह नहीं देखते कि वर्तमान विधि ही, जिसके द्वारा ये सन्तुलन प्राप्त करते हैं, एकमात्र सम्भव विधि है।

वस्तुतः श्री प्रूदों वही करते हैं जो सभी भले पूंजीपति करते हैं। ये सभी लोग कहते हैं कि सिद्धान्ततः, अर्थात् अमूर्त विचारों के रूप में, होड़, इजारेदारी आदि ही जीवन के एकमात्र आधार हैं, परन्तु व्यवहारतः इनमें बड़ी-बड़ी ख़ामियां

हैं। ये लोग चाहते हैं कि होड़ रहे परन्तु होड़ के प्राणघातक प्रभाव न रहें। जो असम्भव है, वे उसके लिए लालायित हैं अर्थात् ये लोग पूंजीवादी जीवन की अवस्थाओं को, बिना इन अवस्थाओं के अनिवार्य परिणामों को, चाहते हैं। इनमें से कोई भी यह नहीं समझता कि उत्पादन का पूंजीवादी रूप सामन्तवादी रूप की तरह ही ऐतिहासिक और अनित्य है। इस भूल का कारण यह है कि उनके लिए पूंजीवादी मानव ही प्रत्येक समाज का एकमात्र सम्भव आधार है, वे ऐसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना ही नहीं कर सकते जिसमें मानव पूंजीवादी मानव नहीं रह जायेगा।

इसलिए श्री प्रूदों लाज़िमी तौर पर **मतवादी** हैं। वह ऐतिहासिक गति जो वर्तमान जगत् का कायापलट कर रही है, उनके लिए दो पूंजीवादी विचारों का सही सन्तुलन, उनका समन्वय ढूंढ़ने की समस्या मात्र है। अतः चतुर व्यक्ति ने अपनी सूझ-बूझ से परमेश्वर के गुप्त विचार का, दो विलग विचारों की एकता का पता लगा लिया, भले ही ये विचार विलग केवल इसलिए हैं कि श्री प्रूदों ने उन्हें व्यावहारिक जीवन से, वर्तमान उत्पादन से विलग किया है जो उन वास्तविकताओं का योग है जिन्हें ये विचार अभिव्यक्त करते हैं। मानवों की पहले से अर्जित उत्पादक शक्तियों और इन उत्पादक शक्तियों से अब मेल न खानेवाले उनके सामाजिक सम्बन्धों के द्वन्द्व से उत्पन्न महती ऐतिहासिक गति के स्थान पर; प्रत्येक राष्ट्र के अन्दर के विभिन्न वर्गों के बीच और विभिन्न राष्ट्रों के बीच पक रहे भयानक युद्धों के स्थान पर; आम जनता के व्यावहारिक और प्रचण्ड संघर्ष के स्थान पर जिससे ही इन द्वन्द्वों का समाधान हो सकता है—इस सारी विराट, दीर्घ और जटिल गतिविधि के स्थान पर, श्री प्रूदों अपने मस्तिष्क की तरंगी गति [mouvement cacadauphin] को बिठा देते हैं। उनके मत से पढ़े-लिखे विद्वान लोग, ऐसे लोग जो परमेश्वर के मन की गुप्त बातों को चुरा लेना जानते हैं, इतिहास के रचयिता होते हैं। आम जनता का काम केवल उनके द्वारा उद्घाटित दैवी सत्यों को लागू करना है।

इससे समझ में आ जायेगा कि श्री प्रूदों क्यों हर राजनीतिक आन्दोलन के स्वघोषित शत्रु हैं। उनके मत से वर्तमान समस्याओं का हल सार्वजनिक क्रिया में नहीं, बल्कि उनके मस्तिष्क के तार्किक आवर्तन में निहित है। चूंकि प्रवर्ग ही उनके लिए उत्प्रेरक शक्ति हैं, इसलिए प्रवर्गों को बदलने के लिए व्यावहारिक जीवन को बदलना आवश्यक नहीं है। बल्कि बात इसकी उलटी ही है। प्रवर्गों को बदल दीजिये तो उसके परिणामस्वरूप विद्यमान समाज में भी तब्दीली आ जायेगी।

श्री प्रूदों विरोधों के समन्वय के लिए इतने इच्छुक हैं कि वह यह प्रश्न तक नहीं उठाते कि क्या इन विरोधों के आधार को ही उलट देना जरूरी नहीं है? वह हूबहू उस राजनीतिक मतवादी की तरह हैं जो राजा और प्रतिनिधि सदन तथा लार्ड सदन को सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग के रूप में नित्य प्रवर्गों के रूप में देखना चाहता है। उन्हें सिर्फ़ एक ऐसे सूत्र की तलाश है जिसके ज़रिये वह इन शक्तियों के बीच एक सन्तुलन क़ायम रख सकें, जबकि इन शक्तियों का सन्तुलन ठीक आज की उस गति में है जिसमें एक शक्ति कभी दूसरे की विजेता और कभी दास रहती है। इस प्रकार अठारहवीं सदी में अनेक घटिया विचारक इसी तरह एक ऐसा सच्चा नुस्ख़ा निकालने में लगे हुए थे जिससे सामाजिक श्रेणियों—सामंत, सम्राट, संसद आदि—में संतुलन स्थापित हो सके। परन्तु एक दिन आंख खुली तो उन्होंने देखा कि सम्राट, सामंत और संसद, तीनों ही उड़ चुके हैं। इस विरोध का सच्चा सन्तुलन यही था कि उन तमाम सामाजिक सम्बन्धों का ख़ात्मा कर दिया जाये जिन्होंने इन सामन्ती सत्ताओं के और इन सामन्ती सत्ताओं के विग्रह के आधार का काम दिया था।

श्री प्रूदों नित्य विचारों को, विशुद्ध बुद्धि के प्रवर्गों को एक ओर और मनुष्यों एवं उनके व्यावहारिक जीवन को—जो उनके मतानुसार उपरोक्त प्रवर्गों के ही प्रयोग हैं—दूसरी ओर रखते हैं, इसीलिए उनमें शुरू से ही हम जीवन और विचारों में, शरीर और आत्मा में द्वैत पाते हैं, जो अनेक रूपों में, बारम्बार उपस्थित होता है। अब आप देख सकते हैं कि यह विरोध उन प्रवर्गों की पार्थिव उत्पत्ति और विकास को समझने की उनकी अक्षमता मात्र है जिन्हें श्री प्रूदों ने देवत्व प्रदान कर रखा है।

ख़त इतना लम्बा हो गया है कि कम्युनिज़म के विरुद्ध श्री प्रूदों की बेतुकी दलील की विवेचना करने का मौक़ा नहीं रह गया है। फ़िलहाल आप मेरी इस बात को मानेंगे कि जिस आदमी ने समाज की वर्तमान अवस्था को नहीं समझा है, उससे इस बात की तो और भी कम उम्मीद की जा सकती है कि वह उस आन्दोलन को, और उस क्रान्तिकारी आन्दोलन की साहित्यिक अभिव्यक्तियों को समझेगा जो वर्तमान सामाजिक अवस्था को विध्वस्त करने की दिशा में प्रवृत्त है।

सिर्फ़ एक चीज़ है जिसके बारे में मेरा श्री प्रूदों से पूर्ण मतैक्य है। वह है भावुकतापूर्ण समाजवादी दिवास्वप्नों के प्रति उनकी घृणा। उनसे पहले, मैं ख़ुद

ख़र-दिमाग़, भावुक, कल्पनावादी समाजवाद का मखौल बनाकर बहुतों से दुश्मनी मोल ले चुका था। पर क्या श्री प्रूदों अपने को धोखे में नहीं रखते जब वह अपनी निम्नपूंजीवादी भावुकता को (मेरा तात्पर्य घर, दाम्पत्य-प्रेम, और ऐसे ही अन्य घिसे-पिटे विषयों पर उनके आलंकारिक वक्तव्यों से है) उस समाजवादी भावुकता के विरोध में प्रस्तुत करते हैं जो जहां तक कि फ़ुरिये जैसे लोगों का सवाल है प्रूदों महोदय के शब्दाडम्बर से कहीं अधिक गहराई में जाती है? उन्हें ख़ुद अपने तर्कों के खोखलेपन का, इन विषयों पर बोलने की अपनी नितांत अयोग्यता का ऐसा पक्का अहसास है कि वह सहसा जोश में आकर लंबी तक़रीर झाड़ने लगते हैं, रोष भरे उपदेश देने लगते हैं (irae hominis probi), गला फाड़कर चिल्लाने लगते हैं, मुंह में झाग भर लाते हैं, डांटते-फटकारते, कोसते और भला-बुरा कहते हैं, ख़ून-ख़ून और शर्म-शर्म चिल्लाने लगते हैं तथा छाती पीटते हुए और भगवान एवं मनुष्य को साक्षी करके कहते हैं कि मैं समाजवादी कलंक से अछूता हूं! वह समाजवादी भावुकता की अथवा जिसको वह समाजवादी भावुकता समझते हैं, उसकी संजीदगी के साथ समालोचना नहीं करते। साधु-महात्मा अथवा पोप की तरह वह बेचारे पापियों की धर्म-च्युति के फ़तवे देते हैं और निम्नपूंजीपतियों के तथा गृहस्थ जीवन के तुच्छ प्रेम संबंधी एवं पितृसत्तात्मक भ्रमों के गौरव गीत गाते हैं। यह आकस्मिक नहीं है। श्री प्रूदों नख से शिख तक निम्नपूंजीपतियों के दार्शनिक और अर्थशास्त्री हैं। आगे बढ़े हुए समाज में **निम्नपूंजीपति**, अपनी स्थिति से ही, लाज़िमी तौर पर एक ओर समाजवादी और दूसरी ओर अर्थशास्त्री बन जाता है, अर्थात् वह बड़े पूंजीपतियों की शान-शौक़त से चौंधियाया रहता है और जनता के कष्टों के लिए सहानुभूति रखता है। वह पूंजीपति भी होता है और जनता का आदमी भी। अपने अन्तरतम में वह यह सोचकर आत्मश्लाघा का अनुभव करता है कि हम निष्पक्ष हैं, हमने सही सन्तुलन प्राप्त कर लिया है, और इस सही सन्तुलन के बारे में उसका दावा होता है कि यह "स्वर्णिम मध्यमान" से भिन्न है। इस क़िस्म का निम्नपूंजीपति **अंतर्विरोध** का प्रशंसक होता है, क्योंकि अंतर्विरोध उसके अस्तित्व का सार है। वह स्वयं क्रियात्मक रूप में सामाजिक अंतर्विरोध के अलावा और कुछ नहीं है। जो वह व्यवहार में है, उसका सैद्धान्तिक औचित्य उसे प्रदान करना ही है। श्री प्रूदों की यही बड़ाई है कि वह फ़्रांसीसी निम्नपूंजीपतियों के वैज्ञानिक व्याख्याकार हैं। यह सच्ची बड़ाई है, क्योंकि निम्नपूंजीपति सभी आनेवाली सामाजिक क्रान्तियों के अभिन्न अंग होंगे।

काश मैं इस ख़त के साथ राजनीतिक अर्थशास्त्र पर अपनी किताब[145], जिसे छपवाना अभी तक मेरे लिए असम्भव सिद्ध हुआ है तथा जर्मन दार्शनिकों और समाजवादियों की आलोचना*, जिसका ज़िक्र ब्रसेल्स में मैंने आपसे किया था, आपके पास भेज सकता। जर्मनी में ऐसी चीज़ों के प्रकाशन में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। ये कठिनाइयां एक तो पुलिस की ओर से प्रस्तुत होती हैं। दूसरे, पुस्तक विक्रेताओं की ओर से जो स्वयं उन सारी प्रवृत्तियों के हितवाहक प्रतिनिधि हैं जिन पर मैं चोट कर रहा हूं। जहां तक हमारी पार्टी का सम्बन्ध है, बात केवल इतनी ही नहीं है कि वह निर्धन है। सचाई यह भी है कि जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी का एक बड़ा हिस्सा मुझसे इसलिए नाराज़ है कि मैंने उसके कल्पना-विलास एवं उसकी लफ़्फ़ाज़ी का विरोध किया है...

'म० म० स्तस्युलेविच का अपने समसामयिकों के साथ पत्र-व्यवहार', खण्ड ३, सेंट पीटर्सबर्ग, १९१२, में पहली बार फ्रेंच भाषा में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

जोज़ेफ़ वेडेमेयर के नाम

न्यूयार्क में

लन्दन, ५ मार्च १८५२

...जहां तक मेरा सवाल है, आधुनिक समाज में वर्गों के अस्तित्व की खोज करने के श्रेय का मैं अधिकारी नहीं हूं। न ही उनके संघर्ष की खोज करने का श्रेय मुझे मिलना चाहिए। मुझसे बहुत पहले ही पूंजीवादी इतिहासकार वर्गों के इस संघर्ष के ऐतिहासिक विकास का और पूंजीवादी अर्थशास्त्री वर्गों की आर्थिक बनावट का वर्णन कर चुके थे। मैंने जो नयी चीज़ की, वह यह सिद्ध करना था कि: १) **वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विकास के ख़ास ऐतिहासिक दौरों के साथ** बंधा हुआ है; २) वर्ग-संघर्ष लाज़िमी तौर से **सर्वहारा के अधिनायकत्व**

*का० मार्क्स तथा फ़्रे० एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा'।—सं०

की दिशा में ले जाता है; ३) यह अधिनायकत्व स्वयं **सभी वर्गों के उन्मूलन** तथा **वर्गहीन समाज** की ओर संक्रमण मात्र है...

पहली बार
«*Yungsozialistische Blätter*» पत्रिका,
१९३०, में पूर्ण रूप में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स के नाम

मानचेस्टर में

लन्दन, १६ अप्रैल १८५६

...परसों «*People's Paper*» की जयन्ती मनाने के उपलक्ष्य में एक छोटे-से भोज का आयोजन किया गया था। मैंने इस अवसर पर निमंत्रण स्वीकार कर लिया क्योंकि यह समय का तक़ाज़ा प्रतीत होता था और इससे भी बड़ी बात यह थी कि तमाम उत्प्रवासियों में से **केवल** मुझे आमंत्रित किया गया था (जैसा कि अख़बार ने ऐलान किया) और पहला जाम उठाने का दायित्व भी मेरे ही हिस्से आया जिसमें मुझे तमाम देशों के सर्वहारा वर्ग की संप्रभुता का अभिनन्दन करना था। इसलिए मैंने एक छोटा-सा भाषण किया, पर उसे मैं छपवाने नहीं जा रहा हूं।* मेरा उद्देश्य पूरा हो गया। श्री तालान्दिये, जिन्हें २ शिलिंग और ६ पेंस में अपना टिकट ख़रीदना पड़ा था, तथा फ़्रांसीसी और सारे अन्य उत्प्रवासियों के बाक़ी गिरोह ने अपने को यक़ीन दिला दिया है कि हम चार्टिस्टों[146] के एकमात्र "घनिष्ठ" साथी हैं और हालांकि हम सार्वजनिक रूप से सामने नहीं आते तथा चार्टिज़्म के साथ इश्कबाज़ी का मैदान फ़्रांसीसियों के लिए खुला छोड़ दिया है, हम में यह शक्ति है कि हम जब चाहें, उस स्थान पर फिर से अधिकार कर सकते हैं जो ऐतिहासिक रूप से हमें मिलना चाहिए। यह इसलिए और भी ज़्यादा ज़रूरी हो गया था कि प्यात की अध्यक्षता में २५ फ़रवरी की सभा में वह जर्मन गंवार, **शेरज़ेर** (पुराना घाघ) आगे आया और उसने सही अर्थों में भयंकर शिल्प-संघीय अन्दाज़ से जर्मन "पंडितों", "बुद्धिजीवियों" की निन्दा की जिन्होंने उन्हें (गंवारों को) बीच मंझदार में छोड़ दिया था और इस तरह उन्हें दूसरी

*देखें प्रस्तुत खंड के पृष्ठ २६२–२६४।–सं०

जातियों के सामने अपने को बेइज्ज़त करने के लिए विवश किया था। तुम इस शेरज़ेर को पेरिस के ज़माने से जानते हो। दोस्त शापर से मेरी और ज़्यादा मुलाक़ातें हुई हैं। मैंने उसे अपने पापों पर बहुत पश्चात्ताप करनेवाला व्यक्ति पाया। पिछले दो वर्षों से वह अलग-थलग जीवन व्यतीत करता आया है जिससे उसकी मानसिक शक्ति तीक्ष्ण हो गयी प्रतीत होती है। तुम समझते ही हो कि कुछ भी हो, इस आदमी का पास होना, और विलिख़ के हाथों से बाहर होना तो और भी अच्छा है। शापर विंडमिल स्ट्रीट[147] के गंवारों से बुरी तरह नाराज़ है।

मैं तुम्हारी चिट्ठी स्टेफ़ेन के हवाले कर दूंगा। तुम्हें लेवी की चिट्ठी अपने पास रखनी चाहिए थी। उन तमाम चिट्ठियों के साथ तुम्हें ऐसा ही करना चाहिए जिन्हें मैं वापस नहीं मंगाता। उन्हें डाक से जितना कम भेजा जाये, उतना ही बेहतर है। मैं राइन प्रान्त के बारे में तुमसे पूरी तरह सहमत हूं। हमारे लिए घातक बात यह है कि मुझे भविष्य के अन्दर कुछ ऐसी चीज़ की झलक दिखायी दे रही है जिसमें से "पितृभूमि के साथ ग़द्दारी" की बू आयेगी। बर्लिन में घटनाएं कौनसी करवट बदलती हैं, बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि कहीं हम वैसी ही स्थिति में पहुंचने के लिए विवश न हो जायें जिसमें पुरानी क्रान्ति में माएन्ज़ क्लबवादी[148] पहुंच गये थे। वह मुश्किल चीज़ होगी। हम राइन की दूसरी ओर के अपने योग्य भाइयों के बारे में इतनी अच्छी तरह जानते हैं! जर्मनी में सारी बात सर्वहारा क्रान्ति का किसान युद्ध के किसी दूसरे संस्करण द्वारा समर्थन किये जाने की सम्भावना पर निर्भर करेगी। तब स्थिति शानदार होगी...

अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स के नाम

राइड में

(लन्दन) २५ सितम्बर १८५७

...तुम्हारी रचना «*Army*»[149] बहुत अच्छी रही। केवल उसके आकार से मुझे ऐसे अनुभव हुआ मानों मेरे सिर पर चोट की गयी है,, इतना काम करने से तुम्हें बहुत नुकसान पहुंचेगा। यदि मुझे पता होता क तुम्हें रात इतनी देर तक काम करना पड़ेगा तो मैं पूरे मामले को यों ही रहने देता।

सेना का इतिहास उत्पादक शक्तियों तथा सामाजिक सम्बन्धों के बीच

सम्बन्ध के बारे में हमारे संप्रत्ययन को किसी और वस्तु के मुक़ाबले में अधिक साफ़ ढंग से सामने ले आता है। सामान्यतया सेना आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण होती है। उदाहरण के लिए सेना में ही प्राचीन जगत में पहली बार मजूरी प्रणाली का पूर्णतः विकास किया गया था। इसी तरह रोमन लोगों के बीच peculium castrense* पहला क़ानूनी रूप था जिसमें सचल सम्पत्ति पर परिवारों के पिताओं के अलावा दूसरों के अधिकार को मान्यता दी गयी थी। Fabri** के निगम से शिल्प-संघ प्रणाली पर यही बात लागू हुई। यहां भी मशीनों का पहली बार बड़े पैमाने पर उपयोग हुआ। ऐसे प्रतीत होता है कि – ग्रिम के पाषाण युग के बीतने के तुरन्त बाद – धातुओं का विशिष्ट मूल्य तथा उनका मुद्रा के रूप में उपयोग मूलतया उनके सैनिक महत्व पर आधारित था। एक शाखा के अन्दर श्रम विभाजन पहले सेना में लागू किया गया। बुर्जुवा समाज के स्वरूपों के पूरे इतिहास का यहां बहुत उल्लेखनीय रूप में निचोड़ मिलता है। अगर वक़्त मिले तो तुम्हें इस दृष्टिकोण से समस्या का अध्ययन करना चाहिए।

मेरी राय में तुम्हारे वृत्तान्त में केवल इन मुद्दों को नज़रन्दाज़ किया गया है: १) कार्थेजियाइयों के बीच भाड़े के सैनिकों का पहली बार प्रकट होना जिन्हें तुरन्त और बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जा सकता था (अपने निजी उद्देश्य के लिए मैं एक बर्लिनवासी[150] द्वारा कार्थेजियाई सेनाओं के बारे में लिखी गयी पुस्तक को देखूंगा जिसका पता मुझे बाद में चला); २) पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं सदी के आरम्भ में इटली में सैन्य प्रणाली का विकास। यहां बहर-हाल सामरिक दांवों का विकास किया गया था। कोंडोटेर[151] आपस में कैसे लड़े, इसका मैकियावेली ने अपने फ़्लोरेंस के इतिहास में बहुत ही विनोदपूर्ण वर्णन किया है (इसकी मैं आपके लिए नकल कर दूंगा)। (नहीं, अच्छा यह रहेगा कि जब मैं ब्राइटन में तुमसे – कब? – मिलने आऊं तो मैकियावेली की पुस्तक साथ ही ले आऊं। उसका फ़्लोरेंस का इतिहास अनुपम कृति है)। और अन्ततः ३) एशियाई सैन्य प्रणाली जिस रूप में वह पहले-पहल फ़ारसवासियों में और फिर मंगोलों, तुर्कों आदि के बीच – हालांकि काफ़ी संशोधित रूप में – प्रकट हुई।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

*शिविर की सम्पत्ति (प्राचीन रोमन फ़ौजी शिविरों के सैनिकों के लिए निर्दिष्ट व्यक्तिगत सम्पत्ति)। – सं०

**सेना में मज़दूरों की टुकड़ियां, प्राचीन रोमवासियों के लड़ाई में भाग लेनेवाले दस्तकार। – सं०

टिप्पणियां

[1] '**जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**' लेखमाला १८५१–१८५२ में अमरीकी समाचारपत्र *«New-York Daily Tribune»* में प्रकाशित हुई थी। इसे एंगेल्स ने मार्क्स के, जो उस समय आर्थिक शोधकार्यों में व्यस्त थे, अनुरोध पर लिखा था। लेखों पर मार्क्स के, समाचारपत्र के प्रामाणिक सम्वाददाता के हस्ताक्षर थे। केवल १९१३ में जब उनका पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ, यह पता चला कि लेख एंगेल्स ने लिखे थे।–पृ० ७

[2] In partibus infidelium (शाब्दिक अर्थ: काफ़िरों के देश में) – ग़ैर-ईसाई देशों के बिशप के नाम मात्र पद पर नियुक्त किये जानेवाले कैथोलिक बिशप की उपाधि के साथ जुड़े शब्द। मार्क्स और एंगेल्स ने अपनी रचनाओं में देश विशेष की वस्तुस्थिति का लिहाज़ किये बिना विदेशों में स्थापित की गयी प्रवासी सरकारों के लिए अक्सर इस फ़िकरे का इस्तेमाल किया है।–पृ० ७

[3] *«Tribune»* — *«New-York Daily Tribune»* का संक्षिप्त रूप। यह १८४१ से १९२४ तक प्रकाशित होनेवाला प्रगतिशील पूंजीवादी समाचारपत्र था। मार्क्स तथा एंगेल्स अगस्त १८५१ से मार्च १८६२ तक उसमें लिखते रहे।–पृ० ९

[4] **महाद्वीपीय प्रणाली** अथवा महाद्वीपीय नाकाबन्दी १८०६ में नेपोलियन प्रथम द्वारा घोषित की गयी थी। इस प्रणाली ने यूरोपीय महाद्वीप तथा इंगलैंड के मध्य व्यापार पर पाबन्दी लगा दी थी। रूस में नेपोलियन की पराजय के बाद इसे रद्द कर दिया गया।–पृ० १०

[5] **१८१८ का संरक्षण-शुल्क** – प्रशा के अन्दर आन्तरिक शुल्कों का उन्मूलन। – पृ० ११

[6] Zollverein (सीमा-शुल्क संघ) की १८३४ में प्रशा के आधिपत्य के अन्तर्गत स्थापना हुई थी। लगभग समस्त जर्मन राज्य उसके अन्तर्गत थे। समान चुंगी-सीमा की स्थापना ने जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण में सहायता दी। – पृ० ११

[7] १८४४ में ४ से ६ जून तक **सिलेशिया** के बुनकरों के विद्रोह को, जो जर्मनी में सर्वहारा वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग के **बीच** पहला वर्ग संघर्ष था, तथा जून १८४४ के उत्तरार्द्ध में **चेक** मज़दूरों के विद्रोह को सरकारी सैनिकों ने सख़्ती से कुचल दिया। – पृ० १४

[8] **जर्मन महासंघ** जिसे वियेना कांग्रेस ने ८ जून १८१५ को स्थापित किया था, सामन्ती-निरंकुशवादी राज्यों का संगठन था। उसने जर्मनी में राजनीतिक तथा आर्थिक फूट को जारी रखने में मदद दी। – पृ० १६

[9] Diet – जर्मन महासंघ का केन्द्रीय निकाय। उसके अधिवेशन फ़्रैंकफ़ुर्ट-आन-मेन में हुआ करते थे। उसे जर्मन सरकारों ने एक प्रतिक्रियावादी राजनीतिक साधन के रूप में इस्तेमाल किया। – पृ० १६

[10] तथाकथित **सीमा-शुल्क संघ** की स्थापना मई १८३४ में हुई थी। उसमें जर्मन राज्य हैनोवर, ब्रन्सविक, ओल्डेनबर्ग तथा शोम्बर्ग-लिपे शामिल थे जिनकी इंगलैंड के साथ व्यापार में दिलचस्पी थी। १८५४ में यह पृथकतावादी संघ विघटित हो गया तथा उसमें शामिल राज्य सीमा-शुल्क संघ में शामिल हो गये। – पृ० १६

[11] १८१४–१८१५ में वियेना कांग्रेस में यूरोपीय प्रतिक्रियावाद के नेता आस्ट्रिया, इंगलैंड तथा ज़ारशाही रूस ने यूरोप का नक्शा नये सिरे से तैयार किया ताकि १८ वीं शताब्दी में फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रान्ति के दौरान ध्वस्त वैध राजतंत्रों की पुनःस्थापना की जा सके। – पृ० १७

[12] जुलाई १८३० में फ़्रांस में पूंजीवादी क्रान्ति हुई जिसके बाद बेल्जियम, पोलैंड, जर्मनी तथा इटली में विद्रोह हुए। – पृ० १८

[13] **पुनीत संघ** – यूरोपीय सम्राटों का एक प्रतिक्रियावादी संघ जिसे ज़ारशाही रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा ने पृथक-पृथक देशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन कुचलने तथा वहां सामन्ती राजवंशों को क़ायम रखने के लिए १८१५ में स्थापित किया था। – पृ० २०

[14] *«Berliner politisches Wochenblatt»* ('बर्लिन राजनीतिक साप्ताहिक') – १८३१ से लेकर १८४१ तक प्रकाशित होनेवाला घोर प्रतिक्रियावादी समाचारपत्र। उसमें इतिहास विधि पंथ के अनुयायी भाग लेते थे। – पृ० २१

[15] **इतिहास विधि पंथ** – १८ वीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी में इतिहासशास्त्र तथा विधिशास्त्र में एक प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति। – पृ० २१

[16] **लेजिटिमिस्ट** (वैधतावादी) – १८३० में सत्ताच्युत "वैध" बूर्बों राजवंश के समर्थक। यह राजवंश बड़े-बड़े भू-सामन्तों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था। परन्तु कुछ लेजिटिमिस्ट सत्तारूढ़ आर्लियां राजवंश (१८३०–१८४८) के विरुद्ध, जिसे वित्तीय महाप्रभुओं तथा बड़े-बड़े पूंजीपतियों का समर्थन प्राप्त था, सामाजिक नारेबाज़ी का आश्रय लेते रहे और यह जताते रहे कि वे मेहनतकश जनता को पूंजीपति वर्ग के शोषण से बचाना चाहते हैं। – पृ० २१

[17] *«Rheinische Zeitung für Politik, Handel und Gewerbe»* ('राजनीति, वाणिज्य तथा उद्योग का राइनी गज़ेट') – १ जनवरी १८४२ से ३१ मार्च १८४३ तक कोलोन में प्रकाशित होनेवाला एक जर्मन दैनिक। मार्क्स इस अख़बार के लिए लिखते थे तथा अक्तूबर १८४२ में वह उसके सम्पादक बन गये। – पृ० २२

[18] **संयुक्त समितियां** – प्रशा के परामर्शदात्री एस्टेट निकाय जिन्हें प्रान्तीय विधान सभाएं (लैंडटाग) अपने सदस्यों के बीच से निर्वाचित करती थीं। – पृ० २३

[19] Seehandlung – (समुद्री व्यापार) प्रशा में १७७२ में स्थापित व्यापार तथा बैंक-कारोबार से सम्बन्धित एक सोसायटी। उसे राज्य ने अनेक

विशेषाधिकार प्रदान किये थे। उधर इस सोसायटी ने सरकार को ऋण के रूप में बड़ी-बड़ी धनराशियां दीं।–पृ० २४

[20] यहां इशारा जर्मन अथवा "**वास्तविक**" **समाजवाद** के प्रतिनिधियों की कृतियों की ओर है। यह प्रतिक्रियावादी रुझान १९ वीं शताब्दी के पांचवें दशक में विशेष रूप से निम्न-पूंजीवादी बुद्धिजीवियों के बीच विद्यमान था।–पृ० २६

[21] **गोथा पार्टी**–आस्ट्रिया को छोड़कर पूरे जर्मनी को होहेनज़ोलेर्न प्रशा के आधिपत्य में ऐक्यबद्ध करने के लिए दक्षिणपंथी उदारतावादियों, प्रतिक्रान्तिकारी बड़े पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों ने जून १८४९ में इस पार्टी की स्थापना की थी।–पृ० २८

[22] "**जर्मन कैथोलिसिज्म**"–१८४४ में जन्म लेनेवाला एक धार्मिक आन्दोलन। उसने मध्यम तथा निम्नपूंजीपति वर्ग के बड़े समूहों को अपनी परिधि में ले लिया था। वह कैथोलिक धर्म में रहस्यवाद तथा पाखण्ड की अत्यधिक अभिव्यक्तियों के विरुद्ध निर्देशित था। "जर्मन कैथोलिकों" ने पोप की सर्वश्रेष्ठता, अनेकानेक कैथोलिक जड़सूत्रों तथा धार्मिक कृत्यों को ठुकरा दिया तथा कैथोलिसिज्म को पूंजीपति वर्ग की आवश्यकताओं के अनुकूल ढालने का यत्न किया।

"**फ्री कोंग्रिगेशनलिज्म**" (स्वतंत्र धर्मसंघ)–१८४६ में आधिकारिक प्रोटेस्टेंट चर्च से पृथक हो जानेवाला धर्मसंघ। १९ वीं शताब्दी के पांचवें दशक के जर्मन पूंजीपति वर्ग ने इस धार्मिक विपक्ष के रूप में जर्मनी में प्रतिक्रियावादी प्रणाली के प्रति अपना असन्तोष प्रकट किया था। १८५९ में "स्वतंत्र धर्मसंघ" और "जर्मन कैथोलिक" ऐक्यबद्ध हो गये।–पृ० ३०

[23] **यूनिटेरियन अथवा ट्रिनिटेरियन विरोधी**–उस धार्मिक मत के प्रतिनिधि थे जिसका जन्म जर्मनी में १६ वीं शताब्दी में हुआ था और जिसने १७ वीं शताब्दी में इंगलैंड तथा अमरीका में प्रवेश किया था। यूनिटेरियन मत धर्म के बाह्य, संस्कारप्रधान पहलू की जगह उसके नैतिक तथा आचार-सम्बन्धी पहलू पर ज़ोर देता था।–पृ० ३०

[24] अगस्त १८०६ तक सभी जर्मन राज्य तथाकथित जर्मन राष्ट्र के पुनीत रोमन साम्राज्य का भाग थे। १० वीं शताब्दी में स्थापित यह साम्राज्य उन रियासतों

तथा स्वतंत्र नगरों को लेकर बना था जो सम्राट की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करते थे।–पृ० ३१

[25] यहां इशारा तथाकथित **प्रथम अफ़ीम युद्ध** (१८३९–१८४२) की ओर है जो ब्रिटेन ने चीन फ़तह करने के लिए शुरू किया था तथा जिसने चीन को अर्द्ध-उपनिवेश में परिणत कर डाला था।–पृ० ३३

[26] १८४६ के फ़रवरी–मार्च में क्रैको में पोलैंड के सामन्तों के राष्ट्रीय मुक्ति विद्रोह के साथ-साथ गैलीशिया में किसानों का एक बहुत बड़ा विद्रोह भड़क उठा। उसे आस्ट्रियाई सरकार ने पोलिश सामन्तों के विद्रोहपूर्ण आन्दोलन को कुचलने के लिए इस्तेमाल किया। क्रैको विद्रोह कुचलने के बाद आस्ट्रियाई सरकार ने गैलीशिया के किसानों का विद्रोह भी कुचल दिया।–पृ० ३३

[27] यहां इशारा १८४८–१८४९ में आस्ट्रियाई शासन के विरुद्ध इतालवी जनता द्वारा किये गये राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की ओर है। इतालवी सत्तारूढ़ वर्गों की, जो इटली के क्रान्तिकारी आन्दोलन से भयभीत थे, ग़द्दारी के फलस्वरूप संघर्ष विफल हो गया।–पृ० ४३

[28] २६ अगस्त १८४८ को डेनमार्क तथा प्रशा के बीच माल्मो में एक विरामसंधि सम्पन्न हुई। प्रशा जनसाधारण के दबाव के कारण श्लेज़विग तथा होल्स्टिन के विप्लवियों की ओर से युद्ध में भाग लेने के लिए विवश हुआ था। ये विप्लवी डेनिश शासन के विरुद्ध जर्मनी के साथ मिलने के लिए लड़ रहे थे। विरामसंधि सात माहों के लिए की गयी और सितम्बर में फ़्रैंकफ़ुर्ट राष्ट्रीय सभा ने उसकी पुष्टि कर दी। युद्ध माच १८४९ में फिर शुरू हो गया। परन्तु जुलाई १८५० में प्रशा ने डेनमार्क के साथ एक शान्ति संधि सम्पन्न की जिसके फलस्वरूप डेनमार्क विप्लवियों को कुचलने में सफल रहा।–पृ० ५३

[29] यहां इशारा १७७२ में प्रथम विभाजन से पहले की पोलैंड की सीमाओं की ओर है। १७७२ में पोलैंड का काफ़ी बड़ा हिस्सा रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया-हंगरी के बीच विभक्त कर दिया गया था।–पृ० ५५

[30] **हुस्साइटों की लड़ाइयां**—१४१६–१४३७ में जर्मन सामन्तों तथा कैथोलिक चर्च के विरुद्ध चेक जनता के राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम। ये संग्राम चेक रिफ़ोर्मेशन के नेता जान हुस (१३६६–१४१५) के नाम से प्रसिद्ध हुए।—पृ० ५७

[31] यहां मध्य तथा दक्षिण यूरोप की कुछ स्लाव जातियों की ऐतिहासिक नियति तथा उनकी जीवनक्षमता के विषय में प्रस्तुत मूल्यांकन सही नहीं है। बड़ी जातियों द्वारा छोटी जातियों को जबरन आत्मसात किये जाने तथा केन्द्रीकरण की ओर पूंजीवादी प्रवृत्ति का फ़ेडरिक एंगेल्स ने सही मूल्यांकन किया, लेकिन उन्होंने १९वीं शताब्दी के छठे दशक की ठोस स्थिति पर विचार करते समय जातीय उत्पीड़न के विरुद्ध और स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए उन जातियों की जबर्दस्त क्षमताओं को, अपना राज्यत्व प्राप्त करने की उनकी आकांक्षा को ध्यान में नहीं रखा। यह मूल्यांकन कुछ हद तक इस तथ्य से निर्धारित हुआ था कि १८४८–१८४९ में हैप्सबर्ग राजतंत्र तथा रूसी ज़ारशाही लफ़्फ़ाज़ी और दूसरे तरीक़ों से पश्चिमी तथा दक्षिणी स्लावों के राष्ट्रीय आन्दोलनों को जर्मन और हंगेरियाई क्रांतियों के विरुद्ध मोड़ने में सफल हो गयी थी। इन आन्दोलनों ने दक्षिणपंथी पूंजीवादी-ज़मींदारी तत्वों के अधीन आने के कारण वस्तुपरक रूप के प्रतिक्रान्ति के साधन का काम किया।

आगे चलकर मज़दूर वर्ग के और उसकी राजनीतिक चेतना तथा संगठन के विकास के साथ-साथ क्रांतिकारी तथा जनवादी संघर्ष की सारी प्रवृत्तियां राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन समेत बहुत बड़े पैमाने पर विकसित हुईं। विभिन्न जातियों को लेकर बने बड़े-बड़े साम्राज्य ढह गये और छोटी जातियों ने, जो बड़ी ताक़तों के दावों का शिकार बनी हुई थीं, स्वतंत्र विकास का रास्ता अपनाया। उनमें से कुछ आज समाजवादी शिविर के सदस्य हैं।—पृ० ५७

[32] **स्लाव कांग्रेस**, जो प्राग में २ जून १८४८ को हुई, यह तथ्य प्रकाश में लायी कि आस्ट्रियाई हैप्सबर्ग साम्राज्य द्वारा उत्पीड़ित स्लाव जातियों के राष्ट्रीय आन्दोलन में दो प्रवृत्तियां थीं। कांग्रेस के कुछ प्रतिनिधियों ने, जो उग्रपंथी थे, जून १८४८ के प्राग विद्रोह में सक्रिय भाग लिया था। १६ जून को नरमपंथी उदारतावादी पक्ष ने कांग्रेस का अनिश्चित काल के लिए स्थगन घोषित किया।—पृ० ५९

[33] चार्टिस्टों ने **पीपुल्स चार्टर** स्वीकृत कराने के वास्ते ब्रिटिश संसद को अर्ज़ी देने के लिए १० अप्रैल १८४८ को लन्दन में एक प्रदर्शन करने का फ़ैसला

किया। सरकार ने इस प्रदर्शन पर पाबन्दी लगा दी तथा सैनिक और पुलिस को लन्दन बुला लिया। चार्टिस्ट नेताओं ने प्रदर्शन रद्द करने का निर्णय किया तथा प्रदर्शनकारियों को विसर्जित होने के लिए राज़ी कर लिया। प्रदर्शन की विफलता को प्रतिक्रियावादियों ने मज़दूरों पर प्रहार करने और चार्टिस्टों का दमन करने के लिए इस्तेमाल किया।—पृ० ६२

[34] **१६ अप्रैल १८४८** को पूंजीवादी राष्ट्रीय गार्डों ने पेरिस के मज़दूरों का शान्तिपूर्ण जुलूस रोक दिया। मज़दूर "श्रम के संगठन" तथा "इन्सान के हाथों इन्सान के शोषण की समाप्ति" के सम्बन्ध में अस्थायी सरकार को अर्ज़ी देना चाहते थे।—पृ० ३२

[35] **१५ मई १८४८** को एक जन-प्रदर्शन के दौरान पेरिस के मज़दूर तथा दस्तकार संविधान सभा के सदन में उस समय घुस गये जब उसका अधिवेशन चल रहा था, उन्होंने संविधान सभा भंग करने की घोषणा और एक क्रान्तिकारी सरकार की स्थापना की। परन्तु प्रदर्शनकारियों को राष्ट्रीय गार्डों तथा सैनिकों ने शीघ्र तितर-बितर कर दिया। ब्लांकी, बार्बेस, रास्पायल, अल्बेर तथा मज़दूरों के अन्य नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया।—पृ० ६२

[36] नेपल्स के राजा फ़र्दीनांद द्वितीय ने **१५ मई १८४८** को जन-विप्लव कुचल दिया, राष्ट्रीय गार्ड का विघटन कर दिया, संसद भंग कर दी तथा फ़रवरी १८४८ में किये गये सुधार ख़त्म कर दिये।—पृ० ६३

[37] यहां इशारा पेरिस के मज़दूरों के विद्रोह की ओर है जो २३ जून से लेकर २६ जून १८४८ तक चला। इसे फ़्रांस के पूंजीपति वर्ग ने बेरहमी से कुचल दिया।—पृ० ६३

[38] यहां इशारा फ़्रांस में १८४८ की फ़रवरी की पूंजीवादी क्रान्ति की ओर है।—पृ० ६४

[39] आस्ट्रिया सरकार द्वारा १ अप्रैल १८४८ को जारी किये गये **अस्थायी प्रेस क़ानूनों** में यह व्यवस्था की गयी कि किसी अख़बार का प्रकाशन शुरू करने

के अधिकार को स्वीकृति देने से पहले ज़मानत के तौर पर बड़ी रक़में वसूल की जायें। – पृ० ६७

[40] **२५ अप्रैल १८४८ के संविधान** ने ऐसी शर्तें लागू कीं जिनके अनुसार राइख़-स्टाग निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार एक निश्चित मूल्य की सम्पत्ति के स्वामियों को तथा एक निश्चित अवधि से स्थायी रूप में बसे लोगों को ही दिया गया, उसने दो सदनों – निचले सदन तथा सीनेट – की स्थापना की, प्रांतों में एस्टेटों के प्रतिनिधियों से बनी संस्थाओं को क़ायम किया और सम्राट को सदनों द्वारा अनुमोदित क़ानूनों को अस्वीकृत करने का अधिकार प्रदान किया। – पृ० ६७

[41] **८ मई १८४८ के चुनाव क़ानून** ने मज़दूरों, दिहाड़ीदारों तथा घरेलू नौकरों को चुनाव के अधिकारों से वंचित कर दिया। कुछ सीनेटरों को सम्राट ने नियुक्त किया, अन्य सबसे ज़्यादा टैक्स देनेवाले लोगों के बीच से चुने गये। उनका चुनाव दो चरणों में होता था। निचले सदन के चुनाव भी दो चरणों में होते थे। – पृ० ६७

[12] **अकादमिक लीजन** – एक नागरिक सैनिकीकृत संगठन जो वियेना विश्वविद्यालय के उग्र विचार वाले छात्रों को लेकर बना था। – पृ० ६७

[13] यहां इशारा «*Oesterreichische Kaiserische Wiener Zeitung*» ('आस्ट्रियाई शाही वियेना गज़ेट') की ओर है। यह सरकारी अख़बार था और उसका प्रकाशन इस नाम से १७८० में आरम्भ हुआ था। – पृ० ६९

[1] **फ़्री ट्रेडर्स** – मुक्त व्यापार तथा अर्थतंत्र में राज्य की ग़ैरदख़लन्दाज़ी के समर्थक। १९ वीं शताब्दी के पांचवें तथा छठे दशकों में उनका एक विशेष राजनीतिक संगठन था जो आगे चलकर लिबरल पार्टी में शामिल हो गया। – पृ० ७७

[2] १३ अगस्त १८४९ को ग्योरगे की कमान में हंगेरियाई सेना ने विलागोश में रूसी ज़ार की सेना के सामने आत्मसमर्पण कर दिया जो हंगरी में विद्रोह कुचलने के लिए भेजी गयी थी। – पृ० ७७

[46] *«Neue Rheinische Zeitung. Organ die Demokratie»* ('नया राइनी समाचारपत्र। जनवाद का मुखपत्र') – दैनिक समाचारपत्र जो कोलोन से १ जून १८४८ से १९ मई १८४९ तक निकलता रहा। मार्क्स इसके प्रधान संपादक थे और एंगेल्स संपादकमंडल के सदस्य। – पृ० ७७

[47] **लंकास्ट्रियन स्कूल** – सम्पत्तिहीन लोगों के बच्चों के लिए प्राथमिक स्कूल जहां एक पारस्परिक शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। ये स्कूल अंग्रेज शिक्षाशास्त्री जोसेफ़ लंकास्टर के (१७७८–१८३१) के नाम से प्रसिद्ध हुए। – पृ० ७९

[48] १६३६ में जान हाम्पडेन ने, जो आगे चलकर १७ वीं शताब्दी की आंग्ल पूंजीवादी क्रान्ति के एक प्रमुख नेता बन गये थे, वह "जहाज़-धन" टैक्स देने से इन्कार दिया जिसे हाउस आफ़ कामन्स ने अनुमोदित नहीं किया था। हाम्पडेन पर मुक़दमा चलाया गया जिसने आंग्ल सोसायटी में राजतंत्रीय निरंकुशतावाद के प्रति विरोध-भावना को उत्तेजित किया।

आठवें दशक के शुरू में अमरीकियों ने ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी किये गये मुद्रांक-शुल्क (स्टाम्प-ड्यूटी) देने से इन्कार कर दिया तथा अंग्रेज़ों के माल का बायकाट शुरू कर दिया। ये दोनों चीज़ें अमरीकी स्वातंत्र्य-युद्ध (१७७५–१७८३) की भूमिका थीं। – पृ० ८३

[49] यहां संकेत **वांदेय** (फ़्रांस का एक पश्चिमी प्रान्त) में प्रतिक्रान्तिकारी विद्रोह की ओर है जिसे फ़्रांसीसी राजतंत्रवादियों ने १७९३ में शुरू किया था। उन्होंने इस प्रान्त के पिछड़े हुए किसानों को फ़्रांसीसी क्रान्ति के विरुद्ध संघर्ष में शामिल किया। – पृ० ८९

[50] **पूर्वी रोमन साम्राज्य** – दास-स्वामी रोमन साम्राज्य से पृथक हुआ राज्य। उसकी राजधानी कुस्तुनतुनिया थी। आगे चलकर इसने बैज़न्तिया नाम ग्रहण किया। यह १४५३ तक टिका रहा। – पृ० ९४

[51] **"लघु जर्मनी"** – प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी को – आस्ट्रिया को छोड़कर – एक राज्य में एकीकृत करने की योजना। – पृ० ९४

[52] प्रशियाई पूंजीवादी मंत्रियों की पहल पर २१ मार्च १८४८ को बर्लिन में एक तड़कीला-भड़कीला शाही जुलूस निकाला गया। इसमें जर्मनी के एकीकरण के

पक्ष में नारे बुलन्द किये गये। फ़ेडरिक-विल्हेल्म चतुर्थ अपने बाज़ू पर एकीकृत जर्मनी का प्रतीक – काला-लाल-सुनहरा बिल्ला बांधे हुए जुलूस के साथ सड़कों पर से गुज़रा और उसने देशभक्ति की मिथ्या भावनाओं से परिपूर्ण भाषण किये। – पृ० ९६

[53] यहां इशारा तथाकथित शाही संविधान का संशोधन करने के उद्देश्य से बुलायी गयी कांफ़्रेंस की ओर है। उसके फलस्वरूप २६ मई १८४९ को प्रशा, सैक्सनी तथा हैनोवर के राजाओं के बीच एक समझौता ("तीन राजाओं का संघ") सम्पन्न हुआ। यह "संघ" प्रशियाई राजतंत्र द्वारा जर्मनी में अपना नेतृत्व स्थापित करने का प्रयास था क्योंकि प्रशा का राजा शाही रीजेंट बनने जा रहा था। परन्तु आस्ट्रिया तथा रूस के दबाव के कारण प्रशा को नवम्बर १८५० में "संघ" को तिलांजलि देने के लिए बाधित किया गया। – पृ० ९९

[54] फ़ैंकफ़ुर्ट-आन-मेन के **सेंट पाल चर्च** में १८ मई १८४८ से लेकर ३० मई १८४९ तक अखिल जर्मन राष्ट्रीय सभा के अधिवेशन होते रहे। – पृ० ११२

[55] इस लेखमाला का अन्तिम लेख *«The New-York Daily Tribune»* में प्रकाशित नहीं हुआ। १८९६ के अंग्रेज़ी संस्करण (जिसे मार्क्स की पुत्री एलिओनोर मार्क्स एवेलिंग ने तैयार किया था) तथा आगे के अनेक संस्करणों में एंगेल्स के 'कोलोन में हाल का मुक़दमा' लेख को, जो इस लेखमाला का भाग नहीं था, अन्तिम लेख के रूप में जोड़ दिया गया। – पृ० ११६

[56] **कोलोन में मुक़दमा** (४ अक्तूबर से १२ नवम्बर १८५२ तक) – कम्युनिस्ट लीग के ११ सदस्यों पर प्रशा की सरकार द्वारा चलाया गया झूठा मुक़दमा। जाली दस्तावेज़ों और झूठी गवाही के आधार पर इन लोगों पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया तथा सात अभियुक्तों को तीन वर्ष से लेकर छः वर्ष तक क़िले में क़ैद रखे जाने की सज़ा दी गयी। – पृ० ११७

[57] **कम्युनिस्ट पार्टी** – सर्वहारा का प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट संगठन जिसे मार्क्स तथा एंगेल्स ने स्थापित किया था। यह १८४७ से १८५२ तक क़ायम रहा। – पृ० ११८

[58] सितम्बर १८५१ में फ़्रांस में विलिख़-शापर गुट के, जो सितम्बर १८५० में कम्युनिस्ट लीग से पृथक हो गया था, स्थानीय विभागों के अनेक सदस्यों को गिरफ़्तार कर लिया गया। इस गुट की निम्नपूंजीवादी षड्यंत्रकारी कार्यनीति ने फ़्रांसीसी तथा प्रशियाई पुलिस को तथाकथित जर्मन-फ़्रांसीसी षड्यंत्र केस रचने में मदद दी। पुलिस ने इस काम में अपने एक दुरुत्साहक शेर्वाल की मदद ली जो पेरिस के एक विभाग का नेता था। गिरफ़्तार लोगों को फ़रवरी १८५२ में राज्य-पर्युत्क्षेपण का प्रयत्न करने के आरोप में सज़ा दी गयी। प्रशियाई पुलिस ने कम्युनिस्ट लीग को, जिसका नेतृत्व मार्क्स तथा एंगेल्स कर रहे थे, जर्मन-फ़्रांसीसी षड्यंत्र केस में फंसाने का प्रयत्न किया परन्तु वह पूर्णतः असफल रही।—पृ० १२०

[59] **वान्दोम स्तम्भ** १८०६ और १८१० के बीच पेरिस में नेपोलियन की जीतों के स्मारक के रूप में खड़ा किया गया था। इसे शत्रु सेनाओं से छीनी तोपों के कांसे को गला कर ढाला गया था, और उसके शीर्ष पर नेपोलियन की मूर्त्ति स्थापित की गयी थी। १६ मई १८७१ को पेरिस कम्यून की आज्ञा से वान्दोम स्तम्भ गिरा दिया गया, परंतु १८७५ में उसे पुनःस्थापित किया गया था।—पृ० १२६

[60] फ़्रांस में **२ दिसंबर १८५१** को लूई बोनापार्त तथा उसके अनुयायियों ने प्रतिक्रांतिकारी राज्य-पर्युत्क्षेपण कर सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लिया।—पृ० १२८

[61] **रेनासांस (पुनर्जागृति)**—पश्चिमी तथा मध्य यूरोपीय राज्यों में पूंजीवादी सम्बन्धों के जन्म के फलस्वरूप होनेवाले सांस्कृतिक तथा विचारधारात्मक विकास का काल। यह काल १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर १६ वीं शताब्दी तक चला। इस युग में साहित्य, कला तथा विज्ञान का ज़ोरदार विकास हुआ तथा पुराने युगों की संस्कृति में गहरी दिलचस्पी ली जाने लगी।—पृ० १२८

[62] **द्वितीय फ़्रांसीसी जनतंत्र** फ़्रांस में १८४८ से १८५२ तक क़ायम रहा।—पृ० १२६

[63] **ब्रूमेर**—फ़्रांस के जनतंत्रीय पंचांग का एक महीना। अठारहवीं ब्रूमेर (९ नवंबर) १७९९ को नेपोलियन बोनापार्त ने राज्य-पर्युत्क्षेपण किया और फ़ौजी तानाशाही

क़ायम की। 'अठारहवीं ब्रूमेर के दूसरे संस्करण' से मार्क्स का अभिप्राय २ दिसम्बर १८५१ के राज्य-पर्युत्क्षेपण से है।—पृ० १३० ।

[64] पूर्वविधान (ओल्ड टेस्टामेंट)—बाइबल का बड़ा भाग जिसमें मूसा की पांच पुस्तकें, पैगम्बरों की पुस्तकें तथा धर्म-निर्देश शामिल हैं।—पृ० १३२

[65] **बेडलम**—लन्दन का एक पागलख़ाना।—पृ० १३२

[66] १० दिसंबर १८४८ को लूई बोनापार्त को सार्वजनिक मतदान के फलस्वरूप फ़ांसीसी जनतंत्र का राष्ट्रपति चुना गया।—पृ० १३३

[67] यह फ़िक़रा बाइबल की उस पुराण-कथा से लिया गया है, जिसके अनुसार मिस्र से इस्राइली निर्गमन के समय यात्रा की कठिनाइयों और भूख से तंग आकर दुर्बल हृदय लोग क़ैद में बिठाये गये दिनों की आरज़ू करने लगे, जब उन्हें कम से कम पेट भर खाना तो मिलता था।—पृ० १३३

[68] Hic Rhodus, hic salta! (यहां रोडस, कूदो यहां!)—ये शब्द ईसप की एक कथा से उद्धृत किये गये हैं। इस कथा में एक गपोड़िये का ज़िक्र है जिसने दावा किया कि उसने एक बार रोडस में ज़बर्दस्त छलांग लगायी है, और इसके सबूत में उसने कहा कि इसके कुछ गवाह भी हैं। उसे उत्तर मिला: "अगर यह सच है तो गवाहों को पेश करने की क्या जरूरत है—यहां रोडस, कूदो यहां!" अर्थात् "यहीं दिखाओ, यहीं मुख्य बात है।"

"यहां गुलाब, नाचो यहां!" उपरोक्त उद्धरण का यह पदान्वय (यूनानी भाषा में रोडस शब्द का अर्थ गुलाब भी है) हेगेल द्वारा अपनी रचना «*Grund linien der Philosophie des Rechts*» ('न्याय-दर्शन के सिद्धांत') की भूमिका में व्यवहृत किया गया है।—पृ० १३५

[69] १८४८ के फ़ांसीसी संविधान के अनुसार राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव हर चौथे साल मई महीने के दूसरे रविवार को होना था। मई १८५२ में लूई बोनापार्त का राष्ट्रपतित्व-काल समाप्त होता था।—पृ० १३६

[70] **किलिआस्ट** (सहस्रवादी; यूनानी भाषा में "किलिआस" का अर्थ है सहस्र)—एक रहस्यवादी धार्मिक पंथ के प्रचारक। इस पंथ के अनुसार ईसा दूसरी बार

अवतरित होंगे और पृथ्वी पर सहस्र वर्षों का स्वर्ण-युग स्थापित होगा, जब न्याय, सार्विक समानता तथा समृद्धि का बोलबाला होगा।–पृ० १३५

[71] **कैपिटोल** – रोम की एक पहाड़ी, जिस पर दुर्ग और जुपिटर, यूनो आदि के मंदिर बने थे। कहते हैं कि ३९० ई० पू० में गालों के आक्रमण के समय रोम अगर बच सका तो इसीलिए कि यूनो के मंदिर की बत्तखों की कुड़-कुड़ ने कैपिटोल के पहरेदारों को जगा दिया था।–पृ० १३६

[72] यहां इशारा तथाकथित "अफ़ीकियों" अथवा "अल्जीरियाइयों" की ओर है – यह नाम उन फ़्रांसीसी जनरलों तथा अफ़सरों को दिया गया जिन्होंने अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़नेवाले अल्जीरियाई क़बीलों के विरुद्ध उपनिवेशी युद्धों को मुख्य जीवन-वृति बना ली थी (कैवेन्याक, लामारिसियेर, बीदो)।–पृ० १३६

[73] **जुलाई राजतंत्र** – लूई फ़िलिप का शासन-काल (१८३०–१८४८)। यह नाम १८३० की जुलाई क्रांति के कारण पड़ा।–पृ० १३८

[74] **राजवंशीय विरोध-पक्ष** – जुलाई राजतंत्र के दौरान फ़्रांसीसी प्रतिनिधि सदन में एक दल जिसका नेतृत्व ओ० बारो ने किया। इस दल के प्रतिनिधियों ने उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्र में पूंजीपति वर्ग के उदारतावादी क्षेत्रों की भावनाएं प्रकट करते हुए सामान्य निर्वाचन-सुधार की वकालत की। उनका ख़्याल था कि इससे क्रांति नहीं होने पायेगी।–पृ० १३८

[75] रोमन इतिहासकार यूसेबियस के अनुसार, सन् ३१२ ई० में सम्राट कान्सटैन्टाइन प्रथम ने अपने प्रतिद्वंद्वी पर विजय के पूर्व आकाश में सलीब का निशान देखा, जिस पर ये शब्द अंकित थे – "यह सलीब तुमको जितायेगा!" – पृ० १४०

[76] ग्रीक पुजारिन तथा भविष्यवक्ता पिथिया देल्फ़ास के अपोलो मन्दिर में एक विशेष तिपाई पर खड़े होकर भविष्यवाणियां किया करती थी।–पृ० १४०

[77] **तुलरी** – फ़्रांसीसी राजाओं का आवास।–पृ० १४१

[78] «*Le National*» – फ़्रांसीसी दैनिक, नरमपंथी पूंजीवादी जनतंत्रवादियों का मुखपत्र जो पेरिस में १८३० से १८५१ तक प्रकाशित होता रहा।–पृ० १४१

[79] «*Journal des Débats politiques et littéraires*» ('राजनीतिक तथा साहित्यिक वाद-विवाद का पत्र')—पेरिस में १७८९ में स्थापित एक फ़्रांसीसी दैनिक। जुलाई राजतंत्र के दौरान वह सरकार का मुखपत्र था, १८४८ की क्रान्ति के दौरान वह प्रतिक्रान्तिकारी पूंजीपति वर्ग का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता रहा।—पृ० १४१

[80] फ़्रांस में पुराना जनतंत्र १७९२ से १८०४ तक क़ायम रहा।—पृ० १४२

[81] **वियेना संधियां**—वे संधियां जिन्हें नेपोलियन के युद्धों में भाग लेनेवाले देशों ने वियेना में मई और जून १८१५ में संपन्न किया। (देखें टिप्पणी ११)।—पृ० १४२

[82] फ़्रांस में १८३० की पूंजीवादी क्रांति के बाद जो **संविधानी चार्टर** स्वीकृत किया गया, वही जुलाई राजतंत्र का बुनियादी क़ानून था। चार्टर ने राजसत्ता पर कुछ प्रतिबंध लगा दिये।—पृ० १४३

[83] **क्लीशी**—१८२६ से १८६७ तक पेरिस में क़र्ज़दारों का क़ैदख़ाना।—पृ० १४६

[84] **तिरंगा झंडा** (नीला-सफ़ेद-लाल)—फ़्रांसीसी जनतंत्र का राष्ट्रध्वज।—पृ० १४८

[85] **प्रीटोरियन**—प्राचीन रोम में सेनापति अथवा सम्राट के अंगरक्षक जिन्हें अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। ये लोग आंतरिक उपद्रवों में बराबर हिस्सा लेते थे और अक्सर अपने सरपरस्तों को गद्दी पर बैठाते थे। यहां इशारा १० दिसम्बर समाज की ओर है (देखें पृष्ठ १८६–१८९)।—पृ० १४९

[86] मई से लेकर जुलाई १८४९ तक आस्ट्रिया के साथ मिलकर नेपल्स राज्य ने रोम के जनतंत्र के ख़िलाफ़ हस्तक्षेप में भाग लिया।—पृ० १४९

[87] यहां मार्क्स का इशारा लूई बोनापार्त के जीवन की निम्नलिखित घटनाओं की ओर है: १८३२ में लूई बोनापार्त स्विस नागरिक बन गया; १८४८ में ब्रिटेन में अपने प्रवास-काल में वह स्वेच्छा से विशेष पुलिस दल में (ब्रिटेन में पुलिस

की रिज़र्व टुकड़ियां असैनिक नागरिकों को लेकर बनाई जाती थीं) शामिल हो गया।—पृ० १४६

88 **फ़्रांस में पुनःस्थापना**—१८१४—१८३० में बूर्बों राजवंश का द्वितीय शासन-काल। १८वीं शताब्दी के अंत की फ़्रांसीसी क्रान्ति ने बूर्बों का तख़्ता उलट दिया था।—पृ० १५०

89 **आर्लियानिस्ट**—आर्लियन राजवंश के समर्थक। यह राजवंश बूर्बों राजवंश की एक छोटी शाखा था, जो १८३० और १८४८ के बीच सत्तारूढ़ था।—पृ० १५०

90 **अमन की पार्टी**—अनुदारपंथी बड़े पूंजीपतियों की इस पार्टी की १८४८ में स्थापना हुई थी। यह आर्लियानिस्टों तथा लेजिटिमिस्टों की मिली-जुली पार्टी थी। १८४९ से लेकर १८५१ तक द्वितीय जनतंत्र की विधान सभा में प्रमुख पद उसके पास रहे।—पृ० १५०

91 **कालीगुला**—रोमन सम्राट (सन् ३७—४१ ई०) जिसे प्रीटोरियन गार्ड ने गद्दी पर बैठाया था।—पृ० १५३

92 *«Le Moniteur universal»* ('सार्वत्रिक उद्घोषक')—फ़्रांसीसी दैनिक, सरकारी मुखपत्र जो पेरिस में १७८९ से १९०१ तक प्रकाशित होता रहा। वह सरकारी आज्ञप्तियां, संसदीय रिपोर्टें तथा दूसरी सरकारी सामग्री प्रकाशित करता था।—पृ० १५४

93 विधान सभा के **केस्टर्स**—यह नाम (प्राचीन रोम के केस्टरों के दृष्टांत का अनुसरण करते हुए) ऐसे प्रतिनिधियों को दिया जाता था जो विधान सभा द्वारा आर्थिक तथा वित्तीय मामलों की देखरेख करने तथा सभा की सुरक्षा करने के लिए अधिकृत होते थे। यहां इशारा उस विधेयक की ओर है जिसे ६ नवंबर १८५१ को लेफ़्लो, बाज़ और पाना नामक राजतंत्रवादी केस्टरों ने पेश किया था और जिसके द्वारा राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष को सीधे-सीधे सेना को बुलाने का अधिकार प्राप्त होता था। सभा ने गर्मागर्म बहस के बाद १७ नवम्बर को इस विधेयक को अस्वीकार कर दिया।—पृ० १५४

[94] **संविधानवादी** – संवैधानिक राजतंत्र के समर्थक, शाही सत्ता से घनिष्ठ रूप से संबद्ध बड़े पूंजीपतियों और उदारतावादी सामन्तों के प्रतिनिधि।

जीरांदों – १८ वीं शताब्दी के अन्त में फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रान्ति के दौरान पूंजीपतियों का एक राजनीतिक दल। इस दल के अनुयायी नरमपंथी पूंजीपतियों के हित व्यक्त करते थे, उन्होंने क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति के बीच ढुलमुल नीति अपनायी, राजतंत्र के साथ सौदेबाज़ी करने का प्रयत्न किया। उन्हें यह नाम जीरांद प्रांत से मिला जिसका वे विधान सभा तथा कन्वेंशन में प्रतिनिधित्व करते थे।

जैकोबिन – १८ वीं शताब्दी के अंत में फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रान्ति के दौरान पूंजीपति वर्ग का एक राजनीतिक दल, फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग के वामपंथ के प्रतिनिधि जो सामन्तवाद तथा निरंकुशतावाद का उन्मूलन करने की आवश्यकता की दृढ़तापूर्वक तथा अडिगतापूर्वक वकालत करते रहे। – पृ० १५५

[95] देखें टिप्पणी ३४। – पृ० १५५

[96] **फ़्रान्द** – फ़्रांस के अभिजात वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग का निरंकुश सत्ता के विरुद्ध एक आंदोलन, जो १६४८ से १६५३ के बीच सक्रिय रहा। इस आंदोलन के अभिजातवर्गीय नेता अपने अनुचरों तथा विदेशी सैनिकों के समर्थन पर निर्भर रहते थे और अपने उद्देश्यों में किसानों और शहरियों के विद्रोहों का इस्तेमाल करते थे। – पृ० १५७

[97] **फ़्रीजियन टोपी** – प्राचीन फ़्रीजियाइयों (एशिया माइनर के निवासी) के सिर का परिधान। उसका रंग लाल था। आगे चलकर वही जैकोबिन टोपी के लिए नमूना बना। – पृ० १५७

[98] **लिली** – बूर्बों राजवंश का कुलचिह्न। – पृ० १५९

[99] **एम्स** – पश्चिमी जर्मनी का एक नगर जहां काउंट शाम्बोर का एक स्थायी आवास था। काउंट शाम्बोर बूर्बों राजवंश की मुख्य शाखा की ओर से फ़्रांसीसी सिंहासन का दावेदार था।

क्लेरमां – लन्दन का उपनगर जहां १८४८ की फ़रवरी क्रान्ति के बाद फ़्रांस से पलायन करने पर लूई फ़िलिप ठहरा रहा। – पृ० १६१

[100] ७ मार्च से ३ अप्रैल १८४९ तक बूर्जे में उन लोगों पर मुक़दमा चला जिन्होंने १५ मई १८४८ की घटनाओं में भाग लिया था (देखें टिप्पणी ३५)। बार्बेस को आजीवन क़ैद तथा ब्लांकी को दस वर्ष की क़ैद मिली और दूसरे लोगों को अलग-अलग समय तक क़ैद मिली तथा उपनिवेशों को निर्वासित कर दिया गया। –पृ० १६४

[101] **जेरिको** – बाइबल के अनुसार फ़िलस्तीन में प्रवेश के बाद यहूदियों द्वारा विजित पहला शहर। हमलावरों की नरसिंगों की ध्वनि से ही शहर की दीवारें ढह गयीं। –पृ० १६५

[102] यहां इशारा लूई बोनापार्त की योजनाओं की ओर है। उसे आशा थी कि पोप पियस नवें उसे फ़ांस के राजसिंहासन पर बैठायेंगे, फ़ांस का सम्राट बनायेंगे। बाइबल के अनुसार इस्राइल के राजा डेविड का राज्याभिषेक सैमुएल नबी के हाथों संपन्न हुआ था। –पृ० १६९

[103] २ दिसम्बर १८०५ को मुराविया में **आस्टरलित्स** की लड़ाई में रूसी-आस्ट्रियाई सेनाओं पर नेपोलियन प्रथम की विजय हुई थी। –पृ० १६९

[104] इशारा लूई बोनापार्त की पुस्तक «*Des idées napoléoniennes*» ('नेपोलियन के विचार') की ओर है, जो १८३९ में पेरिस में प्रकाशित हुई थी। –पृ० १७५

[105] **बुर्गग्राफ़** नाम उन १७ प्रमुख आर्लियानिस्टों तथा लेजिटिमिस्टों को दिया गया था जो एक नये चुनाव क़ानून का मसविदा तैयार करने के लिए विधान सभा के आयोग के सदस्य थे। उन्हें यह नाम, जो विक्तोर ह्यूगो के इसी शीर्षक के ऐतिहासिक नाटक से लिया गया था, सत्ता पर उनके दावों तथा उनकी प्रतिक्रियावादी आकांक्षाओं के कारण दिया गया था। मध्ययुगीन जर्मनी में नगरों और ज़िलों के शासक जिन्हें सम्राट नियुक्त करता था बुर्गग्राफ़ कहलाते थे। –पृ० १८०

[106] जुलाई १८५० में विधान सभा द्वारा स्वीकृत प्रेस क़ानून ने समाचारपत्र प्रकाशकों द्वारा ज़मानत के रूप में दी जानेवाली रक़म बढ़ा दी थी और पैम्फ़लेटों के प्रकाशन पर भी स्टैम्प शुल्क लागू कर दिया था। –पृ० १८२

107 «*La Presse*» ('प्रेस')—पेरिस में १८३६ से निकलनेवाला दैनिक; १८४८–१८४९ में पूंजीवादी बोनापार्तवादियों का और आगे चलकर बोनापार्तवादियों का पत्र बन गया।—पृ० १८२

108 Lazzaroni—इटली में वर्गच्युत होनेवाले, लम्पट सर्वहारा तत्त्वों को दिया गया नाम; प्रतिक्रियावादी-राजतंत्रवादी क्षेत्रों ने उदारपंथी तथा जनवादी आन्दोलनों के विरुद्ध संघर्ष में उनको बार-बार इस्तेमाल किया।—पृ० १८६

109 यहां इशारा लूई बोनापार्त के जीवन की निम्नलिखित दो घटनाओं की ओर है: ३० अक्तूबर १८३६ को तोपख़ाने की दो रेजीमेंटों की सहायता से उसने स्ट्रासबुर्ग में बग़ावत भड़काने की कोशिश की, मगर बाग़ियों को निहत्था कर दिया गया और लूई बोनापार्त को गिरफ़्तार करके अमरीका निर्वासित कर दिया गया। ६ अगस्त १८४० को उसने फिर बूलोन की स्थानीय गैरिसन के सिपाहियों में बग़ावत भड़काने की कोशिश की। यह कोशिश भी नाकामयाब रही। उसे आजीवन क़ैद की सजा दी गयी, परंतु १८४६ में वह भागकर इंगलैंड चला गया।—पृ० १८७

110 **एलिज़े के पत्र**—बोनापार्ती प्रवृत्ति रखनेवाले समाचारपत्र जिन्हें राष्ट्रपतित्व काल में लूई बोनापार्त के निवास स्थान, एलिज़े प्रासाद, के नाम से पत्र पुकारा जाता था।—पृ० १९०

111 देखें टिप्पणी ८३

112 अपनी श्लेषोक्ति के लिए मार्क्स ने यहां शिलर की कविता 'आनन्द-गीत' की एक पंक्ति उद्धृत की है; कवि ने इस कविता में आनन्द का स्तुतिगान करते हुए उसे "एलीज़ियम की पुत्री" कहा है। क्लासिकीय पुराण-कथाओं में एलीज़ियम स्वर्ग का ही नाम है। पेरिस के जिस राजमार्ग पर लूई बोनापार्त का निवास स्थान था, उसे चैम्पस एलिज़े कहते थे।—पृ० १९६

113 फ़्रांस में १८वीं शताब्दी के अंत की पूंजीवादी क्रांति के पहले पार्लमेंटें ही सर्वोच्च न्यायांग थीं; वे शाही आज्ञप्तियों की रजिस्ट्री करती थीं और उन्हें प्रतिवाद

का, अर्थात् देश के दस्तूरों और क़ानूनों का उल्लंघन करनेवाली आज्ञप्तियों का प्रतिवाद करने का अधिकार प्राप्त था।–पृ० २००

[114] **बेल-ईल** – बिसके की खाड़ी में एक द्वीप, जहां राजनीतिक बंदियों को नज़रबंद रखा जाता था।–पृ० २०३

[115] *«L'Assemblée Nationale»* ('राष्ट्रीय सभा') – राजतंत्रवादी-लेजिटिमिस्ट रुझान वाला एक फ़्रांसीसी दैनिक पत्र; वह पेरिस में १८४८ से १८५७ तक छपता रहा। १८४८ तथा १८५४ के बीच वह दो राजवंशवादी पार्टियों – लेजिटिमिस्ट तथा आर्लियानिस्ट – के परस्पर विलय का समर्थन करता रहा।–पृ० २०९

[116] १९वीं शताब्दी के छठे दशक में फ़्रांसीसी राजसिंहासन का लेजिटिमिस्ट दावेदार काउंट शाम्बोर वेनिस में रहा करता था।–पृ० २०९

[117] यहां इशारा पुन:स्थापना काल में लेजिटिमिस्ट के शिविर में मतभेद की ओर है। लूई अठारहवें के समर्थक विलेल का मत था कि प्रतिक्रियावादी क़दम को अधिक सावधानी से उठाना चाहिए जबकि काउंट द'आर्तुआ – १८२४ से सम्राट शार्ल दसवें – के अनुयायी पोलिन्याक का मत था कि क्रांतिपूर्व की शासन व्यवस्था बेशर्त पुन:स्थापित की जाये।

पेरिस में तुलरी प्रासाद लूई अठारहवें का निवास स्थान था; पुन:स्थापना काल में काउंट द'आर्तुआ इस प्रासाद के एक खंड, **पविलियन मार्सां** में रहा करता था।–पृ० २११

[118] *«The Economist»* – ब्रिटेन का एक आर्थिक तथा राजनीतिक साप्ताहिक, औद्योगिक पूंजीपति वर्ग का मुखपत्र, जो १८४३ से लन्दन में बराबर प्रकाशित होता रहा है।–पृ० २१४

[119] **पहली अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक-औद्योगिक प्रदर्शनी** लन्दन में मई से अक्तूबर १८५४ तक हुई थी।–पृ० २१८

[120] **जाकेरी** – सन् १३५८ में फ़्रांस में किसान आन्दोलन; स्वत:स्फूर्त कृषक आन्दोलनों का आम नाम।–पृ० २२०

[121] *«Le Messager de l'Assemblée»* ('सभा का पर्चा') – फ़्रांसीसी बोनापार्ती दैनिक, जो पेरिस में १६ फ़रवरी से २ दिसंबर १८५४ तक प्रकाशित होता रहा। – पृ० २२१

[122] **दीर्घ पार्लमेंट** (१६४०–१६५३) – पूंजीवादी क्रांति के भड़कने पर राजा चार्ल्स प्रथम द्वारा बुलायी गयी इंगलैंड की पार्लमेंट, जो उसका विधाननिकाय बन गयी। १६४६ में पार्लमेंट ने चार्ल्स प्रथम को मृत्यु-दंड दिया और जनतंत्र की घोषणा की। १६५३ में क्रामवेल ने उसे भंग कर दिया। – पृ० २२५

[123] **सेवेन** – फ़्रांस में एक पहाड़ी इलाक़ा जहां १७०२–१७०५ में किसानों का विद्रोह चलता रहा। **वांदेय** के बारे में टिप्पणी ४६ देखें। – पृ० २३५

[124] **कोन्स्टैन्स की चर्च परिषद्** (१४१४–१४१८) इसलिए बुलायी गयी थी कि धर्म सुधार आंदोलन के दौरान कैथोलिक चर्च की कमज़ोर पड़ी स्थिति मज़बूत की जा सके। – पृ० २४१

[125] देखें टिप्पणी २०

[126] यहां इशारा फ़्रांस में फ़िलिप आर्लियां की रीजेंसी की ओर है, जो लूई पंद्रहवें के बाल्य काल में १७१५ से १७२३ तक क़ायम रही। – पृ० २४४

[127] **त्रियेर का पवित्र परिधान** – कहा जाता है कि यह वह वस्त्र था जो ईसा मसीह ने सलीब पर टंगने के समय पहन रखा था, जिसे पश्चिमी जर्मनी के त्रियेर के गिरजाघर में प्रदर्शित किया गया था। – पृ० २४५

[128] **हैप्टार्की** (सात राजाओं का शासन) – यह नाम आंग्ल इतिहास में आरम्भिक मध्ययुगीन इंगलैंड की राजनीतिक प्रणाली को दिया गया जब देश आंग्ल-सैक्सन राज्यों में बंटा हुआ था (६–८ शताब्दियां)। मार्क्स इस शब्द को मुसलमानों द्वारा दक्खिन पर विजय से पूर्व उसका सामन्तों द्वारा किये गये विभाजन पर लागू करते हैं। – पृ० २४६

[129] G. Campbell. *«Modern India: a Sketch of the System of Civil Government»*, London, 1852, p. 59-60. —पृ० २५८

[130] मार्क्स यहां अ० द० साल्तिकोव की पुस्तक *«Lettres sur l'Inde»* ('भारत की चिट्ठियां'), पेरिस, १८४८, पृष्ठ ६१, को उद्धृत कर रहे हैं। —पृ० २५९

[131] *«The People's Paper»* — लन्दन में मई १८५२ से जून १८५८ तक प्रकाशित होनेवाला चार्टिस्टों का साप्ताहिक पत्र। अक्तूबर १८५२ से दिसम्बर १८५६ तक मार्क्स तथा एंगेल्स इस पत्र के लिए लिखते रहे तथा सम्पादकीय कार्य में भी हाथ बंटाते रहे। जून १८५८ से पूंजीवादी व्यवसायियों ने उसे हथिया लिया। —पृ० २६२

[132] मार्क्स की पुस्तक '**राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास**' मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के विकास की एक महत्त्वपूर्ण मंज़िल रही है। इसे लिखना शुरू करने से पहले मार्क्स ने पन्द्रह वर्षों तक अनुसंधान कार्य किया, और इस सिलसिले में प्रचुर साहित्य का अध्ययन किया तथा अपने आर्थिक सिद्धान्त का आधार तैयार किया। मार्क्स ने अपने अन्वेषण के निष्कर्षों को अर्थशास्त्र के एक वृहत् ग्रंथ में सूत्रबद्ध करने की योजना बनायी थी। अगस्त तथा सितंबर १८५७ में उन्होंने अपनी सामग्री को व्यवस्थित रूप देना और अपनी कृति का पहला कच्चा मसविदा तैयार करना शुरू किया। अगले महीनों में मार्क्स ने एक विशद योजना बनायी और अपनी भावी कृति को कई खंडों में, पृथक् प्रकाशनों के रूप में निकालने का निश्चय किया। बर्लिन के एक प्रकाशक फ़्रांज़ डुंकेर के साथ प्रारंभिक इक़रारनामा कर लेने के बाद मार्क्स ने पहले भाग को तैयार करना आरंभ किया। यह भाग जून १८५९ में प्रकाशित हुआ।

मार्क्स का इरादा पहले भाग के प्रकाशन के तुरंत बाद दूसरा भाग प्रकाशित करने का था, जिसमें पूंजी की समस्याओं की विवेचना की जानी थी। परंतु इस विषय के अगले विस्तृत अध्ययन ने मार्क्स को अपनी मूल योजना बदलने के लिए प्रवृत्त किया। उन्होंने जिस लेखमाला की योजना बनायी थी उसके स्थान पर 'पूंजी' लिख डाली, जिसमें उन्होंने 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास' के मुख्य विचारों को भी संशोधित रूप में प्रस्तुत किया। —पृ० २६५

[133] यहां इशारा उस अपूर्ण 'भूमिका' की ओर है जिसे मार्क्स ने अर्थशास्त्र के अपने वृहत् ग्रन्थ के लिए लिखने का विचार किया था।—पृ० २६५

[134] *«Allgemeine Zeitung»* ('सार्वजनिक समाचारपत्र') – जर्मन प्रतिक्रियावादी दैनिक समाचारपत्र, जो १७९८ से प्रकाशित होना शुरू हुआ तथा १८१० और १८८२ के बीच आग्सबर्ग में छपता रहा। १८४२ में उसमें एक लेख छपा, जिसमें कल्पनावादी कम्युनिज़्म तथा समाजवाद के विचारों को विकृत किया गया था। मार्क्स ने अपने लेख, *«Der Kommunismus und die Augsburger Allgemeine Zeitung»* ('कम्युनिज़्म तथा आग्सबर्ग की *«Allgemeine Zeitung»*, में उसकी बखिया उधेड़ कर रख दी।—पृ० २६६

[135] *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* ('जर्मन-फ़्रांसीसी वार्षिकी') – कार्ल मार्क्स तथा आर्नोल्ड रूगे द्वारा सम्पादित तथा पेरिस में जर्मन भाषा में प्रकाशित पत्रिका। उसमें कार्ल मार्क्स के दो लेख – 'यहूदी प्रश्न के सम्बन्ध में' तथा 'हेगेल के न्यायदर्शन की समीक्षा का एक प्रयास। भूमिका' तथा फ़्रेडरिक एंगेल्स के दो लेख – 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक समीक्षा' तथा "इंगलैंड की स्थिति। टामस कार्लाइल। 'अतीत तथा वर्तमान'" छपे थे। ये रचनाएं भौतिकवाद तथा कम्युनिज़्म में मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा अंतिम रूप से संक्रमण किये जाने के द्योतक हैं। इस पत्रिका का प्रकाशन मुख्यतया मार्क्स तथा पूंजीवादी आमूलवादी रूगे के बीच बुनियादी बातों पर मतभेदों के परिणामस्वरूप बन्द कर दिया गया था।—पृ० २६६

[136] **जर्मन मज़दूर समाज** – मार्क्स और एंगेल्स ने अगस्त १८४७ के अंत में ब्रसेल्स में इस समाज की स्थापना की ताकि बेल्जियम में रहनेवाले जर्मन मज़दूरों की राजनीतिक चेतना का विकास किया जा सके और उनके बीच वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के विचारों को फैलाया जा सके। मार्क्स तथा एंगेल्स और उनके सहयोगियों द्वारा निर्देशित यह समाज बेल्जियम में क्रान्तिकारी जर्मन मज़दूरों को एकजुट करनेवाला एक वैधतापूर्ण केंद्र बन गया। समाज के सबसे प्रमुख सदस्य कम्युनिस्ट लीग की ब्रसेल्स शाखा के भी सदस्य थे। फ़्रांस में फ़रवरी १८४८ की पूंजीवादी क्रांति के थोड़े दिनों के बाद बेल्जियम की पुलिस द्वारा जर्मन मज़दूर समाज के सदस्यों की गिरफ़्तारियों तथा उनके देश-निकाले के कारण समाज का काम बन्द हो गया।—पृ० २६९

[137] यह लेख मार्क्स की पुस्तक 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास' का सिंहावलोकन है। यह पूरा नहीं हो सका। उसके केवल दो भाग प्रकाशित हुए थे। एंगेल्स तीसरे भाग में पुस्तक की आर्थिक विषय-सामग्री की चर्चा करना चाहते थे परन्तु अख़बार का प्रकाशन बंद होने के कारण तीसरा भाग नहीं छप सका। पाण्डुलिपि अभी मिली नहीं है।–पृ० २७१

[138] **धर्म-सुधार युद्ध** – कैथोलिक चर्च के विरुद्ध एक व्यापक सामाजिक आन्दोलन जो १६ वीं शताब्दी में कई यूरोपीय देशों में फैला। अधिकांश देशों में धर्म-सुधार युद्ध बड़े-बड़े वर्ग-संघर्षों में विलय हो गया; जर्मनी में १५२४–१५२५ का **किसान युद्ध** इसी आन्दोलन के झंडे के नीचे हुआ था।–पृ० २७१

[139] तीस वर्षीय युद्ध (१६१८–१६४८) – प्रोटेस्टेंटों तथा कैथोलिकों के बीच कलहों के फलस्वरूप होनेवाला आम यूरोपीय युद्ध। जर्मनी लड़ाई का मुख्य रंगमंच बन गया। वह अत्यधिक फ़ौजी लूटमार तथा युद्धरत शक्तियों की विस्तारवादी आकांक्षाओं का शिकार बना।–पृ० २७१

[140] १४७७ तथा १५५५ के बीच हालैंड जर्मन राष्ट्र के पवित्र रोमन साम्राज्य का भाग था। साम्राज्य के विघटित होने पर देश स्पेन में मिला दिया गया। १६वीं शताब्दी की पूंजीवादी क्रान्ति के अन्तिम चरण में हालैंड ने स्पेनी शासन से मुक्ति प्राप्त कर ली और वह स्वतंत्र पूंजीवादी जनतंत्र बन गया।–पृ० २७१

[141] Camer alistics – कुछ यूरोपीय देशों के मध्ययुगीन तथा आगे चलकर पूंजीवादी विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जानेवाले प्रशासनिक, वित्तीय, आर्थिक तथा अन्य विज्ञानों का एक पाठ्यक्रम।–पृ० २७२

[142] «*Das Volk*» ('जनता') – ७ मई से लेकर २० अगस्त १८५९ तक लन्दन में प्रकाशित साप्ताहिक। उसके कार्यों में मार्क्स ने सक्रिय योग दिया। जुलाई के आरम्भ में वह उसके वास्तविक सम्पादक बन गये।–पृ० २७३

[143] दक्षिणपंथी हेगेलवादियों की ओर व्यंग्यपूर्ण संकेत। ये लोग जर्मन विश्वविद्यालयों में कई पीठों पर आसीन थे और उन्होंने दर्शनशास्त्र में अधिक आमूलवादी प्रवृत्तियों पर प्रहार करने के लिए अपने पदों का लाभ उठाया था।

डियाडोची – सिकन्दर महान के सेनापति जिनके बीच सिकन्दर की मृत्यु के बाद सत्ता हथियाने के संघर्ष में ज़बर्दस्त लड़ाई हुई। इस संघर्ष के दौरान (ई० पू० की चौथी शताब्दी के अन्त से लेकर तीसरी शताब्दी के आरम्भ तक) अस्थिर सैनिक तथा प्रशासनिक संघ, जो सिकन्दर का साम्राज्य था, कई स्वतंत्र राज्यों में बंट गया। – पृ० २७६

144 देखें हेगेल की कृति 'तर्क का विज्ञान', भाग १, अनुभाग २। – पृ० २७७

145 यहां इशारा 'राजनीति तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना' कृति की ओर है जिसे लिखने की मार्क्स योजना बना रहे थे। – पृ० २९६

146 **चार्टिस्ट** – १९ वीं शताब्दी के चौथे दशक से लेकर छठे दशक तक ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन में भाग लेनेवाले। यह आन्दोलन जन चार्टर को, जिसमें सर्व-मताधिकार की तथा मज़दूरों के लिए यह अधिकार सुनिश्चित करनेवाली अनेक शर्तें पूरी करने की मांग की गयी थी, अमल में लाने के नारे के साथ चलाया गया था। लेनिन के अनुसार चार्टिज़्म सही अर्थों में प्रथम विराट, राजनीतिक दृष्टि से सुगठित सर्वहारा क्रान्तिकारी आन्दोलन था। – पृ० २९७

147 यहां इशारा **जर्मन मज़दूरों के शैक्षणिक संघ** की ओर है। १९ वीं शताब्दी के छठे दशक में उसका दफ़्तर ग्रेट विंडमिल स्ट्रीट में था। उसकी स्थापना फ़रवरी १८४० में कार्ल शापेर, जोसेफ़ मोल आदि ने की थी। मार्क्स तथा एंगेल्स ने १८४९ और १८५० में उसकी गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया था। १७ सितम्बर १८५० को मार्क्स, एंगेल्स तथा उनके अनेक समर्थक संघ से पृथक हो गये क्योंकि उसके अधिकांश सदस्यों ने संकीर्णपंथी-दुस्साहसवादी विलिश-शापेर गुट का साथ दिया। १८६४ में इंटरनेशनल की स्थापना हो जाने पर उक्त संघ लन्दन में इंटरनेशनल की जर्मन शाखा बन गया। लन्दन शैक्षणिक संघ १९१८ तक काम करता रहा। १९१८ में उसे ब्रिटिश सरकार ने बन्द कर दिया। – पृ० २९८

148 क्रान्तिकारी फ़्रांसीसी सेना द्वारा माएन्ज़ पर अधिकार किये जाने के बाद जर्मन जनतंत्रवादी जनवादियों ने अक्तूबर १७९२ में तथाकथित समानता तथा

बंधुत्व क्लब की स्थापना की। इस क्लब के लोगों ने सामन्ती प्रणाली के उन्मूलन, जनतंत्र की स्थापना तथा राइन नदी का दक्षिणी तट क्रान्तिकारी फ्रांस में मिलाने की वकालत की। इन विचारों का न तो शहरी आबादी ने समर्थन किया और न किसानों ने। जुलाई १७९३ में प्रशियाइयों ने जब माएन्ज़ पर अधिकार कर लिया तो क्लब के लोगों ने अपनी गतिविधियां बन्द कर दीं।—पृ० २९८

149 यहां इशारा «*New American Cyclopædia*» के लिए फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा लिखे गये लेख की ओर है।—पृ० २९८

150 यहां शायद इशारा W. Bötticher द्वारा लिखित इस पुस्तक की ओर है—«*Geshichte der Carthagen*» ('कार्थेज का इतिहास'), बर्लिन, १८२७। यह कृति मुख्यतया कार्थेज के फ़ौजी इतिहास से सम्बन्धित है।—पृ० २९९

151 **कोंडोटेर**—१४वीं तथा १५वीं शताब्दियों में इटली में भाड़े पर काम करनेवाले सैनिकों के नेता।—पृ० २९९

नाम-निर्देशिका

अ

आ

क

ग

द

न

प

म

य

र

ल

श

स

साहित्यिक तथा पौराणिक पात्रों की सूची

ए

एकिलीज (यूनानी पुराण) – ट्रोय की घेराबन्दी करने वाले वीरों में सबसे साहसी ; •होमर के महाकाव्य 'इलियड' का नायक। – १४५, १४७

क

क्रेवेल – बाल्जाक के उपन्यास «*La Cousine Bette*» का एक पात्र, उच्छृंखल, धनलोलुप व्यक्ति। – २४४

ग

गोर्डियस – फ़्रीजिया के राजा, किंवदन्ती यह है कि उसने एक रथ पर जूए को बहुत ही पेचीदी गांठ से जोड़ दिया (तभी से गोर्डियन गांठ शब्द प्रचलित हुआ है)। आलंकारिक भाषा में इसका अर्थ है पेचीदा, उलझा हुआ मामला। किंवदन्ती यह है कि देववाणी के अनुसार इस गांठ को खोलने वाला एशिया का राजा बनेगा। सिकन्दर महान ने उसे खोलने के बजाय तलवार से काट दिया। – ८३

ड

डान क्विग्ज़ोट – सेर्वान्टिस के इसी नाम के उपन्यास का पात्र। – २२, ८०

डमोक्लिज (यूनानी पुराण) – सिराकुस के अत्याचारी राजा डीयोनिसियस (चौथी शताब्दी ई० पू०) का एक राजसभासद। कहते हैं कि राजा ने उसे भोज के लिए आमंत्रित किया तथा उसे अपने सिंहासन पर बिठाया, जिसके ऊपर एक

स

ह

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये:

प्रगति प्रकाशन,
२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।